द्वितीय स्त



प्रकाशक—बाबू बैजनाथप्रसाद बुकसेलर,

शशि-प्रभा।

पाँचवाँ भाग।

पहिला परिच्छेद

प्रिय पाठक !

सौदामिनी और प्रेतनाथ को डइनियां खोह जाने दें और आप तनक उस सहेली कि जबानी चुनार वालों की और उसके प्रयत्नों की कथा सुनते चलें जो तिलिस्म का हाल बूझने के लिये मंजरी द्वारा भेजी गई।

जो सहेली तिलिस्म देखने के लिये भेजी गई थी वह तिलिस्म देख भाल कर लौट आई। उसने रानी से कहा- सरकार! तिलिस्म अभी टूटा नहीं है लेकिन टूटने ही वाला है। एक बड़ी खूबसूरत औरत उत्तर पूरब वाले उपवन में पड़ी रो रही है। उसके साथ दूसरी कोई स्त्री नहीं है। मैंने चारों कोनों को देख भाल की पर सिवा उस लड़की के और कोई तिलिस्म के भीतर न मिला। हां तिलिस्म के ऊपर वाले बाग में पांच जन जिनमें एक बूढ़ा मुसलमान काबुली भी था इधर उधर करते

नज़र आए थे। उन लोगों की चेष्टा से जान पड़ता था कि उस सोए हुए पुतले को पहिले तोड़ना चाहते हैं।

रानी ने कहा—अच्छा इन लोगों को वहां जाने और व की खबर लाने का हाल मालूम न हो हम लोग वहाँ च और उनका तोड़ना देखें। देखें तो वे कैसे हेकड़ हैं जो म राज तिलिस्मसिंह का अनोखा तिलिस्म तोड़ने पर उत हुए हैं। जान पड़ता है उन सबों की सामत आगई है।

इतने ही में कुँअर कर्मसिंह के साथ सीताराम आदि वहां आ गए और रानी से पूछा—कहिये कुछ तिलिस्म समाचार मिला?

रानी ने कहा—जी नहीं, आप लोग यहीं ठहरे रहें। वहाँ जाती हूँ और वहाँ का सारा समाचार लाती हूँ। बि मेरे गए कुछ समाचार न मिलेगा।

सीताराम ने कहा—यदि कोई हानि न हो तो हम आपके साथ चलें और आपके तिलिस्म का दर्शन कर लें।

रानी ने कहा—जी नहीं, ऐसा नाम न लीजियेगा। तिलिस्म का और मेरा रहस्य (राज़) अभी आपको मा नहीं। जब आपको इसका भेद मालूम होगा तब आप भी कहेंगे कि हम लोगों को जल्दी यहाँ से बाहर करो ...

आगे कहते २ रानी रुक गई। सीताराम ने पूछा-सुन्द इसका रहस्य हमें जरूर सुनाओ। हमारी इच्छा इस रहस्य जानने की है। जब आप पहिले हमें मिलीं थीं तब भी आ पूछने का समय न मिला और अब भी हमें यहाँ आये ह गुजर गये लेकिन आपने अपना सच्चा क़िस्सा न कहा। क कर अब तो कुछ सुनायें।

रानी०—जी नहीं माफ करें रहस्य (भेद) की बा पूछें। इसके सुनने से किसी मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं

सकती। तिलिस्म किसका है, इसका मालिक कौन है, मेरा इस तिलिस्म से क्या सम्बन्ध है. इत्यादि मैं इस समय बता नहीं सकती हाँ कुछ दिन आप लोग यहाँ रहें तो यह रहस्य आप ही खुल जायगा. मेरे कहने की जरूरत न पड़ेगी। लेकिन इस समय मैं कुछ नहीं कहने की, माफ करना, बुरा न मानना, ऐसा ही कारण है जिससे मैं आपकी मन वाली करने में लाचार हूँ। लेकिन मैं वादा करती हूँ कि समय मिलने पर मैं आपके सवालों का जरूर जवाब दूंगी।

सीता०—भला ऐसा समय कब तक मिलेगा ?

रानी०—यह मैं नहीं बता सकती। आज अभी मिल जाय अथवा दो चार दिन में मिले और न मिले तो वर्षों न मिले कुछ ठीक नहीं है।

सीता०—तो हम लोगों को क्या हुक्म देती हो ?

रानी०-आप लोग सुख से पड़ रहिये। मैं आप लोगों की खिदमत उस समय तक करने को तैयार हूँ, जब तक मुझ पर या इस तिलिस्म पर, अथवा इसके रक्षक पर कोई जवाल पैदा न हो। साथ ही मैं आपकी मदद करने को तैयार हूँ। यद्यपि हम लोग भी एक प्रकार की क़ैदी ही हैं और क़ैदखाने ही में पड़ी जिन्दगी बिता रही हैं, फिर भी क़ैद की मुद्दत होती है और मुद्दत गुजरने पर आजन्म क़ैदी भी रिहा हुआ करते हैं। हम भी इस तिलिस्म से रिहा हो किसी भले मानुस के घर की गृहणी नाम से पुकारी जाऊँगी।

सीता०—तो क्या आप अभी तक कुंआरी ही हैं ?

रानी—अभी तक क्या, न जाने कब तक कुंआरी रहूँगी।

सीता०—क्यों इसका क्या कारण है ?

रानी०—बस, यही बताना तो गजब है।

सीता०—आखिर कुछ कहें भी तो ?

रानी०—जी नहीं, कुछ कथा एक अक्षर भी मुँह से इस समय नहीं निकाल सकती। (घबड़ा कर) आप लोग इस तहखाने के नीचे झटपट उतर जायँ, नहीं तो गजब होने चाहता है"-यह कह कर तहखाने का मुँह उसने अपने हाथों से खोल दिया।

सीताराम आदि ने इतना भी पूछ न पाया कि-"क्यों क्या आफत आई" और खटाखट वे उस तहखाने में उतर गये।

पाठक! यह बादल सा गरजता और बिजली सा चमकता हुआ सामने कौन चला आ रहा है? अजी यह तो वही ऊपर कही हुई गुफा में का सिद्ध है। तनक इसकी शक्ल तो देखें! यह मारे क्रोध के ऐसा काँप रहा है मानों जूड़ी ही चढ़ी है। आँखें में इसके आग की भट्ठी जान पड़ती है, तभी तो मानो वे अंगारे उगल रही हैं!! अरे भाई सिद्धों में इतनी गर्मी!!! यह तो हमने आजही जाना कि क्रोध को असली शक्ल क्या है?

सिद्ध जी के गुस्से को देखते ही रानी जी के होश गुम हो गए, सहेलियों की भी नानी मर गई। सब सन्न मारे अदब के साथ हाथ बाँध कर कतार से खड़ी हो गईं।

सीताराम आदि को तहखाने में उतार कर तहखाने का मुख बन्द कर रानी ज्योंही खड़ी हुई है, त्योंहीं वह सिद्ध तड़पता झड़पता और कुछ बर्राता हुआ सामने आ खड़ा हुआ और चीख कर बोला—"बस अब तेरे जान की खैर नहीं तब की बार तो तेरी जिन्दगी बच भी गई, मगर अब की बार बचना कठिन है। अरी दुष्टा! तू इतनी निडर, निर्लज्ज और स्वतन्त्र है? तुझे मेरा कुछ भी भय नहीं, ले आज मैं तेरा नाम ही मिटाए देता हूँ, कहता हुआ ज्योहीं वह रानी की ओर बढ़ा और चाहा कि उसका झोंटा पकड़ें, त्योंही पीछे से बिजली की तरह तलवार चमकी और पलक मारते २ सिद्ध जी वहाँ अलख हो गए।

यह देख उन नम्रो बालाओं ने अपनी आँखे मूंद लीं और काँपती हुई वहीं खड़ी रहीं। कुछ देर बाद वे आँखें खोलीं। आँखें खोलते ही उनके सामने काले लबादे में नख सिख ढाँके सच मुच काल खड़ा दिखाई पड़ा और वे सबकी सब उस काल को देख काँपने लगीं। काला पुरुष हँसा और मुख से सीटी बजाया। सीटी के बजते ही १०।१२ जन काला लबादा पहिने हाथों में नंगी तलवार और ढाल लिए सामने आए। काले ने उन आए हुए में से एक से कुछ इशारा किया। उसने उसके इशारे पर उस तहखाने का पल्ला सरकाया। सीढ़ी की राह खटाखट वे सब नीचे उतर गए और एक एक को दो दो ने पकड़ कर हथकड़ी बेड़ी से जकड़ दिया और उन्हें अपने साथ मैदान में ले आए।

सीताराम तो इस घटना को कुछ भाँप गया। भोजदत्त भी चुप चाप शोचता विचारता जमीन आसमान के अनुमान के कुलावे मिलाता शिर नीचा किए खड़ा रहा। संतसिंह को तो नाडियों में खून न रहा, इसी से उसकी दशा मुर्दे से भी खराब हो गई।

रामनाथ को भूत और वर्तमान का तो ख्याल भूल गया पर आने वाले भविष्य की उसे भारी चिंता हुई। बिचारे कुँअर कर्मसिंह बहादुर तो अव्वल नम्बर के हैं लेकिन जरा ऐयाश मिजाज रखते हैं, इसी से उनकी उम्मेदें उनका साथ छोड भागीं। इसी कारण वे कुछ उदास हो रहे। रानी को देखते ही उनके मुँह में पानी भर आया था और सोचा था, कि यदि यह मिल गई तो शशिप्रभा को कौन पूछता है। वह राज कन्या है उसके लेने में लेने के देने हैं। फिर उसके पाने में भी कृपाणें बेकाम हो जायँगो। यह रत्न तो सहज में ही मिल गया। इसमें वह अड़चनें भी नहीं हैं जो उसमें दीखती थीं, और दीखती

हैं। लेकिन उनकी आशा पर पानी फिर गया। विचारे ह
हुए जुआड़ियों की सूरत बनाए खड़े रहे और दम क्षण प
सोचते रहे कि—"अब क्या होगा और क्या होने वाल
है इत्यादि"

सीताराम ने यह तो जान लिया कि ये धूर्त हैं और य
भी जान लिया कि ये उन्हीं चुनारवालों के हिमायतियों में स
हैं पर कौन २ हैं यह उसने भी नहीं जान पाया।

कुछ देर के विश्राम के बाद काले पुरुष ने फिर कुछ
इशारा किया और वे सब उन क़ैदियों को लिये दिये दक्खिन
को चले। कुछ दूर जाने पर एक बड़े भयानक बन के भीतर
पैठे। कुछ दूर और उस बन में धँस कर एक टूटी फूटी मढ़
पर पहुँचे। उस मढ़ी के बीच में एक भारी शिला पर उन
सबों को बिठा कर वे सब उत्तर दक्खिन पूरब पच्छिम को
खिसक गए।

वे पाँचों क़ैदी उसी शिला पर बैठे उन सिपाहियों की
इंतिजारी करने लगे और कहने लगे—यारो बड़ी देर हुई वे
यमराज के बच्चे अभी तक लौट कर नहीं आये! मामला
क्या है? कहीं वे हमें इस दशा में-ऐसे सुनसान बियाबान
छोड़ कर खिसक तो नहीं गए?

सीताराम ने कहा-घबराओ नहीं। वे अब गए। उन्होंने
इतनी ही सजा काफी समझी होगी तभी तो छोड़ कर भाग
गए। अब इन हथकड़ियों को तोड़े और काटे कौन? हाथ तो
सभी के फँसे हैं। एक का भी हाथ खुल जाये तो सब का
खुल जाये। भोजदत्त ने कहा-यह क्या मुश्किल है। मैं इस
हथकड़ी को मड़ोर कर तोड़ डाल सकता हूँ। यह कह उसने
ज्योंही हाथों में मुरीं दी त्यों ही कड़ी चटक कर खुल गई
वह बोला लो अब मैं सब की हथकड़ी बेड़ी खोले देता हूँ

उसने फिर तो पत्थर की चोट से सबों की हथकड़ी बेड़ी तोड डाली। हाथ पैर खुल जाने पर कुँअर कर्मसिंह ने सीताराम से कहा—सीताराम! अब देर न करना चाहिए। चलो अब यहाँ से भाग चलें। ऐसा न हो कि वे दुष्ट कहीं छिपे हों और फिर आकर धर पकड़ करें।

सीताराम ने कहा--जी हाँ, आप ही एक हैं जो यहाँ से आसानी से भाग सकते हैं। अजी जनाब! कुछ यह भी खबर है कि आप हैं कहाँ!!!

कुँ० कर्म--हाँ खबर क्यों नहीं है जंगल में हैं। और आप क्या समझते हैं कि किसी तहखाने में बन्द हैं?

सीताराम—तहखाना अच्छा पर जहाँ इस समय हैं यह अच्छा नहीं।

कुँ० कर्म०—यह कैसे?

सीताराम०--कैसे बतावें। आपको जब इतना भी मालूम नहीं कि किस जंगल में, कैसे स्थान में, किस दशा में हैं तो हम क्या बतावें। सब्र से बैठे रहिये समझ लेने पर कहेंगे।

भोजदत्त०—भाई सीताराम! दिशा का ज्ञान तो कम्पास से चल गया। हम दक्खिन दिशा में हैं, चलो अब उत्तर की राह पकड़ें चलने पर कहीं न कहीं तो निकल ही पड़ेंगे। कुछ दूर चलने और जंगल को पार करने पर सुगम राह आप ही सूझेगी।

रामनाथ भी इसी राय को पसंद किया और कहा—चाहे जो हो अब यहाँ से चलना तो अवश्य ही है। चलो कहीं न कहीं तो निकलेंगे।

संतसिंह ने कहा--यदि उन दुष्टों ने फिर राह घेरा तब क्या करोगे? यह कैसे मालूम हो कि वे हमें छोड़ कर चले

गये। संभव है कि वे कहीं किसी झाड़ी में छिपे हुए हमार निगरानी करते हों।

सीताराम और भोजदत्त दोनों की सलाह पक्की ठहर और वहाँ से वे उत्तर को राह लिये।

पाठक! अब आइए तनक डइनियाँ खोह पर और देखि कि तिलिस्म के भीतर क्या हो रहा है।

पहिला दिन तो देख भाल छान बीन करने ही में चल गया। दूसरे दिन नित्य कर्म से निपट कर ज्योंहीं सब तिलिस्म में उतरने को हुए त्योंहीं सामने एक स्त्री और एव पुरुष दिखाई पड़े। उन दोनों को अपनी ही ओर आते देख सब वहीं खड़े हो गए। कुछ ही देर में उन दोनों की सूरत साफ़ दिखाई पड़ने लगी।

कुँअर शमशेरबहादुरसिंह ने कहा-पुरुष तो प्रेतबाब हैं पर स्त्री कौन है सो नहीं कह सकते। सूरत से तो वह कोई साधुनी मालूम होती है।

ध्यानसिंह बोले-जरा गौर से देख कर कहें स्त्री कौन है

कुँअर०—स्त्री कोई साधुनी दीखती है।

इतने में वे दोनों करीब पहुँच गए। कुँअर न प्रेतनाथ का हाथ थाम लिया और कहा-आप हम लोगों को जंगल में बैठा कर कहाँ निकल गये? यह (स्त्री की ओर इशारा कर कौन है?

स्त्री रोने लगी और अंचल से अपना मुख ढाँक ली।

ध्यानसिंह ने कहा--सौदामिनी! तुम इतनी चतुर होशि यार और बुद्धिमान स्त्री होकर भी हिम्मत छोड़ दीं? यह त होता ही है। दुःख चतुरों पर ही पड़ा करता है, निकम्मों क क्या दुःख और क्या सुख? जो लड़ता है वही गिरता है फिर इतनी हिम्मत छोड़ने की तुम्हें जरूरत नहीं।

सौदामिनी की सूरत देखते ही कुँअर शमशेरबहादुरसिंह की आँखें भर आईं और वे उसकी दशा पर बेतरह रोए। आँसुओं से सामने छाती पर का अँगरखा भींज गया।

ध्यानसिंह ने कहा—वाह साहब! अच्छा ज़नानखाना बना दिया। अजी! कुशल पूछो, क्षेम पूछो, शशि का हाल पूछो, तिलिस्म का दुःख सुख पूछो. रोते क्या हो? सौदामिनी से कहा—सौदामिनी! कहो शशि को कहाँ छोड़ आईं और वह किस दशा में कहाँ पड़ी हुई है?

सौदामिनी ने सारी कहानी सुनाकर कहा—यदि जल्दी करें तो शशि हाथ पड़ेगी नहीं तो अब उसके बचने की आशा नहीं है। आप लोग तिलिस्म का धन रत्न पीछे निकालना पहिले शशि को उसके बाहर निकालें।

ध्यानसिंह—हाँ पहिले उसी को निकालेंगे। अब उसके निकालने में क्या अड़चने हैं। रास्ता तुहें मालूम ही है चलो पहिले उसी की फिक्र करें।

सौदामिनी—मैं रास्ता सीधा समझ आई हूँ। यदि मुझे वह रास्ता पहिले मालूम होता तो मैं उसी रास्ते उसी के निकट पहुँचती लेकिन मैंने वह रास्ता छोड़ कर दूसरा रास्ता पकड़ा था, जिससे मैं कहीं और वह कहीं जा पड़ी। प्रेतबाबा की हिम्मत भी उस स्थान तक पहुँचने में काम न दी। लेकिन एक बात का ध्यान रहे कि आप बिना तिलिस्म को तोड़े ही शशि के पास पहुँचे। यदि तिलिस्म पहले टूटा तो फिर शशि भी टूट कर न जाने कहाँ की कहाँ जा पड़ेगी। इस तिलिस्म का सारा दारमदार एक तार पर है, उसी तार से सारा तिलिस्म नत्थी है। उस तार के बरबाद होते ही जितनी कारीगरी हैं सब बेकार हो जायँगी। कारीगरियों के बेकार होते ही जो

वस्तु जहाँ पर पड़ी है वह वहीं, उसी दशा में पड़ी सड़ जायग
फिर शशिका पाना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव हो जायग

इतना ही नहीं कि तिलिस्म टूटने पर केवल उसमें कारीगरी नष्ट हो जाय, इसके अलावे भी एक भारी खतरा

ध्यानसिंह—वह क्या ?

सौदामिनी—वह यह कि इसके भीतर-जहाँ जिस स्थान में जा पड़ी थी-एक गुफा है। उस गुफा में एक भयानक सि तप कर रहा है, वह तिलिस्म के टूटते ही गज़ब ढादेगा अ सब किये कराये पर पानी फेर देगा। यद्यपि हम उसी कृपा से बाहर निकल पाई हैं लेकिन वह महा क्रोधी है अ उसी की इस तिलिस्म में तूती बोलती जान पड़ती है। राय में आप लोग तिलिस्म के तोड़ने फोड़ने का इरादा दें। यह काम पीछे भी कर सकते हैं। इस समय जिस रा से मैं चलती हूँ चले चलिये और शशि को चुपचाप बा निकाल लाइये।

सौदामिनी की राय सबों को पसन्द आई। दीनमोहन ने भी इसे पसन्द किया। सब लोग तहखाने में उतरे अ सरोवर के किनारे पहुँच कर सलाह किये। कुँअर शमः बहादुरसिंह को ऊपर भेज दिया जाय और वे तहखाने द्वार की रक्षा करते रहें। और हम लोग तिलिस्म में बै पहिले तो कुँअर ने इस राय को पसन्द न किया और कह मैं भी तिलिस्म में आप लोगों के साथ चलूँगा लेकिन सौ मिनी के समझाने पर राजी हुए और वे वहाँ से निकल ऊपर अपने खीमे में चले आए।

ध्यानसिंह ने रणधीरसिंह और सुमेरसिंह को भी उ भेज दिया और कहा—तुम लोग दरवाजे की रखवाली रहो मुमकिन है कि क़ातिल वाले पहुँच कर कुछ ऊधम क

ध्यानसिंह की आज्ञानुसार सुमेरसिंह और रणधीरसिंह दोनों फाटक पर चले आए। इनलोगों के चले जाने के बाद सौदामिनी ने चारों चबूतरों को दिखाया. जिसे ध्यानसिंह धीरसिंह वीरसिंह और दीन मोहम्मद ने बड़े गौर से देखा।

सौदामिनी ने अजगर वाले चबूतरे को दिखा कर कहा—इसी प्राणी के मुख में होकर शशि इस तिलिस्म के भीतर फँसी है।

ध्यानसिंह ने पूछा—यह तुम्हें क्योंकर मालूम हुआ।

सौदामिनी ने कहा—यह मुझे शशिने ही इशारे से बताया था। दूसरी ओर बगले वाले चबूतरे को दिखाकर वह बोली, देखिये! मैं इस बगले के मुख में पैठ कर इस तिलिस्म में उतरी थी।

ध्यानसिंह-अब हम लोग किधर से चलें तो शशि को पावें?

सौदामिनी-बस, इसी अजगर के मुख में पैठनेपर कामना सिद्ध होगी।

दीन मोहम्मद—यह बीबी ठीक कहती है। पच्छिम के चबूतरे पर जो मनुष्य की मूर्ति सोई पड़ी है वही इस तिलिस्म के खजाने की कुन्जी है। कुन्जी वाले चबूतरे पर यदि कोई जबर्दस्ती चढ़कर चाहे कि उस मूर्ति के हाथ से ताली ले लेवें, तो वह कटार तानी हुई पुतली का तुरन्त शिकार हो जायगा। दोनों हाथों से कटार ताने हुए जो पुतली-सोई हुई मूर्ति के सिरहाने खड़ी है वह इसी मतलब से बनाई गई है। जहाँ कोई अनाड़ी आया और उसने चाहा कि पुतले को छूवे तहाँ इस कटार वाली ने अपने कटार का उसपर वार किया। यदि बिश्वास न हो तो देख लें। यह कह ज्योंहीं उसने अपना डंडा उस पुतले के हाथ से लगाया त्योंहीं कटार वाली पुतली

का कटार उस दण्डे पर आ गिरा, जिससे वह दंडा दो टुकड़
हो गया।

दीन मोहम्मद ने कहा, देखा आप ने इस कारीगरी को
ध्यानसिंह ने कहा–जी हाँ, देखा। इसके हाथ से लकड़ी नह
साबित बचती है तो मनुष्य क्योंकर बच सकेगा। अच्छ
इससे बच कर मूरत के हाथ से ताली लेने का और को
उपाय है?

दीन मोहम्मद—हाँ है क्यों नहीं। तरकीब से उसे लेन
पड़ेगी। यदि जल्द बाजी से चाहें तो नहीं मिल सकती। चा
जिधर खड़े हों परन्तु पुतली की कटार की चोट से बच नह
सकते। इस समय आप को न तो तिलिस्म तोड़ना है और
खजाना लेना है। जब आप इसके लिये तैयार होकर आवें
तब इसकी सहल तर्कीब बतावेंगे। अब आगे वाले चबूत
पर चलो उसकी भी कारीगरी समझावें।

दीन मोहम्मद ने कहा—इस तिलिस्म में फँसने के
तीनहीं यन्त्र हैं। गिद्ध, बगला और अजगर। तीनोंके निकट
जाने में एकही पुतली की तरफ का रास्ता कुछ कम खतरे का
है, वह यही पुतली है जो हाथों में गदा और मूसल लिये है
बरछी वाली की ओर जायँ तो वह बरछी भोंक दे। तीर
कमान वाली की ओर से चढ़ें तो उसकी चलाई तीर कलेजे
को फाड़ कर निकल जाय। कटार वाली तो दो टुकड़े करने
में देर करनेवाली ही नहीं। बस यदि आप लोग इसके भीतर
पैठना चाहते हैं, तो चाहे इन तीनों में से किसी एक चबूतरे
पर चढ़ें पर गदा मूसल वाली पुतली की तरफ से चढ़ें
क्यों कि गदा और मूसल की चोट बरदाश्त हो जायगी और
हरबों की चोट प्राण की लेवा है।

सौदामिनी ने कहा—शाह साहेब ठीक कहते हैं। यह

अनुमान कर मैंने भी गदा वाली पुतली की ओरसे इस चबूतरे पर चढ़ाई की थी।

ध्यानसिंह ने कहा—सौदामिनी! अब जिधर से कहो उधर ही से चले। क्योंकि चलना तुम्हारे ही इशारे पर है।

सौदामिनी ने कहा—बस, इसी पूरब वाले चबूतरे पर चढ़ें, इसी रास्ते शशि तक पहुँच जाने की आशा है।

दीन मोहम्मद बूढ़ा है, वह तिलिस्म की कठिनाइयाँ बरदास्त न कर सकेगा। अच्छा हो कि वह भी यहीं छोड़ दिया जाये, यह कह कर ध्यानसिंह ने दीन मोहम्मद से कहा, शाह साहेब! आप भी ऊपर चलकर आराम करें। क्योंकि हम लोगों के साथ आप को बड़ी तकलीफ होगी। आप बूढ़े हैं तकलीफ बरदास्त करने के योग्य नहीं हैं। सौदामिनी की जबानी इस तिलिस्म की कहानी सुन चुके हैं। कहीं कूदना, कहीं फाँदना, कहीं चढ़ना कहीं उतरना बस यही इसमें भरा हुआ है। अच्छा हो कि आप यहीं रहें। यदि आप ऊपर रहेंगे तो कुसमय पर कुछ मदद भी कर सकेंगे। कहां हम लोग गहरे फन्दे में फँस गए तो फिर हमें कौन निकालेगा?

दीन मोहम्मद वहीं छोड़ दिये गये और वे तहखाने के बाहर चले गए। अब रह गये प्रेतनाथ, ध्यानसिंह, धीरसिंह, वीरसिंह और सौदामिनी। ये पाँचों उसी सरोवर पर बैठ तिलिस्म में पैठने की सलाह करने लगे।

सौदामिनी ने कहा-अजगर के मुख में पैठने पर शशि मिलेगी और मूर्तियों में पैठने पर नहीं। क्योंकि बगले के मुख में मैं पैठ चुकी हूँ। लेकिन यह मैं नहीं कह सकती, कि बगले वाली राह जैसी अजगर वाली राह भी है या नहीं, या वह उससे भिन्न है। ध्यानसिंह ने सौदामिनी के बताए हुए अजगर के मुख में पैठना निश्चय किया और अपने सारे सामान

झोली सोंटा आदि से लैस हो प्रेतनाथ भी तैयार हुए। इन्हे तैयार होते देख धीर और वीरसिंह भी खड़े हुए।

पहिले ध्यानसिंह हल मूसल वाली पुतली के पास पहुँचे इनके वहाँ पैर धरते ही उस पुतली ने गदा चलाई। गदा की चोट बचा कर ध्यानसिंह ने ज्योंही दूसरा पैर आगे बढ़ाया त्योंहीं पुतली ने मूसल मारा और अजगर ने लेट कर उनको मुख में धर लिया।

ध्यानसिंह ८। १० हाथ नीचे उसी लोहे के पीपे में गिरे अँधेरे के कारण कुछ कारीगरी का पता चलते न देखकर उन्होंने झोली में से चकमक निकाल कर मोमबत्ती जलायी देखा तो एक १५।२० फीट मुरब्बे का गोल लोहे का पीपा १२ हाथ लम्बा किसी आधार पर खड़ा है। ऊपर का मुँह अजगर से मिला हुआ है। नीचे का पेंदा कहाँ और किस पर है सो नहीं मालूम। पीपे में कहीं छेद तक नहीं और न कोई राह है हवा न मिलने के कारण उनका दम घुटने लगा। लोहेकी दीवार को चारो ओर से ठोंका, कहीं ज़रा भी उसमें जुम्बिश न हुई। पीपे का पेंदा देखा तो उसमें एक बन्द खिड़की नज़र आई। इधर उधर हिला कर देखा पर वह न खुली। झोली में से हथौड़ी निकाल कर चोट दिया। चोट लगते ही उस खिड़की में चटख पैदा हुई और उसके दोनों पल्ले नीचे को गिरे जैसे शशि गिरी थी। इस सहन में एक ही दरवाजा था उसे ध्यानसिंह गौर से देख ही रहे थे कि प्रेतनाथ भी वहाँ आ गिरे। इनके गिरने के बाद धीर वीर दोनों भी गिरे। सब के पीछे सौदामिनी का नम्बर आया, वह भी उसी सहन में गिरी पाँचों गिरे और गिरे और गिरे भी कम से कम १० हाथकी ऊँचाई से लेकिन चोट किसी को न आई! ज़मीन जिस पर ये लोग गिरे वह ऐसी मालूम हुई जैसे हवा से भरा हुआ रबड़का गद्दा।

ध्यानसिंह ने बहुतेरा चाहा कि इस ज़मीन की कारीगरी को जाने पर वह न जान पाए। धरती पर कोई चिन्ह न मिला। धरती साधारण और ठोस सी दिखाई पडी! अब उस बन्द दरवाजे को खोलना चाहा। ढूँढ़ने पर चौखट का बटन दिखाई पड़ा। ध्यानसिंह ने उस बटन को सामने खींचा! बटन के खींचते ही वह दरवाजा चटख कर खुल गया और सामने एक मेहराबदार बड़ा महल दीख पड़ा।

दरवाजे के खुलते ही लोहे के पीपे वाली खिड़की-जिसमें होकर पाँचों गिरे थे-आपसे आप बन्द हो गई। यह तमाशा देख ध्यानसिंह ने प्रेतनाथ से कहा-ऊपर की राह तो बन्द हो गई ऐसा न हो कि हमारे बाहर पैर धरते ही यह दरवाजा भी बन्द हो जाय। अच्छा हो कि इस दरवाजे को रस्सी से जकड़ कर बाँध दें। जिससे यह खुला रहे, मुँदने न पाए।

प्रेतनाथ ने उसका एक पल्ला रस्सी से बाँध कर बाहर की मेहराब में खींच कर बाँध दिया। पाँचों जन मेहराब वाले मकान में आए। देखा तो सारा मकान मेहराबों से भरा है। सिवा मेहराबों के और कुछ उसमें है ही नहीं!

ध्यानसिंह ने कहा-वाह यह तो अच्छा भूलभुलइयाँ का खेल बना है। यह किस इच्छा से बना है सो राम ही जाने पर अनजान के लिए तो इसमें भटक २ कर प्राण गँवाने का अच्छा साधन तैयार किया गया है!

पाँचों जन पाँच मेहराबों में पैठकर चाहे कि इसका मर्म ढूँढ़ें पर पाँचों असफल (नाकामयाब) रहे। घूम फिर कर पाँचों बाहर निकल आए। बड़ी देर तक वे घूमा फेरी करते रहे लेकिन भेद न पाए। सौदामिनी ने कहा—इसी प्रकार का एक सीढ़ीदार घर मुझे भी मिला था। इसमें मेहराबें हैं उसमें सीढ़ियाँ थीं बस यही दोनों में फर्क है। उसमें

की कटार उस दण्ड पर आ गिरी, जिससे वह दण्डा दो टुकड़ा हो गया।

दीन मोहम्मद ने कहा, देखा आप ने इस कारीगरी को? ध्यानसिंह ने कहा—जी हाँ, देखा। इसके हाथ से लकड़ी नहीं साबित बचती है तो मनुष्य क्योंकर बच सकेगा। अच्छा इससे बच कर मूरत के हाथ से ताली लेने का और कोई उपाय है?

दीन मोहम्मद—हाँ है क्यों नहीं। तरकीब से उसे लेनी पड़ेगी। यदि जल्द बाजी से चाहें तो नहीं मिल सकती। चाहे जिधर खड़े हों परन्तु पुतली की कटार की चोट से बच नहीं सकते। इस समय आप को न तो तिलिस्म तोड़ना है और न खजाना लेना है। जब आप इसके लिये तैयार होकर आवेंगे तब इसकी सहल तर्कीब बतावेंगे। अब आगे वाले चबूतरे पर चलो उसकी भी कारीगरी समझावें।

दीन मोहम्मद ने कहा—इस तिलिस्म में फँसने के ये तीनहीं यन्त्र हैं। गिद्ध, बगला और अजगर। तीनोंके निकट जाने में एकही पुतली की तरफ का रास्ता कुछ कम खतरे का है, वह यही पुतली है जो हाथों में गदा और मूसल लिये है। बरछी वाली को ओर जायँ तो वह बरछी भोंक दे। तीर कमान वाली की ओर से चढ़ें तो उसकी चलाई तीर कलेजे को फाड़ कर निकल जाय। कटार वाली तो दो टुकड़े करने में देर करनेवाली ही नहीं। बस यदि आप लोग इसके भीतर पैठना चाहते हैं, तो चाहे इन तीनों में से किसी एक चबूतरे पर चढ़ें पर गदा मूसल वाली पुतली की तरफ से चढ़ें। क्यों कि गदा और मूसल की चोट बरदास्त हो जायगी और हरबों की चोट प्राण को लेना है।

सौदामिनी ने कहा—शाह साहेब ठीक कहते हैं। यही

अनुमान कर मन भी गदा वाली पुतली की ओर से इस चबू-
तरे पर चढ़ाई की थी।

ध्यानसिंह ने कहा—सौदामिनी! अब जिधर से कहो
उधर ही से चले। क्योंकि चलना तुम्हारे ही इशारे पर है।

सौदामिनी ने कहा—बस, इसी पूरब वाले चबूतरे पर
चढ़ें, इसी रास्ते शशि तक पहुँच जाने की आशा है।

दीन मोहम्मद बूढ़ा है, वह तिलिस्म की कठिनाइयाँ बर-
दास्त न कर सकेगा। अच्छा हो कि वह भी यहीं छोड़ दिया
जाये, यह कह कर ध्यानसिंह ने दीन मोहम्मद से कहा, शाह
साहेब! आप भी ऊपर चलकर आराम करें। क्योंकि हम
लोगों के साथ आप को बड़ी तकलीफ होगी। आप बूढ़े हैं
तकलीफ बरदास्त करने के योग्य नहीं हैं। सौदामिनी की
ज़बानी इस तिलिस्म की कहानी सुन चुके हैं। कहीं कूदना,
कहीं फाँदना, कहीं चढ़ना कहीं उतरना बस यही इसमें भरा
हुआ है। अच्छा हो कि आप यहीं रहें। यदि आप ऊपर रहेंगे
तो कुसमय पर कुछ मदद भी कर सकेंगे। कहीं हम लोग
गहरे फन्दे में फँस गए तो फिर हमें कौन निकालेगा?

दीन मोहम्मद वहीं छोड़ दिये गये और वे तहखाने के
बाहर चले गए। अब रह गये प्रेतनाथ, ध्यानसिंह, घोरसिंह,
वीरसिंह और सौदामिनी। ये पाँचों उसी सरोवर पर बैठ
तिलिस्म में पैठने की सलाह करने लगे।

सौदामिनी ने कहा-अजगर के मुख में पैठने पर शशि
मिलेगी और मूर्तियों में पैठने पर नहीं। क्योंकि बगले के मुख
में मैं पैठ चुकी हूँ। लेकिन यह मैं नहीं कह सकती, कि बगले
वाली राह जैसी अजगर वाली राह भी है या नहीं, या वह
उससे भिन्न है। ध्यानसिंह ने सौदामिनी के बताए हुए अजगर
के मुख में पैठना निश्चय किया और अपने सारे सामान

झोली सोंटा आदि से लैस हो प्रेतनाथ भी तैयार हुए। इन्हें तैयार होते देख धीर और वीरसिंह भी खड़े हुए।

पहिले ध्यानसिंह हल मूसल वाली पुतली के पास पहुँचे। इनके वहाँ पैर धरते ही उस पुतली ने गदा चलाई। गदा की चोट बचा कर ध्यानसिंह ने ज्योंही दूसरा पैर आगे बढ़ाया त्योंहीं पुतली ने मूसल मारा और अजगर ने लेट कर उनको मुख में धर लिया।

ध्यानसिंह ८। १० हाथ नीचे उसी लोहे के पीपे में गिरे। अँधेरे के कारण कुछ कारीगरी का पता चलते न देखकर उन्होंने झोली में से चकमक निकाल कर मोमबत्ती जलायी। देखा तो एक १५।२० फीट मुरब्बे का गोल लोहे का पीपा १२ हाथ लम्बा किसी आधार पर खड़ा है। ऊपर का मुँह अजगर से मिला हुआ है। नीचे का पेंदा कहाँ और किस पर है सो नहीं मालूम। पीपे में कहीं छेद तक नहीं और न कोई राह है। हवा न मिलने के कारण उनका दम घुटने लगा। लोहेकी दीवार को चारो ओर से ठोंका, कहीं ज़रा भी उसमें जुम्बिश न हुई। पीपे का पेंदा देखा तो उसमें एक बन्द खिड़की नज़र आई। इधर उधर हिला कर देखा पर वह न खुली। झोली में से हथौड़ी निकाल कर चोट दिया। चोट लगते ही उस खिड़की में चटख पैदा हुई और उसके दोनों पल्ले नीचे को गिरे जैसे शशि गिरी थी। इस सहन में एक ही दरवाजा था उसे ध्यानसिंह गौर से देख ही रहे थे कि प्रेतनाथ भी वहाँ आ गिरे। इनके गिरने के बाद धीर बीर दोनों भी गिरे। सब के पीछे सौदामिनी का नम्बर आया, वह भी उसी सहन में गिरी। पाँचों गिरे और गिरे और गिरे भी कम से कम २० हाथकी ऊँचाई से लेकिन चोट किसी को न आई! ज़मीन जिस पर ये लोग गिरे वह ऐसी मालूम हुई जैसे हवा से भरा हुआ रबड़का गद्दा!

ध्यानसिंह ने बहुतेरा चाहा कि इस ज़मीन की कारीगरी को जाने पर वह न जान पाए। धरती पर कोई चिन्ह न मिला। धरती साधारण और ठोस सी दिखाई पडी! अब उस बन्द दरवाजे को खोलना चाहा। ढूँढ़ने पर चौखट का बटन दिखाई पड़ा। ध्यानसिंह ने उस बटन को सामने खींचा! बटन के खींचते ही वह दरवाजा चटख कर खुल गया और सामने एक मेहराबदार बड़ा महल दीख पड़ा।

दरवाजे के खुलते ही लोहे के पीपे वाली खिड़की-जिसमें होकर पाँचों गिरे थे-आपसे आप बन्द हो गई। यह तमाशा देख ध्यानसिंह ने प्रेतनाथ से कहा-ऊपर की राह तो बन्द हो गई ऐसा न हो कि हमारे बाहर पैर धरते ही यह दरवाजा भी बन्द हो जाय। अच्छा हो कि इस दरवाजे को रस्सी से जकड़ कर बाँध दें। जिससे यह खुला रहे, मुँदने न पाए।

प्रेतनाथ ने उसका एक पल्ला रस्सी से बाँध कर बाहर की मेहराब में खींच कर बाँध दिया। पाँचों जन मेहराब वाले मकान में आए। देखा तो सारा मकान मेहराबों से भरा है। सिवा मेहराबों के और कुछ उसमें है ही नहीं!

ध्यानसिंह ने कहा-वाह यह तो अच्छा भूलभुलइयाँ का खेल बना है। यह किस इच्छा से बना है सो राम ही जाने पर अनजान के लिए तो इसमें भटक २ कर प्राण गँवाने का अच्छा साधन तैयार किया गया है!

पाँचों जन पाँच मेहराबों में पैठकर चाहे कि इसका मर्म ढूँढ़ें पर पाँचों असफल (नाकामयाब) रहे। घूम फिर कर पाँचों बाहर निकल आए। बड़ी देर तक वे घूमा फेरी करते रहे लेकिन भेद न पाए। सौदामिनी ने कहा—इसी प्रकार का एक सीढ़ीदार घर मुझे भी मिला था। इसमें मेहराबें हैं उसमें सीढ़ियाँ थीं बस यही दोनों में फर्क है। उसमें

मैं तमाम दिन परेशान हुई पर राह न पाई। अन्त में मैं डोरी के सहारे पचास साठ हाथ नीचे एक दूसरे सहन में उतर पड़ी।

ध्यानसिंह ने सौदामिनी से पूछा-सौदामिनी! हर एक मेहराबों पर कंकड़ से लिखे हुए १।२।३।४ के ये नम्बर कैसे हैं और किस ने लिखे हैं? देखने में यह लिखावट ताजी मालूम होती है।

सौदामिनी ने कहा—यह निशान शशि का लिखा हुआ है उसीकी यह लिखावट है। चलो इन्हीं अंकड़ों को मिलाते हुए चले चलें। यह कह वे पाँचों उन नम्बरों को वैसे ही मिलाते आगे बढ़े जैसे शशि बढ़ी थी और जैसे शशि सौवें नम्बर में जा पहुँची थीं ये लोग भी पहुँच गए। शशि का खोला हुआ चौखटा फिर बन्द नहीं हुआ था वह वैसे ही खुला पड़ा था। मालूम होता है कि उस चौखटे की कारीगरी बिगड़ गई, इसी से वह फिर बन्द नहीं हुआ।

पाँचो जन उसी सीढ़ी की राह नीचे बावन खंभे वाली दालान में आए। दालान की बनावट बखानते हुए वे लोग वहीं विश्राम करने लगे।

ध्यानसिंह ने कहा—यह दालान-जिसमें बावन खम्भे गिन कर लगाये गये हैं और जिसकी एक ही छत, जिसकी लम्बाई चौड़ाई एक कोस के मुरब्बे से कम नहीं है-कैसी अच्छी हवादार बनी है। आकाश यहाँ से कितनी दूर है इसे अब गणक (ज्योतिषी) भी बताने में असमर्थ हैं। क्योंकि धरती के तल से सैकड़ों फीट नीचे यह दालान है। अगले जमाने के लोग बड़े मनचले थे। उन्होंने इस धरती के ऊपर और भीतर ऐसे २ अनोखे चिन्ह बना गये हैं जिसे देख कर मनुष्यों की बुद्धि चक्कर खाने लग जाती है। उस समय के कारीगर मनुष्य नहीं देव थे।

सौदामिनी बोली-हाँ, तो अब उठना चाहिये और देखना चाहिये कि इस दालान में कोई राह है या नहीं या इसी दालान में जीवन बिताना पड़ेगा ?

प्रेतनाथ ने कहा—सौदामिनी ! हमने तो सुना था कि तुम आसाम कामरूप कामाक्षा की रहने वाली हो और वहाँ को विद्या जानती हो।

सौदा०-हाँ जानती तो हूँ पर कामरूप कामाक्षा की बिद्या इस तिलिस्म में क्या काम देगी ? तिलिस्म में सिवा चातुरी-विद्या के और विद्या काम नहीं आती। चलिये उठिये, देखिये इस दालान में से निकलने की राह है कि नहीं ? यह कहती वह उठ खड़ी हुई। ध्यानसिंह धीरसिंह वीरसिंह और प्रेतनाथ भी उठ खड़े हुए। पाँचों जन उत्तर दक्खिन पूरब पच्छिम चारो दिशा का चक्कर लगाये लेकिन उस घेरे से निकलने की राह न पाए।

इसी समय सौदामिनी की नजर एक बन्द कोठरी पर पड़ी। उसने ध्यानसिंह से कहा—देखो वह एक बंद कोठरी दीखती है आवो वहीं चलें।

सब लोग उस कोठरी के निकट आए। कोठरी में एक लोहे का फाटक था जिसमें कुछ यन्त्र जड़े थे। ध्यानसिंह उन यन्त्रों को ध्यानपूर्वक देख कर एक यन्त्र को दबाया जिससे खटख कर फाटक के दोनों लोहे के पल्ले खुल गए। ध्यानसिंह ने इन पल्लों को भी रस्सी से बाँध दिया जिसमें वे फिर बन्द हो जावें और आप सीढ़ियों के द्वारा नीचे आए।

नीचे की दालान और ऊपर को दालान में कुछ फर्क न लखकर प्रेतनाथ ने कहा—अरे! हम लोग तो फिर उसी दालान में वापिस आ गये!

ध्यानसिंह ने कहा-जी, नहीं दालान तो उसी ऊपर वाली

दालान की भाँति जरूर है लेकिन ऐसा उसमें बहार नहीं था। देखो न—ये उपवन, ये बहार, ये झील, ये बावलियाँ ऊपर कहाँ थीं ? यह सहन दूसरा ही है और इसी सहन में इस तिलिस्म का अन्त भी दीखता है।

दूसरा परिच्छेद

शाम का समय है सूर्य पच्छिम दिशा के क्षितिज में समा रहा है। चारों ओर लाली छाई हुई है। हरे २ पत्तों पर भी सूर्य की लालिमा झलक रही है सूर्य की लाली से सरोवर का जल सोनहला रंग धारण किये है। सरोवर के चतुर्दिक सारस, हंस, चकोर; आदि पक्षी बैठे किलोलें कर रहे हैं। कमल अब अपनी पंखड़ियाँ सिकोड़ने लगे हैं। चतुर भौंरे क़ैद होने के भय से पराग पान करने कमलों पर जाते तो हैं पर लौटने में तनिक भी बिलंब नहीं करते। जाते हैं, बैठते हैं, और भागते हैं। पनडुब्बियों का खेल हो रहा है उनके आनन्द की इस समय सीमा नहीं। मछलियाँ भी बिहार में निमग्न हैं। घने पेड़ों पर नाना भाँति और जाति के पखेरू बैठे अपनी २ बोलियों से अपना २ आनन्द प्रकट कर रहे हैं।

सरोवर के किनारे एक सुन्दर वाटिका है जिसमें नाना-भाँति नाना जाति और नाना रूप रंग के फूल खिल रहे हैं। जिनपर भाँति २ की रङ्ग बिरंगी तितलियाँ उड़ रही हैं। काले भँवरों का झुंड भी पराग पान कर २ मस्त गुंजार लगाए हैं।

सच है आनन्द उन्हीं में झलकता है जिनका पेट भरा है। भुक्खड़ों को क्या आनन्द है जिन्हें पेट की ज्वाला सताये है। दिन भर झूम २ घूम २ कर इन भँवरों ने कलियों का रस पान किया. अब ये मस्त हो आनन्द की बंशी बजा रहे हैं।

इस सायंकाल में ऐसा कोई जीव नहीं जो आनन्दित न दीखता हो। जड़ चेतन सभी के मन पर आनन्द है। हाँ दो तीन व्यक्ति ऐसे भी दीखरहे हैं जिनके मन खिन्न, मुख उदास और निराशा से मुरझाये हुए हैं। उनमें से एक तो चकई है जिसे आने वाले वियोग ने बिकल कर रक्खा है। दूसरी एक उदासमना मलिनबसना कान्तिक्षीणा कामिनी है। जिसका पीला मुख ऐसा मुरझाया हुआ दीख रहा है मानों भुवनेश की भयानक भभक से कोमल गुलाब की कलिका झुलस गई है।

अच्छा पाठक! आओ उस खिन्न-मना युवती के पास चलकर उस दुखिया की दशा देखें। आपने पहिचाना यह कौन है? नहीं पहचाना! जिस फूल को एक बार हरा भरा फला फूला देखा उसी को सूख जाने के बाद न पहिचानना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अच्छा आइये हम आप को इस दुखिया का परिचय (सिनाख्त) कराये देते हैं।

आप के सामने जो मलिनबसना कृशबदना स्त्री दिखाई पड़ती है यह वही राजा महताबसिंह अजयगढ़ वाले की बेटी शशिप्रभा है। समझे? एक समय जिसे अधखिली दाड़िम की कली देखी थी वही प्रेम की प्रचंड ताप से मुरझासी गई है। प्रेम एक नशा है, नशा भी ऐसा वैसा नहीं कि इधर आया, उधर गया। इसका नशा अफीम के नशे को भी मात किया है। अफीम न मिलने पर अफीमची लाचारी को मान कर अफीम का दुःसह दुःख सह भी लेता है पर प्रेमी को अपनी प्रेमिका और प्रेमिका को अपना प्रेमी न मिलने पर जो कठोरतम कष्ट

भोगना पड़ता है वह वही भली भाँति कह सकता है जो भुक्त-भोगी हो। किसी ने कहा भी है:—

प्रेमी जो हों तो विरह से बचें।
जो सुख चाहते हैं कलह से बचें॥

बस बिचारी इस बाला को भी प्रेमी के विरह ने सुखा डाला। यद्यपि यहाँ भाँति २ के मेवे और मीठे पानी के ताल झील, भरे हैं, खाने पीने की कमी नहीं। यद्यपि जी बहलाने की सारी सामग्री मनुष्य ने नहीं प्रकृति (कुदरत) ने यहाँ उपस्थित की है तथापि विरह-दग्धित हृदय को ये कब लुभा सकती हैं।

विरह अनल दग्धित हृदय, शीतल करै न नीर।
यह गुण हिय ही महँ बसे, परसत खोवै पीर॥

यह डरी हुई हिरणी की भाँति इधर उधर चौकन्नी हुई क्या देखती है? जहाँ कुछ भी आहट सुनती है आँखें फाड़ २ कर उधर ही देखती है। अच्छा ये जो ३।४ जन एक स्त्री के साथ लपके चले आ रहे हैं, ये कौन हैं? जान पड़ता है इन्हीं लोगों की आहट पाकर यह चौकन्नी हुई देखती है।

ये जो सामने ३।४ और स्त्री सहित ५ जन चले आ रहे हैं इन्हें तो पाठक भूले न होंगे। ये वही ध्यानसिंह और उनकी चौकड़ी है जो अभी इस तह में ऊपर से उतरी है।

ज्योंही इनदोनों के बीच का फासला कम याने १०० गज रहगया, सौदामिनी बेतहासा आगे दौड़ी। शशिप्रभा खड़ी भी न होने पाई कि सौदामिनी ने उसे अंक में भर लिया। दोनों खूब जी खोल कर रोईं। स्त्रियों का रोना स्वाभाविक है। इनका दुःख बिना आँसू गिराए और कूक काढ़े कम नहीं होता। खूब कूक मार २ कर दोनों रोईं। बड़ी कठिनता से धीरसिंह नें दोनों को चुप कराया। दोनों अंचल से अपनी २ आँखें पोंछ हिचक २ कर बातें करने लगीं।

ध्यानसिंह आदि सरोवर में मुख हाथ धो कुछ मेवे खाए। प्रेतनाथ का कूँड़ी सोंटा बजा। निपट निपटा कर सब लोग उसी दालान में विश्राम किए।

शशिप्रभा और सौदामिनी सारी रात एकान्त में बैठी बातें करती रहीं। अपनी २ राम कहानी एक दूसरे को सुनाती हुई दोनों जागती रहीं। ध्यानसिंह आदि थके हुए थे इस कारण वे बेखबर सो गये। प्रेतनाथ की नाक ऐसी बोलती थी मानों अजगर साँस ले रहा है।

शशिप्रभा और सौदामिनी दोनों अलग बैठी थीं, इससे दोनों में जी खोल कर बातें होने लगीं। शशि ने कहा—सौदामिनी! हम तो समझीं कि तुम दुनियाँ से बिदा हो गईं। उस दिन जब मैं नीचे बावली पर झाँक कर देखी और तुम्हें न पायी तब मैं समझ गई कि वह मोटा आदमी धूर्त था और वह किसी गहरे तह में डालने को तुम्हें उठा ले गया। अच्छा यह तो कहो तुम यहाँ आईं कैसे, किस रास्ते से आईं?

सौदा०—बस उसी रास्ते आईं जिस रास्ते से तुम आई थीं।

मैं पहिले बार आते समय तुम्हारे रास्ते को छोड़ दी थी और एक दूसरे ही रास्ते से चल पड़ी थी इसीसे तुमसे अलग जा पड़ी।

शशिप्रभा-क्या उनसे······मिल कर आ रही हो?

सौदा०—हाँ, परन्तु इतना समय नहीं मिला कि मैं उनसे कुछ बातें करूँ। क्योंकि वहाँ भी तुम्हारी घबराहट के कारण सब घबराये हुए थे। वैसे देखने में उनकी भी दशा दुःखी दीखी। अब क्यों घबराती हो? अब तो कुछ ही समय में स्वयं मिल भेंट कर पूछ लेना।

शशि०—(आँखों में आँसू भर कर) देखें वह समय कब आता है?

सौदा०—अब वह समय भी आया, देरी क्या है? आज इसमें से निकलने की कोशिश करेंगे।

शशि०—कुछ उसका ·····(कर्म का) भी पता है?

सौदा०—मुझे नहीं मालूम और न मैंने किसी से अभी बूझा। होगा किसी तह, खोह में वह भी पड़ा। प्रेतनाथ इतना कहते थे कि उसके सारे साथी क़ैद हो गये हैं।

शशि०—मुझे यही भय है कि कहीं फिर न वह कोई चाल चले।

सौदा०-अब क्या चाल चलेगा? जो चलना चलाना था वह चल चला चुका। अब वह अपनी जान की खैर माँगे।

इधर दोनों इसी प्रकार की बातें कर ही रही थीं कि सबेरा हो गया। मुर्गे और कौव्वे शोर मचाने लगे। भुजंगे चहकने लगे। छोटे २ पखेरू घने पेड़ों की डालियों पर बैठे मधुर २ बोलियाँ बोलने लगे।

ध्यानसिंह ने उठकर प्रेतनाथ को पुकारा। दो एक बार "हूँ हूँ" कर वे सो रहे। तीसरी बार उन्होंने उनकी चादर झटक कर पुकारा और कहा—वाह, ऐसा सोते हो कि शिर पैर की भी सुध नहीं। उठो देखो सबेरा हो गया। चलने की फिक्र करनी चाहिये।

प्रेतनाथ के उठने के साथ ही धीर और बीरसिंह भी उठ बैठे। यह सलाह हुई कि अब चला कैसे और किस रास्ते से जाय। रास्ता कोई है या जिधर से आए हैं उधर ही से वापिस लौटें?

प्रेतनाथ–जिधर से आये उधर से कैसे जा सकते हैं। उस बगले वाली लोहे की अँधेरी कोठरी पर कैसे चढ़ेंगे? इस उपवन में घूम फिर कर देखा जाय तो रास्ते का पता लगे।

सौदामिनी--शशि से मालूम हुआ है कि इस उपवन में

कहीं कोई रास्ता नहीं है। दक्खिन की ओर हजारों फीट गहरा गढ़ा है, पश्चिम, पूरब और उत्तर में भी यही हाल है उधर भी सैकड़ों नहीं हजारों फीट का नीचा पहाड़ है। उतरने की किसी ओर गुन्जायस नहीं है। यह स्थान-जिस पर इस समय हम लोग खड़े हैं-पहाड़ की भाँति हजारों फीट ऊँचा है। इसके पूरब तिलिस्म ही है। दक्खिन पच्छिम और उत्तर में हजारों फीट की गहराई है इस कारण किसी ओर उतार नहीं है।

ध्यानसिंह ने कहा-अच्छा आप लोग निपट निपटा कर तैयार रहें मैं आता हूँ। यह कह वे उस हरे भरे उपवन में पैठे। पहिले वे दक्खिन के करार पर गये जिधर सौदामिनी पहिले रही। उधर देखा तो वह स्थान बड़ा भयानक और अगम था उधर उतरने को कोई युक्ति चल नहीं सकती और न कोई राह ही दिखाती थी।

दक्खिन से चल कर ध्यानसिंह पश्चिम के करार पर आए। करार पर खड़े हो कर नीचे को झाँके। उधर पहाड़ की कमर से एक पहाड़ी नदी बड़े बेग से बहती दिखाई दी। पहाड़ भी सैकड़ों हाथ ऊँचा और सीधा भीत की भाँति खड़ा था।

पश्चिम के करार से चल कर ध्यानसिंह उत्तर की ओर आए। करार की कोर पर खड़े होकर उन्होंने नीचे को झाँका देखा तो उधर मैदान नज़र आया जो कोसों तक फैला हुआ था। एक भी पेड़ पौदे का कहीं निशान नहीं। कोसों तक ज़मीन साफ और बराबर है। नीचे झाँक कर देखने पर मालूम हुआ कि इधर भी निचाई उतनी ही है जितनी दक्खिन दिशा की ओर है। उतार इधर भी नहीं है।

ध्यानसिंह एक छन वहीं ठहर कर सोचने लगे। कुछ

मनही मन सोच विचार कर वे उठे और उस उत्तरी भाग की धरती और उसके जंगलों का मुलाहिजा किये। उत्तर की तरफ एक छोटा सा जंगल था, जो कँटीली झाड़ियों से ऐसा गुन्जान हो रहा था कि उसमें पैर धरना कठिन था। बड़े पुराने शाल तमाल के पेड़ खड़े उस बन को बड़ा डरावना कर रक्खे थे।

ध्यानसिंह किसी प्रकार उस कँटीले बन में धँसे। बड़ी कठिनता से वे उसमें कुछ दूर जा पाए। क्योंकि काँटों से सारा शरीर छिदा जाता था। कुछ दूर और आगे जाने पर उन्हें एक घनी झाड़ियों के भीतर एक मढ़ी का चिन्ह दिखाई पड़ा। यह क्या है कहते हुए वे कुछ और आगे बढ़े। कमर से खुखड़ी निकाल कर झाड़ियों को काटा। जब झाड़ियाँ कट गईं और रास्ता चलने योग्य हो गया तब वह पुरानी मढ़ी साफ नज़र आने लगी।

ध्यानसिंह ने उस मढ़ी को बड़े ध्यान से देखा। यद्यपि वह बड़ी पुरानो मढ़ी थी। दीवारों का प्लास्टर गल गया था। कई जगह से छत फट गई थी। छोटे २ पौदे जहाँ तहाँ उग कर उसकी छतों को चलनी कर डाले थे। दीवारों में भो पौदों की जड़ें घुसी हुई थीं तथापि वह मढ़ी अभी खड़ी थी।

भीतर भी उसके कँटीली झाड़ियाँ भरी थीं। ध्यानसिंह ने भीतर की कुल झाँड़ियाँ खुखड़ी से काट डालीं। जब झाँड़ियाँ कट गईं और मढ़ी का फरस साफ हो गया तब ध्यानसिंह उस मढ़ी का चारो कोना देखने लगे।

ध्यानसिंह की निगाह पश्चिम की दीवार पर पड़ते ही उन्हें उस दीवार में जड़ा हुआ एक पत्थर नज़र आया। हाथों से उस पत्थर को रगड़ कर देखा तो उसमें कुछ अक्षर खुदे हुए दीखे। पुराने पड़ जाने के कारण और उनमें मिट्टी

भर जाने के कारण अक्षर साफ नहीं थे। ध्यानसिंह ने छागल से पानी लेकर उस पत्थर को रगड़ कर धोया। मिट्टी धुल जाने पर अक्षर कुछ झलकने लगे। उसमें यह खुदा हुआ था:—

"जीवन का अवशेष चौथे पन में है
इसे चतुर पुरुष ही जानते हैं"

इसे पढ़कर ध्यानसिंह मन में कुछ प्रसन्न हुए और मढ़ी के फरश को बड़े ध्यान से देखने लगे। उन्हों ने पैर से कोई चीज़ दबाया या, अकस्मात उनका पैर फरश के ऊपर किसी चीज़ पर पड़ा इसे हम नहीं बता सकते पर देर एक पलक की भी न होने पाई कि वह फरस दो टुकड़ा हो बीच से फट गई और एक अच्छी खासी दरार खुल गई।

ध्यानसिंह ने दरार में उझक कर देखा तो उन्हें उसमें सीढ़ियाँ नजर आईं। सीढ़ियों की राह वे नीचे उतरे। देखा तो एक अँधेरी और लम्बी सुरंग सीधी उत्तर की ओर चली गई है। वह सुरंग जालों, और मकड़ों से भरी हुई थी। एक आदमी के जाने के लिये उसमें काफी रास्ता था।

ध्यानसिंह कुछ दूर और आगे बढ़े। रास्ते में कोई नई बात न पाकर वे वापिस ऊपर चले आये।

मढ़ी पर आते ही वे क्या देखते हैं कि नौ नबोढ़ा बाला (जवान औरतें) सामने खड़ी हैं लेकिन नओ सिर से पैर तक काला लबादा पहिने हैं, जिससे उनकी सूरत देखने में नहीं आई।

एक स्त्री ने दपट कर कहा—"क्यों जी आप कौन हैं और कैसे किसके हुक्म से यहाँ आए हैं। आप पराये घर में इस प्रकार निडर क्यों घूमते हैं?"

ध्यान०—"जी, मैं जाति का क्षत्रिय हूँ अबलाओं का सहा-

यक हूँ। एक बाला की सहायता करने चला आया हूँ। हुक्म हो तो चला जाऊँ।"

स्त्री०—इस मढ़ी को क्यों खोले ?

ध्यान०—यह अपने आप खुल गई। मैंने इसे नहीं खोला है।

स्त्री० —अच्छा तो अब आप इस ढिठाई का फल भी चख लें। देखें तो वह सामने क्या दीख रहा है ?

ध्यानसिंह के सामने देखते ही उस स्त्री ने न जाने कैसे वह मढ़ी वाला रास्ता बन्द कर दिया और आप वहां से सहेलियों सहित नौ दो ग्यारह हुई।

उन सबों के चले जाने पर ध्यानसिंह को बड़ा अचरज हुआ। मन में कहने लगे—ये काली बला कहां से आ पड़ीं। इतनी मेहनत करके एक राह साफ भी की तो उसमें एक दो नहीं एक साथ नौ बलायें नाजिल हुईं। अब तो यह मढ़ी भी बन्द हो गई। पहिले तो इसमें दरवाजे नहीं थे एकाएक इसमें दरवाजे वह भी लोहे के कहां से आ गए! जान पड़ता है ये दरवाजे दाहिनी बायीं दीवारों में छिपे थे, जो किसी यन्त्र (पेंच) द्वारा बंद कर दिये गए। अच्छा अब तो इन कालियों का पता लगालें तो रास्ता ढूँढ़ें, यह कहते हुए वे डेरेकी ओर लौट गए।

तीसरा परिच्छेद

रात को सब लोग दालान में बैठे और कल्ह कैसे निकला जाय—इस पर विचार करने लगे।

ध्यानसिंह ने कहा—इस समय वे स्त्रियाँ बड़ी बाधक हुईं नहीं तो आज बाहर जरूर निकल जाते।

सौदामिनी—क्या आपने उन्हें पहचाना ?

ध्यान०—नहीं पहिचाना तो नहीं परन्तु यह जान लिया कि उनका इस तिलिस्म से गहरा सम्बन्ध है।

सौदा०-फिर अब क्या करना चाहिये। उन राँडों का पता पाती तो मैं वहां जाती और अपना मनोरथ सिद्ध कर आती।

ध्यानसिंह—उन्हे मामूली स्त्री न जानना। वे भी बड़ी चालाक मालूम होती हैं। मुझ से बोली—"देखो २ वह सामने क्या है" मैंने अपनी नज़र सामने की। इतने ही में उसने चट मढ़ी को बन्द कर दिया !

इधर बात हो ही रही थी कि एक स्त्री पायलें बजाती दालान में आई और एक चीठी ध्यानसिंह के हाथ में देकर चली गई। बहुतेरा उन्होंने पुकारा लेकिन उसने जबाव न दिया। ध्यानसिंह ने चीठी खोल कर पढ़ा उसमें यह लिखाथा:-

'यदि अपना मनोरथ सिद्ध करना चाहते हो तो मेरी आराधना करो। बिना मेरे प्रसन्न हुए कभी प्रसन्न न होगे। तुम्हारे ऐसे कितने इसी तिलिस्म के भीतर मर गये। तुमने समझा होगा कि आने वाले रास्ते से जिस भाँति अन्दर चले आए उसी भाँति बल्के उससे भी सहज में इसमें से निकल भी जायँगे। जी नहीं, इसमें आना जितना सहज है इसमें से निकल जाना उतना सहज नहीं। इसी से कहती हूँ कि बेकार मेहनत न करें। अभिलाषनी।

ध्यानसिंह ने चीठी का मर्म सौदामिनी को समझा कर कहा-इससे मालूम होता है कि अभी इसमें से अर्थात् तिलिस्म में से बाहर निकलने को साइत नहीं आई। कुछ दिन यहाँ

और काटना पड़ेगा और वह अभिलाषिनी कौन है और उस की अभिलाषा क्या है इसे जानना पड़ेगा।

सौदामिनी ने कहा—आप जिस राह से आए हैं उसी राह से चलते क्यों नहीं? उस बगले वाली कोठरी तक तो बेखटके जा सकते हैं। रही बगले वाली लोहे की कोठरी उसे तोड़ डालें।

ध्यानसिंह बोले—यदि कोठरी ही तोड़नी होती तो इतनी मुसीबत क्यों उठाते? तोड़ते फोड़ते चले आते। इस तिलिस्म के तोड़ने को अभी मंसा नहीं है, बल्कि इसके गूढ़ रहस्य के जानने की इच्छा है। और इच्छा है इसके कारीगरी के समझने की। बिगाड़ना जितना सहज है बनाना उतना नहीं। एक बूँद से बढ़ते २ नौ महीने में गर्भ पूरा होता है और उसे पालते पोषते कई वर्ष गुजर जाते हैं तब वह मनुष्य होता है। इतने दिन का पाला पोसा हुआ जीव एक क्षण में बिगाड़ा जा सकता है। अर्थात् एकही हाथ में वारान्यारा किया जा सकता है। इस तिलिस्म के तैयार होने में वर्षों लगे होंगे और इसके बनाने वाले एड़ी का पसीना चोटी पर चढ़ा कर इसे तैयार किये होंगे। यदि इसे बिगाड़ना चाहें तो एक सप्ताह भी न लगेगा, इसकी सारी कारीगरी और लागें उखड़ पखड़ जा सकती हैं। कहो इसमें हमें क्या लाभ होगा?

सौदामिनी—और इसे रक्षित (महफूज) रखकर ही क्या लाभ उठायेंगे?

ध्यान०—बहुत कुछ लाभ उठावेंगे। प्रथम तो इस प्राचीन और अनोखी कारीगरी का पता लगावेंगे। दूसरे इसमें की गुप्त सम्पत्ति को गुप्त रीतिसे हस्तगत करेंगे। इस पर कब्ज़ा करके अपने बैरियों को इसमें डाल कर छकावेंगे। जैसा हमारा बैरी हमें इस समय छका रहा है। बलवान बैरियों से अपने

को बचाने के लिये एवं लूट, तराज से धन सम्पत्ति को रक्षित रखने के लिये ही किसी दूरंदेश राजा ने इसे बनवाया होगा। यह तिलिस्म नहीं जमींदोज़ क़िला है। इसे हम दीनमोहम्मद की सहायता से रत्ती २ खोजेंगे। तनक इस विवाह प्रपंच से छुट्टी पावें तो इस की सैर करें।

सौदामिनी—तब यह करे कि उत्तर की ओर से लम्बी रस्सी के सहारे उतर पड़ें। कितना नीचा होगा? ज्यादा से ज्यादा एक हजार फीट नीचा होगा। एक हजार फीट से अधिक दक्खिन वाले खड़े पहाड़ परसे तो प्रेतनाथ बिना डोरी को सहायता उतर पड़े थे! क्या इधर डोरी की सहायता से भी न उतर सकेंगे? जिस महल पर से मैं उतरी थी वह भी कम ऊँचा नहीं था। कुछ नहीं तो सैकड़ों हाथ ऊँचा रहा होगा परन्तु मैं डोरी की सहायता से सहज ही में नीचे उतर गई।

प्रे०—डोरी कहाँ पाई?

सौदा०—कमर से लपेटे लाई थी।

ध्यान०—डोरी पूरी पड़ गई थी?

सौदा०—(हँसकर) जी नहीं कुछ छोटी पड़ी थी।

प्रेत०—तो क्या बाकी की दूरी कूद कर तय की थी?

सौदा०—हाँ कुछ कूदना भी पड़ा था।

ध्यान०—कुछ कूदने से मतलब दो चार हाथ कूदना पड़ा?

सौदा०—(मुस्कुरा कर) अपनी धोती जोड़ने पर भी ८, १० हाथ और छोटी पड़ गई। वही ८, १० हाथ नीचे कूद पड़ी थी।

ध्यान०—(ठट्ठा मार कर) तो क्या नंगी उतरीं?

सौदा०—तो करती क्या?

ध्यानसिंह—फिर धोती कैसे पाई?

सौदा०—खींचने पर वह गाँठ के पास से फट कर टूट गई उसे ही पहिन कर अपना काम चलाई।

ध्यान०—अच्छा हम आप तो डोरी के सहारे उतर पड़ेंगे पर शशि…?

सौदामिनी—शशि मेरी पीठ पर रहेगी।

प्रेत०—और कहीं डोरी टूट गई?

सौदा०-टूट गई तो फूट गई। इसके आगे जवाब ही नहीं।

ध्यानसिंह ने कहा—अच्छा पहिले अपनी २ डोरी एक में जोड़ कर चलो देखें तो वह पूरी भी पड़ती है या नहीं?

डोरी जोड़ी गई। सब लोग उत्तर के करार पर आए। डोरी नीचे लटका कर देखा तो वह करीब तीन हिस्से के नीचे पहुँची।

प्रेतनाथ ने कहा—अच्छा तनक पच्छिम के करार को भी नाप देखें।

ध्यानसिंह ने कहा—उधर नापना बेकार है क्योंकि इधर बड़ी भयानक पहाड़ी नदी पहाड़ की कसर से टकराती हुई बड़ी बेग में बह रही है। अच्छा होगा कि डोरी और बट ली जाय और इसमें जोड़ ली जाय। खजूर के पेड़ यहाँ बहुत हैं उसके छाल की डोरी तुरन्त बट लेंगे।

प्रेतनाथ ने कहा, नदी है तो क्या हर्ज है। नदी में गिरने पर भी चोट न आएगी। और उधर यदि कहीं डोरी टूट गई तो सौदामिनी के कहे अनुसार किस्मत भी फूट गई डोरी का क्या भरोसा। फिर शशि को लेकर चाहे तुम चाहे हम चाहे सौदामिनी कोई उतरे ही गा। दो का बोझ डोरी कहाँ तक सम्हालेगी इसे भी सोच लें। और इधर याने पच्छिम में यद्यपि नदी और पहाड़ दोनों अगम हैं फिर भी उत्तर से इधर कम खतरा है। डोरी टूट जाने पर भी चोट चपेट का उतना भय

नहीं और न डूबने ही का भय है। यदि यह डर हो कि जलके भीतर कोई चट्टान न खड़ी हो अथवा कहीं जल न कम हो सो भी सही नहीं। जल गहरा है। गहराई का अंदाज जलके उबलने और उसमें भँवरों के पड़ने से कर लेवें। मेरी राय में तो इसी तरफ से उतरना उत्तम होगा।

सौदा०—(हँसकर) आप मोटे और भारी हैं इसी से डोरी टूटने का आपको भय है (ध्यानसिंह की ओर देख कर) अच्छा इन्हीं वाली होने दीजिये।

ध्यानसिंह०—हाँ बात तो ठीक है पर भाई स्त्री के साथ जल में वह भी पहाड़ी नदी में कूदना आसान बात नहीं है। फिर न मालूम यह पहाड़ी नदी कहाँ को कहाँ ले पटके। जिसके कारण इतनी मुसीबत उठाई वही यदि हाथ से निकल गई तो फिर सब किये कराये पर पानी फिर जायगा। हाँ एक राह है वह यह कि उत्तर की ओर से उतरा जाय और जो शशि को पीठ पर लादे उसे पहिले उतारा जाय और उसके कमर में एक रस्सी और बाँध दी जाय। उस रस्सी को दो आदमी ऊपर से धीरे २ ढीलते जावें। इस रीति से खतरा कम है। यदि एक डोरी टूट भी जायगी तो दूसरी उसे नीचे गिरने से रोक रक्खेगी। जब दोनों धरती पर पहुँच जाँय तब कमर वाली डोरी ऊपर खींच ली जाय और हम लोग भी उसी डोरी के सहारे नीचे उतर पड़ें।

उत्तर की ओर मैदान में पहुँच कर हम अपनी राह ठीक कर लेंगे।

प्रेत०—इतनी रस्सी का अम्बार कहाँ पाइयेगा ?

ध्यान०—जंगल में। चलो देखो अभी तुम्हें बताता हूँ।

सब लोग फिर उसी दालान में लौट आये। खुखड़ियों और छूरों की सहायता से खजूर की छालें उतारने और उसे

कूटने लगे। कुछ ही देर में फिर एक पुरजा ध्यानसिंह के सामने गिरा। ध्यानसिंह ने उसे उठा कर पढ़ा उसमें यह लिखा थाः—

'बेकार इतनी मेहनत करते हो। यह बन्दी गृह नहीं तिलिस्म है। इसमें धूर्तता काम न देगी। तिलिस्मों में से निकलने की यह तर्कीब नहीं है जो तुम कर रहे हो। ऐसा करते ही खतरे में फँस जाओगे। यदि तुम्हारी इच्छा इसके बाहर होने की है तो आज रात बारह बजे अकेले मुझ से उसी मढ़ी पर मिलो।"

ध्यानसिंह ने रुक्का जोर से पढ़ कर सुनाया और कहा बेहतर है कि मैं आज इनसे मिल कर तब कोई उपाय करूँ। इनका भी कहना ठीक है। तिलिस्मों में धूर्तता (ऐयारी) काम नहीं देती।

मेवा आदि खा पीकर लोग अपने २ विस्तर पर पड़े। सौदामिनी और शशि दोनों अलग बैठ कर बातें करने लगीं। सौदामिनी ने शशि से कहा तुम दो दिन दो रात बराबर जगी हो अब जरा बिश्राम कर लो ऐसा जागरण करने से तन्दुरस्ती खराब हो जायगी।

शशि ने कहा—तुम दो ही दिन और दो ही रात को रोती हो, मैं जब से यहाँ आई हूँ तब से नहीं सोई। तुम्हारे चले जाने पर तो बिल्कुल पलकें लगी ही नहीं। जिन स्त्रियों का समाचार अब सुन रही हूँ यदि अकेली रहते समय सुनी होतीं तो काहे को जीती बचतीं। मुझे यहाँ आये ३।४ महीने हो गये मैंने आज तक यहाँ किसी की आहट न पाई। रातों में भी मुझे यहाँ कोई खटका न हुआ। तुम लोगों के आते ही स्त्रियाँ दौड़ने लगीं।

सौदा०—(हँस कर) तो क्या हम लोग चली जायँ?

शशि०—अबकी बार यदि बियोग हो तो मैं प्राण ही छोड़ दूँ। अब तक जो प्राण रखी वह किसी आशा पर रखी। जी में यह आशा थी कि आज कल में कोई न कोई सुध लेवेहींगा। अबकी बार यदि तुमसे बिछुड़ी तो फिर मुझे बिछुड़ी ही जानना। भाड़ में पड़े ऐसी जिन्दगी।

सौदा०—अबकी बार बिछुडूँगी तो तुम्हें लेकर बिछुडूँगी। इतनी उदास क्यों होती हो। तबकी बार गलती हो गई तो क्या बार २ गलतियाँ होती ही रहेंगी ?

सच तो यह है कि मनुष्य जीवन सुख दुःखमय है। ऐसा कोई प्राणी न मिलेगा जिसका जीवन निर्दोष हो। तब यह नहीं भूलना चाहिये कि बिना दुःख के सुख नहीं मिलता और सुख ही दुःख का कारण है। घोर दुःख के बाद घोर सुख मिलता है। उसी प्रकार सुख के बाद घोर नारकीय दुःख प्राप्त होता है। यदि ऐसा नियम न होता तो मनुष्य घोर दुःख से ऊब कर प्राण हत्या तक कर बैठते। दुःख के समय प्राणी यही सोचता है कि झटपट सुख मिले और यही आशा उसे दुःख से छुड़ाती भी है। प्रसव की वेदना के समय स्त्री यही विचारती है कि यह क्षणिक है जहाँ बालक धरती पर गिरा तहाँ यह दुख गया और वह इसी आशा पर कठोर दुख को हँसते खेलते काट भी लेती हैं। बालक के जन्मते ही उसके पूर्व दुःख भूल जाते हैं और वह अपने सुख की फिर सीमा नहीं देखती। इतना दुःख जो तुमने उठाया उसका अब अन्त होने ही वाला है। जहाँ सुख मिला तहाँ यह कठोर दुःख का स्वप्न भी नहीं होने का। सीता महारानी को कैसा कठोर दुःख सहना पड़ा था। दमयन्ती को सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद फिर सुख मिला था। द्रौपदी, कुन्ती आदि का

इतिहास दुःख सुखमय है ही। अब तुम्हारा भी दुःख छूटने वाला है। धीरज धरो वह घड़ी भी आते देर न लगेगी।

शशि०—जो कुछ हो यह मैंने जान लिया कि स्त्री जीवन आजन्म दुःखमय है। इस जीवन में जो कुछ क्षणिक सुख है वह भी दुखमय ही है। विधाता ने स्त्री जीवन दुःखमय बनाया ही है। चाहे वह सम्राज्ञी हो अथवा भिक्षुका. दुखों से उसका निस्तार नहीं। न तो पेट का दुःख दुःख है और न शारीरिक पीड़ा ही दुःख है। यह तो शरीर का धर्म है और होता ही रहता है। दुःख का घर मन है। मन पर जो आघात विघात पड़ता है वही कठोर दुःख है। इस दुख से स्त्री जाति का छुटकारा नहीं। मन को तृप्ति आजन्म नहीं होती, बिना तृप्ति के संतोष नहीं, बिना संतोष के सुख नहीं मिलता। बस यह संतोष ही सुख है और यही स्त्री के भाग्य में नहीं बदा है। आधी रात होते ही ध्यानसिंह उठे। काछा कस कर खड़े हुए और कटार वगैरः से लैस हो उसी मढ़ी पर आए। कुछ देर बाद एक स्त्री उस मढ़ी से बाहर निकली। उसने ध्यानसिंह से कहा-आप मेरे साथ आइये।

ध्यानसिंह ने पूछा—कहाँ ले चलोगी?

स्त्रीने उत्तर दिया—आइये जहाँ मैं चलती हूँ वहाँ चले चलिये, डरते हैं क्या?

ध्यान०—डरते तो हम काल से भी नहीं। हम क्षत्रिय हैं। हमारी मातायें हमें डरना सिखलाई नहीं।

स्त्री—तब आइये न?

ध्यानसिंह-"चलिये" कह कर उसके पीछे हो लिये। उस स्त्री ने पैर से एक लोहे की कील को-जो फरस में गड़ी हुई थी-दबाया। जिससे फरस दो टुकड़े हो कर दरार खा गई। और उस दरार में सीढ़ियाँ निकल आईं। २०।२५ डंडे की

सीढ़ी उतर कर दोनों एक सुरङ्ग में आए। कुछ दूर आगे बढ़ने पर वह सुरङ्ग दो रास्तों में बट गई। एक रास्ता तो सीधे उत्तर को चला गया और दूसरा घूमकर दक्खिन को मुड़ गया था। इसी दक्खिन वाले रास्ते में वह ध्यानसिंह को लेकर मुड़ी। दोराहे पर ठहर कर ध्यानसिंह ने उस स्त्री से पूछा—यह सामने वाली राह कहाँ गई है?

जल्दी में उस स्त्री ने जवाब दिया, यह बाहर मैदान में निकल गई......कहते २ वह चुप हो गई और फिर बोली "आप मेरे साथ चुप चाप चले आइये। लौटती समय सब मालूम हो जायगा।"

उस पेचीदह रास्ते से दोनों घूमते हुए करीब एक कोस के निकल गये होंगे कि फिर एक दोराहा नज़र आया। अबकी बार उस स्त्री ने दक्खिन पूरब का रास्ता छोड़ कर पश्चिम का रास्ता लिया। ध्यानसिंह ने फिर पूछा—यह दक्खिन का रास्ता किधर को गया है? स्त्री के मुँह से फिर अधूरी आवाज़ निकल पड़ी "यह रास्ता दूसरे तिलिस्म में"......कहते २ रुक गई और उन्हें साथ ले वह आगे बढ़ी।

करीब आध कोस आगे जाने पर फिर सीढ़ियाँ मिलीं। अबकी ये सीढ़ियाँ गिनती में पचास साठ से कम न थीं, और सर्प की तरह पेंच खाती हुई पचास साठ हाथ की निचाई पर जाकर खतम हुई थीं। दोनों जन उसी सीढ़ी की राह नीचे उतरे। सामने एक बड़ा लम्बा चौड़ा मैदान था। उस मैदान के चारों ओर ऊँचे २ पहाड़ भीत की भाँति सीधे खड़े थे। कुछ दूर आगे जाने पर एक सरोवर मिला, जिसके पश्चिम तरफ एक दो मंजिला महल था। वह स्त्री ध्यानसिंह को वहीं बैठा कर महल में गई और दश मिन्ट में वापिस आकर ध्यानसिंह से बोली—आप सरोवर के पास जो संग-

मरमर की दालान है उसमें बैठिये 'मैं अभी आकर आप से मिलती हूँ।" यह कह कर वह स्त्री फिर उसी महल में चली गई। ध्यानसिंह भी उठकर संगमरमर की दालान में चले आए।

अभी एक पहर रात बाकी थी चन्द्रमा की चाँदनी छिटकी हुई थी। चाँदनी में वह सूनसान मैदान बड़ा सुहावना नज़र आया। सरोवर का जल गली हुई चाँदी की तरह चमक रहा था। संगमरमर का बँगला चाँदनी के प्रकाश में चाँदी की तरह झलकता था। पवन भी मंद मंद और मधुर झोकों से जल के साथ खेल रहा था। ध्यानसिंह इस निर्जन मैदान में बैठे चन्द्रमा की बहार देखने लगे।

करीब आध घंटे बीतने पर उस महल में से नौ स्त्रियाँ पायलों की आवाज़ बजाती बहार निकलीं। स्त्रियों की सुन्दरता आदि का वर्णन करना व्यर्थ है। एक तो पहाड़ी दूसरे पृथ्वी तल की रहने वाली। भला इनकी सुन्दरता में क्या कोरकसर बाकी होगी। जो हो, हम न मुख की शोभा बता सकते हैं न तन की सुन्दरता बखान कर सकते हैं। क्योंकि ये नओ नवेली वस्त्रालंकारों से शरीर की सुन्दरता को छिपाए हैं। पता नहीं कि इनका हाथ, पाँव,पीठ,पेट आदि काले हैं या गोरे। मुख से कुछ अनुमान कर सकते थे पर उन सबोंने मुखपर कोई सफेद रोगन मल रक्खा है। इससे मुखकी सुन्दरता भी नहीं कह सकते।

हाँ क़द देख कर अनुमान होता है कि ये सब उम्र में कुछ ही दिनों की छोटी बड़ी होंगी। क्योंकि देखने में सब सम-वयस्क (हम उम्र) जान पड़ती हैं। अन्दाज से इनकी उम्र १८। २० साल से अधिक नहीं है। आकार से पता चलता है कि ये नओ एक माता के पेट से जन्मी हैं अर्थात् सगी बहने हैं।

धीरे २ मस्त हाथी की चाल चल कर वे नओं नवोढ़ा

स्त्रियाँ उस संगमरमर की दालान में आईं और ध्यानसिंह के सामने दूसरी ओर पलथी मार २ बैठ गईं।

पहिले तो ध्यानसिंह उनकी तैयारी, उनकी चाल ढाल, उनका रोब दाब देख कर अचरज में आये और मन में कहने लगे-ये देव बाला हैं क्या! जो किसी श्राप वश तल में आ पड़ी हैं। अथवा किन्नरी हैं जो बिहार करने को स्वर्ग से उतर आई हैं। मनुष्य तो ये नहीं मालूम होतीं। इनके आकार प्रकार से यही बोध होता है कि सुरबालायें हीं आपवश यहाँ आ रही हैं।

अच्छा यदि इन्हें मानवी ही मान लें तो शंका होती है कि इस नई अवस्था में; इस सूनसान पहाड़ों के भीतर क्यों पड़ी हैं? बिना पुरुष की स्त्री संसार में टिक नहीं सकती। स्त्रियों के आधार पुरुष ही हैं। जैसे लताओं के आधार वृक्ष हैं वैसे ही जगत में स्त्रियों के आधार पुरुष हैं। तो क्या इनके भी साथ में कोई पुरुष है? यदि है तो ठीक ही है और यदि नहीं है और ये बिना पुरुष की हैं तो मानवी नहीं हैं। जरूर ये स्वर्ग बालायें हैं। यदि मेरा अनुमान सही नहीं और ये मानवी ही हैं तो फिर इन्हें कुलटा, दुराचारिणी व्यभिचारिणी कहना चाहिये! क्योंकि स्त्री चाहे कितनी ही पारसा क्यों न हो यदि वह स्वच्छन्द, स्वतंत्र और निरंकुश हो तो लोग उसे स्वैरिणी (वेश्या) ही मानेंगे।

कुछ देर चुप रह कर उनमें की एक स्त्री बोली—कहिये! आपका यहाँ आना कैसे हुआ?

ध्यान०—आपकी सहेली ही यहाँ बुला लाई है।

स्त्री०—अजी यहाँ से मतलब इस स्थान से नहीं इस तिलिस्म से है। इस चक्कर में फँसने का कारण कहिये?

ध्यानसिंह-मैं कल ऊपर आप से कारण कह चुका हूँ कि कि मैं अबलाओं का सहायक हूँ कोई भी अबला दुख में पड़ी

हो मैं उसके लिये अपना प्राण न्योछावर करने को तैयार हूँ। एक दुखी अबला की सहायता के लिये ही मैं इस चक्कर में अपने को डाला हूँ और जब तक उसका उद्धार न कर लूँगा मैं दम न लूँगा।

एक स्त्री०—(हँस कर) "अबलाओं के सहायक" हैं तो हम भी तो अबला ही हैं हमारी भी सहायता करें।

ध्यान०—जरूर करेंगे। कोई भी हो और चाहे वह किसी तरह की हो दुखी की सहायता करना मैं अपना धर्म समझता हूँ।

स्त्री०—हमारी भी सहायता करेंगे ?

ध्यान०—यदि आप सहायता के योग्य हैं तो जरूर सहायता करूँगा।

स्त्री०—करेंगे ?

ध्यान०—जरूर करूँगा।

स्त्री०—बचन देते हैं।

ध्यान०—देते हैं। हम क्षत्रियों का धर्म वचन ही है।

स्त्री—देखो सोच समझ लो पीछे पछताना नहीं।

ध्यान०—सोचा समझा है। मुझ से चाहे जैसी सहायता की याचना आप कर सकती हैं। यदि सहायता देते समय प्राण भी जाता हो तो मुझे ऐसी सहायता से मुख मोड़ना नहीं है। प्राण से बढ़ कर तो कोई प्रिय वस्तु नहीं है ? मैं ऐसी प्रिय वस्तु को भी त्यागने को तैयार हूँ।

स्त्री०—देखो पीछे पलट जाओगे।

ध्यान०—बात पलटने वाले कायर होते हैं, नीच होते हैं और मूर्ख होते हैं। शूर वीर तथा सज्जन पुरुष वचन पलटने वाले नहीं।

स्त्री०—जब प्राणों पर आ पड़ेगी तब भी ?

ध्यान०—हाँ तब भी प्राण देकर अपनी बात रक्खेंगे।

स्त्री०—जो लोग पहिले बहुत बढ़ २ कर बातें मारते हैं वे ही समय पर डरपोकों के सरदार बन जाते हैं ! कहा भी है ।

"जो गरजता है वह बरसता नहीं"

ध्यान०—(तैश में आकर) इस जीव को आप ऐसा न पायेंगी । यदि यह ऐसा होता तो आप के इस निर्जन खंडरात में अकेले एक स्त्री के साथ न आता । आप आजमा सकती हैं।

बरु भानु पच्छिम उदय हों गिरि पर कमल उगि जावहीं ।
चल-मेरु होय समुद्र-सूखहि वन्हि-शीत लखावहीं ॥
ध्रुव तजहिं बरु ध्रुव-लोक इन्दु आकाश तजि भू पर परै ।
सिरिलाल टरि बरु जाय भू बुध बचन ते निज ना टरै ॥

क्या आपने मामूली बात समझ रक्खा है ? "जो हाँ करी सो हाँ करो जो नाँ करी सो ना करी ।"

स्त्री०—अच्छा जिस स्त्री की सहायता करने आप यहाँ आये हैं वह कौन है और कैसे इस तिलिस्म में आ पड़ी ?

ध्यानसिंह ने सारा क़िस्सा सुनाया और कहा कि इसी कारण हम भी इसमें आ पड़े । अब आप अपनी राम कहानी कहें और यह कहें कि मैं आपकी क्या सहायता करूँ !

एक स्त्री जो उनमें प्रधान का आसन रखती थी, बोली हम अपनी राम कहानी उसे ही सुना सकती हैं जिसका चित्त स्थिर हो और वह सुन कर कुछ सहायता करे । आप सहायता का बचन तो देते हैं लेकिन आप का चित्त स्थिर नहीं और न उस समय तक स्थिर होने का है, जब तक आप जिस काम में उलझे हुए हैं वह न हो जावे । अस्तु, मेरी लम्बी चौड़ी राम कहानी सुनने के लिये समय चाहिये । जब आप उतना समय देंगे तब मैं आप से कुछ कहूँगी । यों तो मुझे बहुत मिले और बहुतों ने बचन भी दिया पर किया कराया किसी ने भी कुछ नहीं । मुझे आप की बातों का यक़ीन

तो है और उम्मेद भी है कि आप मेरी कहानी सुन कर मेरी सहायता करेंगे लेकिन—

"एक समय में एक ही काम होता है"

इस लोकोक्ति के अनुसार यह समय एक ही काम के लिये है। फिर जिसका मन स्थिर नहीं, जिसका चित्त चंचल है ऐसों से अपना दुःख कहना भी बेकार है। आप पहिले जो काम हाथ में लिये हैं उसे पूरा कर लेवें तब सुचित से मेरी कहानी सुनें। अच्छा अब आप यह कहें कि आप चाहते क्या हैं?

ध्यानसिंह०—बस यही कि उस अबला को यहाँ से निकाल कर उसके माँ बाप को सौंप आवें।

स्त्री०—इसके बाद?

ध्यान०—इसके बाद आप जो कहें वह करें।

स्त्री—फिर आप मुझ से मिलेंगे?

ध्यान०—जरूर मिलूँगा।

स्त्री०—जरूर मिलेंगे?

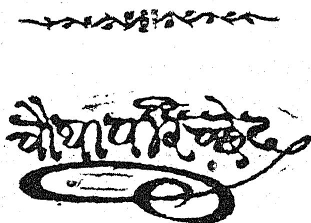
ध्यान०—जी हाँ हाँ जरूर, जरूर, जरूर,

स्त्री ने कहा, अच्छा! तो आप परेशान न होइये मैं आप को और आपके साथियों को मय उन दोनों स्त्रियों के इस तिलिस्म के बाहर कर दूंगी। यों आप वर्षों इसमें पड़े सर टकराते पर निकल न पाते। जो उद्योग आप कर रहे थे उसमें सब की जान जाती। एक भी जीता न बचता। यह तिलिस्म है। इसमें का आना जाना तर्कीबों पर निर्भर है। तर्कीब जान जाने पर सहज में इसमें आ सकते हैं और सहज ही में चले भी जा सकते हैं। और तर्कीब न जानने पर मक्खी वाला हिसाब जानिये।

ध्यान०—मक्खी वाला हिसाब कैसा ?

स्त्री०—मकड़ी के जाले में जब मक्खी फँस जाती है तो हज़ारों उपाय करने पर भी वह उसमें से नहीं निकल पाती। ज्यों २ वह निकलने की कोशिश करती है त्यों २ और भी जालों में उसके पैर और पंख लिपट जाते हैं। मकड़ी उसके चारों ओर जाला पूर २ कर उसे और भी जालों में कसती जाती है, जिसमें वह हिल डोल न सके। वही दशा इस तिलिस्म की भी है। अब जब आप वापिस आवेंगे तब मैं इस तिलिस्म का अपना किस्सा और इसके सम्बन्ध में जितनी बातें होंगी विस्तार से कहूँगी।

यह कह उस स्त्री ने ध्यानसिंह को सलाम किया और कहा आप इस स्त्री के साथ जाइये, अपने साथियों को लेकर इसमें से निकल जाइये। यह स्त्री आप लोगों को राह बता देगी। यह कह वह आठों स्त्रियों सहित महल की ओर चली गई।



जिस स्त्री को राह बताने के लिये छोड़ गई थी उसने उसी रास्तेसे—जिस रास्ते गई थी—ध्यानसिंह को मढ़ी पर लाई और कहा—जाइये आप अपने साथियों को लेकर जल्द आइये।

ध्यानसिंह रात भर गायब रहे इस कारण धीर, वीर प्रेतनाथ और सौदामिनी बड़ी चिंता में बैठी थीं। एकाएक

ध्यानसिंह को सामने आते देख सब खुश हो गए। ध्यानसिंह के मुख पर प्रसन्नता का चिन्ह देख सौदामिनी ने मन में अनुमान किया कि कुछ काम सिद्ध किये आ रहे हैं। ज्योंही ध्यानसिंह सामने पहुँचे सौदामिनी ने पूछा। कहिये! क्या समाचार है?

ध्यानसिंह ने मुस्कुरा कर उत्तर दिया अच्छा समाचार है। चलो उठो।

सौदा०—कहाँ?

ध्यान०—कहाँ? क्या घर जाने की इच्छा नहीं है क्या? जान पड़ता है तिलिस्म की हवा खाते २ घर बार की सुध भूल गई।

सौदा०—क्या राह मिल गई?

ध्यान०—मिलती क्यों नहीं, गये काहे को थे राह ही ढूंढ़ने तो गये थे?

सौदा०—कुछ उन स्त्रियों का हाल तो कहो? ऐसा क्या जादू मारा जो वह तुम्हारे वश में हो गईं।

ध्यानसिंह ने कहा—चलो बाहर निकल कर कहेंगे अब समय नहीं है; जल्दी करो।

ध्यानसिंह की आवाज़ पर सब उठ खड़े हुए। शशि का हाथ पकड़ कर सौदामिनी भी खड़ी हुई। छओ जन उस मढ़ी पर आए। देखा तो सामने एक १८ साल की औरत मुँह में सफेदी पोते खड़ी है।

शशि उस स्त्री को देखते ही डर कर सौदामिनी की गोद में दबक गई। प्रेतनाथ ने हंस दिया। धीर और वीरसिंह दोनों जन जहाँ खड़े थे खड़े ही रह गए। ध्यानसिंह को देखते ही उस बाला ने कहा—आपने तो बड़ी देर की। आइए, झट

पर आइये। कह कर उसने मढ़ी का द्वार खोला। सीढ़ियों की राह सब सुरंग में उतरे। उत्तर वाली राह से सब आगे बढ़े।

आगे २ वह स्त्री, उसके पीछे ध्यानसिंह. ध्यानसिंह के पीछे सौदामिनी, सौदामिनी के पीछे शशि, शशि के पीछे क्रम से प्रेतनाथ, वीरसिंह और धीरसिंह चले। उसी उत्तर की राह सीधे आगे बढ़े चले गये। रास्ते में एक दोराहा मिला। पर अबकी वह स्त्री सीधी उत्तर की राह चली गई। करीब तीन मील चलने के बाद एक स्थान पर कुछ उजेला झलका। उस स्त्री ने हाथ से किसी यन्त्र को दबाकर एक लोहे का दरवाजा खोला। दरवाजे के खुलते ही कम से कम सौ डंडे की पेंचीदह सीढ़ियाँ निकल आई। सब लोग उन सीढ़ियों के सहारे नीचे उतरे। नीचे चार सुरंगों का चौरहा था। स्त्री उसी उत्तर की सुरंग में सब को ले चली। इस सुरंग का रास्ता ढालुआँ था जो उत्तर की ओर ऊपर उठता चला गया था। करीब एक माइल के सब चले होंगे कि सामने एक लोहे का फाटक मिला।

स्त्री ने उस फाटक को खोला, उस में भी सीढ़ियों का ताँता लगा था अबकी सीढ़ियाँ सीधी सामने को चली गई थीं। उन्हीं सीढ़ियों से सब नीचे उतरे। स्त्री ने न जाने क्या हाथों से इशारा किया सामने की एक बड़ी चट्टान ज़मीन में धँस गई और उसके सामने बडा भारी मैदान निकल आया।

मैदान में सबको निकाल कर उस स्त्री ने सलाम किया और कहा—अब आप उत्तर दिशा की ओर चले जाइये। यहाँ से विंध्याचल चालीस कोस पर है।

ध्यानसिंह ने उस स्त्री को धन्यबाद दिया और कहा आपने बड़ी तकलीफ की, माफ करना।

स्त्री ने कहा—यह तो हम लोगों का रोज का रास्ता है। रोज ही हम लोग हवाखाने इस मैदान में आते हैं। इसमें हमें कुछ भी तकलीफ नहीं मालूम हुई। हाँ आप लोग परदेशी हैं और रास्ता ३। ४ कोस से कम नहीं है इसलिये चलने में जरूर तकलीफ हुई होगी। अच्छा अब आप जाइये।

सौदामिनी ने उसका हाथ थाम कर पूछा—कहो सखी! फिर कब मिलोगी?

स्त्री०—भगवान् जब मिलावे।

सौदा०—आपने आपना और अपनी सखियों का कुछ परिचय नहीं दिया और चलीं।

स्त्री०—परिचय पाना सहज नहीं है इसमें कुछ मेहनत और समय की जरूरत है। आपके साथी वादा करके जा रहे हैं। जब वे लौट कर आयेंगे और कुछ दिन यहाँ ठहरेंगे तभी कुछ परिचय पा सकेंगे। जाइये अब देर न कीजिये कहती हुई वह फिर उसी सुरङ्ग में चली गई। उसके भीतर जाते ही वह पत्थर की शिला जो धरती में समा गई थी फिर उठ कर सुरङ्ग का मुख ढक ली।

पाँचों छओ जन तरह २ की बातें करते जा रहे हैं। शशि थक गई है। अब उससे चला नहीं जाता है। लाचार वे सब एक पेड़ के नीचे विश्राम करने बैठ गए।

थोड़ी देर बैठ पाये होंगे कि सामने से एक टाँडा आया। ध्यानसिंह ने उस टाँड़े के सरदार से कहा, भाई साहेब! इस स्त्री को ऊँट पर बैठा लो तो बड़ी मेहरबानी हो। यह थक गई है, इससे अब चला नहीं जाता है।

टाँड़ेवाला सरदार दयालु था। उसने चट शशि और सौदामिनी दोनों को ऊँट पर बैठा लिया। तीन दिन के बाद

सब लोग विंध्याचल देवी के धाम में पहुँचे। महामाया का दर्शन कर अजयगढ़ की राह लिये।

विंध्याचल से धीरसिंह और वीरसिंह दोनों चुनार को भेज दिये गये। ध्यानसिंह ने उन्हें यह कह कर चुनार भेजा कि जाकर डइनियाखोह पर कुँअर को समाचार दें और उन्हें चुनार वापिस लौटा लावें।

गो-धूलि के समय ध्यानसिंह आदि अजयगढ़ की सीमा पर पहुँचे।

एक हरकारे ने पहिले ही से जाकर ड्योढ़ी पर ख़बर दी कि चुनार वालों के साथ राजकुमारी और उसकी सखी आ रही हैं। राजा महताबसिंह ने यह शुभ-समाचार पाकर डोली कहारों को आगे भेजा और सेनापति को हुक्म दिया कि तोपों की बाढ़ करो।

दनादन तोपें दगने लगीं, नौबत बजने लगीं। पैदल सिपाही परेट पर सलामी के लिये इकट्ठे हुए। नगर तोरण बंदन वार और ध्वजा पताकाओं से सुशोभित हुआ। नगर की स्त्रियाँ कोठों बारजों और अटारियों पर बैठ कर मंगल गान गाने लगीं। स्थान २ पर मंगल कलश दही दूब और जल का घड़ा लिये दासियाँ खड़ी हुईं। ब्राह्मणगण मंगल पाठ पढ़ते हुए राजद्वार पर खड़े हुए। नगर के नागर और नागरी वर्ग बनठन कर क़िले में पधारे राजा महताबसिंह मन्त्री और मुसाहिबों के साथ आगे गए। रानी, अपनी सखी सहेलियों दासियों और नगर की आई हुई स्त्रियों के साथ महल के द्वार पर खड़ी हुईं। धीरे २ राजकुमारी का डोला राजमार्ग से होता हुआ क़िले में आया। ड्योढ़ी पर पहुँचते ही रानी ने आरती उतारी, धार चढ़ायी, न्यौछावर बाँटी। डोले से उतार कर शशि को कंठ से लगायी और [illegible] कर

दोनों रोईं। इसके बाद और स्त्रियों से मिल भेंट कर सब के सब महल में पधारीं। इसके बाद रानी ने अपने गले का नौलखा हार उतार कर सौदामिनी को दिया। इधर महाराज महताबसिंह ने भी भेंट, पूजा कर ब्राह्मणों को बहुत सा दान दक्षिणा दिया। गले का जड़ाऊ कंठा उतार कर ध्यानसिंह के गले में डाला और कहा—आपसे हम उऋण नहीं हैं। कुंअर शमशेरबहादुर नहीं आए, इसका मुझे बड़ा दुःख है। ध्यान' सिंह ने कहा—वे खोह पर हैं वहाँ हमने खबर भेज दिया है।

इसके बाद ध्यानसिंह की बहुत कुछ प्रशंसा कर राजा महताबसिंह ने उन्हें चुनार बिदा किया। प्रेतनाथ से राजा का परिचय न था इसी कारण उन्हें इनाम एकराम कुछ न मिला। ध्यानसिंह ने अपने गले का जड़ाऊ कंठा उतार कर प्रेतनाथ को पहिनाया और कहा इस कंठे के योग्य तुम्हारा ही कंठ है अर्थात् कंठा मोटे आदमियों ही को फबता है।

दोनों हँसी मजाक करते हुए शाम को चुनार आए। उधर डइनियाँखोह से कुंअर शमसेरबहादुरसिंह भी लश्कर के साथ चुनार पहुँचे। रात भर चुनार में बड़ी धूम रही। खूब नाच गान हुआ। रातदिन कहकहे उड़ते रहे, मारे खुशी के चुनार वाले फूले नहीं समाये।

दूसरे दिन शाम को कंतित वाली टुकड़ी जंगलों पहाड़ों और तहखानों की खाक छानती तरह २ की मुसीबतें और आफतें झेलती कंतित पहुँची। वहाँ पहुँचते ही उस टुकड़ी को चुनार और अजयगढ़ का हाल मालूम हुआ। वे कई महीने गायब रह कर आज कंतित का मुँह देखे हैं, अतएव थोड़ा बहुत आनन्द-नद उन सबों के चेहरे पर भी उमग आया। राजा सुरेन्द्रबहादुरसिंह ने बेटे को गले से लगाया और बहुत कुछ नीचा ऊँचा समझा कर कहा—बेटा! अब राज काज सम्हालो

लड़कपन छोड दो, बहुत खेल कूद लिये। रानी ने भी कुँअर को छाती से लगा कर, आँखों से प्रेम के आँसू गिरा कर बहुत कुछ समझाया। मिल भेंट कर कुँअर कर्मसिंह अपनी टुकड़ी के साथ बैठक में चले गए।

पाँचवां परिच्छेद

भादों का महीना है, अँधेरा पाख है, तिथि भी अमावस्या है, ऐसी दशा में अँधेरी का क्या पूछना? फिर आकाश भी काले २ धूमराले मेघों से छाया हुआ है। इस कारण अँधेरी का अंधेर और भी बढ़ा चढ़ा हुआ है। अँधेरी यों हीं बुरी भयानक और उदास मालूम होती है। कभी २ तो वह ऐसी डरावनी मालूम होती है कि साहस छूट जाता है और भाँति २ के भयानक विचार मन में उदय होते और विलीन होते हैं। ऐसी-जैसी ऊपर कह आए हैं, अर्थात् भादों का महीना, अमावस्या तिथि; भयावनी अँधेरी—घटा आदि से पूर्ण-अँधेरी, उस समय तो शूर वीरों और धैर्यवानों के भी यह छक्के छुड़ा देती है जब कभी घने वनों के घनी झाड़ियों में इसका (अँधेरी का) नज़ारा देखने का मौका मिलता है।

हमारे पाठकों में से बहुत ऐसे होंगे जिन्हें वर्षा की डरावनी अँधेरी में किसी वन, उपवन, की झाड़ी झंखाड़ों में भटकना न पड़ा हो। वे इसकी भयावह प्रकृति से खूब परिचित होंगे। कहिए पाठक! पड़ा है कभी साबिका ऐसी बरसाती

अँधेरी से ? तनक, कहिए तो! ऐसे समय में दिल क्या कहता है ?

अच्छा, अब हम भादों की अमावस्या में बारह एक बजे रात को किसी वन नहीं उपवन ही में आप को खड़ा कर देते हैं। देखें! सिर पर काली घटा घिरी है। नन्हीं २ फुहारें पड़ रही हैं, बिजली कभी २ दो तीन बार लपलप करके एक बार ऐसी चमक रही है कि आँखें मुंद २ जा रही हैं। कभी कड़क २ कर "धड़ाम धड़ाम" आवाज़ों के साथ ऐसा दहला रही है मानों सिर पर ही गिरने चाहती है। बादल की कड़क और बिजली की चमक सुनकर रात वाले जीव जंतु भयातुर हो इधर उधर दुबक रहे हैं। परन्तु एक जीव वन में भी ऐसा है जिसे इन आकाशी नगाड़ों से चिढ़ है। और वह इनका जवाब वैसाही देता है जैसा अपनी प्रतिध्वनि अपने को देती है। वह जीव है वनराजसिंह! एक सिंह ही है जो इन बादलों की गरज बरदाश्त न करके इनकी-बिजली की-परवा नहीं करता। उलटा इन्हें ऐसा मुँह तोड़ जवाब देता है कि इनकी भी नानी मर जाती है। शेष खग, मृग, जीव जंतु, तो प्राण रख कर भी निष्प्राण हो जाते हैं। पथिक पेड़ों के नीचे से निकल भागते हैं। क्योंकि बिजली ऊँचे स्थानों में अधिक गिरती है। पेड़ ही मैदानों में औरों की अपेक्षा-अधिक ऊँचे हैं। अतएव मैदानों में प्रायः पेड़ पर ही बिजली गिरती है। इसी कारण चतुर पथिक ऐसी दशा में पेड़ का आश्रय नहीं लेते और यदि लिये भी होते हैं तो तुरन्त त्याग देते हैं। लोहेकी वस्तु-यदि पास में होवे तो उसे भी फेंक देते हैं। फूल काँसों आदि के पात्र छिपा देते हैं। क्योंकि ऊपर कही वस्तुओं से बिजली की गाढ़ी प्रीति है।

जो हो इस समय बिजली के चोंचले देखने ही काबिल हैं

ठहर ठहर कर रुक रुक कर–एक साथ चमक उठना और फिर ग़ायब हो जाना एक अद्भुत कौतुक उत्पन्न करता है।

रींव २ की झन्कार हर एक पेड़ों से आ रही है। मानों खड्ज का तार बोल रहा है। अय्याँ नहीं! इ० आइ० आर० के इंजिन के स्टीम की आवाज़ है। जानते हो यह आवाज़ कौन कर रहा है? इसका नाम रेवाँ या रेहुँआँ है। यह एक झींगुर की सूरत का काला कीड़ा है जो बड़े झाड़ों की तनों पत्तों और छोटी बड़ी डालियों में रहता है। रात के समय इनकी बोली भय को और भी बढ़ाती है। इन्हीं के साथ झींगुर भी अपनी झन्कार सुना २ कर दिल दहलाने वाले भय अधिक बढ़ा देते हैं। मेंडकों की उपमा गोस्वामी तुलसीदास जी ने ब्राह्मणों से और इनकी टर टर को सामगान लिख गए हैं–"जिमि द्विज सामगान उच्च रहीं"–परन्तु मैं तो इन्हें मर्यादा लोलुप, प्रतिष्ठा इच्छुक और ईर्षालु ही कहूँगा। ये चाहते हैं कि सुहावनी बोली बोलने वालों की जमात में मेरा भी नाम दर्ज हो जाय। इसीसे ये बढ़ २ कर मुहचंग बजाते और परस्पर एक दूसरे से अधिक और बढ़ २ कर बोलने लगते हैं।

मनुष्यों में भी आज कल एक वर्ग ऐसा है जिसकी उपमा मेंडकों से बहुत मिलती जुलती है। इस मनुष्य वर्ग को यदि "बाबू दल" लिखें तो पाठकों को समझ में भली भाँति आ जाय।

ऊपर कहे "बाबूदल" की सृष्टि में कौतुक ही कौतुक है। मेंडकों की तरह ये भी परस्पर एक दूसरे से बढ़े चढ़े 'वक्ता" (चूड़ा नहीं) हैं।

मेंडकों की तरह ये भी ईर्षालु अहमन्य एवं प्रतिष्ठा लोलुप हैं। जैसे मेंडक चाहते हैं कि बरसाती भाषा बोलने वालोंमें

हमी अग्रगण्य रहें और इसी कारण वे शक्ति भर "टर्र टर्र" या "टरक टर टर, टरक टर टर" अथवा "मेंक मेंकों, मेंक मेंकों" आदि विविध भाषा विविध बोली बोल कर निशा भाषी अन्य जीवों की बोलती बन्द कर देते हैं वैसे ही हमारा बाबू दल भी विविध भाषा और बोलियों में व्याख्यानें फट-कार फटकार पाँडित्यता प्रकट करते और उद्भट विद्वानों का परिहाँस किया करते हैं। जैसे छोटे बड़े मेंडक जाति वर्ग सब मेंडक ही कहे जाते हैं वैसे ही हमारा बाबू (न!) दल भी सब एक हैं। अर्थात् न हिन्दू हैं न मुसलमाँ, दोनों दीन में नहीं, पर बनने को दोनों दलके पीर बन जाते हैं। दोनों की सरदारी हमी को मिलनी चाहिए यही इनका दावा है। पंडित भी आप ही पुरोहित भी आप ही बनना चाहते हैं। ब्राह्मण जाति उन में भी विद्वान ब्राह्मण तो इनके कलेजे में शूल से चुभने लगे हैं उनकी मर्यादा, प्रतिष्ठा, विद्या व्यवस्था आदि सभी हड़पने को तैयार हैं। कोई २ चाहते हैं कि ये ब्राह्मण वर्ग यदि पृथ्वी से मिट जाते तो बड़ा अच्छा होता क्योंकि इनके रहते उनकी दाल नहीं गलने पाती। इनके मारे बिला-यती हवा नहीं खा सकते और न... लेडी ही घर में ला सकते हैं। बात २ में ये ब्राह्मण धर्म का अड़ंगा लगाकर हमारी उन्नति में बाधा पहुँचाते हैं। ये पूज्य काहे को हैं? क्या केवल दो चार संस्कृत की किताबें घोख लेने ही से पूज्य हैं? हम हजारों अँगरेजी फारसी की किताबें फाड़ कर फेंक चुके। सँस्कृत तो माँ के पेट ही से पढ़ कर निकले। फिर भी पूज्य न माने जायँ इसका कारण क्या? विद्वत् परिषद् के ये ही प्रधान, धर्म के ये ही व्यवस्थापक, कर्म के ये ही ठेकेदार क्यों, हम क्यों नहीं? यही इन बाबुओं की कोरी कल्पनायें और जल्पनायें हैं। इसी को ये बढ़ २ कर बोलते और लिखते

हैं। और इनके पिट्ठू भी आज कल इनकी पीठ ठोंकते और इनको विद्वता की ड्योंडी पीटते फिरते हैं। इनी गिनी समाजों में ये ही प्रधान, ये ही प्रकाँड विद्वान, ये उद्भट पंडित और संस्कृताचार्य बने हुए मन ही मन मोंछें ऐंठ २ (परन्तु कुछ इनमें ऐसे भी हैं जिन्हों ने अपनी मोंछें कटा डाली हैं) कहते हैं। "अब हमसे बढ़ कर ब्राह्मण हो सकते हैं !!!—

इनमें उत्कट संस्कृतज्ञ वही है जो टट्टी की आड़ में बैठ कर बड़े २ विद्या दिग्गज, महामहोपाध्यायों तथा वैय्याकरणों को खरी खोटी सुनाता रहे। प्रकांड विद्वान वही है जो सभा समाजों में लब्धप्रतिष्ठ पूज्य पंडितों का, बचनों इशारों और व्याख्यानों से तिरस्कार करे। उनका परिहाँस करे और अपने पिट्ठुओं से करे करावे। आज कल इन्हीं का जमाना है। भगवान् इन "बाबुओं" से बिचारे "ब्राह्मणों" की रक्षा करें।



छठा परिच्छेद

अरे हटाओ भाई ! इन बाबू प्रपंच को छोड़ो। आवो बर्षा बहार का आनन्द लूटो।

हाँ, तो क्या कहता था ? अच्छा, दादुर भी बसाती अँधेरी के भयको बढ़ाने ही वाले हैं कम करने वाले नहीं। इनके चिल्लाने से और भी भयानक भाव हृदय में हिलोड़ें मारने लगते हैं।

और ऐसे समय में जब कुचकुचवा घुग्घू या उल्लू कह बोलने लगते हैं तब ? अजी तब तो ऐसा जान पडता है मानों ये अब प्राण ही लेना चाहते हैं। यह तो हुआ अँधेरी का अंधेर। ऐसे ही अंधेरे में आज हम अपने पाठकों को ले चलते हैं।

आइए पाठक! हम आप को अँधेरी का अंधेर दिखाएँ। देखिए, सामने के प्रकांड खड़हर पर आँखें डालें। देखें कैसी सीनरी (दृश्य) है। घने और ऊँचे वृक्षों के कारण सारा खँड़हर ढँका हुआ है। कहीं २ पर तो वन का भ्रम और कहीं २ पर पहाड़ियों का अनुमान होता है। खडहर एक छोटा मोटा प्रायद्वीप बन गया है। अच्छा ऐसी डरावनी अँधेरी और ऊबड़ खाबड़ खँड़हर में वे दो नहीं २ दो नहीं चार, चार भी नहीं पाँच जन-क्यों कि एक पीछे आड़ में है- क्या ढूंढ़ रहे हैं। ये सब हैं कौन ? कहीं भूत प्रेत तो नहीं हैं ? क्योंकि प्रायः ऐसे निर्जन खँड़हरों ही में भूत प्रेतों का निवास सुना जाता है। बस अब तो यही निश्चय करना चाहिये कि या तो ये भूत प्रेत हैं या चोर डाँकू। अन्य मनुष्यों का इतना बूता कहाँ कि ऐसी अंधेरी में रात के समय ऐसे डरावने स्थान में रहें। अच्छा आओ चलें इनके निकट चल कर मालूम करें।

पहिले तो पाठक महोदय यह समझलें कि हम हैं कहाँ ? अच्छा आप पहिले स्थान का परिज्ञान करके तब इन पाँचो का परिचय बूझें!

यह खँड़हर वही है जिसका वर्णन इस पुस्तक के दूसरे भाग में पढ़ चुके हैं अर्थात् यह काशी का राजघाट वाला क़िला है और यह भी वहीं पढ़ चुके हैं कि यह काशी का बड़ा प्राचीन क़िला है जो यवन काल में किसी "ग़ाज़ी" नामक

यवन के द्वारा ध्वंस किया गया है। पूरब में पतित पावनी पुण्यसलिला जाह्नवी उमड़ उठी हैं। उत्तर में वरुणा नामक एक छोटी सी नदी इठलाती हुई गंगा से मिल रही है। नदी के उस पार मृगदाव नामक रम्य तपोवन है, जिसमें महात्मा बुद्ध ने पहिले पहल तप किया। पश्चिम में दूर तक-वरुणा नदी के दक्खिनी किनारे पर कोसों तक वन ही वन-चला गया है। दक्षिण में गङ्गा का एक नाला है*। नाले के पार नगर की सीमा है।

इस खँड़हर पर ताड़ खजूर आम बेर आदि के पेड़ खड़े हैं। कहीं २ पर क़िले का भी टूटा फूटा चिन्ह मौजूद है। इसी में ऊपर कहे पाँचों जन एक टूटे फूटे टीले पर बैठे बातें करते हैं।

पहिले ने कहा—उस ख़त में यही न लिखा था कि आज.......................।

दूसरे ने जवाब दिया, हाँ आजही तो लिखा है।

एक ने कहा—वाहरे "आज" सारा दिन बीता सारी रात बीती पर आज का मर्म न मिला—

कैसी कटे है आज कल पाँचों तो घी में हैं।
हैं आज तो मज़े में पर कल की खबर नहीं॥

ख़ैर अब देखा जायगा।

एक दूसरे ने फिर छेड़ा-अच्छा चलो अब आज की आज हो गई कल देखी जायगी।

एक ने कहा नहीं २ ठहरो अभी। अभी भी समय है। लेकिन इतना करो कि एक २ आदमी एक २ ताड़ के पेड़ के तने से चिपट कर खड़े हो जिसमें देखने वाले देख न सकें

*तेलिया नाला।

यह कह कर वह पुरुष पास वाले एक ताड़ के पेड़ तले उठ कर चला गया। उसके ऐसा करते ही शेष चारों भी एक २ ताड़ के पेड़ से चिपट कर खड़े हो गए।

इसी समय तीन व्यक्ति दक्खिन का नाला पार करते हुए खँड़हर में पैठे और उसी स्थान पर पहुँचे जहाँ ऊपर कहे पाँचों जन ताड़ के पेड़ों से चिपटे खड़े थे। अँधेरी गहरी थी, बादल झुके हुए थे और नन्हीं २ बूँदें भी पड़ रही थीं। इन्हीं कारणों से आए हुए तीनों पुरुषों को छिपे हुए पाँचों जन नहीं दीखे। पर वे पाँचों इन तीनों को आते देखे और अब भी देख रहे हैं।

ऊपर के नवागत तीनों जन उसी स्थान पर खड़े होकर बातें करने लगेः—

पहिले ने पूछा—अच्छा अब यह बताओ कि तिलिस्म में पैठें तो कैसे पैठें! और पैठ कर निकलें क्योंकर। क्योंकि कुञ्जी तो आपने गँवा दिया?

दोनों में से एक ने जवाब दिया—जान बूझ कर तो कुञ्जी (किताब) गँवाई नहीं आपके कहे अनुसार ही हम उसके...... नाक से जड़ी लगा कर भागे। उसी हड़बड़ी में किताब उसी ताल के किनारे छूट गई?

पहिला०—फिर अब क्या करना चाहिये?

दूसरा०—अब मैं क्या करना बताऊँ।

पहिला०—तुमने तो बड़ा गज़ब कर दिया। इस कठिन तिलिस्म का सब खेल ही चौपट कर दिया। अब इसके भीतर जाना और जाकर बाहर निकल आना बड़ा मुश्किल है। इसके भीतर ऐसे २ पेचदार यन्त्र और रास्ते हैं कि उन्हें न जानने से ठीक मंजिल पर पहुँचना कठिन है।

दूसरा०—मैं आपको वह स्थान और निशान बता सकता

हूँ जहाँ से और जिसके सहारे हम उस स्त्री को इसके भीतर ले गए थे। बटुकसिंह किताब का हाल जानते थे वे ही पढ़ते और खोलते थे!

पहिला०—बटुकसिंह कहाँ हैं?

दूसरा०—मुझे नहीं मालूम। सुना है कि वह मिर्ज़ापूर गए हैं।

पहिला०—मिर्ज़ापूर?

दूसरा०—जी हाँ।

पहिला०—अच्छा तो चलो पहिले उसे घर पर ढूँढ़ कर मिर्ज़ापूर को चलें और उसे लावें क्योंकि उसके बिना कुछ भी काम न होगा। वह तिलिस्म का पूरा जानकार है और उसी की सलाह से यह खोला भी गया है।

तीसरा०—बटुकसिंह का घर कहाँ है?

दूसरा०—बड़ी पियरी पर।

तीसरा०—तो चलो बड़ी पियरी पर चलें और वहाँ देख भाल कर मिर्जापूर में उसको तलाश करें अब उसकी बड़ी ज़रूरत है कि यह तिलिस्म खोला जाय और उस (चंचला) को निकाल कर कँतित के क़िले में पहुँचाया जाय। कहीं उसकी भी वही दशा न हो जैसी उसकी-शशि की-हुई?

पहिला०—होना कोई आश्चर्य थोड़े ही है। वह (शशि) तो अनजान थी और यह (चंचला) तो आफ़त की परकाला है। फिर कहीं बेचूसिंह के कथनानुसार वह किताब उसके हाथ पड़ गई हो तो फिर वह तो हाथ से गई ही साथ ही यह अद्भुत तिलिस्म से भी हाथ धोना पड़ेगा। तुम जानते हो यह तिलिस्म दुनियाँ के तिलिस्मों में आला. अनूठा और ताज्जुब से भरा है। एक बार तो अच्छा जानकर भी इसके गोरख-धँधे में फँसे बिना नहीं रह सकता। वही इसके भेद को पा

सकता है जिसके हाथ में किताब हो। अपने हाथ से किताब नहीं गई सारी हिकमत ही रफूचक्कर हो गई। अब तो बटुक मिले तो कुछ सोचा विचारा जाय और उससे पूछा जाय कि किताब के बिना भी इसके भीतर पैठने का कोई उपाय है ?

तीसरा० बटुकसिंह के अलावा और भी कोई इसका भेद जानता है ?

पहिला०—मेरी समझ में तो और कोई शायद ही जानता हो।

दूसरा०—बेशक कोई दूसरा नहीं जानता। मैं तो उनके साथ में रह कर भी और साथ ही साथ इसमें पैठ कर भी कुछ नहीं जान पाया। जब मैं उनका साथी होकर भी कुछ नहीं जानता तो दूसरा-जो बिलकुल अनजान हो-कैसे जान सकता हूँ ?

तीसरा०—बटुकसिंह को साथ लेकर आना था उसे छोड़ क्यों आए ?

दूसरा०—घर पर मिला नहीं।

तीसरा०—बटुक कैसे इस तिलिस्म का ज्ञान रखता है ?

पहिला०—भैरोसिंह तिलिस्मी नाम का एक बड़ा गुणी काशी में हो गया है। वह इस तिलिस्म का उस्ताद था। वह काशी का मशहूर ऐयार भी था। उसकी ऐयारी के मारे बड़े २ राजे महराजे अभी तक सिसकते पड़े हैं। उसी ने इस तिलिस्म को खोज निकाला और इसके सहारे भारतवर्ष के ऐयारों की बोलती बन्द कर दी। उसके बहुत से चेली चेले इस काशी में हैं उन्हीं भैरोसिंह का यह बटुकसिंह भी एक चेला है।

तीसरा०—यह तिलिस्म किसका बनवाया हुआ है ?

पहिला०—बिना देखे और दिखाए तिलिस्म की क्या

तारीफ करें कराव। यह तो देखने ही पर कहने सुनने योग्य है। हाँ, इतना सुना है कि यह तिलिस्म किसी काशी के राजा ने बनवाया था। "चलो चलें बड़ी देर हुई" कह कर तीनों वहाँ से दक्खिन की ओर चले गए।

हमारे पाठकों ने ऊपर कहे तीनों मनुष्यों को तो पहचान लिया होगा और यदि न पहिचाना हो तो हम बतलाये देते हैं। पहिला व्यक्ति कंतित राज का प्रसिद्ध धूर्त सीताराम दूसरा बटुकसिंह बनारस वाले का साथी बेचूसिंह और तीसरा संतसिंह धूर्त था। ये तीनों अब चंचला को तिलिस्म से निकाल कर कंतित ले जाने को आए हैं। बटुकसिंह धूर्त इस समय मिला नहीं, इसी कारण इस समय ये तिलिस्म खोल न सके और उसे ढूंढ़ने बड़ी पियरी की ओर चले गए।

अच्छा ये पाँचों पुरुष —जो एक ताड़ के पेड़ से चिपटे हुए इन तीनों की बातें सुनते खड़े हैं-कौन हैं? इन्हें आप जानते हैं? नहीं जानते? अरे भाई यह चुनार की धूर्त मंडली है। ध्यानसिंह धीरसिंह वीरसिंह, सुमेरसिंह और पहाड़सिंह यही पांचों यार पाँचो ताड़ के पेड़ से चिपटे तीनों की बातें सुनते रहे।



सातवाँ परिच्छेद

सीताराम आदि धूर्तों के चले जाने पर ध्यान 'धीरसिंह' वीरसिंह, पहाड़सिंह और सुमेरसिंह पाँचों जन वहाँ से चल कर गंगा तट पर आए और एक टूटी सी बुरजी पर पाँचों बैठ कर बातें करने लगे।

ध्यानसिंह ने कहा-भाई पहाड़! कंतित की चंडाल चौकड़ी पहुँच गई। अब या तो तुम इस चौकडी को चौकडी भुला दो या खुद चौकड़ी भूल कर इनके चक्कर में पड़ जाओ तीनों की बातें तो सुन चुके। यह मालूम कर ही लिये कि चंचला इसी (हाथ के इशारे से उत्तर की दिशा दिखा कर) तिलिस्म के भीतर है। यदि इस समय चौकसी के साथ और बुद्धिमानी से काम न किया गया तो वह (चंचला) वैसे ही हाथ से बे हाथ हो जायगी जैसे लल्लोमल की हवेली से अथवा राजघाट के पंडे के घरसे बे हाथ हो गई।

शमशेर बहादुरसिंह-सो तो ठीक है परन्तु अब जरा टेढ़ी खीर है। उनकी—जो इस तिलिस्म में रख गये हैं—खुद अक्ल गुड्म है। उन्हे भी अब पता नहीं कि इसका दरवाजा किधर और रास्ता किधर है। इसकी कुन्जी ही (किताब) उनके हाथ से निकल गई. अब वे कर क्या सकते हैं?

ध्यान-बस. माफ करें, इस बहस को बन्द करें! धूर्त हैं कुछ तो करेहींगे।

"का नहिं धूरत कर सकें का न अघोरी खायँ" अच्छा अब सहल तर्कीब यह है कि बटुकसिंह को तुरन्त गिरफ्तार कर लिया जाय जिससे कंतित वाले टापते रह जायँ।

सन्त०—इस समय वे तीनों वहीं-बटुक के घर पर गए हैं। सम्भव है कि बटुक उन्हें घर पर मिल जाय और वह तीनों के लिये दिये तिलिस्म में उतर पड़े।

धीर०-अब इस समय उसके मिल जाने पर भी तिलिस्म में न आवेंगे। हाँ रात में धावा मारे तो कह नहीं सकते।

ध्यानसिंह ने कहा—अच्छा, पहाड़सिंह तो इस खँडहर की चौकसी करें। यदि उनमें से कोई दीख पड़े तो फौरन धूर्तता द्वारा उन्हें अपने वश में करें। या भैया मौका देखें

वैसा करें। सम्भव हो और धूर्तता चल जाय तो साथ ही तिलिस्म में भी उतर पड़ें। धीरसिंह और सुमेरसिंह नगर में फेरा लगावें और देखें कि कुछ सुराग लगता है या नहीं। फेरी लगाने पर बहुत कुछ पता लग सकता है बशर्ते कि फेरीदार कुछ चालाक हो। वीर मेरे साथ चले उसे मैं दूसरा काम सौंपूँगा।

ध्यानसिंह वीरसिंह को साथ लेकर नगर की ओर चले। तेलिया नाला पार कर त्रिलोचन पर पहुँचे। त्रिलोचन महादेव का दर्शन कर ज्योंही कुछ आगे बढ़े त्योंहीं सामने उन तीनों को आते देखा। वे तीनों लम्बी कदम बढ़ाये लपके चले आ रहे थे।

पहाड़सिंह ने वीरसिंह से कहा—वीर! इसी मछोदरी (मत्स्योदरी) की किसी झाड़ी में छिप कर बैठ रहो। देखो सामने सीताराम आदि लपके चले आ रहे हैं ऐसा न हो कि वे हमें देखलें। यह कह दोनों दो घने फूल के झाड़ों की आड़ में बैठ गए।

कुछ मिन्टों ही में वे तीनों भी उसी मछोदरी के तालाब पर से होते हुए सामने राजघाट की ओर चले गए। ध्यान-सिंह ने कहा-वीर! बटुक साथ में नहीं है। जान पड़ता है वह मिला नहीं। अब ये तीनों मिर्जापुर को जा रहे हैं। मौका तो बड़ा अच्छा था। अभी तीनों को फाँस ले सकते थे। परन्तु फाँस कर क्या करेंगे? कहाँ रक्खेंगे? इन्हें यहाँ से निकल ही जाने दो। आओ हम नगर में चलें और अपना काम देखें। यह कह ध्यानसिंह और वीरसिंह दोनों नगर में पैठे।

"बड़ी पियरी बड़ी पियरी" पूछते पूछते दोनों जन मैदा-गिन के चौराहे पर आए। वहाँ पूछने पर मालूम हुआ कि बड़ी पियरी मोहाल आगे है। नखास पर से घूम कर काशी-

पुरा के चौराहे से घूम जाना था कबीरचौरा से जालपा देवी होते हुए बड़ी पियरी चले जाना।

ध्यानसिंह ने कबीर चौरा की राह ली और जालपादेवी से घूम कर पियरी पर पहुँचे। सबेरा हो गया था इससे सड़क गंगा स्नान करने वालों से भरा दीखा। एक मनुष्य जो उसी पियरी मोहल्ले का रहने वाला था-दिखाई पड़ा उससे ध्यानसिंह ने पूछा-"भाई! यहाँ कोई बटुकसिंह रहते हैं?"

उसने जवाब दिया—यहाँ सिवा सिंहों के सियार कहाँ हैं। इस मोहल्ले में सब को सिंह की दुम लगी है। बटुक और भैरो पूछने पर जल्द पता न लगेगा आप 'फन" का नाम लेकर पूछिये तो पता चलेगा।

ध्यान०—"फन" क्या?

मनुष्य०—हुनर-रोजगार।

ध्यान०—बटुकसिंह नाम जानता हूँ रोजगार क्या है सो तो नहीं जानता।

मनुष्य—तब पता पाना भी कठिन है। इस मोहाल में बीसों बटुकसिंह हैं। बटुकसिंह जालिया, बटुकसिंह गुंडा, बटुकसिंह जमीदार, बटुकसिंह जुआड़ी. बटुकसिंह नौसरिया, बटुक आगे कुछ कहना चाहता था कि ध्यानसिंह ने बात काट कर पूछा-नौसरिया क्या अल्ल है? मनुष्य ने कहा-जालिया और नौसरिया दोनों यद्यपि एकी पेशेवर हैं तथापि दोनों के कामों में भेद है। जाल और फरेब झूठ और दगा से जालिये के काम हैं। और नौसर छल कपट के जरिये दूसरे को ठग लेने का नाम है। यहाँ इस मोहल्ले में बटुकसिंह जालिया और बटुकसिंह नौसरिया दोनों प्रसिद्ध हैं। आप कहें आप का किससे क्या मतलब है?

ध्यानसिंह ने पूछा—उन दोनों का पता बता दो मैं दोन
से मिलकर अपने बटुक को पहचान लूँगा।

उस मनुष्य ने दोनों बटुकों का पता ठिकाना बता दिया
वीरसिंह के साथ ध्यानसिंह वहाँ आए और बटुक २ करके
आवाज दी।

एक काला मोटा आदमी खिड़की से शिर बाहर निकाल
कर पूछा—कौन हो भाई ?

ध्यानसिंह ने उसे देख कर कहा—माफ की जिएगा जस
बटुक की मैं तलाश में हूँ वह आप नहीं हैं। यह कह वे दूसरे
पते पर आए और वहाँ भी बटुक २! दो आवाज़ लगाई।

कुछ ही मिन्टों में एक १८।२० वर्ष की गोरी युवती जिसके
गले में मोटी सोने की हँसली, कानों में सोने का करनफूल
नाक में जड़ाऊ सोने की कील, बाँह में चौदह गाँठ का सोने
का मोटा अनन्त, हाथों में सोने का बघमुहाँ कड़ा, कमर में
सतलड़ी चाँदी की करधनी—जिसमें डाइमेंडकट चमकता
हुआ टिकरा था, पाओं में मोटे चाँदी के कड़े और छड़े
ऊंगलियों में बनारसी छल्ले पड़े हुए एक महीन बेलदार
साड़ी पहिने पान चबाती हुई-दरवाजे पर आई और बोली
"केके पूछत हौव्वा"—

ध्यानसिंह उसका ठाट बाट रंग योवन देख पहिले तो
बड़े अचरज में हुए और मन में कहने लगे कि यह स्त्री कैसी
निर्लज्ज है। ऐसी सुन्दरी नव-योवना बाला में लज्जा का नाम
नहीं यह कैसा आश्चर्य है! यह कुरता भी नहीं पहिने है योहीं
अंचल दबाए सामने चली आई और मुसकुराती हुई पूछती है
कि "केके पूछत हौव्वा" यह कैसा हौव्वा !!!

प्रकट में बोले—बटुकसिंह हैं ?

स्त्री०—भौंहें मड़ोर आँखें तिरछी कर कुछ ऐंठ के साथ "नाँही बाटन।"

उस स्त्री के हाव भाव कटाक्ष से ध्यानसिंह ने निश्चय कर लिया कि यह स्त्री साध्वी नहीं है। इसकी आकृति और प्रकृति में कुलटापन कूट २ कर भरा है। अतएव उन्होंने मन में कहा—कुलटा हो वा साध्वी सधवा हो वा विधवा हमें इस से क्या प्रयोजन ? हमें तो अपना कार्य साधन करना चाहिये। प्रकट में उससे बोले—कहाँ गये हैं, कुछ अपना पता बता गए हैं ?

स्त्री०—रूखे वचन से, कुछ जीभ ऐंठ कर—"का जानी कहाँ गयल हौऽवन कौन काम हौ ?"

ध्यान०—उनसे मिलने को आए हैं।

स्त्री—"तोहार घर कहाँ हौ ?"

ध्यान०—हमारा घर इसी शहर में है। वे हमारे मित्र हैं। कुछ जरूरी काम है। पता मालूम हो तो बता दो।

स्त्री०—कुछ ऐंठ और आँखें तरेर कर—'हम का जानी हो, कहाँ गयल हौऽवन। कहत रहलन की हम बराते जात हई अब का जानी बराते गइलन कि रंडी के इहाँ सूतल बाटन" यह कहती हुई वह दरवाज़ा भेड़ कर भीतर चली गई।

एक पड़ोसी जो इन दोनों की बातें सुनता रहा हँस कर ध्यानसिंह से बोला—बाबू साहेब ! किसकी तलाश में हैं ?

ध्यानसिंह ने कहा—बटुकसिंह की।

पड़ोसी बोला—बटुकसिंह नौसरिया ?

ध्यानसिंह ने कहा—जी हाँ।

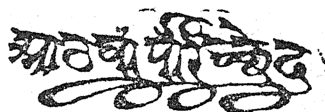
पड़ोसी कहने लगा—वह मिर्जापूर एक कलवार की बारात में गए हैं। दो तीन दिन में आवेंगे। यह औरत बड़ी

बदमाश है, इससे बात न करें। दो तीन दिन में आइयेगा भेंट हो जायगी।

ध्यान०—यह बटुकसिंह की स्त्री है?

पड़ोसी०—जी नहीं, इस हिस्से में कुछ ही लोगों के घर विवाहिता स्त्री हैं। रखनियों की यहाँ घर २ भरमार है। यह भी रखनी है इसी से इतना ऐंठ कर बोल रही है। रखनियों में भी यह गौनहारिन है इसी से इसको लज्जा इससे दूर भाग गई है।

ध्यानसिंह ने वीरसिंह से कहा अब चलो चलकर कहीं विश्राम करें, आज कल में वह आवेहीगा। यह कह वे धर्मशाले की ओर चले गए।



हमने पिछले भागों में यह संकल्प किया है कि अगले भागों में काशी का एक नज़ारा पाठकों को दिखावेंगे। अतएव इसी भाग में वह संकल्प पूरा करने का इरादा है। साथ ही इसी भाग में चंचला को भी मुक्त कर अजयगढ़ पहुँचाने की कोशिश करेंगे।

हम ऊपर कह आए हैं कि धीरसिंह और सुमेरसिंह दोनों नवछटिये (नव युवक) जासूसी पर तैनात हुए। यह काम दोनों को बहुत पसन्द आया। दोनों मित्र रास्ते में कड़ी निगाह डालते चौक में आए और उस दलाल की तलाश

किये जो इन्हें कामिनी का मुजरा सुनाया था और वादा भी किया था कि किसी समय में यहाँ के अड्डे चकले खुफियाँ आदि की जियारत कराऊँगा। देखो भाग ३ पृ० १२४

बनारसी की तलाश करते २ इन दोनों को एक अपूर्व टुकड़ी का सामना हुआ। इस टुकड़ी में सब नौजवान ही नौजवान, एक उम्र एक रङ्ग के खड़े थे। साफा लगी किनारदार धोती पहिने, धुला हुआ बारीक मलमली दुपट्टा ओढ़े, चारखाने का अँगौछा कंधे पर डाले, मस्तक में भस्म उसपर सिंदूर का लम्बा टीका लगाए, मिर्जापूरी सोंटा लिये, पंजाबी जूता डाँटे, यह युवक मंडली फौव्वारे के पास रिखई तमोली की दूकान पर मगही पान खाती खड़ी थी। ज्योंहीं वह मंडली इन दोनों को देखी त्योंहीं आपस में पंडा भाषा में कुछ कहकर एक ने एक से कहा "अरे यार झिल्लू! ठिकनः देखः सामने उतारः लेजा के यात्री हौ देखत का हउवा"।

झिल्लू ने झल्ला के कहा—यात्री हौ तो तुहीं काहे नाहीं जातः। हम नाहीं जाब।

फिर उसने परसू से कहा-परसू परसू! ल, तुहीं लः। देखः नाहीं दूसर ठिकाय लेई।

परसू उन दोनों के आगे आकर बोला—यजमान! गंगा स्नान 'मणिकर्णिका का मथवान' कुछ ब्राह्मण को दान, विश्वेश्वर की झाँकी करायें। काशी की गलियों की यात्रा करायें।

ध्यानसिंह ने सुमेरसिंह के कान में कहा—यार! बनारसी तो मिला नहीं चलो इसी के साथ घूमें। काशी की नगरी देखलें। इसी बहाने अपनी जासूसी भी पूरी करलें। रास्ते में संभव है कोई नया गुल खिल जाय।

सुमेर ने भी मंजूर कर लिया। दोनों उस पंडा के साथ

गंगा तट पर आए। घाट पर पहुँचते ही देखे कि सारा घाट गंगापुत्रों से भरा है। सैकड़ों चौकियाँ लगी हैं। पचासों आवाज़ें आ रही हैं "इधर आवो यजमान, यहाँ कपड़े उतारो, इस घाट पर स्नान करो इत्यादि।"

धीरसिंह ने कहा—भाई सुमेर! यह स्नान—घाट है कि सराय का भठियारखाना?

सुमेर बोले—उपमा तो ठीक है। जैसे ये गंगापुत्र-इधर आवो २ चिल्लाते हैं ठीक इसी प्रकार सराय की भठियारिनें भी इधर आवो मुसाफिर, यह स्थान लिपा पुता है, यहाँ टिको इत्यादि एक साथ चिल्लाती हैं।

साथ में जो पंडा था उसने एक अपने मित्र गंगापुत्र के यहाँ उतारा! कपड़े उतार कर दोनों जन जल में उतरे। देखा तो पुरुष दस नहाने वाले हैं तो स्त्रियाँ सौ! और स्त्रियों में भी बूढ़ी और बालिकाओं की अपेक्षा तरुणी स्त्रियों की ही विशेषता है। एक ओर तरुण पुरुषों का झुंड एक ओर तरुणी स्त्रियाँ मज़े में स्नान कर रही हैं। तरुण पुरुषों में दोही चार ऐसे होंगे जिनके भाव और आचरण शुद्ध हों। शेष नवयुवकों का मन स्थिर नहीं। कोई कनखी ताकता है तो कोई सनमुख मुख किये अंग प्रत्यंगों की उपासना में संलग्न है! कहाँ तक कहें स्त्री पुरुष दोनों के मन चंचल हैं। उन्हें हम यहाँ लिख कर नहीं बता सकते। यहाँ तक तो दृश्य देखने में आता है कि हाथ गौमुखी में ध्यान परमात्मा में फिर भी क्षण २ में नयन कपाट खोल कर रूपोपासना कर ही लेते हैं। इसी अभिप्राय से कितने हीं स्त्री पुरुष घंटों घाट पर जमे रहते हैं।

फिर यह नहीं कि नवयुवक ही आचरण के ऐसे हों। कुछ नवयुवतियाँ इन नवयुवकों से भी बढ़ चढ़ कर हैं। उनके भी चंचल नेत्र स्थिर नहीं। वे भी अपनी उपासना से बाज़ नहीं

है। इनके हाव भाव कटाक्षों का अपूर्व दृष्य घाटों ही पर देखने में आता है। फिर यह भी नहीं कि ये स्त्री पुरुष नीच अथवा साधारण घर के हों। ये प्रायः उच्च जातीय हैं। और इनका यह नित्य का व्यापार है।

धीरसिंह ज्यों त्यों गङ्गा स्नान कर कपड़े बदले और तिलक छाप लगा कर गङ्गापुत्र की हथेली पर दो पैसे धरे और वहाँ से उठ कर ज्योंहीं ऊपर चढ़े हैं त्योंहीं वह बनारसी सामने दिखाई पडा। धीरसिंह को देखते ही वह पहचान गया और दौड़ कर सामने आकर सलाम किया और कहा—बाबू साहेब! बहुत दिनों में दर्शन दिये।

धीरसिंह ने कहा-भाई बनारसी! हम तो तुम्हारी तलाश यहाँ आते ही किये। कहो तुम कहाँ थे?

बनारसी ने झुक कर सलाम किया और कहा-क्यों न हो, आप जैसे तबीअतदार मेरी तलाश न करेंगे तो करेगा कौन? अच्छा अब आप इन पंडा जी को तो कुछ दे दिला कर चलता कीजिये और आइये मेरे साथ। मैं आप को काशी की सीनरी दिखाऊँ।

धीरसिंह ने एक रुपया उस गंगा पुत्र के हाथ में धरा और कहा—महाराज! अब आप जाइये कल फिर मिलेंगे। उसने बहुत कहा कि चलिये विश्वनाथ की झाँकी तो कर लीजिये। परन्तु धीरसिंह ने कहा नहीं कल चलेंगे। यह सुन वह गंगा पुत्र चला गया।

धीरसिंह ने पूछा-भाई बनारसी! तुम यहाँ कैसे आए?

बनारसी ने हँस कर उत्तर दिया—सरकार! हमारा भोर का दौरा तो यहीं होता है। दो चार प्रसिद्ध घाटों हीं पर इस समय शिकार मिलते हैं। काशी के कुछ घाट "स्नान घाट" नहीं प्रत्युत उन्हें "रूप वन" कहना चाहिये। हम शिकारी हैं।

इसी कारण रूपवन में शिकार की ताक में लगे रहते हैं। जहाँ कोई अच्छा शिकार देखा तहाँ उसका पीछा किया। जैसा शिकार खेलने का सुभीता यहां के घाटों पर है वैसा बस्ती में नहीं। जो जीव यहाँ दिखाई पड जाते हैं वैसे अन्यत्र कहीं नहीं दीखते। यहाँ अनेकों शिकारी आते हैं जिनमें स्त्री पुरुष दोनों ही हैं। क्या आप इन स्नानार्थियों में सब को धर्मात्मा ही देखते हैं? अजी सरकार! बूढ़ों बालकों और कुछ सन्मार्गी नवयुवकों और बालाओं को छोड़ कर शेष नवयुवक और नवयुवतियाँ तो केवल मृगया के निमित्त ही यहाँ पधारती हैं। हमारा तो सब से आला दरजे का काम यहीं हल होता है। अपने यजमानों के लिये हम यहीं से प्रसादी ले जाकर देते और अच्छी दक्षिणा लेते हैं।

देखें इस घाट के ठाट बाट को देखें। कैसे कैसे जीव इन में विचरण कर रहे हैं। ये जीव साधारण नहीं बुरे भले प्रतिष्ठित धनी मानी सभी घरों के हैं। ये बुढ़ियें भी शक्कर की पुड़ियें हैं। हुक्म हो तो इनमें का कोई शिकार?...... ..

धीरसिंह ने कहा—नहीं नहीं, इसकी जरूरत नहीं, हम केवल रहस्य ही जानना चाहते हैं। अच्छा ये इतने गंगा पुत्र एक घाट पर क्यों हैं?

बनारसी ने कहा—ये सब धर्म के ठीकेदार हैं। सुमेरसिंह बोले-धर्म के ठीकेदार हैं अथवा व्यवसाई मालूम होते हैं? बाज़ार लगा हुआ है, अपना अपना सौदा आगे धरकर बैठे हैं और खरीदारों को बुलाते हैं-यहाँ आवो यहाँ आवो! बाहरी काशी! एक समय तो तू पुण्य पुरी ही प्रख्यात थी परन्तु अब तो तू कलि की केलिस्थली हो रही है!!!

आहा! जिस पतितपावनी, पुन्यसलिला, सुरनदी, भागीरथी के पुनीत तट पर धर्मप्राण, साधु सन्यासी, गृहस्थ

एवं वानप्रस्थ बैठे सदाशिव शंकर का अखंड ध्यान किया करते थे वहाँ लुच्चे गुंडे, दुराचारी व्यभिचारी कुटनी और कुटौन का साम्राज्य हो रहा है !!!

धीरसिंह ने कहा—भाई सुमेर! चलो अब यहां से चलें बाबा विश्वनाथ की झाँकी करें और अपना काम देखें।

बनारसी ने कहा—हाँ हाँ चलो, अब तो वहाँ चलना ही है। यह कह तीनों ऊपर आए और विश्वेश्वर के मंदिर में जाकर विश्वनाथ का दर्शन किये। यहां पंडों की अद्भुत जमात देख धीरसिंह ने बनारसी से पूछा—बनारसी! क्या यहाँ भी वही हालत है जो घाटों पर है?

बनारसी बोला—ठाकुर साहेब! घाट बाट मेला-तमाशा पर्व त्योहार यही तो मौज के दिन हैं। इन्हीं से कितनों की रोटी है। इस नगर में ९५ वें स्त्री पुरुष परदेसी हैं। देश विदेशों की रीति नीति आचार विचार और आचरणों से यह पुरी भर गई है।

सुमेरसिंह०—अच्छा बाबा माफ करो, देख ली हमने तुम्हारी काशी।

सुनते थे काशी को भूतल में पुनीत अविनासी है।
देख लिया इस काशी को यह नरक सीनरी खासी है ॥टेक॥
वर्णशंकरों का जमघट है व्यभिचारों का पार नहीं।
वह कुलटा दुर्भगा बड़ी चाहते जिसे दस यार नहीं।
कौनसा ऐसा कुकर्म है जिसका देखा विस्तार नहीं।
है अधर्म वह कौनसा जिसका यहाँ पर है भरमार नहीं।
कासी कासी कहें यहाँ कासी में कासी कासी है।
देख लिया इस कासी को यह नरक सीनरी खासी है ॥१॥
यह कहते हुए तीनों आगे बढ़े।

नौवां परिच्छेद

रास्ते में धीरसिंह ने बनारसी से कहा—बनारसी! बड़ी पियरी मोहल्ला कहाँ है? क्या तुम उसे जानते हो?

बनारसी ने नाक सिकोड़ मुँह बना कर कहा—जानते हैं कि वहीं रहते ही हैं। लेकिन उधर के मोहल्ले अच्छे नहीं हैं। धीरसिंह ने कहा—हमें अच्छे भले से काम नहीं हमें तो एक आदमी से मिलना है।

बनारसी--किसी मर्द से मिलना है या औरत से?

धीर०—हँस कर—हमलोग मर्दों से मिलते हैं; औरतों से नहीं।

बनारसी०—किससे मिलना चाहते हैं?

धीर०—उस मोहल्ले में कोई बटुकसिंह रहता है?

बनारसी०—बटुकसिंह जालिया या नौसरिया?

धीरसिंह—यह तो मैं नहीं जानता पर बटुकसिंह को जानता हूँ।

बनारसी—चलो मुलाकात करादें।

तीनों नारियरी टोला से होकर बड़ी पियरी में पहुँचे। स्थान २ पर दस पाँच अँकड़बाज़ों को देख धीरसिंह ने बनारसी से पूछा—ये लोग कोई बड़े बहादुर आदमी जान पड़ते हैं।

बनारसी ने कहा—हाँ, ये काशी के प्रसिद्ध गुंडे हैं। एक एक के पास पाँच २ सौ जवान लठ बन्द हैं। काम पड़ने पर सड़कों पर लाशों की ढेर लगा देते हैं।

धीर०—किस लिये ?

बनारसी०—रंडियों के लिये ?

धीर०—छि;—इसीलिये लाशों की ढेर लगाते हैं ! मैंने तो समझा कि किसी जगह जमींदारी के लिये ?

बनारसी—इनकी जगह जमींदारी जो कुछ है रंडियें हैं। एक २ रंडी के लिये सैकड़ों कट मरते हैं, डामल फाँसी चढ़ जाते हैं। रंडियों ही से इनकी गुज़र है। वे गा बजा नाच रिझा कर टके लाती हैं और इन गुंडों को खिलाती हैं। इसी से ये साँड़ की तरह दीख रहे हैं।

धीर०—इसमें रंडियों को क्या लाभ है ?

बनारसी०—यही कहलाने के लिये कि "यह फलाने गुंडा की रंडी है।"

धीर०—बस !

बनारसी०—जी हाँ, बस इसी का इन्हें गहरा अभिमान है। इसके पीछे ये तबाह हैं। (उँगली से दिखा कर) इन मोहल्लों में इन गुंडों की रंडियाँ भरी पड़ी हैं।

धीरसिंह—अच्छा बटुकसिंह का घर बताओ। वह भी गुँडा है क्या ?

बनारसी०—जी हाँ, एक बटुक जालिया है और एक नौसरिया। आप शायद नौसरिया से मिलना चाहते हैं क्यों-कि वह बड़ा फन बाज और धूर्त है।

यह कह बनारसी बटुकसिंह के द्वार पर खड़ा हो "बाबू बटुकसिंह बाबू बटुकसिंह" कह कर दो आवाज़ें लगाईं।

कोठे की खिड़की से वही औरत जिसका ऊपर वर्णन कर चुके हैं। उत्तर दी:—

"के हौ हो ?"

बनारसी ने कहा—"अरे हम हई बचऊ" बाबू साहेब बाटैं ?"

स्त्री०—"काहे के, का काम हौ ?"

बचऊः—अदमी आयल हउवन मिलै के।

स्त्री०—"खात हउवन बइठ जा।"

बनारसी और स्त्री की बात चीत सुन धीर और सुमेर दोनों हँस पड़े। क्योंकि "हऊवन" 'गइलन" आदि बनारसी भाषा सुनने का उन्हें आजही समय मिला है। तीनों जन एक चबूतरे पर बैठ गये। थोड़ी ही देर में वीरसिंह को लेकर ध्यानसिंह भी वहाँ आ पहुँचे। धीर ने बनारसी को इशारों में कहा—देखो! भाई साहेब आगये हैं अब कोई अडबंड बातें न करना।

धीरसिंह ने ध्यानसिंह के कान में कहा—भाई साहेब! हम तो ढूँढ़ते ढूँढ़ते यहाँ आ निकले लेकिन कुछ पता न लगा, इस बनारसी ने सच्चा पता दिया। बटुक का घर यही है और अब वह नीचे आ रहा है।

ध्यानसिंह ने गरदन हिलाकर धीरे से उत्तर दिया—'हाँ हाँ हमें मालूम है" मैं तुम से पहिले यहाँ हो गया हूँ। चुप चाप रहो बोलो चालो नहीं और न मुझसे इस समय मेल मिलाप रखो "अपनी धुन अपने मस्तक ही में रहने देना"* इधर ध्यानसिंह और धीरसिंह की बात चीत होही रही थी कि बटुकसिंह अँगोछे से मुँह और पेट पोछता हुआ बैठक में आया। सामने बनारसी को-जिसे अब हम बचऊ लिखेंगे-खड़ा देख ज़ोर से खखा कर हँसा और कहा—कहो भाई बचऊ! अच्छे तो हो न? कैसे आना हुआ?

---

*इसे इशारा कहते हैं।

आपकी कृपा है। ये लोग भी काशी की सैर करने आ गये हैं। आप से मिलने आए हैं।

बटुकसिंह—(अचरज के साथ) मुझसे मिलने ?—ध्यान-सिंह की ओर मुख कर—कहिये साहेब क्या हुक्म है ? आप का शुभ नाम ?

ध्यानसिंह—मेरा छोटासा नाम करमसिंह है। घर मेरा फैजाबाद् है। आपका नाम सुना चले आए ।

बटुक०—बड़ी मेहरबानी की। यह आपका घर है खुशी के साथ रहिये। भोजन पान कीजिए। अच्छा-धीरसिंह की ओर हाथ के इशारे से—ये भी आपके साथी हैं ? ध्यानसिंह बोलने भी न पाए कि चटपट बीच में बचऊ बोल उठा-धीर-सिंह की ओर उँगली दिखा कर—ये मिर्जापूर के बड़े महाजन हैं अकसर काशी की यात्रा कर जाया करते हैं।

मिर्जापूर का नाम सुन कर बटुक कुछ चौकन्ना हुआ लेकिन कुछ ही लहमें में उसका ध्यान बँट गया और वह धीर को एक सोने की चिड़िया समझ लिया। उसके बिचार बदल गए। अब वह विचारने लगा कि अच्छी चिड़िया है इससे कुछ रकम ऐंठना चाहिये । प्रकट में बोला-मिर्जापूर के महाजन हैं तो अपने ही हैं। क्योंकि मिर्जापूर वाले काशी वालों के भाई बन्द ही तो ठहरे ? कहिये आपका क्या काम है ?

धीर०—मैं भी कुछ समझने बूझने आया हूँ। मुझे दो एक बात आपसे करनी है। तनक आप मेरी बात एकाँत में चल कर सुन लें।

बटुक०—कुछ हँसी कुछ क्रोध के साथ-हे साहेब ! समझने बूझने की यहाँ जरूरत नहीं है। यह है काशी। यहाँ समझावन बुझावन दोनों भाई रहते हैं।—फिर हँस कर—अच्छा आइए कह कर वह खड़ा हुआ और बैठक के बाहर

निकल कर धीमीं आवाज़ में धीरसिंह के कान से मुँह सटा कर कहा—"कहिए, क्या बात है ?"

धीरसिंह ने कहा–मैं आपको कुछ पैदा करा देना चाहता हूँ और चाहता हूँ एक ऐसे धनी से भेंट करा देना जिससे आप आप ही हो जायँ।

बटुक०—सो कैसे ?

धीर०—बतलायेंगे। अब तो तनक चौक की सैर कर आवें। शाम हो गई है फिर कल मिलेंगे।

बटुक ने कहा–चलिये मैं भी तो चौकही चलता हूँ। यह कह वह अपनी दोपलिया टोपी सिर पर और मलमली दुपट्टा कँधे पर धर कर ध्यानसिंह से कहा–भाई साहेब ! "आपने कुछ हुक्म न दिया ?"

ध्यानसिंह समय को देख कर बोले–बस, दर्शन करना था कर लिया। अब चलते हैं। फिर कभी दर्शन मेला होगा। यह कह वे भी उठ कर वहाँ से चल दिये।



दसवाँ परिच्छेद

धीरसिंह सुमेरसिंह बचऊ और बटुकसिंह चारो जन चौक में आए। बटुकसिंह ने काशी के प्रसिद्ध गंधी नाकेश्वर प्रसाद की दूकान पर पहुँच कर एक चवन्नी फेंकी और कहा— हिना या मोतिया अथवा रूह गुलाब के दो फाहे बना दो।

नाकेश्वरप्रसाद का आतशक के कारण तालू फूट गया था जिससे वह हिनहिनाकर बोलता था। उसने कहा—खँस बड़ाँ वँढ़ियाँ हैं देंवें।

बटु०—हाँ हाँ जिसे आप उम्दा समझें उसे दें।

फाहे कानों में खोंस कर तीनों जन रिखई तमोली की दूकान का मगही पान खाए। अब बचऊ का भी मौका आया उसने कहा—चलिये बाबू साहब आज आप दोनों साहबों को हुस्न-बाग़ की सैर करा लावें। बटुकसिंह ने हँसकर कहा—हां हां ज़रूर चलो। बाबू साहब को भी ले चलो। चारो जन को लेकर बचऊ दाल की मंडवी की ओर चला।

रास्ते में दो शराबी झूमते और आपस में झगड़ते मिले।

एक कहता था दाल की मंडवी है कभी यहाँ दाल का बाजार रहा होगा। नोनकी मंडी आगरे में दाल की मंडी काशी में। कहो कैसी खिचड़ी पकी?

दूसरा कहता था नहीं बे नहीं! इसका असली नाम 'डाल की मंडी है।"

पहि०—याने?

दूसरा०—डाल राजा की मंडवी।

पहिला०—खिलखिला कर-डाल राजा कौन?

दूसरा०—कोई शहर का राजा 'डाल चंद"

पहिला०—तो क्या राजा डालचंद ही ने इसे अप्सरा पुरी बनाया?

पहिला०—अरे यार! इस मोहल्ले में रंडियों का एक कुंआँ है जिसमें से रंडियों का फौव्वारा छूटता है। उसी फव्वारे की निकली ये सारी रंडियाँ हैं!!!

दूसरा०—यह कहो न! यहाँ रडियों का फव्वारा है? तब तो रोज ही सैकड़ों रंडियाँ निकलती होंगी!

इनकी बातें सुनते और मन ही मन हँसते हुए चारो जन नए चौक से घुस कर पुराने चौक में आए। वहाँ से फिर नए चौक की ओर चले। कुछ ही कदम चल कर बचऊ ठहर गया और बटुक से बोला—कहो बाबू! कहाँ चलें?

बटुक—बाबू साहेब जहाँ कहें।

धीर०—मैं परदेसी हूँ मैं यहाँ का क्या पता ठिकाना जानता हूँ। आप यहाँ के रहने वाले हैं। घरोघर का हाल जानते हैं।

बटुक—जी नहीं, नाम मैं बताता हूँ चुन आप लीजिये सुनिये, पहिले हिन्दू रंडियों का नाम सुनिये—रामा, मामा सोहनी मोहनी, चर्परी किन्नरी, हासिनी, विलासिनी गुलाब, केवड़ा यामिनी, कामिनी रज्जेसरा, बगेसरा पुन्नी, चुन्नी वगैरः २ और मुसलमान रंडियें लतीफन, हबीबन, करीमन, रहीमन शोगरा जोहरा वगैरः २। अब कहिये इनमें कौन पसंद है?

धीर०—बस, आपही इसके अच्छे जानकार हैं। यह फैसला आप ही पर छोड़ दिया गया।

बटुक ने कहा—अच्छा आइये मेरे साथ कोठे पर। सब के सब एक कोठे पर चढ़ गए। कुछ दिल्लगी मजाक के बाद गाना सुना।

इसके बाद कुछ बचऊ का टिकस दे दिला कर उसे बिदा किया। आज का सारा खर्च बटुकसिंह ने उठाया। रात ११ बजे बटुकसिंह धीरसिंह और सुमेरसिंह तीनों जन डेरे पर आए बटुकसिंह ने किवाड़ की साँकल खटखटाई। 'दरवाजा खोलो२" दो आवाज़ें दीं। एक औरत बड़बड़ाती हुई उठी और नीचे आकर दरवाजा खोली। तीनों जन बैठक में आए। कुछ जलपान कर करा कर तीनों अपने अपने बिस्तर पर लेटे।

बटुकसिंह ने कहा—भाई ! साहेब ! अब आप अपनी इच्छा प्रकट कीजिये। आप मुझसे किस कामना से मिलने आए हैं।

धीरसिंह ने कहा—भाई साहेब। "स्वारथवश परलोक नसावै" स्वार्थ में लोक परलोक दोनों का ध्यान छोड़ देना पड़ता है। अथवा स्वयम् छूट जाता है। ऐसाही एक स्वार्थ मैं भी लेकर आया हूँ। यदि आपके ध्यान में आ जावे तो दोनों का स्वार्थ सिद्ध हो।

बटुक०—वह क्या ?

धीर०—वह यह कि लाखों का मामला है सैकड़ों हजारों का नहीं।

बटुक—सो कैसे ?

धीर—उसकी तरकीब बताता हूँ। आप मेरे साथ तड़के मिर्जापूर चलिये वहां चलकर तय कर लीजिये। और सब बातें समझ लीजिये।

बटुक०—और आपही से समझ लें तो कैसा ?

धीर०—हमारा आपका पहिला साबिका है। ऐसी हालत में यदि आप का मुझ में विश्वास न हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। नीति में भी कहा है—"अनजान पुरुष से भेंट होते ही उसका विश्वास नहीं करना चाहिये।"

बटुक०—जी नहीं, आप का मुझे विश्वास है आप कहें।

धीर०—(एक बीड़ा पान देकर) अच्छा लीजिये पान तो खा लीजिये।

बटुकसिंह ने कहा—आप खाइए। मैं पान और मँगाता हूँ (स्त्री को पुकार कर) "अरे पान देजा।"

धीर ने कहा—क्या होगा। पान तो डिब्बे में भरा है। लीजिये, कह कर हाथ में दिया। बटुकसिंह ने पान खा लिया।

भगवान जाने उस पान के मसाले में क्या जा थादू कि

खातेही वह शराबियों की तरह जीभ ऐंठ २ कर बोलने लगा और धीर से कहने लगा—आप अपनी मंशा प्रकट करें मैं आपका काम करूँगा। टके के लिये जिसकी कहो उसकी जान ले लूं। टके के लिये झूठ बोलूं, चोरी करूँ, सब कुछ करने को मैं तैयार हूँ। हुकुम हो तो जोरू तक को टके पर न्योछावर कर दूँ।

सुमेर और धीर दोनों हँस पड़े और कहने लगे भाई जोरू जाता छोड़ने की बात नहीं केवल वचन से ही काम चल जायगा।

बटुक०—वचन! वचन में तो कुछ दम ही नहीं है। "वचने किं दरिद्रता?"

धीर०—बस २ यही चाहते हैं। हम भी आप के समान ही वचन वीर हैं। हमारी आपकी पटरी अब बैठ जायगी। अच्छा अब यह बताओ कि उस दिन वाली वह स्त्री कहां है?

बटुक—(चौंक कर) किस दिन वाली कौन स्त्री?

धीर०—हँसकर) वही वही!

बटुक—(घबराकर) वही कौन?

धीर०—वही स्त्री जिसे नगवा पर......?

बटुक—बात काट कर–नगवा पर की स्त्री?–कुछ सोच कर-मुझे तो याद नहीं पड़ती है।

धीर०—जिस स्त्री को नगवा पर रात में आपने पकड़ा था भूल गये?

बटुक किसी मसाले के नशे में था उसकी बुद्धि इस समय वश में न थी तौ भी वह यह सुनते ही चकराया और मन में कहने लगा–अरे यार कहीं ये भेदिए तो नहीं हैं। इस प्रकार का सन्देह करके भी वह इस सन्देह को तुरन्त भूल गया और

लड़खड़ाती हुई जबान में कहने लगा-हाँ, वह मिर्जापुरिन स्त्री ? उसे तो मैंने एक पेचीदह तिलिस्म में डाल दिया है।

धीर०—सो क्यों ?

बटुक०—वह बड़ी बदमाश और खूनी औरत है। आप उसे कैसे जानते हैं ?

धीर०—ठण्ढी सांस लेकर—अरे उस दुष्टा ने तो हमारा सर्वनाश ही कर डाला।

बटुक—(आश्चर्य से वह कैसे ?

धीर०—क्या कहें ?

बटुक—कुछ तो कहो ?

धीर०—मारा तो उस रांड़ ने परन्तु क़त्ल में हमारा सगा भाई फँस गया और उसे फाँसी होने वाली है।

बटुक-(घबराकर) फाँसी और आपके भाई को ?

धीर०—अब क्या कहें। दोही चार दिन में चौकाघाट पर फाँसी होने वाली है।

अरे भाई ! उस क़िस्से को तो मैं खूब जानता हूँ। उसी औरत ने उन पाँचों मिर्जापूरियों को क़त्ल किया और उन पाँचों का मैं हीं यहाँ सरपरस्त बनाया गया। उसका क़िस्सा यों हैं कि कंतित राज का युवराज कुँअर कर्मसिंह किसी पड़ोसी राजकन्या को अपनी स्त्री बनाना चाहता था परन्तु उस कन्या के दूसरे...चुनार के युवराज हैं।

बटुक०—हाँ हाँ यह मैं जानता हूँ आप कहे चलिये।

धीर०—वाह आप इस फन के उस्ताद भला आप न जानेंगे !

बटुक—हाँ आगे कहिये-कंतित और चुनार के युवराजों का एक राजकन्या पर आसक्त होना तो सुन चुके।

धीर०—उस राज कन्या के पास एक उसकी सखी थी।

कंतित के कुँअर साहेब उस स्त्री को उड़ा कर चार चतुरों के साथ काशी को भेज दिये। उन चारों ने उस स्त्री को राजघाट के एक पण्डा के घर पर टिकाया। उस स्त्री ने उन धूर्तों को बेखबर पाकर चारों को क़त्ल कर डाला।

उस पण्डा के यहाँ-जिसके घर में ऊपर कहे चारों जन टिके हुए थे-हमारा सहोदर भ्राता नौकर था। क़त्ल के मामले में वह भी पकड़ा गया। उसे उसी अपराध में फाँसी का भी हुक्म हो चुका है दोही एक दिन की कसर है। उसकी जान बचने की अब एक ही सूरत है। वह यह कि यदि वह स्त्री अदालत में उपस्थित होकर यह कह दे कि यह मनुष्य बेकसूर है तो उसकी जान बच जावे। उस स्त्री को आपने जिस दिन नगवा पर पिछली रात में पकड़ा था हम वहाँ से कुछ ही दूर पर निपट रहे थे। मैंने बिजली की चमक में आपको उसे पकड़ते देखा। इसीसे आपकी सेवा में हाज़िर हुआ हूँ, कि उस औरत को आप यहाँ की कचहरी-कच = बाल = हरी = हरने वाली में हाज़िर कर दें तो उसके जान की खैरात एक लाख रुपया नक़द एक महाजन पहिले देने को तैयार है। मैं आपको उनसे (महाजन) से—मिला दूँ लिखा पढ़ी पक्की हो जावे।

बटुक०—हँसकर-अरे भाई साहेब! अब ज्यादा बनो नहीं। साफ २ कहो आप कौन हैं और क्या चाहते हैं?

धीर०—चाहते हैं अपने भाई को जिलाना और आपको एक लाख (अँगूठा उछाल कर) सिक्का दिलाना।

बटुक०—(हाथ सामने कर) तो फिर लाइए-दिलवाइए न?

धीर०—चलिये सबेरा होने दीजिये। देखिये दिलवाता हूँ कि नहीं।

बटुक०—तो मैं भी वादा करता हूँ कि मैं आपके भाई को

छुड़ा दूँगा। मनमें कहने लगा-एक लाख रुपया कुछ कहाता है। एक लाख मिल जाय तो फिर गैबी पर रंगरती की आवाज़ ऊँची हो। प्रकट ठठाकर हँसा और बोला--भाई साहेब! एक लाख रुपया दिला दो तो मैं इस बुढ़ापे में चार विवाह और कर डालूँ। अफसोस है तो इतनाही कि वह स्त्री बड़े चक्कर में पड़ी है। उस चक्कर से उसे अलग करना अब तनक टेढ़ी खीर है। रखने को तो रख आए परन्तु अब उस तक पहुँचने के लिये कोई तरकीब सूझती ही नहीं है।

धीर०—सो कैसे?

बटुक कहने लगा-उस औरत को हम एक गहरे तिलिस्म में डाल आये। वहाँ से निकलते वक्त उस तिलिस्म की किताब जिसमें उस तिलिस्म की कुंजी लिखी थी-वहीं पर भूल आए। अगर वह किताब होती तो आप रुपया देते चाहे न देते—उसके सहारे हम अभी उसे निकाल लाते।

धीर०—तिलिस्म में डाल दिये इसके क्या मानी?

बटुक०—तिलिस्म एक गोरखधंधा है, जिसमें कल कांटों के सहारे ऐसा कौतुक भरा होता है कि देखने वाला दङ्ग रह जाता है। क्या आपने कभी तिलिस्म देखा नहीं?

धीर०—तिलिस्म? मैं क्या जानूँ तिलिस्म फिलिस्म। हाँ, एक मित्र की ज़बानी सुना है कि तिलिस्म एक जादू का घर होता है उसमें उलझन बड़ी होती है। उसकी उलझनों का सुलझाना सब का काम नहीं।

बटुक०—बस २ कहते हैं। तिलिस्म ऐसा ही होता है। ऐसे ही एक पेचीदह तिलिस्म में हम उसे छोड़ आए हैं।

धीर०—जब से उस तहखाने में छोड़ आए फिर कभी उसे देखने भी गये थे या नहीं?

बटुक०—हँस-कर-तिलिस्म का आना जाना ही तो

जान मार डालता है। आना और जाना ही उसमें बड़ा बेढ़ब है। फिर चक्करदार तिलिस्म तो बिना किताब के न खुल ही सकें और न बन्द ही हों। जिस तिलिस्म का हम जिक्र कर रहे हैं वह इस खण्ड में अनूठा है। उसमें ऐसे पेंच पर पेंच और चक्कर पर चक्कर हैं कि चतुर से चतुर भी चक्कर खाने लगते हैं। चलो कल तड़के चल कर तुम्हें दिखायेंगे। हाँ, वह लाख वाली बात तो पहिले तय हो जावे।

धीर०—अच्छा, अब तो विश्राम किया जाय तड़के देखा जायगा।

ग्यारहवां परिच्छेद

पो फटने के पहिले ही धीरसिंह ने सुमेरसिंह को जगाया और उन्हे कुछ सिखा पढ़ा कर ध्यानसिंह के पास भेजा।

सुमेरसिंह फौरन गये और थोड़ी ही देर में लौट भी आए। बटुक ने पूछा—बड़े तड़के आप कहाँ गये थे?

सुमेर ने उत्तर दिया—निपटने निपटाने गए थे। बटुक उठा और नित्य कर्म से निपट कर धीरसिंह से बोला—लो अब चलो।

धीरसिंह बटुक और सुमेर को साथ में ले दशाश्वमेध घाट पर आए। देखा तो घाट के मन्दिर पर स्त्रियों का बड़ा

जमघट है। धीरसिंह के पूछने पर बटुकसिंह ने कहा कि आज शीतलाष्टमी का मेला है। यह मंदिर शीतला का है।

धीरसिंह ने कहा—इस मंदिर में जो मूर्तियाँ हैं वह तो हिन्दू मूर्तियों से भिन्न हैं। बौद्ध या जैन मूर्तियों का सा इनका आकार है।

बटुक ने कहा—काशी के अनेकों मंदिरों में बौद्ध और जैन काल को मूर्तियाँ विपरीत नामों से पूजी जाती हैं। बौद्धोंके पतन के समय उनकी मूर्तियों का हिन्दू पडों ने स्थापित कर उनका नाम डीह, वीर, देवी, आदि रख दिया। शीतला के मंदिर में ऐसी अनेक मूर्तियाँ इसका उदाहरण है।

बंगाली टोले के एक बृहत् मकान में पैठ कर धीरसिंह ने आवाज़ दी "कोई है?"

कोठे पर से एक मनुष्य उतर कर बोला—आइए ऊपर चलिये!

धीरसिंह सुमेरसिंह और बटुकसिंह तीनों कोठे पर गए। बटुकसिंह ने देखा कि एक चौकार कमरे में दरी कालीन पड़ी है। मोटे २ गाव तकिये लगे हैं। जिसके सहारे एक सुन्दर स्वरूपवान् नवयुवक बारीक मलमल का सफेद कुर्ता पहिने बैठा है। पास में उसके दो जन बैठे कुछ आपस में बात चीत कर रहे हैं।

धीरसिंह को देख कर उस नवयुवक ने कहा—आइए, बैठिये, कहिये, क्या हुक्म है?

धीर०—सरकार से जो अर्ज कर चुका हूँ उसी काम के लिये आया हूँ।

नवयु०—हाँ हाँ हम तैयार हैं! तुम्हें वे मिले जिनका तुम जिक्र किया था?

धीर०—(उँगली से दिखा कर) हाँ वे आपही हैं।

नव०—आप राजी हैं ?

धीर०—जी हाँ, आप राजी हैं।

नव०—(बटुक से) कहिए साहब! आप राजी हैं ?

बटुक—जी हाँ, राजी तो हूँ पर......

नव०—हाँ, वह पर क्या ?

बटुक०—पर यही कि उसके उपस्थित करने में कुछ समय लगेगा।

नवयु०—तो क्या चिंता है। समय लगेगा तो लगे। आखीर में काम हो तो जायगा न ?

बटुक०—हाँ, काम क्यों न होगा।

नवयुवक ने कहा—तो आप अब हाकिम के घर पर चलें उसे इसकी सूचना दे आवें कि हम इतने दिन में सुबूत पेश करा देंगे।

बटुक धीरसिंह का मुँह देखने लगा।

धीरसिंह ने कहा—घबराइए नहीं, जो कहा है वह आप को मिलेगा!

नवयु०—क्या, क्या मुझ से कहो न ?

धीर०—कुछ नहीं, एक लाख रुपये जो देने कहे हैं उसी की बाबत कुछ ख्याल होगा।

बटुक०—हाँ, पहिले उसका प्रबन्ध हो लेवे तब—हम हाकिम के पास चलेंगे।

नवयु०—क्या ? एक लाख रुपये का मामला है ?

बटुक०—जी हाँ!

नवयु०—बस, "अरे रमदेवा २ दावात कलम तो ले आ।"

रामदेवा के दावात देने पर नवयुवक ने एक हुँडी लिखी जिसकी नकल यह है:—

मनके साहु गंगादास वल्द जमनादास कौम बक्काल

साकिन मौजा तालाबपूर परगना कूपगढ़ तहसील झील जिला सागर का हूँ। हम मुकिर ने मुबलिग एक लाख रुपया मुसम्मी बटुकसिंह वल्द लटुकसिंह से लिया और हेंड नोट लिख दिया कि जब बटुकसिंह मागेंगे अदा कर दूँगा।

मिती कार्तिक बदी १ दः गङ्गादास बा० खुद

हेंड नोट लिखकर नवयुवक ने कागज बटुकसिंह के हाथ में दिया और कहा-आज कल परसों-जब जी चाहे-हमारी गङ्गा जमुनादास की कोठी में पधार कर रुपये ले लेवें।

बटुकसिंह ने कहा साहेब! मैं यह काला कागज लिये कहाँ टकराता फिरूँगा? आप मुझे नकद रुपये दीजिये अपना पुरजा वापिस लीजिए। यह कह कर वह पुरजा (हेंड नोट) नवयुवक केसामने धर दिया।

नवयुवक ने कहा—यह क्या साहेब! आप तो शहर के और काशी जैसे शहर के एक पुराने बाशिन्दे हैं. आपको हुण्डी पुरजे में विश्वास न होना ताज्जुब (आश्चर्य) की बात है! या तो आप को मेरी साख में शुभा है या आप हुण्डी पुरजे में श्रद्धा नहीं रखते। आपको मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आप साहूकारी में कभी अविश्वासी न हों। महाजनों का करोड़ों का लेन देन एक सड़े से चिट पर हुआ करता है। यह तो लाख ही का मामला है भगवान की कृपा से आपके यहाँ इतनी रकम प्रतिदिन बट्टे खाते में लिखी जाती है!

धीरसिंह ने कहा—ठाकुर साहेब! रुक्का उठा लीजिये। रुपए आपके घर पर पहुँच जायेंगे। आपको अभी आप नहीं जानते। आप जिला सागर के एक ही बिलक्षण जीव हैं! इनके संसार प्रसिद्ध पिता जगत सेठ मच्छराज को बच्चा २ जानता है। एक लाख दो लाख इनके लिये क्या वस्तु है। देखो न, एक लाख एक जीव के निमित्त दान ही कर रहे हैं।

बटुक—हाँ, सो तो हम जानते हैं। रोज ही हुण्डी पुरजे का काम देखते भालते हैं।

धीर०—फिर क्यों शंकित हुए?

बटुक०—शंका की बात यह है कि आप लोग अपरिचित और परदेशी हैं। आप कहाँ के क्या हैं यह जब तक न मालूम हो तब तक कैसे व्यवहार किया जाय?

धीर०-परिचित हो वा अपरिचित, सम्भ्रान्त, धनी, मानी, सेठ, साहूकार छिपते नहीं। आप तो एक अनुभवी पुरुष हैं भला आप से छिप सकेंगे। लीजिये, पुरजा उठाइए घबराइए नहीं। साहूकार का कारबार है इसमें दग़ा फरेब का जाल रही नहीं सकता। बटुकसिंह कुछ सोचने लगा और मन ही मन कहने लगा कि-नहीं, धोखे का काम नहीं है। हैं तो ये महाजन जरूर और महाजन भी ऐसे वैसे नहीं भारी हैं। तब क्या हमारे एक लाख के वसूल करने योग्य न होंगे? हम नालिश करके वसूल कर लेंगे। और सिवा इसके चारा ही क्या है? ये विचारा क्या रुपये बाँधे फिर रहा है जो नकद खनाखन गिन दे। ले लो पुरजा, दो चार दिन में चल कर रुपये ले आवेंगे। मगर बड़ी भारी पख तो उस स्त्री की है। उसे उस पेंच से कैसे निकालें? मामला बड़ा बेढब है। यह विचार कर उसने हैंडनोट उठाकर जेब में धर लिया और नवयुवक से कहा—अच्छा चलिये हाकिम के पास चलें।

नवयुवक जिसे अब हम गंगादास लिखेंगे बोला-अच्छा, तनक ठहरें। जल पान कर लें। कपड़े पहिन लें तो चलें। अरे रमइया! एक बढ़िया औव्वल दर्जे की गाड़ी तो ले आ।

स्नान ध्यान पूजा तर्पण से निपट कर गंगादास ने सब को जलपान कराया स्वयं भी जलपान किया। तब पान खा कपड़े बदल कर किराये की गाड़ी पर चारों जन सिगरा पर

आए और। एक बँगले में पहुँच कर दरवान से (जो शायद कहार था) कहा कि हाकिम साहेब से इत्तिला कर दो हम लोग मिलने के लिये आए हैं। दरबान अन्दर गया और लौट आकर बोला—"आप लोग तखत पर बैठें हाकिम साहेब आते हैं।" सब लोग एक चौकी पर बैठ गए।

थोड़ी ही देर में "हाकिम साहेब आए २" कह कर सब उठ कर खड़े हो गए। एक विशालकाय गौरांग पुरुष सोन-हला चश्मा लगाए आया और सबों को कुरसी पर बैठा कर पूछने लगा—कहिये, आप लोग किस अभिप्राय (मतलब) के लिये पधारे हैं ?

धीरसिंह ने कहा—सरकार! हम अनजानसिंह के भाई हैं जिसे आपने फाँसी का हुक्म दिया है।

हाकिम०—कौन अनजानसिंह ? किस अपराध में फाँसी की आज्ञा हुई है ?

धीर०—वही अनजानसिंह जो जोखू पंडा के यहाँ यात्री बटोरने पर नौकर था। राजघाट वाले खून के बारे में जिसे आप ही के इजलास में फाँसी का हुक्म हुआ है।

हाकिम०—क्या उसे फाँसी हो गई ?

धीर०—जी नहीं, परन्तु अब आज ही कल में होने वाली है।

हाकिम०—तब आप क्या चाहते हैं ?

धीर०—यही कि फाँसी की आज्ञा रोकी जाय और उसी स्त्री की-जो भागी हुई है-जबानी इजहार से फिर उसका विचार हो।

हाकिम०—कौन सी स्त्री की ?

धीर०—वही जिस ने चारों को काटा और मार पीट कर चल भी दी।

हाकिम०—(आश्चर्य से) क्या वह अभो जीवित है?

धीर०—जी हाँ जीवित क्यों नहीं है।

हाकिम—कहाँ है?

धीर०—इसी नगर में है।

हाकिम०—फिर उसे पेश क्यों नहीं करते? क्या वह कहेगी कि "हाँ हम ने मारा है?"

धीर०-भगवान् की कृपा होगी तो वह ज़रूर कहेगी और कहेगी ही नहीं वरन् उस खून का सारा भंडा फोड़ भी कर देगी।

हाकिम०—हाँ? अच्छा तो उसे अदालत में हाजिर करें। जब तक उसका बयान न लिया जावेगा तब तक आप के भाई की फाँसी मुलतवी रहेगी। जाइए उस स्त्री की तलाश कर साथ ही लिवा लाइए। मैं इजहार लेकर उस स्त्री को भी छोड़ दूँगा। बहुत अच्छा कह कर धीरसिंह उठ खड़े हुए। उनके उठते ही बटुक और सुमेर भी उठ खड़े हुए। तीनों जन चौक में आए। रिखई तमोली की दूकान पर खड़े होकर पान खाए। वहाँ से चल कर तीनों जन डेरे पर पहुँचे। कपड़े उतार कर जलपान कर करा कर सूचित हो बिचारने लगे कि अब उस स्त्री की सुध ली जाय। और ली जाय तो कैसे, किस ढब से किस के द्वारा ली जाय।

बटुकसिंह ने कहा—अब तो आप लोग बिश्राम करें। कल सुबह उठेंगे और आजमाएंगे कि हम इस काम के योग्य हैं अथवा नहीं।



बारहवां परिच्छेद

आयें पाठक! अब हम और आप तनक कंतित की सैर कर आयें। काशी का काम तो कल होता रहेगा। इन्हें अब यहीं सोने दो कल की कल देखी जायगी। आज चल कर्म-सिंह की मंडली को देख आवें।

विंध्याचलसे आगे शिवपूर बाजार के निकट ऊँची पहाड़ी पर जो बँगला दीखता है यही हमारे कुं० कर्मसिंह की रंगीन बैठक है। आज इस बैठक में बड़ी चहल पहल है। मोम बत्तियाँ जल रही हैं। लोग भीतर बाहर निकल पैठ रहे हैं। जान पड़ता है आज बैठक में कोई मजलिस या महफिल है। आवो पाठक! हम भी वहीं चलें।

वाह, यह बँगला तो खासा आकाश यान है। पहाड़ी को ऊँची चोटी पर वह भी करार पर ऐसा सुन्दर बँगला कहीं देखने को न मिलेगा। बँगले में आज पाँच छः पुरुष दो तीन स्त्रियाँ दीख रही हैं। गद्दी पर बैठा हुआ सटक मुख से लगाए हुए जो जन बैठा है वही कुँ० कर्मसिंह हैं। दहिने सीताराम, शंकर और बाएं संतसिंह, भोजदत्त, रहीम करीम, मनमथ, पशुपति आदि हैं। सामने जौनपूर की जानकी और मानकी दोनों बहनें बैठी हैं। चंचला की बात छिड़ी है।

सीतारामने कहा-कुँअर साहेब! यदि चंचला को चाहते हैं तो काशी अभी इसी वक्त चलें वरना देर होने पर उसे हाथ



से बाहर ही जानें। चुनार वाली टुकड़ी वहाँ पहुँच गई और बटुकसिंह बेईमान उधर मिल गया। अब झट पट उस तिलिस्म को घेर लेना चाहिये और उसी तिलिस्म में चुनारी टुकड़ी का खातमा कर डालना चाहिए। और यदि शशि को ही चाहते हो तो काशी की चिंता छोड़िए। बैठे तमाशा देखिए क्या खेल होता है।

कुं०—कर्म०—(शंकरसे) कहो जो शंकर! तुम्हारी क्या राय है?

शंकर ने कहा—सीताराम की राय का पहिले फैसला कर लें। अर्थात् यह निर्णय कर लें कि इन दोनों में से किसे चाहते हैं, शशि को या चंचला को? इसके बाद विचार होगा कि अब क्या करना चाहिए।

कर्म०—चंचला एक बड़ी चालाक और धूर्त स्त्री है। वह चुनार वालों की तरफदार भी है। उसके रहते शशि हमारी ओर को ताके यह असम्भव है। यही सब सोच कर वह उसके (शशिके) पाससे हटाई गई। फिर वह सुन्दरी भी है, कम अवस्था की है, कुमारी है। शशिके पाने के बाद उसकी भी आवश्यकता है। यह भी कारण उसके हटाने के हैं। फिर भी शशि के मिलते मैं उससे कुछ सम्बन्ध रखना नहीं चाहता मुझे तो शशि मिले, वह (चंचला) मिले या न मिले।

सीताराम०—वहुत ठीक है।

शंकर०—परन्तु यह ध्यान रहे कि अब की बार छल से उसे फाँसना चाहिये और तहखानों में नहीं वरन महल में हीं रखना चाहिये। तहखानों का पर्दा फाश हो गया। ध्यानसिंह ने तहखानों का भंडाफोड़ कर डाला। अब तो कल छल से उसे वश में करने का उद्योग किया जाय।

भोजदत्त०—मेरी राय में तो यह समय बहुत अच्छा है। सब काशी में करवट ले रहे हैं। ऐसे सुयोग में यदि हम कुछ कर न पाए तो फिर कुछ भी कर न पावेंगे। अब उचित यही है कि जैसे वे लोग दलबल सहित काशी पहुँचे हैं वैसे ही हम सब भी अजयगढ़ पहुँचे। वे लोग उधर चंचला को ढूँढ़ रहे हैं इधर हम भी शशि को ढूँढ़ें। कहो कैसी कही, हाँ न कहोगे ?

शंकर०—भोजदत्त की बात का मैं भी समर्थन करता हूँ। रण कुशल जन जब देखते हैं कि शत्रु अपने देश को बड़े साहस के साथ घेरे हैं और सहज ही हटने वाला भी नहीं तो वहाँ बैरी को उलझा कर उसके घर पर घेरा डाल देते हैं, जिससे दुश्मन घबरा कर अपना दृढ़ मोर्चा छोड़ने पर बाध्य (मजबूर) होता है और निज गृह सम्पत्ति के बचाने के लिये घर की ओर दौड़ता है। फल यह होता है कि वह न इधर का होता है न उधर का ! बीच ही में उसका नाश हो जाता है।

सीता०—मनुष्य जिस काम को करे उसे पहिले खूब सोच विचार ले। क्योंकि "करें कि न करें" यह सोच विचार नहीं है। सोच विचार से अर्थ है परिणाम (नतीजा) बस नतीजे को समझ कर काम करना सभी को उचित है। जिसने नतीजा न विचार कर किसी काम में हाथ डाला वह गया गुजरा। देश को, काल को, बल को, सम्पति को विचार कर कोई काम किया जाता है। वैर विग्रह में तो ऊपर कहे चारों का विचार रखना जरूरी ही नहीं बहुत ही जरूरी है।

बैठे बिठाए बला मोल लेना मूर्खता है। जो पहिले वार करते हैं उन शूरों की प्रशंसा नहीं। काशी में तो धूर्तों का अखाड़ा खुदा है और कुश्ती लड़ें चल कर पहाड़ों में अब इस [illegible] काशी का मोर्चा है। हम तो इसी मोर्चे पर अपना

मोर्चा जमाना चाहते हैं। अजयगढ़ वा चुनार के घेरे से घिर जाने का डर है दोहरे शत्रु बुरे हैं। हमें एक नहीं दो शत्रुओं का सामना पड़ेगा।

सबके गुरू गोवर्द्धन नाथ॥
दो मुख खावें एकी हाथ॥

फिर तीसरे धूर्तों की छिपी छुरी भी पीठा को बेकाम कर डालेगी।

कुँ० कर्म०—क्या काशी में छिपी छुरी कहीं छिप जायगी अथवा वहाँ पर वह मोथड़ी हो जायगी?

सीता०—जी नहीं, छिप तो न जायगी पर वह मोथड़ी अवश्य हो जायगी।

कुँ० कर्म०—(शंकर से) कहो आपकी क्या राय है?

शंकर०—अच्छा है, इन्हीं लोगों की मन वाली होने दें। काशी में कुछ धरा नहीं है। सिवा परेशानी के और कोई भी वहाँ लाभ नहीं।

कुँ० कर्म०—वहाँ (काशी में) करेंहोगें क्या? चंचला को रोकेंगे। इससे क्या होगा? फिर चंचला भी राज घाट वाले तिलिस्म में है। परमात्मा जाने कि अब वह उसमें है वा और किसी चक्कर में है इसे कौन बता सकता है। बटुक सिंह काशीवाल आया तक नहीं। नहीं मालूम उस बेईमान ने सचमुच तिलिस्म की किताब खो दी या बहाना कर रहा है। औरत खूबसूरत कमसिन देख कर कहीं उसी ने उसे न उड़ा लिया हो?

सीता०—मैं काशी गया था बटुक और बेचू से मिल आया हूँ। बटुक की जबानी मालूम हुआ कि वह किताब जिसके सहारे तिलिस्म खोला और ढूँढ़ा जाता था तिलिस्म

के भीतर ही छूट गई। बटुक को अब उस तिलिस्म के खोलने और मूँदने का तरीका मालुम नहीं।

कर्म०—फिर ?

सीता०—फिर क्या, अब उसे बाबा सिद्धनाथ से खुलवावेंगे।

कर्म०—चुनार वाले वहाँ क्या करेंगे, सिवा धूल फाँकने के और भी वे कुछ कर सकेंगे ?

सीताराम (झल्लाकर) अच्छा जिसे आप ठीक समझें वही करें। हमें क्या है, हमें तो यहाँ भी काम करना वहाँ भी। चलिये जहाँ कहें वहाँ चलें।

कर्म०-बस, अजयगढ़ की ओर चलो ! और उसे घेर ही लो। क्योंकि इस या ऐसे मामलों में केवल धूर्तता ही से काम नहीं चलता। मारकाट ही सफलता दिखाती है।

शंकर—नहीं साहेब ! सीताराम की ही राय उचित है। बेशक इधर खतरा बहुत है।

कर्म०-और उधर ?

शंकर०-उधर काम मार्के के होंगे।

कर्म०-वह कैसे ?

शंकर०-वह समय पर मालूम होगा। इस समय अपना विचार आप त्याग दीजिए। वह विचार असामयिक अविवेकपूर्ण और भयावह है। सीताराम कुछ समझ बूझ कर अपनी राय दे रहे हैं। उसे आपको मान लेनी चाहिये।

"हठ वश सब संकट सहे गालव नहुख नरेश"

कर्म०—उदास मत हो—अच्छा भाई ! जो कहो वहीसही चलो कल उधर ही चला जाय। परन्तु कहीं वही कहावत न हो किः०—



"न खुदाही मिला न विसाले सनम न इधर के हुए न उधरके हुए"

जानकी ने कहा—अच्छा तो आप लोग काशी की हवा खा आवें हम भी तनक इधर उधर घूम फिर कर देखें तो यह विंध्याचल पर्बत कैसा है ?

मानकी ने कहा—और मैं यहाँ क्या करूँगी, चलो मैं भी चलती हूँ।

जानकी और मानकी दोनों बहने अपने डेरे पर आईं और सलाह कीं कि इन लोगों को काशी जाने दो चलो हम लोग अजयगढ़ को चलें और देखें तो वह शशि-जिसके लिये इतना तूमाड़ बाँधा जा रहा है-है कैसी ?

जानकी और मानकी अपना २ साजो सामान लेकर बड़े तड़के चल दीं। सूरज निकलते २ दोनों विरोही गाँव में पहुँची। पहाड़ी उपत्यका में एक घने पेड़ के नीचे बैठ कर दोनों ने अपना २ रूप बदला। मानकी ने अपना रूप पुरुष का बनाया। गड़ारीदार चुस्त पाजामा कुरता जिस पर छुकलिया अँगरखा शिर पर जोगिया रंग का साफा कमर में फेंटा गले में सोनहला कंठा भुजाओं पर जड़ाऊ बाजूबन्द ऊँगलियों में नगीनेदार अँगूठियाँ पहिन कर मानकी ने तो १८।२० वर्ष का खासा छैला का रूप धारण किया। कमर में तेगा हाथ में तलवार लेकर वह तैयार हुई।

जानकी भी पैरों को, कड़े छड़े पाजेब और नूपुरों से, कमर को सतलरी करधन से, गले को हैकल हुमेल हार आदि से, हाथों को कड़े कंकन बाजू बन्द आदि से, मस्तक को शिर फूल बेंदी बंदी आदि आभूषणों से सजाकर रेशमी साड़ी पहिनी और बारीक रेशमी चद्दर आदि ओढ़ कर खासी नौटंकी का रूप धारण की।

पाठक यह न सोचें कि इनके पास इतना राजसी वस्त्र आभूषण कहाँ से आया और ये उन वस्त्रों और आभूषणों को लिये किस में थी। यह आप ऊपर पढ़ चुके हैं कि दोनों जौनपूर की वेश्या हैं और धूर्ता (ऐय्यारा) भी प्रसिद्ध हैं। दोनों फनों से दोनों बहिनें मालामाल हैं। न जाने कितनी रियासतों को मिट्टी में मिला दिया कितने धनी मानी सेठ साहूकारों की कोठियाँ खाली कर डालीं। इसमें सन्देह नहीं कि दोनों अभी कमसिन और खूबसूरत हैं लेकिन इनकी कमसिनी और खूबसूरती ही नहीं इनकी धूर्तताई भी बड़ी जहरीली है। धूर्तता में ये मर्दों के भी कान काट लेती हैं। शंकर जैसा ज़ुल्मी धूर्त कुछ समझ कर ही इन्हें जौनपूर से लाया है। आज इन दोनों ने जो रूप बनाया है उसे देख कर कोई यह कहने का नहीं कि ये दोनों कहीं के राजकुमार और राजकुमारी नहीं हैं।

आइए! आज हम आप को इनका करतब दिखाएँ।

दोनों बहिनें जिन्हें अब हम कुमारी और कुमार लिखेंगे—पहाड़ी रास्ते से अजयगढ़ पहुँचीं और उसी लिबास से राजा महताबसिंह के दरबार में गईं।

दरबार में इस समय बड़ी चहल पहल है। अमीर उमराव मंत्री मुसाहिबों से दरबार ठसा हुआ है। चरचा शशि के विवाह की जोरों पर है। कुँअर शमसेर बहादुरसिंह की ओर अधिक राय सुन पड़ती है। तब कुछ लोग कुँअर कर्मसिंह की ओर भी राय देने से हिचकते नहीं हैं इससे जान पड़ता है कि कुँअर कर्म के हिमायती भी अजयगढ़ के दरबार में हैं। इसी समय हमारे ऊपर कहे कुमारी और कुमार (जानकी और मानकी) भी ड्योढी पर पहुँच गए। कुमार ने ड्योढ़ीवान से

कहा-भाई ! हम परदेशी हैं, और विपत्ति के मारे इस रियासत में आ पड़े हैं। चाहते हैं आपके राजा साहेब से मिलना और अपनी रामकहानी उन्हें सुना कर इस कठोर दुःख से अपना पिंड छुड़ाना। यदि आप कृपा कर मुझे दरबार में जाने की इजाजत माँग ला दें तो बड़ा ही उपकार करें।

अब के ड्योढ़ीवानों की तरह उस समय के रिसायतों के ड्योढ़ीवान नहीं थे जो कटहे कुत्ते की तरह मुँह बनावें। उस समय के रियासती ड्योढ़ीवान रियासती अदब कायदे के साथ पेश आते थे। अजयगढ़ के दरबार का दरबान तरुण होने पर भी नम्र था। उसने इन कुमारी और कुमार का चमकता हुआ चेहरा देख कर ही समझ लिया कि जरूर ये कोई राजकुल के हैं। उसने बहुत ही नम्र होकर कहा—

"आप कहाँ से आये हैं। आप का नाम क्या है ?"

कुमार०—मैंने तो आप से कहा न कि इस समय तो मेरा कोई ठौर ठिकाना है नहीं। खानेबदोशों की तरह मारे २ फिरते हैं। वैसे हम कंचनपूर के रहने वाले हैं। मेरा नाम चम्पतसिंह है।

ड्योढ़ीवान ने कहा-अच्छा तो आप तनिक इसी जगह ठहरें मैं महाराज को आपकी सूचना देता हूँ। यह कह कर वह महाराज के सामने आया और दरबारी मुजरा करके अर्ज कियाः—

"हुजूर— दो परदेशी—जो अपने को कंचनपूर के निवासी बताते हैं और नाम चम्पतसिंह फरमाते हैं—सरकार का दर्शन किया चाहते हैं, हुजूर का जो हुक्म हो उसे तावेदार बजा लावे।

राजा ने उत्तर दिया—उन्हें आने दिया जाय।

दरवान ड्योढ़ी पर आया और दोनों को साथ में ले दरबार में दाखिल हुआ। दोनों की सूरत देखते ही सारे दरबार में सन्नाटे का समा बँध गया। जिसको देखो उसकी नजर इन्हीं दोनों पर है। दोनों की एक उम्र एक रंग देख यह

र्णय करना कठिन पड़ गया कि "पुरुष से स्त्री अधिक सुन्दरी ै अथवा स्त्री से पुरुष !"

एक तो दोनों वेश्यायें वैसे ही अधिक सुन्दर थीं दूसरे शरीर र एक प्रकार का भस्म मली थीं। इन्हीं कारणों से शरीर का रंग पे हुए सोने को तरह चमकता था। और मुख पर का भस्म चाँ-नी की नकल थी। इन्हीं कारणों से और भी लोग अवाक हो गए।

कुछ मुहूर्त तक राजा महताबसिंह भी देखते ही रह गए। क छन के बाद उन्होंने पूछा—आप का आना कहाँ से हुआ है, आपका नाम क्या है और किस मतलब से यहाँ आये हैं ?

कुमार ने शिर झुका कर जोहार किया और कहा—सर-कार के दरबार में हम दो अभागे क़िस्मत के मारे आ पड़े हैं। मेरा स्थान यहाँ से दो सौ मील दूर सूबा बिहार में है। जिसे कंचन पूर कहते हैं। कंचनपूर एक रियासत है, वहां के राजा का नाम रूपसिंह है। यह अभागा और मेरे साथ को यह दुर्भागी दोनों उसी रूपसिंह की सन्तान हैं। दुश्मनों ने राज लूट लिया। पिता माता भाई बंधुओं को मार डाला। हमारी भी जान लेने ही वाले थे कि हम दोनों भाई बहिन किसी प्रकार अपनी जान बचा कर भाग निकले। जब बस्तियों में गुजर न देखा और अन्देशा अपने पकड़े जाने का देखा तो विंध्याचल की राहसे भागने का इरादा किया। आज दो महीने से हम दोनों इसी लंबे पहाड़ों में भटकते फिर रहे हैं, कहीं राह और ठिकाना नज़र नहीं आया। कल एक गड़ेरिये से-जो पहाड़ पर भेंड़ और बकरियों का गल्ला चरा रहा था-भेंट हुई। उस बेचारे ने हम भूखों को कुछ खिलाया और कहा आप लोग-यहाँ से कुछ दुर आगे एक रियासत अजयगढ़ है-वहां चले जाना। वहां का राजा बड़ा धर्मात्मा और दयालु है। वह आप लोगों की दशा पर ज़रूर कुछ तर्स करेगा। उस गड़ेरिये से आपका सुयश

सुन कर इधर चल पड़े। आज अभी आपकी नगरी में आये हैं। मेरा नाम चम्पतसिंह और मेरी सहोदरा भगिनी का नाम गुलाबकली है। हम अब आपकी शरण हैं? मेरी इस विपत्ति में आप कुछ सहायक हों। यह कह कर कुमार-जिसे अब हम चम्पतसिंह लिखेंगे-बड़ी कटहल के कोए जैसी आँखों से मोती की भाँति आँसू गिराता हुआ मस्तक नीचे कर लिया। कुमारी ने भी-जिसे अब हम गुलाबकली लिखेंगे-भाई का अनुकरण किया।

राजा महताबसिंह प्रथम तो स्वभाव से ही दयालु थे, दूसरे इनकी दशा देख वे भी आँखों में जल भर लाये और बड़े करुण स्वर में बोले"—अच्छा अब आप मुझसे क्या चाहते हैं?"

चम्पत०—आँखों का आँसू पोंछकर—कुछ नहीं, केवल आप की कृपा चाहते हैं।

राजा०—फिर भी तो कुछ कहें?

चम्पत—अनाथ परवरिश [भिक्षा] ही चाहते हैं और हमसा अनाथ तो सभी प्रकार की सहायता के भिखारी हैं।

राजा ने कहा—बड़ी खुशी की बात है। आप शौक से मेरे यहां रहिये। कुं० रूपसिंह के साथ आप और शशि के साथ आपकी बहिन आनन्द से रहें। राजा ने कुं० रूपसिंह से कहा बेटा! ये राजपुत्र हैं अतएव भाई हैं। इन्हें अपने भाई के समान ही साथ में रखना। देखना इन्हें किसी प्रकार का दुःख न हो।

रा० महताबसिंह गुलाबकली को लिये हुए महल में आए और रानी से पूछा-शशि कहां है?

रानीने कहा—क्यों क्या काम है? यह आपके साथ कौन है? राजा बोले यह बिचारी कंचनपुर की राजकुमारी है। बिपत्ति की मारी मेरे यहां शरण ली है।

रानी ने बात काट कर पूछा—राजकुमारी और विपत्ति!

यह कैसी बात ? ऐसी क्या बिपत्ति पड़ी जो इस बालिका को अपना घर छोड़ना पड़ा ?

राजा ने कहा—रानी ! राज और राजा ये दोनों बिपत्ति की खान हैं। इनके सुख का भी अन्त नहीं और दुख का भी। इन का कब क्या होगा? इसे ज्योतिषी भी बताने में लाचार हैं। फिर वैरियों से बचना केवल शक्ति पर निर्भर है। शक्ति रही तो बच गए और शक्ति न रही सब लुटा बैठे। ये भी बिचारे किसी वैरी के सताए हुए यहां आ पड़े हैं। इसके भाई को तो मैंने कुं०—रूप के सुपुर्द किया और इस बिचारी को शशि के हवाले करता हूँ।

इतने ही में अपने कमरे में से शशि भी निकल आई। राजा ने शशि से कहा-बेटा शशि ! लो यह मैं तुम्हें एक अभागी सहेली देता हूँ। इसे अपनी बहिन को तरह रखना। देखना यह किसी प्रकार दुखी न हो। यह कह कर वे दरबार में चले गए। शशि भी गुलाबकली को अपने साथ लेकर अपने कमरे में आई और दोनों एक ही पलँग पर बैठ कर बातें करने लगीं।

तेरहवाँ परिच्छेद।

शशि ने गुलाबकली से पूछा—सखी ! तुम अपना क़िस्सा हमें तो सुनाओ। तुम कौन किस देश की किसकी क्या हो और कैसे घर द्वार छोड़कर जंगलों और पहाड़ों की खाक छानती यहां तक पहुँची हो।

गुलाबकली ने आँखों में आँसू भर कर कहा—बहिन ! मैं अपनी क्या कहानी सुनाऊँ। मुझे तो अपनी राम कहानी सुनाते हुए भी शर्म आती है। यहां से २० मील पर सूबा बिहार

में एक रियासत कंचनपूर है। अब है नहीं पर थी। उस रियासत का राजा रूपचन्द मेरा पिता और सोना रानी मेरी माता थी। मेरी माता के एक पुत्र और सात कन्या हैं। छ कन्याओं का विवाह हो गया है और वे अपने २ घर पर हैं। सातवीं मैं हूँ जो अभी कुँवारी हूँ। मेरा भाई—जो इस समय मेरे साथ आया है,वह भी अभी कुआरा है। मेरा विवाह इसी वर्ष पक्का हो गया था। परन्तु बैरियों के मारे इस दुर्दशा को पहुँच गई। बात यह हुई कि मेरे पिता रूपचन्द ने मेरा विवाह करनपूर के राजकुमार करनसिंह से करना निश्चय किया। यह सुनकर कुबेरपुर का राजा कुबेरसिंह पड़ोसी होने के कारण जल भुन गया। वह चाहता था कि मेरे राजकुमार से-जिनका नाम धनपतसिंह था-विवाह हो। ज्योंही उसने सुना कि करनपुर वाले टीका चढ़ाने आए हैं त्योंही वह सेना सहित रियासत पर आ टूटा। बड़ी लड़ाई हुई। दोनों तरफ़ के अनगिनित वीर खेत रहे। अंतमें विजय लक्ष्मी कुबेर ही के हाथ पड़ी।

विजय के गर्व में चूर हो कुबेरसिंह सेना सहित नगरमें पैठा और सारी रियासत को लूट लिया! मुझे मालूम होता है कि हमारे माता पिता दोनों ही या तो मारे गए या बंदी हुए। हम भाई बहिन वहां से अपनी जान लेकर भागे। भागते समय हम लोगों को इतनी भी सुध न रही कि अपना जेवर और कुछ धन तो साथ में ले लेवें। उस हड़बड़ी में किसे आभूषण की सुध थी और किसे धन की। प्राण बचाना कठिन जान पड़ने लगा। रियासत से भागते ही भाई ने कहा कि हम लोग जंगलों का रासता पकड़ें तो अच्छा हो वरना आम रास्ते से चलने पर बैरियों के हाथ पड़ जाने का अंदेशा है। फिर आम रास्ते वैसे भी खतरनाक होते हैं। चोर,ठग,और डाकुओं के अतिरिक्त दुष्टों का बड़ा भारी भय रहता है। स्त्री को साथ में देखते ही दुष्टों की आँखें करकने लगती



हैं। और वे फिर अनेकों प्रकार के कष्ट पहुँचाने से बाज नहीं आते। बेहतर यही है कि निष्कंटक रास्ता पकड़ें। अस्तु, उन्होंने विंध्याचल पर्वत की राह उत्तम समझी और उसी राह से चल पड़े। अब क्या कहें बहिन! कभी धरती पर पैर नहीं धरा थी सो ३।४ कोश नित्य पैदल वह भी सीधी सादी मटोली सड़कों पर नहीं ऊबड़ खाबड़ ऊँची नीची पथरीली पहाड़ी सड़कों पर चलना पड़ा। छठी के दूध याद आ गए। जान पड़ा कि अब जान नहीं बचने की। यदि मैं पहिले जानती कि पहाड़ी राहें इतनी कठिन और दुखदाई होंगी तो कभी भी भाई को सलाह न देती कि इधर से चलो। चाहे सीधी सड़कों से जान भले ही चली जाती लेकिन जान बचाने की गरज से ऐसे दुर्पथकी ओर पैर न धरती।

शशि०—अयँ सखी ! जिस समय बैरी नगर में प्रवेश किया उस समय तुम और तुम्हारी माता तथा और भी तुम्हारे बंधु बाँधवों की स्त्रियों ने चित्तौरगढ़ का अनुकरण क्यों न किया? ऐसे आफत में जिस में—जन, धन, मान, मर्यादादि सबको पुर्णाहुति ध्रुव समझी जाती हैं—वही साधन अच्छा होता जो चित्तौड़ की क्षत्रानियों ने साधा था। अर्थात् बैरी के पहुँचने से पहिले ही वे वीर पत्नियाँ वहां पहुँच गईं जहां किसी बैरी का साहस नहीं जो उनकी ओर कुदृष्टि से देखे! यदि ऐसा करना संभव न था तो कृपाण धारण कर सनमुख समर में निकल पड़ना था। ऐसे साहस का दोही तो फल होता अर्थात् "या तो तू नहीं या वे नहीं" लाज, सत और मर्यादा बचाने का दोही मंत्र मुझे याद है। अर्थात् या तो दुष्टों के पहुँचने से पूर्व आत्मघात कर डालना अथवा कृपाण कर में लेकर सम्मुख मर मिटना। दुष्टों से स्त्रियों की रक्षा इन्हीं दो मूल मंत्रों पर निर्भर है। और इन्हीं दोनों मंत्रों के प्रयोग से

अनेकों भारतीय ललनाओं ने अपने सत-धर्म की रक्षा भी की हैं। इसका इतिहास साक्षी है। अच्छा तुम्हारा भाई तुमसे बड़ा है कि छोटा?

गुलाब०—मेरा भाई मुझसे अवस्था में छोटा है और वह अभी निरा बालक है।

शशि ने कहा-अच्छा अब तुम उठो और स्नान ध्यान कर कपड़े बदलो। मैं भी निपट निपटा कर आती हूँ। यह कह उसने सुखमा को बुलाया और कहा-सखी, इन्हें ले जाकर स्नान कराओ और नई साड़ी-जिसे मैंने तीज पर मँगाई है और वह मेरी लाल संदूक में धरी है-इन्हें पहिरने को ला दो। उसी संदूक में एक रेशमी सलूका भी होगा वह भी इन्हें पहिना कर भोजन पान कराओ। मैं भी भोजन आदि से निपट कर जल्द आती हूँ। आज उस पहर गुलाबबाड़ी की सैर को चलेंगे।

सुखमा गुलाबकली को लेकर स्नान मन्दिर में आई और उसे नहला धुला कपड़े बदलवा कर षट्रस भोजन करायी। फिर दोनों महल की बारहदरी में बैठ शशि की राह देखने लगीं।

उधर दरबार समाप्त कर राजा महताबसिंह भी महल में आए। भोजन पान कर लेने पर रानी ने कहा—स्वामिन्—आज कुं० रूप के साथ एक मेहमान आया है जिसे मैंने खिड़की की राह देखा है?

राजा ने कहा-रानी! वह एक राजकुमार है। विचारा आफत का मारा मेरी शरण आया है। इसके उपरान्त उन्होंने आदि से अंत तक उसका सब क़िस्सा कह सुनाया और कहा वह इसी की बहिन है जिसे मैंने शशि के पास भेजा है।

रानी०—महाराज! लड़का तो चाँद का टुकड़ा है।

राजा०—और लड़की?

रानी०—लड़की भी चाँदनी रात है।

राज०—फिर ? अपना मतलब कहो ?

रानी०—क्या कहूँ । जी में तो आता है कि बस.........

राजा०—[बात काट कर] खबरदार और कुछ आगे न कहना । व्यर्थ अधर्म का टीका न लगाना ।

रानी०—क्यों इसमें अधर्म क्या है ? यदि शशि इसी को बरे तो इसमें पाप क्या है ?

राजा०—महा पाप है । पहिले तो शास्त्र के विरुद्ध [खिलाफ] है । शास्त्रों की आज्ञा है कि जिसे एक वार मन से भी वरले वह उसका मानस-पति हो जाता है । रुक्मिणी आदि ने मनसेही श्रीकृष्णको वरण किया था। दूसरे व्यवहारके विरुद्ध भी है । चुनार वालों के हम अत्यन्त ऋणी हैं । उनके अहसानों से हम दबे हैं । उनके खिलाफ होना मानों धर्म के खिलाफ होना है और यह लोक, वेद, व्यवहार, सभी के विरुद्ध है ।

तीसरे ऐसी कौन सी बुराई कुं० शमशेरबहादुरसिंह में है जिसके कारण वह त्यागे जायँ । वेसुंदर नहीं हैं, वीर नहीं हैं, जाति में अच्छे नहीं हैं, उनमें किस बात की कमी हैं ? हाँ एक बात कर सकते हैं । वह यह कि लड़की की शादी अपने छोटे कुँअर......से कर ले सकते हैं बशर्तें कि इनका पता ठिकाना ठीक २ मालूम हो जाय ।

पति की बात सुन कर रानी चुप हो गई । राजा भी अपने कमरे में चले गए ।

कुछ देर के बाद शशि भी स्नान, ध्यान, पूजा, तर्पणआदि से निपट कर आई । सुखमा भी गुलाबकली को लिये हुए वहीं पहुँच गई । शशि ने कहा-सुखमा, चलो गुलाबबाड़ी की सैर कर आयें । तीनों गुलाब बाड़ी की ओर चलीं ।

बाड़ी में पैठ कर तीनों एक संगमरमर की चौकी पर बैठकर

मन बहलाने लगीं। शशि ने गुलाबकली से पूछा—कहो सखी ! तुम कौन हो और कैसे यहाँ आई ?

गुलाब कली ने अपनी कहानी वैसे ही कह सुनाई जैसे चम्पतसिंह ने राजा को सुनाया था। और कहा-बहिन ! अब मेरा एक मात्र सहायक इस दुनियां में केवल भाई ही रह गया है। वह भी अब आप ही के अधीन है।

शशि ने उसके दुखड़े को सुन कर उसे धीरज दिया और कहा—सखी ! "संसार में सिवा दुःख के सुख नहीं" यह हमने भी जान लिया। लोग सुख किसे कहते हैं सो मैं आज तक नहीं जान पाई। खूब अच्छे २ भोजनों की प्राप्ति को सुख कहें तो भोजन भी रोग उत्पन्नकर शारीरिक क्लेशको बढ़ाते हैं। "सन्तान सुख के मूल हैं" यदि ऐसा मानें तो वह भी नहीं। जन्मते दुःख, पलते दुःख मरते दुःख सब दुःखही दुःख। सन्तान से भी सुखी कोई विरले ही पाइयेगा। कहीं सन्तान दुराचारी निकली तो फिर तो "सनतान" शैतान की भाँति सताने लगती हैं।

धन को जो सुख का साधन समझते हैं वे भी मूर्ख हैं। धन घोर दुःख की खानि है। नाना प्रकार के छल छिद्रों से उपार्जित और नाना उपायों से रक्षित धन अंत में दुःख ही उत्पन्न करता है। कोई हिस्से बखरे बाँटता है। कोई व्यवसाय में लगा कर पहिले तो उसे बढ़ाता है परन्तु घाटा आते ही वह दुखदाई हो जाता है। राजा डाँड़ लेता है। प्रजा लूट लेती है। सारांश यह कि वह धन भी सिवा क्षणिक सुख के और कुछ नहीं है।

काया का सुख वह भी क्षणिक है। इस काया में न जाने कितने प्रकार के रोग भरे पड़े हैं और वे कब किस समय उभड़ उठें इसे कोई भी नहीं बता सकता। तब सुख काहे का है? तुम जानती हो कि हमी पर दुःख पड़ा है। कभी नहीं, ऐसा कोई है ही

नहीं जो इस के पंजे से बचा हो। मुझी को देखें। माता, पिता, भाई, राज, रियासत, सब कुछ रहते भी सुखी न रह सकीं और जंगलों पहाड़ों खोहों दरों और भयानक तहखानों तक की खाक छान कर बैठी हूँ। अभी आगे क्या बदा है सो राम ही जानें।

गुलाबकली ने पूछा—सो कैसे बहिन ?

शशि ने उत्तर दिया—इसे मत पूछो। विवाह को लोग "शादी" खुशी मानते हैं पर हमतो उसे गमी से भी बुरा समझती हैं। विशेष कर हम क्षत्रियों का विवाह नहीं विवाद—बैर—का घर है। कन्यायें बारात की फुलवारी हैं। जिसके जीमें आया लूटा और जो जिसके हाथ पड़ा वह उसीका हुआ। इसी लूट खँसोटमें तुम भी पड़ीं और मैं भी।

गुलाब०—अच्छा, इतना लूट खँसोट और दुःख के बाद अब आप किस नतीजे पर पहुँचीं ?

शशि०—किसी भी नतीजे पर नहीं। अगर पहुँचीं तो इसी नतीजे पर पहुँची कि दुःखों से मरने तक छुटकारा नहीं। दुःखों से छुटकारा तभी मिलता है जब ये दोनों आँखें बंद हो जाती हैं।

गुलाब०—विवाह के विषय में अब आप अपना इरादा क्या रखती हैं ?

शशि०—यह मेरी तुम्हारी इच्छा पर नहीं है। यह माता पिता के अधीन है।

गुलाब०—जिसके माता पिता न हों ?

शशि०—भाई बंधु कुटुंब आत्मीय कोई तो होगा।

गुलाबकली ने कहा—मेरा भाई तो कहता है कि जो चाहो करो। मैं ने भी अहद [प्रतिज्ञा] कर लिया है कि विवाह न करूंगी।

शशि०—इससे अच्छी क्या बात है। यदि निभ जाय तो अच्छा ही है। इससे कुछ गार्हस्थ्य दुःखों से छुटकारा मिल सकता है।

गुलाब०—केवल गार्हस्थ दुःखों से ?

शशि०—तब क्या सारे दुःखों से ? सारे दुःखों से तो तभी छुटकारा होगा जब यह प्राण छूटेगा। फिर भी एक बड़े भारी दुःखों की उलझन से छूट जा सकती हैं।

गुलाब०—भाड़ में पड़े बीबी दुःख ! मैं तो आरंभ ही में इससे ऊब गई।

शशि ने सुखमा से कहा—सुखमा ! देखो तो इस क्यारी के गुलाब सूख रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है कि ये पानी नहीं पाये हैं। आज कल चैत में इनकी बहार है, फिर भी इन पर बहार नहीं। माली को ताकीद कर दो कि वह इनकी अच्छी निगरानी करे।

"अच्छा अब शाम हो गई चलो महल में चलें" कह कर तीनों उठीं और अपने २ डेरे की तरफ चली गईं।

महल में पहुँच कर भोजन पानसे निपट कर शशि अपने सोने वाले कमरे में आई। पलँग पर लेटते ही उसे सौदामिनी की सुधि आई। लेटे ही लेटे उसने मनमें कहा—आज एक हफ्ता हो गया सौदामिनी चुनार से न लौटी। नहीं मालूम वह कहाँ है। वह तो यह कह कर गई थी कि मैं शाम को लौट आऊंगी, लेकिन न आई। कहीं फिर तो नहीं किसी धूर्त के पंजे में फंस गई !

मालूम होता है कि चंचला अब जीवित नहीं है यदि जीवित होती तो वह अब तक जरूर मिली होती। भगवान जाने क्या बात है। अच्छा है, इस जीवन से तो मरना ही अच्छा है। अगर वह मर गई हो या मार डाली गई हो तो कुछ बात नहीं। लेकिन कहीं जीवित हो तो उससे बढ़ कर दुखी शायद ही कोई होगी। न जाने कौन २ सी यातनाएं वह भोगी और भोगती होगी।

———

चौदहवां परिच्छेद।

आधीरात के समय एक पुरुष डोरी के सहारे महल की उस दीवार पर चढ़ता नजर आया जो शशि के महलोंके चारों ओर बीस फीट ऊंची खड़ी थी। यह पुरुष बड़ी तेजी से डोर के सहारे मुड़ेरे पर पहुँच गया और उस डोरी को जो बाहर की ओर लटकती थी बाहर से खींच कर भीतर की ओर लटकाया और उसे पकड़ कर भीतरी सहन में उतर पड़ा। सहन में चारो तरफ फूलके बाग थे। बाग के बीच में दो मंजिला महल था। महल के दहिने बाएं एक मंजिले कई कमरे थे। महल के सामने एक निर्मलजल से भरा हुआ छोटा सा ताल था। दीवार से नीचे उतर कर वह पुरुष वहां आया जहां महल था और इधर उधर देख कर दाईं ओर के कमरों की ओर लपका। उस ओर के मकान में कई कमरे देखे और उनमें से एक कमरे में दीपक टिमटिमाता हुआ देख उसी के द्वार पर आया और उंगली से उसके दरवाजे को धीरे२ दो तीन बार खटखटाया

खटका होते ही उस कमरे का दरवाजा खुल गया। वह पुरुषकमरे के भीतरगया। एक स्त्री जिसने दरवाजा खोला था फिर उस दरवाजे को बन्द कर अन्दर चली गई।

कमरा भीतर १२ × १४ के नापका था। उसके भीतरी ओर दालान और दालान के बाहर २४ × ३६ के नाप का एक सहन था। आगन्तुक पुरुष इसी कमरे में बैठा। स्त्री जो उस कमरे में थी जिसने दरवाजा खोला था—पास बैठ गई। सिवा इन दोनों के और कोई उस कमरे में न था। बत्तीकी लौ कुछ धीमी कर दी गई। दोनों में बात चीत ऐसी धीमी होने लगी कि सिवा

उन दोनों के तीसरा न सुन सके और न समझ सके। आवाज इतनी धीमी थी कि पास की दीवार भी सुन नहीं सकती थी।

हम तो इनकी धीमी और मतलब से भरी हुई बातें अपने पाठकों को सुना ही देंगे। आइए पाठक महाशय, हम भी उसी कमरे में चलें और कान लगा कर इन दोनों की धीमी तथा गुप्त बातें सुनें।

स्त्री०—तुमने तो गजब ढा दिया। भला इतनी रात में ऐसे नाजुक मोकाम में दीवार फाँद कर भीतर आना बहुत ही भारी जोखिम का काम है। कहीं जरा भी खटका पहरुओं या कमरे में की स्त्रियों अथवा महल की मालकिन के कान में पड़ जावे तो तो दोनों की मरम्मत होने लगे।

पु०-अहँ, इसकी क्या चिंता है, यह तो होता ही रहता है।

स्त्री०-चिंता केवल मरम्मत को ही नहीं बरन भंडाफोड़ की भी है। सारे किये कराए पर पानी फिर जाने का भी तो भय है।

पु०—अजी इतना डर कर काम नहीं करते। हां, राज खुलने न पावे इसका खयाल हर वक्त रखना जरूरी है?

स्त्री०-तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मैं यहां इस कमरे में हूँ?

पु०-इसे पूछ कर क्या करोगी? मतलब की बातें करो।

स्त्री०—नहीं नहीं, कहो तो कैसे मालूम हुआ?

पु०—हम लोग जब धरती के भीतर का पता लगा लेते हैं तो बाहर की तो बात ही कुछ नहीं। किसी प्रकार पता लग ही जाता है। अब यह तो कहो है सब मामला ठीक न?

स्त्री०—नहीं,अभी ठीक तो नहीं है पर ठीक हो जायगा।

पु०—तब हम क्या करें?

स्त्री०—अभी तो दो एक दिन ठहरना पड़ेगा।

पु०—तब आजकी इतनी कठोर मेहनत बेकार गई!

स्त्री०—नहीं बेकार क्यों गई। तुम्हें हमारा हमें तुम्हारा

पता लग गया। हाँ, तो क्या तुम अकेले यहाँ आए हो ?

पु०—नहीं वह……भी है वह बाहर सराय में ठहरा है। अच्छा यह तो बताओ दूसरी कहां है।

स्त्री० वह भी यहीं है।

पु०—तो कब की बात पक्की रही ?

स्त्री०—कल मैं सब बंदिश बांध रक्खूंगी। परसों तुम इसी समय आना। लेकिन जैसे आज आये वैसे न आना।

पु०—फिर कैसे आऊँगा ?

स्त्री०—देखो मैं बतलाती हूँ न। इस इहाते के दक्खिन की दीवार में एक खिड़की है, उसी खिड़की की राह इसी कमरे में चले आना।

पु०—खिड़की खुली रहेगी ?

स्त्री०—हां, वह तुम्हें खुली मिलेगी ?

पु०—मैं अकेले अन्दर आऊं या उसे भी……

स्त्री०—बात काट कर—उसे बाहर खिड़की पर खड़ा रखना ; क्योंकि यदि बात खुल जाये और हम लोग पकड़ जावें तो वह तो बचा रहे।

पु०—क्या इसका भी अन्देशा है कि हम गिरफ्तार भी हो जावेंगे ?

स्त्री०—(हँसकर) चोरी करने चले हो तो पकड़े भी जाओगे। मार भी खाओगे। बाँधे भी जाओगे। सभी कुछ सहने पड़ेंगे।

पु०—अगर मैं यहीं छिप कर दो दिन काट लूं तो ?

स्त्री०—उन्हें कैसे खबर लगेगी जिन्हें सराय में टिका आए हो ?

पु०—क्या मैं अकेले काफी नहीं हूँ ?

स्त्री०—जी नहीं। लाश भारी है।

पु०—अच्छा तो अब मैं जाऊं ?

स्त्री०—चलो खिड़की खोल कर तुम्हें बाहर निकाल आयें।

पु०—डोरी जो दीवार पर लटकती रह जायगी।

स्त्री०—अरे हां, सच कहते हो उसका हटाना लाजमी है। वरना वह एक निशानी रह जायगी।

पुरुष और स्त्री दोनों कमरे के बाहर आए और उसी ओर को चले जिधर डोरी लटकती छोड़ आए थे। दीवार के पास आकर पुरुष ने स्त्री को सलाम किया और डोरी के सहारे जैसे आया था वैसे ही वह चला गया। जाते समय अपनी डोरी अपने साथ लेता गया।

स्त्री भी चुपके से जाकर अपने कमरे में दाखिल हुई और बिस्तर पर सो रही।

सुबह के पहर गुलाबकली अपने बिस्तर से उठकर हाथ मुंह धोयी और कुछ जल पान आदि करके शशि के पास गयी शशि ने पूछा–कहो सखी! अच्छी तो हो न?

गुलाबकली ने हँस कर उत्तर दिया—हाँ बहिन अच्छी ही हूँ। आपसे मिल कर भी अच्छी न रहूँगी।

शशिने फिर पूछा—तुम्हारा जी तो नहीं ऊबता है। क्योंकि तुम अकेली कमरे में रहती हो।

गुलाबकली ने उत्तर दिया–हाँ दिन में तो नहीं पर रात में इकली रहने पर जरूर कुछ भय सा लगता है।

शशि०–तो तुम मेरे कमरे में पड़ रहा करो।

गुलाब०–हां, यही तो मैं आपसे कहना चाहती थी।

शशि०—तुमने मुझ से कहा क्यों नहीं?

गुलाब०–आज मैं कहने ही को थी।

शशि०–अच्छा, आज तुम अपना बिस्तर मेरे कमरे में बिछाना।

गुलाब–बहुत अच्छा, ऐसाही करूंगी।

उधर चंपतराय ने राजा से कहा कि सरकार ! मुझे बहिन से मिलने की इजाज़त मिल जाय तो मैं जनानी ड्योढ़ी पर उसे बुलाकर मिल लिया करूँ ।

राजा ने कहा–हाँ हाँ ज़रूर मिल लिया करो । तुम्हारा डेरा तो जनानी ड्योढ़ी से सटा हुआ है । किसी लौंड़ी से कह कर उसे वहां बुला लिया करो । इसमें इजाज़त की क्या ज़रूरत है । इजाजत की ज़रूरत गैर से मिलने में है न कि अपने से । वह भी खास अपनी सहोदरा बहिन से । वह भी बिचारी समझती होगी कि मैं कहां कैद हो गई हूँ जो भाई तक से मिलने नहीं पाती ! कहीं उस के दिल में यह गुमान होता हो कि मेरा भाई मुझ से कहां जुदा होकर चला गया । क्योंकि दुखियों और वियोगियों को दुःख और आत्मीय जनों के वियोग में बहुत कुछ सूझने लगता है । फिर उन्हों ने एक दास से कहा– "जाओ किसी लौंड़ी से कह कर कुमारी को बुला दो–चंपतराय" से कहा–"आप इसके साथ जाइए ड्योढ़ी पर मिल आइए ।"

चंपत उस दास के साथ जिसका नाम सरूप था जनाने महल की ड्योढ़ी पर आए । सरूप ने गंगादाई से राजा का समाचार भीतर कहला भेजा । थोड़ी ही देर में गुलाबकली ड्योढ़ी पर आई । भाई को गले से लगा कर एक दालान में जो ड्योढ़ी के भीतर थी दोनों बैठ गए और कुछ धीमे स्वर में बातें करने लगे । बात चीत ऐसी धीमी हो रही है कि जिसे कहने ही सुनने वालों को कभी २ सुनाई नहीं पड़ती है । फिर हम अपने पाठकों को क्या बतलावें । यह ज़रूर है कि हम तो अन्तर्यामी कहाते हैं परन्तु सर्वान्तर्यामी तो नहीं हैं वह तो एक वही परमात्मा है । अस्तुः–इस समय इन दोनों की बात चीत सिवा परमात्मा के आत्मा नहीं जान सकता । फिर भी आगे चलकर चतुर पाठक आपही समझ जायंगे ।

दोनों भाई बहिनों में करीब आध घंटे के बात चीत होती रही। बीच २ में इशारे भी होते जाते थे। उपरान्त दोनों अपने २ डेरे पर चले गए। चलते २ गुलाबकली ने इतना स्पष्ट (साफ) शब्दों में कहा–देखना भाई ! मेरी बातों को भूल न जाना। जैसा मैंने कहा है वैसाही करना।

चम्पत ने जवाब में कहा—हां हां आप खातिर जमा (विश्वास) रक्खें। बाल भर भी फर्क न पड़ने पायगा।

गुलाब०–क्योंकि यही समय है।

चम्पत०–इसे मैंने खूब जान लिया है।

गुलाब०–अच्छा भाई जाओ।

चंपत०–हां हां जाओ, चिंता न करो। बहुत समझना और समझाई हुई बातों को बार २ दुहराते रहना भी अच्छा नहीं। इससे रही सही समझ भी उलझ जाती है। जो बात है उसे मैं समझ गया और जो करना है उसे भी मैंने जान लिया। अब आप जाइए। समय पर देख लेना कि आपकी बात मुझे याद है कि नहीं।

गुलाब०...भाई साहेब ! आप तो मेरी नसीहत पर बिगड़ गये परन्तु यह न सोचे कि मैं क्यों ऐसा बार २–तिबार २–कर कह रही हूँ ?

प्रथमहि सोच बिचारि कै कीजै कोई काज।
बिन बिचार जे करत कछु असफल होत अकाज॥

इससे समझने बूझने में बुरा न मानना चाहिये॥

चम्पत०–नहीं बहिन ! मैंने बुरा नहीं माना। मेरे कहने का मतलब यह था कि एक बार जिस बात को खूब समझ लिया उसी बात को बार २ समझने बूझने में समझी हुई–बुद्धि में समाई हुई–बात भी भूल जाती है। अच्छा जाओ भगवान मालिक है—यह कह कर दोनों अपने २ डेरे पर चले गए।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद।

दूसरे दिन बड़े तड़के गुलाबकली उठी और हाथ मुँह धोकर स्नान की। मंगल भजनों से भगवान का सुमिरन (स्मर्ण) करने लगीः—पाठक अचंभित होंगे कि यह कैसा मंगल भजन, वह भी गणिका के मुख से मंगल गान! जी हां, आज कल मंगल गान गणिका ही गा जानती है। तभी तो वे मंगलामुखी कहलाती हैं।

फिर गणिका राम नाम गाकर ही तरी है। यदि यह गणिका मंगल भजन प्रातःकाल करती है तो क्या अचरज करती है। सुनते हैं काशी की वेश्यायें नित प्रति गंगा स्नान कर शिवलिंग का पूजन करती हैं और मंदिरों में ध्यान लगाती हैं, कथायें सुनती हैं व्रत उपवास करती हैं। यह भी [गुलाबकली उर्फ जानकीभी] तो "जौनपुर" की रहने वाली है। जौनपूर भी "जौनपुर" है। काशी का पड़ोसी, मिर्जापुर का चचेरा भाई, तथा आजमगढ़ का संबंधी है। पड़ोसी के आचार विचार का कुछ भी तो उस पर प्रभाव पड़ेही गा। अच्छा तनिक इसके मंगल भजन को आप भी सुन लेवें। क्या ही कोमल स्वर में भैरवी के ठाट में मधुर ध्वनि में गा रही है :—

आसा नितप्रति भोर जगावत॥
उठहु उठहु आलस तजि देखहु सुख के सूरज आवत॥
अब तम बिपति बिलानि संपदा सुरभि बयारि बहावत।
इच्छा चक चकई संमेलन तट पर होत लखावत॥
करत किलोल कामना पंछी बिबिध राग स्वर गावत।
सुखही सुख श्रीलाल जगत में आसा आस बँधावत॥१॥

भजन भोजन आदि से निपट कर गुलाबकली शशि के

पास पहुँची। सुखमा इससे पहिलेही वहाँ पहुँच गई थी। गुलाब को देखते ही वह बोली—आइए ! आपही की राह देखी जाती थी।

गुलाब ने अचरजके साथ पूछा-क्यों २ खैरियत तो है न ? शशि ने हँसकर उत्तर दिया—हाँ खैरियत है। मैं अभी सलाह कर रही थी कि आज तुम्हें साथ में लेकर उपवन की सैर करूं। अब तुम आ गईं चलो चलें तनक घूम आवें। घर में बैठे बैठे जी ऊब गया। यह कह कर वह कुछ अनमनी सी हो गई। उसका मुख कुछ फीका पड़ गया। आकृति बदल सी गई। यह देख सुखमा बोली—उठो चलो, बैठी क्या हो। अब तो आपकी सखी आ गईं न ? चलो चलें। इस पर भी जब शशि ने कुछ उत्तर न दिया तब वह फिर बोली "क्यों ? ऐसी अनमनीसी क्यों हो गईं ? अब भी कुछ कोर कसर है क्या ? अरे अब तो दो ही एक महीना है। "जहाँ लगा माघ, तहाँ जगा भाग।"

शशि ने उसका हाथ झटक कर कहा—चल तुझे हरे ही हरे दीखते हैं। तू क्या जाने की मेरे मन में क्या है और मैं क्यों दुखी हो रही हूँ।

सुखमा ने कहा-वह क्या ? क्या कुछ और भी··· आगे कुछ कहना चाहती थी कि शशि उसकी बात काट कर बोल उठी—

दुखिया दुख बूझत भले सुखिया जाने काह।
सन्मुख गर काटत रहौ तबौ न निकरै आह ॥

हम तुम तो यहाँ मौजही कर रही हैं। हम क्या जाने कि मेरी [आँखों के कोनों में जल की बूंदें झलका कर] प्यारी चञ्चला [जल भरी आँखें डबडबा कर] हाय ! कैसे दिन काट रही है [स्वगत] हे भगवन्! स्त्री जीवन धिक्कार जीवन, अधाजीवन, व्यर्थ जीवन, किस कामका जीवन ? इसे सिरजने की क्या पड़ी थी?इस जीवन में क्या सुख धरा है? सिवा इसके

के जन्म से लेकर मरण तक दुःख ही झेलें और कौनसा इसमें सुख है ? हाय बेचारी किस कुघड़ी में दुष्टों के हाथ पड़ी ? सुनते थे कि चुनार में बड़े २ धूर्त और चतुर हैं, वे चाहें तो आँखों का काजल निकाल लें परन्तु चञ्चला के बारे में उन लोगों की भी धूर्तताई (ऐयारी) हवा हो गई। शेर गए, सुमेर गए, पहाड़ गये सभी गए, पर पकड़ा किसी से चूहा भी न गया !!! खोज निकालना तो दूर रहा इतना भी पता न पा सके कि वह कहाँ किस खोह, दर्रे, धरती आकाश पाताल में पड़ी मेरे नाम को रो रही है।

शशि की बात सुन गुलाब कली ने कहा- बहिन ! क्या बात है, कुछ मुझे भी तो बताओ ?

शशि०-मैं ऊपर कह चुकी हूँ कि अपना दुख वा सुख किसी से कहना न कहना बराबर है, कारण कि सुनने वाला यदि भुक्त भोगी। (भोगा-हुआ झेला हुवा) है तो एक क्षणके लिये उसके दिल पर एक लहर सी लहरा जरूर उठेगी और वह मन वाणी से समवेदना भी प्रकट करेगा। किन्तु इससे क्या ? क्या इस से उसका कठोर दुख बँट जायगा ? नहीं, प्रत्युत बार बार कहने से वह और भी बढ़ता जायगा। यदि वह सुनने वाला सुखी हुआ तो उससे अपना दुख सुनाना मानों भैंस के आगे बीण बजाना है। वह सुनाते वक्त तो " हूँ हूँ " करता दीखता है लेकिन अपना कान बंद किये रहता है, सुनता ही नहीं। और मनही मन कहता भी जाता है कि-"क्या रँड़ रोना सुनाने लगा। इसका मुँह भी दर्द नहीं करता ?" अब तुम्हीं कहो, दुखिया अपना दुख किससे कहे और कह कर क्या लाभ उठावे ? अरे, कुछ लोग तो ऐसे मिलेंगे कि मुख से तो वे हां ! हां !! हां !!! शिव शिव शिव !!! राम राम !! हे भगवन् ! कहते दीखेंगे और जहाँ वह आँखें पोछता हुआ वहाँ से उठ

कर चला गया तहाँ ठठा कर हँसेंगे और कहेंगे-पड़ा है रेवड़ी के फेर में, तूमड़ी तंग है" इत्यादि। इसीसे कहा है—

तुलसी पर घर जाइकै दुःख न कहिये रोय।
आपन भरम गँवाय कै बात न पूछै कोय॥

गुलाब ने कहा-बीबी। आप ठीक कहती हो। इसमें सन्देह नहीं।

कै दुख जानै दुःखिया, कै दुखिया की माँय।
का दुख वह जानै नहीं, जाकी फटी बिवाँय॥

फिर भी दुख सुख कहने सुनने से मन का कुछ बोझ हलका हो जाता है। कुछ देर के लिये मन पर शांति आजाती है। रोने से न रोने वाले पर अधिक बीतती है। खूब रोने से मन का दुःख दूर हो जाता है और उसे शांति होती है। पर न रोने से मन पर दुःख का बोझ भारी हो जाता है और उसके हृदय में वह दुःख कुम्हार के आँवाँ की तरह दहकता है। फिर मुझसी दुखिया आप को कहाँ मिलेगी जिसका दुःख ही में दिन कट रहा हो।

शशि कुछ कहना ही चाहती थी कि सुखमा बोल उठी—अजी इनकी एक सहेली थी······

गुलाब०—हाँ, सो क्या हुई?

सुखमा—खो गई।

गुलाब०—सो कैसे? क्या किसी मेले तमाशे से खो गई?

सुखमा-जी नहीं। घर से ही गायब हो गई।

गुलाब०-घर से गायब हो गई? कहीं किसी के साथ तो नहीं चली गई?

सुखमा०-छिः वह ऐसी वैसी स्त्री नहीं जो साथ लगे।

गुलाब०—फिर?

सुखमा०—फिर, क्या समय के फेर में पड़ गई।

गुलाब०—(आश्चर्य से) समय का फेर कैसा ? उसकी क्या अवस्था थी ?

सुखमा०—अवस्था अभी क्या है, अभी तो उसकी अक्कल दाढ़ भी नहीं निकली !

गुलाब०—तो क्या वह दुष्टों के चंगुल में पड़ गई ?

सुखमा०—जी हाँ।

गुलाब०—अच्छा ! वह है कहाँ यह जानती हो ?

सुखमा०—इतना ही जानती होती तो क्या था। तब तो कुछ न कुछ उपाय करती ही। यही तो नहीं मालूम कि वह कहाँ है। इसके बाद सुखमा ने कुछ कच्चा चिट्ठा सुनाया और जैसे वह गायब हुई बताया।

गुलाब सुनते ही ठंढी साँसें लेने लगी और बड़ी बड़ी आँखों से मोती के समान बड़ी बड़ी आँसुओं की बूंदें ढरकाती हुई बोली—हा ! उस दुखिया का किस्सा भी मेरे ही सा है। भगवान् दुष्टों का मुँह काला करे। इन दुष्टों ने सतियों की क्या नहीं दुर्दशा की। न जाने वे दुष्टदलन कहाँ सोए पड़े हैं। जान पड़ता है मुचकुंद की जगह वेही चादर ओढ़ कर उसकी एवज दे रहे हैं।

इन लोगों की कहा सुनी शशि को नहीं भाई और वह "उठो, चलो चलें उपवन में" कह कर उठ खड़ी हुई। सुखमा और गुलाब भी उठ पड़ीं। तीनों बाग ही बाग चलकर उपवन में निकल आईं। यह उपवन प्रकृति की अनोखी वाटिका है। इतना रमणीय और सुखदायक है कि लिख कर बताया नहीं जा सकता। तीनों सखी एक दूसरे का हाथ थामें पेड़ पौदों लताओं की शोभा देखती हुई एक झरने के पास पहुँची। तीनों एक एक पत्थर की चिकनी चट्टान पर बैठ कर झरने का आनन्द लेने लगीं।

गुलाब ने कहा—बहिन शशि ! जिस समय मैं भाई के साथ इस पर्वत का राह इधर आ रही थी तो यहां से ५।६ कोश पूरब एक बड़ा जल-प्रपात देखने में आया था। वैसा जल-प्रपात और भी कहीं इस भारत में है कि नहीं सो मैंने देखा सुना नहीं।

शशि०-है क्यों नहीं ! नर्मदा का जल-प्रपात भी मनोहर है

सुखमा०-टाँड़े की दरी को देखा होगा। वहां दो नदी आपस में मिल कर पचास साठ हाथ नीचे गिरती हैं।

गुलाब-हाँ हाँ बहिन ठीक कहा। एक तो पूरब से बह कर आई है जो चौड़ाई में कम है। दूसरी दक्खिन से आई है उसका पाट चौड़ा है। दोनों नदियाँ एक साथ मिल कर एक बड़े गहरे गढ़े में गिरी हैं जिनकी शोभा देखते ही बनती है।

शशि०—क्या जानें, मैंने उसे कभी देखा नहीं।

गुलाब०—एक दिन चलें वहाँ का दृश्य देख आवें।

शशि०—ना बीबी, मैं तो क़िले और राजधानी के बाहर पैर धरते थरथर काँपती हूँ। हाँ, यदि तुम्हारी इच्छा वहाँ जाने की हो तो एक हमारी सखी है उसके साथ जाकर देख आना। बह है वहाँ जाने योग्य।

गुलाब०-वह सखी कौन है, और वह कहाँ है ?

शशि०-आज उसके आने की तिथि थी परन्तु आई नहीं। कहीं फँस गई होगी। आज नहीं आई तो कल्ह वह जरूर आवेगी।

गुलाब०—हाँ आज उसे गये भी पखवाड़ों हो गया। वह कहाँ गई है यह मुझे मालूम नहीं क्योंकि वह कहीं भी जाती है तो अपना पता नहीं बतलाती।

गुलाब०—क्यों ?

शशि०—यह तो मैं नहीं जानती।

शाम होते देख सुखमा बोली—अजी चलो अब घर को चलें। देखो सूरज डूब गया ! अन्धेरी कुछ कुछ अपना रंग बदलने लगी। यह सुनते ही शशि उठ खड़ी हुई। तीनों वहां से चल कर महल में आईं। शशि ने गुलाब से पूछा-आज तो तुम मेरे ही पास सोओगी न ?

गुलाब ने उत्तर दिया—हाँ, आज तो मैं आपही के पास रहूँगी। क्योंकि बीबी ! कभी अकेली रही नहीं। माँ अपनी गोद में लेकर सोती थी। क्या करें भाग्य जो करावे वह करना पड़ेगा। यहाँ भी रात में सियार "हुआँ, हुआँ," मचाते हैं, लोमड़ी "कच कच कच कच" करती है। उल्लू घुर घुराते हैं। कुत्ते "भौंभौं भौंभौं" चिल्लाते हैं। इन आवाजों से दिल दहल उठता है। फिर भी अब कुछ साहस बढ़ता जा रहा है।

इसके उपरान्त तीनों बाग़ से चल कर महल में आईं और अपने २ कमरे में चली गईं।

इसके आगे क्या हुआ यह जानने के लिये इसके आगे का भाग देखें।

॥ इति ॥



छठवाँ भाग

पहिला परिच्छेद ।



माघ का महीना है । जाड़ा कड़ाकेचूर है । तिसमें पच्छिमी बयार तो गजब ढा रही है । दाँत से दाँत लड़ रहे हैं । शरीर की नाड़ी नाड़ी काँप रही है । शरीर पर के कपड़े तो मानों बरफ के पानी में भिगा कर पहिरे गए हैं । हाथों की उँगलियाँ अँकड़ी जा रही हैं । मुख पर तो सुन्न सवार है और ऐसा मालूम होता है कि मुख की नाड़ियों में रक्त का संचार है-ही नहीं । लोग कहते हैं आजकल "चिल्ला जाड़ा" है । अर्थात् वह जाड़ा जिसमें "चिल्ल पुकार" मचने लगे ।

धन के पन्द्रह मकर पचीस ।
चिल्ला जाड़ा दिन चालीस ॥

अभी लाचीसा दूर है अभी तो धन में आठ ही नव दिन गये हैं ।

इधर तो जाड़े का जोम, उधर रात भी अँधेरी । अँधेरी भी वह कि अपना ही हाथ अपने को न दीखे ! चारों ओर चिराग गुल" । निशि-प्राणियों की भयानक आवाजें पत्थर से जमे हुए कलेजों को भी हिला दे रही हैं । ऐसी अखंड रात में छोटे छोटे जड़ वृक्ष भी भयानक रूप धारण करते हैं । दूर से ऐसे जान पड़ते हैं मानों कोई बनैले जीव हैं और अब ये खा ही जायँगे । कभी २ इन अँधेरे वृक्षों में-भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिन, शांकिन, योगिन, भूतिन, भैरव, भवानी, मसानी, मशान, चुरैल, चंडी, आदि वैकल्पिक प्राणी (कयासिया रूहें) रहते हैं । फिर भी

चोर, डाकू, ठग, आदि ऐसे ही रात्रि में—ऐसे ही वृक्षोंमें—छिपे रहते हैं। उन सबों को भय भ्रम आदि कुछ भी नहीं व्यापते। क्यों? इसलिये कि वे मन के दृढ़ होते हैं और ऐसे स्थानों में प्रति दिन रहते २ उनका भय भ्रम आदि सब भाग जाता है। वे निर्भय होते हैं। उन्हें कोई डरा नहीं सकता।

देखो न, दक्खिन की ओर बाग की चहारदिवारी पर क्या काला २ उचकता सा दीखता है? यों नहीं मालूम होगा। आओ वहीं चलें और निकट से देखें कि वह काला काला भालू सा क्या उचकता दीखता है।

यह लो! यह तो कोई जीव है जो डोर के सहारे दीवार पर चढ़ रहा है। रात ऐसी अँधेरी है कि वह साफ नहीं दीखता पर हाँ, उसकी परछाँहीं से मालूम होता है कि वह पशु नहीं मनुष्य है।

वह मनुष्य धीरे धीरे मुँडेरे पर पहुँचा और डोरी को दूसरी ओर—बाग के सहन की ओर—फेंक कर मुँडेरे से नीचे बाग में उतर आया। नीचे उतरते ही वह कुछ घबराया। फिर कुछ सम्हल कर दक्खिन ओर की खिड़की पर आया। देखा तो खिड़की बंद थी। परन्तु उसमें ताला नहीं लगा था। खिड़की को खोल कर वह पुरुष बाहर आया। देखा तो एक और पुरुष काला लबादा पहिने वहाँ खड़ा है। उसने उससे कुछ ठग भाषा में कहा—"ते चे तुराई चों"

अर्थात् क्या तुम तैयार होकर आए हो? उसे दूसरे ने उसी भाषा में उत्तर दिया।

"हलब"

अर्थात् "हाँ"। पहिले ने फिर पूछा—

"चनक चरा"

अर्थात् होशियार रहना। दूसरे ने जवाब दिया।

"सन्ते शिरा मा सेहत"

अर्थात् हम बहुत चौकस हैं।

इसके बाद वह पहिला पुरुष (जो दीवार पर से उतरा था) दर्वाजा भेड़ कर भीतर चला गया।

आइये हम भी उसी का पीछा करें और देखें कि वह कहाँ जाता है।

वह पुरुष धीरे धीरे दबे पाँव सैसों कियारियों को लाँघता हुआ गुलाबकली के कमरे के पास पहुँचा। कमरा खोल कर भीतर पैठा और उसी की चारपाई पर अँधेरे में बैठा बैठा कुछ सोचने लगा।

उधर बारह का घंटा बजते ही गुलाबकली चुपके से उठी और लेम्प को कम कर शशि के पलँग के पास आई। देखा तो वह पहिली नींद में अचेत सो रही है। गुलाब ने इसी समय कान में से फाहा निकाल कर शशि की नाक से लगाया। फाहे की महँक से उसकी अचेतता और भी बढ़ गई। जब उसे विश्वास हो गया कि शशि अब खूब अचेत है और हिलाने डोलाने से भी मिनकने की नहीं तो वह धीरे से दर्वाजा खोल कर अपने कमरे की ओर आई और मुख से हल की सी सीटी बजा कर कुछ इशारा की। उसके इशारे पर किवाड़ खुल गए और वह अन्दर जा कर उस पुरुष से—जो वहाँ पहिले ही से दीवार फाँदकर घुसा बैठा था—सलाह करने लगी। सलाह इतनी धीमी आवाज में हो रही है कि हम उसे बताने में लाचार हैं। सब कुछ शशि के बारे ही में बात चीत है। अच्छा जो कुछ हो वह आगे ही आने चाहता है।

इधर तो ये दोनों काना फूसी कर ही रहे थे कि बाहर खिड़की पर खड़ा हुआ पुरुष उसी भेष में घबराया हुआ वहाँ

आया और इशारे से किवाड़ खुला कर अंदर गया और बोला। "मामला तो गड़बड़ है"

पहिला०—घबराकर। क्यों क्यों? क्या हुआ?

दूसरा०–पहरू जग गए और वे खिड़की की ओर चिल्लाते चले आ रहे हैं। यह देख कर मैं भागा यहाँ आया हूँ कि तुम्हे खबर कर दूं जिसमें अभी कोई कार्रवाई न की जाय।

पहिला०—क्या निकलने का रास्ता नहीं है?

दूसरा०—इस वक्त नहीं है। क्योंकि पहरुओं का गश्त शुरू हो गया। सुनो देखो वह चिल्ला रहे हैं।

गुलाब०—यह तो बड़ा बुरा हुआ!

पहिला०—कुछ नहीं। थोड़ी देर का गुल गपाड़ा है। थोड़ी ही देर में सब पट पटा जायगा। जब ये ठंढे पड़ जायँगे तो अपना काम शुरू करेंगे।

दूसरा०—सुनो सुनो खिड़की पर कुछ गुलगपाड़ा मचा है।

पहिला०—कान लगा कर–बहुत आदमियों की बोल सुन पड़ रही है।

दूसरा०..."खिड़की कैसे खुली पड़ी है" इसी पर वे सब बहस कर रहे हैं।

स्त्री०—बेशक बहस खिड़की पर होगी। क्योंकि वह खिड़की दिन में भी कभी नहीं खुलती थी रातमें उसका खुला रहना तो एक नयी और अचरज की बात है। जान पड़ता है वे लोग "खिड़की खुली है, खिड़की खुली है", कहते हुए इधर ही चले आ रहे हैं!

पहिला०–बेशक, वे सब इधर ही चले आ रहे हैं।

दूसरा०–आप लोग इसी कोठरी में छिप जायँ और मैं कोठरी में ताला लगाये देता हूँ। ताला लगा रहने पर–इसमें

कोई है–इसका शुभा उन सबों को न होगा। इधर उधर कर करा कर वे सब चले जायँगे।

गुलाब०–और तुम? तुम कहाँ रहोगे?

दूसरा०–मैं भी अपना कहीं ठिकाना कर लूँगा।

पहिला०–इसी में क्यों नहीं चले आते?

दूसरा–तब तो यह साफ जाहिर हो जायगा कि इसमें कोई है। फिर तो तीनों की खबर लेली जायगी। मैं किसी झाड़ी में छिप रहूँगा। यह कह कर उसने ताला बन्द किया और भाग कर एक घनी झाड़ी की ओर चला गया।

कुछ सिपाही एक आदमी को पकड़े हुए और कुछ उसे धपत लगाते हुए भीतर बाग में आए। झाड़ी में छिपा हुआ पुरुष उनके सामने गया और उन्हें चुप कराकर कहा–गुल गपाड़ा न मचाओ चुपचाप इसे लेजा कर हवालात में बन्द करो।

एक सिपाही०–और कोई यहाँ अब तो नहीं है?

यहाँ की फिकर छोड़ दो। यहाँ का हाल तड़के मालूम होगा। वे सिपाही उस कैदी को लेकर खिड़की की राह बाहर चले गए। वह दूसरा पुरुष खिड़की बन्द कर वहाँ आया जहाँ तीनों बन्द थे। और उसने एक ताला और उसमें चढ़ा दिया। ताले की आवाज़ कान में पड़ते ही पहिला पुरुष भीतर से ग भाषा में बोला।

"क्यां ची"

बाहर वाले ने जवाब दिया।

"मयां ची"

अन्दर वाला०–अरे भाई, गुल गपाड़ा मिट गया?

बाहर वाला०—चुप चुप बोल मत। अभी बड़ा गोल माल है।

अन्दर वा०—सच कहो ? अरे यार! अभी तक गोलमाल मिटा नहीं। बड़ी कम्बख्ती है ?

बाहर वाला०—कहता हूँ कि चुप रह, अभी सब इधर उधर कर रहे हैं।

अन्दर वा०—तब तू क्यों सामने खड़ा जोखिम उठा रहा है ?

बाहर वा०...हाँ, लो मैं भी भागता हूं कुछ रात रहते ही आऊँगा। यह कह वह चल दिया और वहाँ आया जहाँ शशि का महल था। धीरे धीरे दबे पाँव शशि के कमरे की ओर बढ़ा, देखा तो दरवाजा खुला पड़ा है। शशि अपने बिस्तर पर पड़ी खर्राटेकी साँस ले रही है। यह देख वह पुरुष मनही-मन हँसा और हँस कर अपना हाथ उसकी नाक से लगाया।

दो चार छींकें आकर शशि की नींद टूटी। वह अपने पलँग के पास पुरुष की आकृति देख हड़बड़ा कर उठ बैठी और चट बिस्तर के नीचे से कटार निकाल दपट कर आवाज़ दी—"तू कौन है ? जल्द बता नहीं कटार हाथ से छूटने चाहती है।"

उस पुरुष ने देखा कि अब यदि असावधानी करता हूँ तो शशि अपना वार कर बैठेगी इससे वह और कुछ न कह कर फौरन अपना काला लबादा उतार कर फेंक दिया और रूमाल से मुँह रगड़ कर कहा—हाँ हाँ वार न करना समझ बूझ लो तब हाथ उठाओ।

उसके ऐसा कहते ही और लबादा उतार कर फेंकते ही शशि हँस पड़ी और कहने लगी—लो अभी अनर्थ हो चुका था। हँसी २ में प्राण जाते। क्योंकि वक्त ही ऐसा है इसमें हमारा कसूर नहीं। अगर तुम झटपट लबादा न उतारतीं और मुख रगड़ कर न दिखातीं तो सचमुच आज तुम मेरी कटार के घाट उतर पड़तीं। रात में ऐसी हँसी अच्छी

नहीं, इस में कभी धोखा हो जायगा। (हाथ पकड़ कर) कहो कहाँ रही ?

सौदामिनी ने कहा—बस अब यह न पूछो कि कहाँ रही। आज मुझे भगवान ही यहाँ ठेल कर ले आए नहीं तो......

शशि०—घबरा कर—हाँ नहीं तो क्या ?

सौदा०—बस अब आगे न पूछो।

शशि०—क्यों ?

सौदा०—यों हीं।

शशि०—फिर भी तो ?

सौदा०—बस कुछ पूछो न। बड़े तड़के दान करो। आज की रात भारी थी भगवान ने काट दी !

शशि०—आखिर क्या बात है कुछ साफ २ कहो भी तो ?

सौदा०—वही बात है जो बीत चुकी है।

शशि०—अर्थात् ?

सौदा०—अर्थात् तब की बार उलटा खोह की खाक छानीं थीं अब की किसी और खोह की बारी थी।

शशि०—सो कैसे, क्या फिर कुछ रंग नज़र आ रहा है ?

सौदा०—आ रहा है कि आ ही चुका था।

शशि०फिर ?

सौदा०फिर क्या भगवान् की कृपा से बाल २ बच गई।

शशि०—(घबरा कर) सो कैसे ?

सौदामिनी ने सारा किस्सा सुना कर कहा—तीनों फँसे हैं ? एक तो हवालात में गया। दो उसी में बन्द हैं जिसमें तुम्हारी प्यारी गुलाब कुमारी रहती थीं। कहो कैसा धोखा खाई ?

शशि ने कहा—इसमें मैं धोखा नहीं खाई, धोखा खाए पिता जी। उन्हीं की शिफारिश पर वह यहाँ आई और रहने लगी। वह एक राजपुत्री मान कर यहाँ रक्खी गई। और उसे

अनाथ अबला समझ कर ही पिता जी ने इसको (गुलाब को) और इसके भाई को आश्रय दिया। आप तो जानती ही हैं कि पिता जी कैसे साधु स्वभाव के हैं। उन्हें मोह लेना कोई कठिन बात नहीं। इन सबों ने अपना जादू उन पर चला कर उन्हे मोह लिया। वे इनकी दीनाऽवस्था पर मोम की भाँति पिघल उठे। मर्द को-जो इ गुलाब का भाई है-अपने दरबार में स्थान दिया और इस राँड़ को मेरे पास कर गए।

सौदा०—भाई? भाई कैसा? वह कहाँ है?

शशि०—हाँ एक इसका भाई जिसे मैंने तो देखा नहीं-सुना है-साथ में है।

सौदा०—राम जाने वह कौन है, अब वह क्यों हाथ आने लगा। जरूर निकल भागा होगा। पहिले से मालूम होता कि एक भाई साहेब भी साथ हैं तो उनको भी खबर ले ली जाती, शोक! अब वह निकल गया होगा। और अचरज क्या कि जो आदमी बाहर खिड़की पर पकड़ा गया वही- भाई न हो।

शशि०—"क्या अचरज है।"

सौदा०-मुझे तो कुछ ऐसा ही मालूम होता है। अच्छा अब तो तड़के पता चलेगा कि वह भाई है या भौजाई।

शशि० जो कुछ हो। यह अच्छी तरह मुझे मालूम हो गया कि जमाना बुरा आया। इस समय सच्चे झूठे, चोर साहूकार, सज्जन, दुर्जन, बुरे भले, कपटी, निश्छल, शत्रु मित्र की पहिचान कठिन है। इस समय, धूर्त, कपटी, कुचाली, खल, निन्दक, लम्पट अधिक और सज्जन, हरिजन, साधुओं की कमी क्या अभावही है। दुर्जनों दुष्टों का बोल बाला है साधु महात्माओं का मुँह काला है। अबला कहीं की न रहीं इन पर तो मानों साढ़े साती शनैश्चर (सनीचर) सवार हैं। इनकी हर जगह हर हालत में मिट्टी पलीद है। ऊँच नीच

दोनोंहीं इनके शत्रु हैं। कहाँ तक कहैं जमाने में कुछ ही लोग ऐसे ढूँढ़े मिलेंगे जो इनके शुभचिंतक हैं वरन् सब इनके शत्रु ही शत्रु हैं। मुझे नहीं मालूम होता कि कामियों की मां बहिनें कैसे उन दुष्टों से बच जाती है। पर-स्त्री की ओर जिस की कुरुचि रहती है वह किसी भी स्त्री को-चाहे वह आत्मीय ही क्यों न हो अच्छी दृष्टि से न देख सकेगा। क्योंकि उसकी दृष्टि दूषित, मन दूषित, काया दूषित, सब दूषित ही दूषित है। ऐसी दूषित, दृष्टि जिस पर पड़ेगी उसका भाव दूषित ही रहेगा।

ज्यों त्यों करते प्रातःकाल हुआ। शेष रात बात चीत ही में बीत गई। सूरज निकलने से पहिले ही सौदामिनी उठी और निपट निपटा कपड़े बदल कर ड्योढ़ी पर पहुँची। ड्योढ़ी पर यही चर्चा हो रही थी कि आज रात में जनानी खिड़की पर एक चोर पकड़ा गया है। कोई पूछता है-कैसा है। कोई कहता है:-हिन्दू है कि मुसलमान इत्यादि २। इसी प्रकार कहा-सुनी हो ही रही थी कि सौदामिनी वहाँ पहुँच कर जमादार से बोली-जमादार जमादार ! झटपट एक गारद साथ में ले कर जनान खाने में चलो॥

जमादार०-हैं, क्या अभी कुछ और खटका है?

सौदामिनी०-चलिये तो, चलने पर न मालूम होगा।

जमा० खैरियत तो है न?

सौदा०—बस इस वक्त ज्यादा सवाल जवाब की ज़रूरत नहीं, फौरन तैयार हो।

जमादार ने फौरन गारद तैयार किया और सौदामिनी के साथ वह जनाने बाग में पैठा।

उधर सबेरा होते देख वह स्त्री (गुलाबकली) उस पुरुष से बोली-क्यों जी! सबेरा हो गया वह अभी तक न लौटा!

हीं गिरफ्तार तो नहीं हो गया ? यदि कहीं वह गिरफ्तार हो या तो फिर उससे भी बुरी हालत हमारी हुई। वह तो धरा कड़ा गया और किसी हवालात में बन्द किया कराया गया गा। और हम तो न धरे गए और न किसी ने हमें बन्द ही किया खुद हवालात में बन्द हो गए ! अगर वह पकड़ न या होता तो ज़रूर आया होता । अब तक तो हमलोग कहाँ के कहाँ निकल गये होते।

पुरुष–है कुछ दाल में काला ज़रूर।

स्त्री०—मान लें कि हम जैसा सोचते हैं ठीक है, तब अब करना क्या चाहिये ?

पुरुष०—इस समय बुद्धि भंग है। मुझे तो अब अपने छुटकारे का डौल दीखता नहीं है। बाहर से कुंडी बन्द है कि उस में ताला भी लगा है। बंद करने वाला वही है अथवा कोई दूसरा यह कैसे कह सकते हैं। हां, यदि कोई गैर नहीं है तो खैर है वरना आज ऐसी बेभाव की पड़ेगी कि खोपड़ी में बाल न रह जायँगे और यही होता दीखता भी है। हे ईश्वर! आज जैसा धोखा तो जीवन में कभी नहीं खाया।

स्त्री०—निरे नामर्द हो, अजी कुछ उपाय करो।

पुरुष०—उपाय क्या ख़ाक करें। चूहा चूहेदानी में फँसा है अब वह उसमें से निकल क्योंकर सकता है ?

स्त्री०—हाँ, निकल भी सकता है। लोहे की तीली काट कर निकल भाग सकता है।

पुरुष०—तब निकल भागें न ?

स्त्री०—हाँ, निकल भागें, कहाँ निकल भागें ? इसमें से निकलने पर भी तो पकड़ जाने का डर है। बाग के चारों ओर चान की कहकहा दीवार खड़ी है उसके पार जाते जाते तो

"बड़े घर" भेज दिये जायँगे। फिर अब समय भी नहीं है।

अच्छा, अब तो हरि इच्छा।

इधर यह कहा सुनी हो ही रही थी कि कुछ मनुष्यों की बोली सुन पड़ी। पुरुष ने स्त्री से कहा-लो अब कम्बख्ती आ गई, जान पड़ता है कि सिपाही पहुँच गये।

इतने ही में ताला खोला गया और सिपाहियों ने कोठरी घेर लिया। जमादार और दो सिपाही भीतर गए। देखा तो सचमुच एक स्त्री और एक पुरुष बैठे हैं। स्त्री का हाथ सौदामिनी ने पकड़ा और उस पुरुष की मुश्कें बाँध कर दोनों सिपाही ले चले।

अब सौदामिनी ने उजाले में देखा कि दोनों स्त्री पुरुष पुराने पापी हैं। और वह हँस कर बोली-क्यों बचा करीम! यह बदमाशी। शंकर और सीताराम की तो हो गई अब तुम उठे हो? लो बच्चू, आज तुम्हें भी मालूम पड़ जायगा कि धूर्ताई कितनी मीठी बस्तु है। स्त्री से कहा—तुम कहो गुलाबकली की नानी! बाजार कमाते २ धन नहीं जुड़ा अब चली हो धूर्ताई (ऐयारी) करने! कर्मसिंह से ऐयारी करती तो कुछ मिल भी जाता। अच्छा, कुछ तो यहाँ भी पाओगी। अपने किये का फल तो तुम्हें जरूर ही भोगना पड़ेगा।

इतने ही में चार सिपाही रात में पकड़े गये पुरुष को लेकर सौदामिनी के पास आए। सौदामिनी उसे देखते ही पहचान गई और बोली-सलाम मियाँ। कहो मिजाज अच्छा है? पुरुष ने गरदन नीची कर कुछ उत्तर न दिया, तब वह फिर बोली—अच्छा, मियाँ तुमने तो अपनी वाली कर दिखाई अब तनिक इसका मजा भी चखो। बेशक तुम सबों ने बहादुरी दिखाई। परन्तु मियाँ! यह उस वक्त तुम्हें याद न आया होगा कि यहाँ बाबा सिद्धनाथ की चेली सौदामिनी है। कहीं उस-

की कौंध अन्धा न बना दे, उसकी तड़प कहीं दिल न तोड़ डाले, अथवा वह गिर कर मुँह न झुलस दे। सौदामिनी का नाम सुना था कि नहीं? (उत्तर न पाकर) अच्छा नहीं सुना था तो आज सुन लेवें। (सिपाहियों से) ले चलो, इन तीनों को दरबार में ले चलो।

सिपाही उन तीनों स्त्री पुरुष कैदियों को लेकर दरबार में आए। शशिप्रभा को लेकर सौदामिनी भी दरबार के जनाने बाग में आई और चिकों की ओट में दोनों जा बैठीं।

राजा साहेब गद्दी पर अमीर उमराव दाहिने बाँयें बैठे हुए दरबार की शोभा बढ़ा रहे थे और रात की वारदात पर बहस कर रहे थे कि रुस्तमसिंह जमादार ने मुजरा किया और कहा–सरकार! ये तीनों कैदी आज रात जनाने बाग में पकड़े गए हैं। यह औरत वही है जिसे हुजूर ने पनाह दिया था।

राजा ने बड़े ध्यान से तीनों को देखा। उस स्त्री की ओर देख कर कहा–सच२ कहो क्या बात है? उस स्त्री के बोलने से पहिले ही चिक में से सौदामिनी ने कहा–सरकार, इन सबों को नहीं जानते? इस ठगिनी ने सरकार को बड़ा धोखा दिया। यह अपने को राजपुत्री बताई है सो इसकी धूर्ताई (मक्कारी) है। यह वेश्या है, जौनपूर की रहने वाली है। इसे कोई ऐयार मिल गया उसने इसे धूर्त विद्या बताई। दो चार काम जौनपूर में इसने ऐसे कर दिखाये कि जौनपूर वाले इसे और इसकी विद्या को मान गए। तब से यह जौनपूर में बड़ी मशहूर ऐयारा (धूर्ता) कही जाने लगी। और ये दोनों जाति के मुसलमान हैं। इलाहाबाद के रहने वाले हैं। इन्हीकी मदद से यह यहाँ (सरकार के पास) आई और कुमारी के साथ रखी गई। कल ये लोग इसी बंदिश में जनाने बाग में पैठे कि पहिले की भाँति फिर कुमारी को गायब करें। इनकी बंदिशें

बँध चुकी थीं दो ही चार मिन्टों की देर थी कि कुमारी पलँग सहित उठ जातीं। ईश्वरीय प्रेरणा से मैं चुनार से यहाँ पैदल आ पहुँची। डेवढ़ी पर पहुँचतेही मुझे जनानी खिड़की पर कुछ खटका मालूम हुआ। मैंने संतरियों को सावधान कर, उनमें से दो चार को साथ में ले खिड़की की ओर झुकी। दूर ही से मुझे एक पुरुष की परछाँही झलकी (धीरे २ जाकर मैंने (उँगली से दिखाकर) इस कमबख्त को पकड़ा। इसे पकड़ते ही (उँगलीसे दिखाकर) इस मूजी को देखा कि भीतर बाग में भागा जा रहा है। बाहर न भागने का कारण यह था कि बाहर सिपाही खड़े थे। निकलते-ही पकड़ लिये जाते। शायद इसी डर से यह भीतर ही भागा। मैं भी उसे उन सिपाहियों के पास छोड़ कर इसके पीछे लगी। देखा तो यह इस (उँगली से दिखा कर) स्त्री के घर में घुस गया। इसने भी इसके आने पर हूहल्ला न मचा कर उलटे किवाड़ बंद कर लिया। तब मैंने जाना कि बस इसी की शरारत है। इसी ने इन दोनों को भी यहाँ बुलाया है और कुमारी को फिर छिपाने की ताक में ही यह सब बंदिशें बाँधी गई हैं। अब हुजूर जो मुनासिब समझें हुक्म दें।

राजा ने कहा, क्यों मंत्री! इसके (इस स्त्री के) साथ एक इसका भाई भी तो था। वह भी तो दरबार ही में रखा गया था। उसे हम देखते नहीं हैं। उसे यहाँ तो बुलाओ।

मन्त्री ने प्यादे को भेजा। प्यादे ने आकर अर्ज किया सरकार! वह तो वहां नहीं है! उसकी कोठरी खाली पड़ी है। उसके कपड़े लत्ते आदि भी उसमें नहीं हैं।

सौदामिनी ने कहा—वह भी कोई छली ही रहा होगा मौका पाकर निकल भागा होगा।

राजा ने दोनों पुरुषों से पूछा-क्यों जी! आप पर जो अपराध लगाए जा रहे हैं क्या वे सही हैं?

दोनों पुरुषों ने कहा—जी हाँ सही है।

राजा—ऐसा क्यों किया? क्या तुम नहीं जानते कि किसी भले आदमी के घर में बिना उसकी आज्ञा के जाना अपराध तो है ही किन्तु लज्जा की भी बात है। तुम कैसे बाग में—जनाने बाग में—वह भी दिन नहीं रात में—घुस आए?

दोनों कैदी०—कमबख्ती ले आई और क्या कहें। राजा ने गुलाबकली उर्फ जानकी से पूछा—क्यों? तुमने कैसी ठगमाया फैलाया। अच्छा अब अपने २ कर्मों का फल भोगें (कोतवाल से) ले जाव जी! इन्हें हवालात में बंद करो और ध्यानसिंह के नाम परवाना भेज कर पूछो कि आप कब तक यहाँ आवेंगे। क्योंकि वही आकर इनके मामले को फैसल करेंगे।

यह सुनते ही कोतवाल साहेब के पौ बारह हुए। उन्होंने फौरन ही हुक्म दिया कि—एक गारद सिपाही लेकर जमादार जायँ और इन तीनों को दाखिल दफ्तर (हवालात में) कर आयें।

हुक्म पाते ही सिपाही पहुँच गए और तीनों को हवालात में बंद कर पहरा बैठा दिये।

इधर राजा साहेब ने भी जनाने महल के चहार दिवारी के चारों ओर कड़ा पहरा बैठा दिया जिसमें फिर ऐसी वारदात न होने पावे। शशि और सौदामिनी दोनों महल में आईं और बहुत देर तक इसी की चरचा करती रहीं।



दूसरा परिच्छेद।

पाठक हमारे पिछले परिच्छेद में दो व्यक्तियों के साथ गुलाब उर्फ जानकी के पकड़े जाने का हाल पढ़ कर दोनों पुरुषों के

बारे में कुछ जानना चाहते होंगे। अच्छा हम पहिले आपको इन्हीं का परिचय करकरा तब आगे लिखेंगे।

कंतित की धूर्त टुकड़ी जब भैरवी और बाबा जी के फेर में पड़ कर किसी खोह की हवा खाने लगी और अकेला शंकर ही सरगना रह गया तो वह झूँसी जाकर अपने पुराने दोस्त यूसूफ और करीम को अपनी मदद के लिये बुला लाया और इन्हीं मित्रों की सलाह से जानकी मानकी नाम की दोनों बहिनें भी जौनपूर से बुलाई गईं। देखें भाग—३ पृष्ठ ३२

सीताराम, शंकर, संतसिंह, रामनाथ, भोजदत्त, चारोजन कुँअर कर्मसिंह के साथ काशी को गए। इनके चले जाने पर। इस चांडाल चौकड़ी ने चाहा कि चल कर अजयगढ़ में कुछ हुनर दिखाएँ। पहिले जानकी और मानकी दोनों बहनें रूप बदल कर गईं पीछे यूसुफ और करीम भी पहुँचे। जानकी बीबी तो पकड़ गईं परन्तु मानकी बीबी भाग निकलीं। अब तनिक उनकी भी कारीगरी देख सुनकर तब बनारस चलेंगे। यही आपको भी पसन्द होगा।

करीम खिड़की पर पकड़ा गया इसे आप ऊपर पढ़ही चुके उसके पकड़े जाने के बाद बाग में सिपाहियों की गोल घुस पड़ी और बड़ा कोलाहल मचाई। कहाँ कहाँ, किधर किधर, इधर उधर, यह वह, यहाँ वहाँ की कोलाहल कान में पड़ते ही मरदानी खिड़की पर खड़ी मानकी (चंपतराय) भी वहाँ से चंपत हुई और वह रातों रात चल कर विन्ध्याचल आई, देवी का दरशन कर एक धर्मशाले में डेरा डाली और अपना प्रोग्राम बनाने में दत्तचित्त हुई।

इधर सबेरा होते ही सौदामिनी उठ कर वहाँ गई जहाँ मानकी (चंपतराय) डेरा डाले थी। उसकी कोठरी में पैठ कर इधर उधर देखने लगी। दो एक फटे चीथड़ों के सिवा

उस की नज़र में एक कागज़ का टुकड़ा दिखाई पड़ा जिसको उसने बड़े चाव से पढ़ा। उसमें यह लिखा था:—

"प्यारी बहिन! मैं आपके कहे अनुसार सब काम ठीक कर चुकी और उन दोनों को भी काम सहेज चुकी। वे भी अपना अपना काम बड़ी मुस्तैदी और सावधानी से करेंगे। आप ठीक समय पर–अर्थात् ठीक एक बजे की घड़ियाली की आवाज़ सुनते ही–खिड़की खोल कर वहाँ आ जाना जहाँ "शशि भवन" है। और भवन के पास वाली झाड़ी में छिपी रहना। ज्योंहीं सीटी की आवाज़ सुनना सामने महल के निकल आना। परन्तु यह ध्यान रहे कि अपनी आहट किसी को ज़रा भी मालूम न होने पावे। खिड़की को दिन में ही खोल बंद कर देख लेना कि उसके खोलने बंद करने में कोई रुकावट तो नहीं है, उसमें खुलते बंद होते समय आवाज तो नहीं होती। कुंडी तो कड़ी नहीं है। यदि इनमें से कोई भी रुकावट हो तो उसे दिन में ही दूर कर लेना।

आपकी–जानकी—

सौदामिनी उस चिठ्ठी को पढ़ कर सन्न मार गई। कुछ देर तक वह चुप खड़ी कुछ सोचती रही। फिर कुछ देर के उपरान्त वह मन ही मन कहने लगी:—या परमात्मन्! बड़ी कुशल हुई! इन चाण्डाल चौकड़ी की टुकड़ी ने तो आज गजब ही ढा दिया था! पाँच मिनट मैं और देर से आई होती तो न जाने शशि कहाँ की कहाँ होती! देखो न! इन दुष्टों ने कैसा बन्दिश बाँधा था। फिर जिसे राजपुत्र मान कर महाराज ने अपने खास आश्रम में आश्रय दिया वह पुरुष नहीं स्त्री थी! कहो कैसा ठग कर निकल भागी!

किसी को उस बहुरूपिये की नकल का ज्ञान न हो पाया

यद्यपि राज में सब तरह के लोग हैं, परन्तु किसी की अक्ल काम न की। वह ज़रूर मानकी थी।

सौदामिनी उस पुरजे को लेकर शशि के पास आई और उसे दिखा कर बोली—देखो इस औरत की हिम्मत देखो। सारी रियासत को इसने उल्लू बना दिया! अच्छा नानी मानकी।

दरबार में जब उसके (चम्पतराय के) स्त्री होने का समाचार पहुँचा तो सारा दरबार सन्नाटे में आ गया। राजा भी बड़े लज्जित हुए और बोले—अब तक तो पुरुषों ही को धूर्त-विद्या फबती थी अब स्त्रियाँ भी सीख गईं!!

दीवान ने कहा—सरकार, स्त्रियां तो पुरुषों के कान काटने लगीं। किसी पुराने सड़े जमाने में "अबला" रही होंगी इस जमाने में तो "प्रबला" हैं।

"का नहिं अबला करि सकै का न समुद्र समाय।"

जानकी यूसुफ और करीम तीनों एक लोहे के सीखचेदार कमरे में बन्द कर दिये गये, यह आप ऊपर पढ़ चुके हैं। वे तीनों बिचारे एक दूसरे का मुँह ताकते उसी लोहे के पिंजड़े में पड़े दिन काटने लगे। पाठकों को इस लोहे के पिंजड़े का कुछ वर्णन सुना कर आगे लिखेंगे।

रियासतों का जैसा न्याय अद्भुत (अजूबा) वैसी ही सजा भी अद्भुत! वर्षों कैदी कैदखाने में पड़े हैं कोई सुनने समझने वाला नहीं। पकड़ा बन्द कर दिया और जब तरङ्ग उठी बुलाकर फैसला सुना दिया। न उस अपराधी की सुनना न उसके गवाहों की और न उसके वकील मुख्तारही की! जो मन ने माना फैसला सुना दिया। हुकम की देर ज़रूर है मगर तामीली में पलभर की भी देर नहीं। "जान मारो" बस उसका शिर धड़ से जुदा हुआ। "खोदकर गाड़ दो" कहने में जितनी देर

लगा। उतना खोदकर गाड़ने में देर नहीं लगती। सिर काट लेना, खाल खिंचवाना, खिंची हुई खाल पर नमक छिड़काना। बोटी २ काट २ कर चीलों को खिलाना, आँखें निकाल कर उसमें नीबू निचोड़ना, हाथी के पैर तले रौंदाना, पेड़ से बाँध कर कोड़े लगवाना, बरछियों से कोंच २ कर प्राण लेना, धरती खोद कर जीवित गाड़ देना, या कन्धे तक गाड़ कर साँसत कराना दीवारों में चुन देना, आग में झोंक देना, हाथ पैर काट कर आँखें निकाल कर लोहे के पिंजड़े में बन्द कर देना, यही इन रियासतों की सख्त सजायें हैं।

अजयगढ़ में भी लोहे के पिंजड़े बने थे। इसी कारण तीनों धूर्त और धूर्ता उसी लोहे के पिंजड़े में रखे गए जिसमें से वे निकल न भागें। यह लोहे का पिंजड़ा भीतरी डेवढ़ी के पास दोहरे पहरे में रक्खा गया। और रात दिन एक गारद सिपाही इसके चारों ओर गश्त लगाने लगे।



तीसरा परिच्छेद।



ऊपर यह लिखा जा चुका है कि मानकी (उर्फ चंपतराय) अपने साथियों के गिरफ्तार होते ही वहाँ से चम्पत हुई और वह अजयगढ़ से दूर एक जंगल (पहाड़ी उपत्यका) में एक घने पेड़ के नीचे बैठ कर बिचारने लगी कि जानकी बहिन और उसके दोनों सहयोगी अब छुड़ाये क्यों कर जावें।

जिस समय मानकी क़िले से भागी उस समय रात एक बजे का समय रहा किन्तु इस समय जब कि वह अजयगढ़ से कोसों दूर निकल आई है चार का अमल है। मानकी बैठी

मनही मन सोच रही है कि साथियों को कैसे छुड़ावें। कुछ देर के बाद उसने अपना मत स्थिर किया और साथियों के छुड़ाने का उपाय उसने ढूँढ़ निकाला।

मानकी ने अपना रूप मर्दाना और जोगिया बनाया। शिर पर जटा जूट, कानों में रुद्राक्ष का कुंडल, गले में रुद्राक्ष का कंठा, हाथ में त्रिशूल और माला, देह में विभूति, बगल में मृगछाला आदि से विभूषित हो वह अजयगढ़ की ओर फिर लौट पड़ी।

सूरज निकलते निकलते मानकी क़िले के निकट पहुँची। क़िले की खाईं के पास बैठकर अपनी धूनी रमाई। जैसा स्वरूप मानकी ने बनाया है ऐसे स्वरूप को देखते ही भोला नाथ भूत भावन का भ्रम हो जाता है।

गढ़ की दीवार से सट कर मानकी उर्फ़ बाबाजी—जिसे अब हम बाबाजी ही लिखेंगे—अलख जगाने लगे। गढ़ में घरों घर चरचा होने लगी—एक बाबाजी आए हैं। किले के बाहर पड़े हैं। बड़ा सुन्दर स्वरूप है। अभी अवस्था भी कम परन्तु बड़े सिद्ध जान पड़ते हैं। जिसे लड़का न होता हो उन्हें भभूत (विभूति) से लड़का पैदा करा देते हैं। वश में करने के मन्त्र बता देते हैं। जो कहते हैं वह हो जाता है। इत्यादि गप्पें हर एक स्त्री पुरुषों से सुन लेवें।

यह साधारण बात है और देखा भी जाता है कि जहाँ कोई फकीर या साधू बस्ती में आसन लगाया तहाँ—लल्लू, बुद्धू, ऐरे गैरे नत्थू खैरे लम्बी दंडवत करते धूनी पर पहुँचे। और जहाँ चार चिलम गाँजे की मुफ्त उड़ी तहाँ वे बाबा जी की तारीफ के पुल बाँधने लगे। गली गली घर घर जा जा कर कहने लगे—बाबा तो बाबा ही है भाई! जैसा साधु होना चाहिये वैसा ही है। करामात का कुंडा है!

फिर क्या है फिर तो आसन पर बैठने का ठौर नहीं। स्त्रियों के मारे नाकों दम है। कोई दूध लिये आता है तो कोई बताशा!

आज हमारे बाबा जी का भी वही हाल है। स्त्री पुरुषों का जमघट लगा है। भभूत (विभूति) देते देते धूनी में राख नहीं रह गई। एक आसन बैठे बैठे बाबाजी का चूतर सूज गया।

खबर तो बिजली की तरह दौड़ती है। किसी ने रानी साहेबा से भी भुगतान किया। उन्हें भी बाबाजी के दर्शनों की इच्छा चटकी। चटपट एक दासी को भेज कर बाबाजी का समाचार मँगाया। दासी वहाँ पहुँची जहाँ बाबाजी विराज-मान थे। शिर झुका कर दासी ने बाबा को प्रणाम किया और कहा—बाबा! आपकी महलों में बुलाहट है। हमारी रानी साहबा आपका दर्शन करना चाहती हैं।

बाबाजी—शिव शिव कौन शिव शिव रानी? शिव शिव अपने शिव को शिव २ रानी बाँदी से शिव २ क्या काम? शिव २ यह भेष तो शिव २ शंकर के बुलाने पर शिव २ जा सकता है।

बाँदी०—महाराज! महारानी साहेबा तो ऐसे भेष की बड़ी भक्त हैं।

बाबा०—बात काट कर—शिव २ हाँ माई होगी तेरी रानी। शिव २ अपनी रानी तो अन्नपूर्णा है। शिव शिव शंकर शिव २ शंकर।

बाँदी०—स्वामिन्! आप अपनी धूनी ड्योढ़ी के भीतर ले चलें। वहाँ आपकी अच्छी सेवा होगी। पूजा भी होगी।

बाबा०—शिव २ पूजा! हाँ शिव २ पूजा कहीं दूसरी पूजा तो न होगी? अच्छा शिव, चलो शिव, जैसी मर्जी शिव,

वहीं धूनी शिव, शिव हि शिव, यह कह कर बाबाजी उठ खड़े हुए और बाँदी के साथ महल की ड्योढ़ी की ओर चले। रास्ते में वही लोहे का पिंजड़ा पड़ा जिसमें यूसुफ, करीम और जानकी कैद थी। बाबाजी ज्योंहीं उस पिंजड़े के निकट से आगे चले त्योंही पिंजड़े के कैदियों ने साष्टांग प्रणाम किया। बाबाजी ने आशीर्वाद दिया। कुछ। दूर आने पर एक घने वृक्ष के नीचे-जिसके सामने ही जनाने महल का झरोखा था-आसन लगाया। रानी ने कुछ मूल, फल भेजा जिसे बाबाजी ने पाया। आज का दिन शिष्टाचार ही में गया न राजा मिले न रानी।

पहर रात तक दास दासियों की चटपट चाल सुनाई पड़ रही थी, जहाँ तहाँ लोगों की बातें सुन पड़ रही थीं। बाबा-जी भी "शिव शिव शिव शिव" की रटन लगाए कुछ मनही मन सोच रहे हैं। पराये मनकी सिवा ईश्वर के कौन बता सकता है। फिर भी हम लोगों में यह शक्ति ईश्वरदत्त शक्ति है। हम पराये मन की भी बता सकते हैं। कवि अपनी कल्पना में ऐसे २ अनोखे भाव दिखलाता है कि जिसका उसमें कभी भावना ही नहीं होती। आप स्त्री के केवल अंग प्रत्यंगों को आँखों से देख कर उसका बखान करेंगे किन्तु, चित्तवृत्ति प्रकृति का बखान बिना अनुभव के न कर सकेंगे। परन्तु कवि उसी स्त्री के समस्त गुण दोषों का ऐसा खाका खींच देगा जिसका आप कभी अनुमान भी नहीं किये होंगे। इसी से तो उन्हें "कवीश्वर" की उपाधि मिली है वे भी ईश्वर न सही तो ईश्वर उपाधिधारी कवीश्वर तो अवश्य हैं। अतएव हम लोग मन की बात सहज ही जान लेते हैं।

बाबाजी महाराज इस समय निराले में धूनी पर बैठे मुख

कभी ऊपर कभी सामने कभी नीचे कर कर जो किसी गहरे में डूब उछल रहे हैं वे एक बड़े भारी उलझन में पड़े हैं। यह तो आप जानते ही हैं कि बाबाजी और कोई नहीं मानकी है वह यह सोच रही है कि आ तो हम गईं मौके पर यहां से जो चाहें-जैसा चाहें कर भी सकती हैं और आसानी से कर सकती हैं तौ भी इस समय क्या करना उचित है क्या करने से सफलता प्राप्त होगी। कुछ देर के उपरान्त वह मनही मन कहने लगीः-

कैदियों को छुड़ाना तो सहज है उन्हें तो आज इसी रात बाहर निकाल ले सकूंगी परन्तु बड़ा ही अच्छा होता यदि शशि न सही उसकी माताही मेरे चंगुल में आ जाती तो तनिक राजा जी को तो मालूम हो जाता कि हाँ, कोई धूर्ता आई रही। रानी को फाँस लेना कुछ कठिन नहीं, फिर भी कुछ समय (कम से कम दो चार दिन) तो जरूर ही चाहिये। जो हो कुछ तो करके चलेंगे। क्योंकि उनकी धूर्ता (ऐयारा सौदामिनी) ने भी अचानक बड़ा गहरा घाव किया है। अच्छा, पहिले उन सबों को तो बाहर करें।

आधी रात बीतते ही बाबाजी ने कमंडलु का पानी धूनी पर डाल कर चिमटा हाथ में लिया और धीरे २ दबे पाँव वहाँ आए जहाँ लोहे का पिंजड़ा था। मनुष्य के पैर की आहट पाते ही पहरू चौंके और " कौन २ " की आवाज देने लगे।

बाबाजी ने कहा—बच्चा ! कोई बाहरी आदमी नहीं है। हम साधु अभ्यागत हैं। रानी साहेबा ने यहाँ बुलाया है उन्हीं के महल के नीचे धूनी डाले पड़े हैं।

एक पहरू०—हाँ हाँ, आप बाबाजी हैं ?

बाबा०—हाँ बच्चा। तुम्हें तो मालूम होगा कि हम आज ही आए हैं। धूनी बुझ गई आग लेने यहाँ आए हैं।

क्या करें अपने शिव तो बिना दम के बेदम हैं। तीस चालीस चिलम दिनमें तीस चालीस चीलम रात में उड़ जाती है। बिना इसके एक छिन भी रहा नहीं जाता–

चढ़त फुंकत लपकत रहे, चीलम चरिहु जाम।
घुघुआती धूनी रहे, तब साधू सरनाम॥

एक पहरू०–आइए २ आग ले जाइए। गाँजा न हो तो मैं देऊँ।

बाबाजी०–गाँजा तो हमारे ही पास ढेरों है। हम साधुओं को मोल तो लेना नहीं पड़ता। शिवजी की कृपा से शिव बालक पर्वत पर से गठरी बाँध लाया हूँ। (हाथ दिखा कर) देखो यह मला मलाया गाँजा तैयार है बस आग की कसर है।

प० प०–तब उड़ने न दीजिये यहीं।

दू० प०–हाँ हाँ बाबाजी यहीं उड़ें।

ती० प०–बस २ यहीं उड़ें। कहिये तो हम और गाँजा देवें।

बाबा० नहीं बच्चा, इतना गाँजा तो आठ आदमी पी सकते हैं, तुम तो चार ही हो। लाओ आग देखो तो भाग। एक पहरू आग लाकर दिया। बाबाजी ने आग को झाड़ फूँक कर जायगा। जब वह जग गई तो उसमें एक ऊँट की मेंगनी सी गोली डाली। कुछ ही देर में वह गोली लाल हो गई। बाबाजी ने गोली को आग में से निकाल कर चीलम भरा और बं महादेव कह कर एक पहरू से कहा "ले बच्चा जगा"।

पहरू०–(हाथ जोड़ शिर नवा कर) अरे दाता!! मैं इस योग्य नहीं हूँ मुझे तो आप अपना जूठन दीजियेगा।

बाबाजी ने चीलम मुख से लगा कर कहा–ले बच्चा अब इसे तू जगा। मेरे कलेजे में इतना दम नहीं जो पहिलो दम मारूं।

पहिले पहरू ने चीलम हाथ में लेकर ऊँची आवाज़ में "रंग रती–अँगूठा चाटैं करोड़ पती। ऐसी आवे हरि गुन गावे। जो नहीं पिया गाँजे की कली उस बेटा से बेटी भली"

कह कर भक भक भक भक फूँक मार करएक बार ऐसी ज़ोर की साँस खींची कि सारी चिलम बल गई। फिर उसने दूसरे को दूसरे ने तीसरे को तीसरे ने चौथे को दिया। पलक मारतेही मारते पहिला झूमता हुआ "अ-रे-भा-ई-गाँ-जा-तो-गाँ-जा-ही-है" कहता हुआ धरती पर मूड़ टेक कर औंधा पड़ रहा।

दूसरा पहरू "पानी नी नी नी नी करता उतान गिर पड़ा। तीसरा बा-प अ अ अ अ करता पछाड़ खा कर गिर पड़ा और चौथे का कंठ सूख कर काँटा हो गया था इससे वह कुछ न बोला, किन्तु धीरे से करवट लेकर खर्राटा मारने लगा।

चारों को अचेत देख अलबेली मानकी धीरे से लोहे के पिंजडे के पास आई और पिंजडे की लोहे की तीली में मुंह डाल कर बहिन २ दो आवाज़े दी।

जानकी पहिले ही ताड़ गई थी। क्योंकि उसने देख लिया था कि मानकी आ गई है और वह जो कुछ कर रही है उसे भी वह जान गई थी। वह बडे धीरे से बोली-हाँ हाँ, देख रही हूँ।

मान० ताली मालूम है किसके पास है?

जानकी-हाँ, उसी चौथे की कमर में है।

मानकी-ने चौथे पहरू की कमर टटोली और ताली निकाल कर ताला खोला। चारों को बाहर निकालकर फिर ताला भर दी और ताली जिसकी कमर से ली थी उसी की कमर में फिर धर दी।

यूसुफ करीम और जानकी तीनों पिंजड़े के बाहर निकल कर सलाह किये कि अब क्या करना चाहिये। काम तो कुछ हुआ और कुछ नहीं भी हुआ। हुआ यह कि बाहर निकल आए और नहीं हुआ कि अभी एकी पहरे से बाहर हुए हैं, अभी सदर का पहरा पड़ा है, वहां से बच के निकलें तो जानें कि निकले।

मानकी ने पूछा—बहिन अब बाहर चलना चाहिये।

यहाँ अब ठहरना उचित नहीं। चलो महल में घुस कर रानी को जबर्दस्ती पकड़ कर बेहोश कर दें और जब वह बेहोश हो जाय तो उसे उठा कर ले चलें।

जानकी बोली—रानी को पकड़ कर ले जाना बेसूद है। हाँ, यदि शशि को पा जावें तो कुछ काम भी निकले। परन्तु शशि और उसकी सहेली (सौदामिनी) दोनों चौकन्नी हो गईं और पहरा भी इतना कड़ा है कि बिना तरकीब के वहाँ जाना ही मूर्खता है। चलो, इस समय इतना ही काफी है। इतना काम (अर्थात् बंदियों का छूट जाना ही) कम नहीं है। साथी साथ में। जगत हाथ में।

अब यह सलाह हुई कि सदर फाटक से कैसे निकलें और क्या कह कर निकलें। यदि मुझे अकेले ही जाना हो तो मैं बड़ी आसानी से निकल जा सकती हूँ क्योंकि मेरे बाबा के भेष से सारे पहरू और सिपाही वाकिफ हैं। परन्तु चार २ मनुष्यों का एक साथ जाना सन्देह का कारण होगा। और जहाँ एक बार उन पहरूओं के हृदय में सन्देह घुसा कि सब के सब फिर गिरफ्तार हुए।

क़रीम ने कहा—फाटक की राह न तो इस अखंड अँधेरी और आधी रात में जाने की हिम्मत है और न बिना गिरफ्तार हुए हम बच सकते हैं। चलो बाग में धँस चलें और दीवार फाँद कर बाहर निकल चलें। इससे सहज दूसरा उपाय नहीं है।

इतने ही में चारों ओर से एक साथ कोलाहल सुन पड़ा। यूसुफ और करीम तो एक इमली के पेड़ पर चढ़ कर एक घनी शाखा की टहनियों में छिप कर बैठ गए। जानकी और मानकी दोनों उसी स्थान में की चमेली की घनी और फैली हुई झाड़ियों में घुस कर बैठ गईं। धीरे २ वह कोलाहल

चारों ओर से सिमिट कर एक ओर को हो गया और धीरे धीरे दबे पाँव कुछ लोग उसी राह से आते दिखाई पड़े। जब ये बहुत करीब पहुँच गए तो चमेली-जो झाड़ी की ओझल में से झाँक रही थी-और भी ओझल में हो गई।

ये लोग राज के चौकीदार, पहरू आदि हैं जो "कहाँ गए किधर गए, ये गये वे गए" इत्यादि कहते बढ़े चले जा रहे हैं। ज्योंही ये लोग आगे निकल गए त्योंहीं यूसुफ और करीम दोनों पेड़ पर से नीचे आए और एक हलकी सी सीटी मुँह से बजाई। सीटी की आवाज़ यद्यपि धीमी थी तथापि धूर्तों के सुनने योग्य थी। मानकी ने ताड़ लिया और वह चटपट जानकी को लेकर झाड़ी के बाहर आई। चारो जन दक्खिन की दीवार की तरफ चले। फिर कुछ सोच कर यूसुफ ने राह बदल दी और वे सब सदर फाटक की ओर चल पड़े। हां, यह कहना तो हम भूल ही गए कि वे सब अपना अपना रूप स्त्री का बना लिये। यह सुगमता मानकी (बाबा-जी) ने पहिले ही से कर रक्खी थी। अर्थात् वह अपने साथ स्त्रियों के पहिने के कपड़े झोली में धर लाई थी। ज्योंहीं यूसुफ और करीम पिंजड़े के बाहर हुए त्योंहीं उन दोनों को खासी रनवास की दासी बना कर मानकी ने अपना रूप भी दासी का बनाया। जानकी तो बनी बनाई थी ही कुछ पौडर रोगन आदि से मुँह सँवार कर वह भी खासी दासी बन गई!

पाठको को भूला न होगा कि जब जानकी रूपकली बन कर रनिवास में टिकी तो चम्पतराय (मनकी) ने अपनी बहिन गुलाबकली (जानकी) से मिलने की इजाजत माँगी थी और इजाजत पाकर दोनों भाई बहिन (जानकी मानकी दोनों बहिने) जनानी ड्योढ़ी में मिले थे। उस समय दोनों में जो बात चीत हुई उसमें एक यह भी बात थी कि दोनों में से जो

पकड़ जाने से बचे वह कैदियों को छुड़ावे और अपने साथ रूप बदलने का सामान भी लेता आवे। यूसूफ और करीम के साथ जानकी के गिरफ्तार होते ही मानकी राजदरबार के इहाते से पहरुओं को झाँसा पट्टी (मुग़ालता) देकर निकल भागी और सब सामान से लैस हो बाबाजी का रूप धर कर कोट के भीतर पहुँची और जिस धूर्तता से कैदियों को लोहे के पिंजड़े से बाहर की वह पाठक ऊपर पढ़ ही चुके।

सारांश यह कि चारों दासी का रूप बना कर सदर फाटक की ओर लपके! फाटक पर पहुँचने से पहिले रास्ते में दो चपरासी मिले उन्होंने जोर से आवाज लगाई "कौन?"

मानकी ने कहा—हम शशिप्रभा की दासियां हैं।

चपरासी०—तुम सब इतनी रात को महल के बाहर कैसे निकलीं?

मानकी०—ऐसा ही मौका है।

चप०—क्या मौका है? तुम्हारा नाम क्या है?

मानकी०—हमारा नाम सुखमा है क्या तुम नहीं जानते?

चप०—जानते तो पूछते ही क्यों। परन्तु यह तो कहो काम क्या है?

मानकी०-तुम कैसे मूर्ख चपरासी हो जी? हम रनिवासों की बात ऐरे गैरे पँच कल्यानियों को सुनाती फिरें? जिसमें कुमारी की बात !!!

चपरा०-वाह साहेब! तो क्या हम घसखुदे हैं। घास काटने पर नौकर हुए हैं? रनिवास की हों वा खास रानी ही हों रात में आवेंगी और ऐसी अँधेरी रात में-जैसी आज है-तो जरूर रोकी टोकी जायँगी। हम इसी रोक टोक की नौकरी पाते हैं। यही हमारा खास काम है। हमको हुक्म

मिला है कि चाहे कोई हो–राजा ही क्यों न हो–उन्हें भी रोक लो। फिर आज तो खास बात है।

मानको०–वह क्या ?

चप०–यह पूछ कर तुम क्या करोगी ? जैसे तुम्हारे रनिवास की बात गोपनीय (खुफिया) है वैसे ही हमारे रियासत की भी। जब तुमने अपनी नहीं बताई तो फिर मुझसे पूछने का क्या हक है ?

मानको०–देखो भाई, जैसे तुम चाकर हो वैसे ही हम भी हैं। दोनों एक राज्य के हैं। बात यह है कि–शशिप्रभा की तबीयत यकायक खराब हो गई है। जाती हूँ तिड़बिड़ङ्ग शास्त्री को बुलाने। तिड़बिड़ङ्ग शास्त्री का मीन मेष प्रसिद्ध ही है। दिन में क्यों आए, अकेले क्यों आए, ऐसी बात क्यों किये, वैसे खड़े क्यों हुए, इत्यादि२ प्रश्नों के मारे वे नातिका बन्द कर देते हैं। रोगी का हाल उन्हें सुनाना तो मानों सोते हुए साँप को जगाना है।

एक आदमी रोगी का वृतान्त कहने जाय तो उसे दूर से देखते ही कहने लगते हैं–जाओ २ रोगी नहीं बचेगा। दो को देखते हैं तो कहते हैं असाध्य है, दूसरे वैद के पास जाओ। तीन तो उन्हें शूलपाणि का त्रिशूल ही भासने लगते हैं। तभी तो मैं तीन और साथ लिये जा रही हूँ। यदि तुम दोनों भी मेरे साथ चले चलो तो बड़ी अच्छी बात हो। क्योंकि हम स्त्री हैं रात का समय है कोट के बाहर जाना है। फिर शास्त्रीजी का घर भी ऐसे शैतानी गली में है कि जाते भय मालूम होता है। चले चलो, हम कुमारी से सह कर तुम्हें जमामार, नहीं नहीं जमादार बना देंगे।

चप०–सुनिये, मैं अभी नया नौकर हूँ और यह हमारा साथी भी अभी एक साल का मुलाजिम है। हम दोनों अभी यहाँ के रीत रश्म और लोग बाग से नावाकिफ हैं। हमें अभी अपने

हो फिरके का नाम धाम मालूम नहीं। रनिवास का तो कहना ही क्या। आपकी बात हम न टालते जरूर साथ चलते परन्तु आज एक नया उपद्रव कोट के भीतर खड़ा हो गया है। तीन कैदी–जो उस दिन रनिवास के इहाते में पकड़े गये थे–वे आज अभी पिंजड़े में से निकल कर भाग गए। उनकी खोज में कोट का सारा फिरका भागा२ फिर रहा है। हम भी उन्हीं को तालाश कर रहे हैं। अतएव इस समय हम लाचार हैं।

दू०चप०–(पहिले के कान में) अरे यार चलाचल, कल्याण हो जायगा। यह सुखमा शशि की मुँह लगी सहेली है। इसको ही तूती बोलती है। यह चाहे तो राई का पर्वत और पर्वत का राई कर दे। मारो साले कैदियों को चले चलो, अच्छा मौका है।

चप०–(दूसरे के कान में) जमादार को जूतियाँ कौन खायगा ?

दू०–चप०–जमादार को ? सुखमा का नाम सुनते ही जमादार की भी नानी मर जायगी। शशि की सहेलियों को कौन नहीं जानता। देखो उस दिन उस बंगालिन (सौदामिनी) ने कैसा काम किया। यह सुखमा सखी भी बंगालिन से कम नहीं है। इसकी बात पत्थर पर की लकीर जानना। हाँ, चले चलो कहना मानो।

पहिले चपरासी ने–हेमन–से कहा–चल भाई तेरी यही इच्छा है तो चल, जो होगा भुगत लेंगे।

आगे २ चपरासी पीछे २ चारों स्त्रियाँ सदर फाटक पर पहुँचीं। फाटक के संतरी ने छवों को रोक कर पूछा कौन ?

संतरी के पूछने पर लंठसिंह ने सब कहानी कह सुनाई और सबको लेकर फाटक के बाहर निकला। कोट के बाहर अजयगढ़ की बाजार है। इसी बाजार को एक तंग गली में मानकी घुसी। कुछ दूर जाकर एक और तंग गली में से निकल कर

एक फाटक पर पहुँची। फाटक के बाहर दोनों चपरासियों को रोक कर कहा—तुम लोग यहीं फाटक पर खड़े रहो मैं शास्त्रीजी से दवा लेकर आती हूँ। वहां साथ चलने पर वही ५।८ का मीन मेष लगेगा इससे बेहतर है तुम यहीं ठहरे रहो मैं अभी आई।

यह कह कर वह तीनों को साथ ले उस फाटक में घुसी और भगवान जाने कि फिर वे चारों कहाँ चले गए। आगे चलकर मालूम होगा कि वे कहाँ चले गये। अब उनका हाल सुनो जो दो चपरासी उस बड़े फाटक पर बैठे सुखमा की राह देख रहे हैं।

घंटा बीता दो घंटा बीता अभी तक सुखमा का पता नहीं मामला क्या है। वह कहती थी—वैद बड़ा क्रोधी और जिद्दी है जरूर उसने चारों को रोक लिया है। दवा तैयार न रही होगी कहा होगा—तनक ठहर जाओ दवा तैयार करा कर देते हैं। इसी कारण चारों रुक गए। अथवा कहीं रोगी देखने गये होंगे। अब आने ही चाहते हैं, इस आशा से वे सारी रात खड़े इंतिजारी किये होंगे।

सूरज निकलते ही वे उनकी तलाश में पड़े। देखा तो वह केवल फाटक ही फाटक है। बाहर से ऐसा जान पड़ता है मानों किसी बड़े मकान का सदर फाटक है परन्तु उसे लाँघते ही उसके बाहर रास्ता मिलता है। दोनों उसी रास्ते से बाहर निकले। दो चार ने पूछा—भाई, यहां कोई तिड़बिड़ंग शास्त्री रहते हैं।

एक ने कहा—बेवकूफ है क्या। तिड़बिड़ंग किस बिहंग का नाम है?

वह विचारे और आगे बढ़े।

एक स्थान पर एक बाबू बैठे कुछ लिख रहे थे चपरासी ने पूछा—बाबू साहेब यहाँ तिड़बिड़ंग वैद कहाँ रहते हैं। बाबू साहेब हिन्दी भाषा के प्रेमी थे यकायक "तिड़बिड़ंग" शब्द

सुनते ही चौंक पड़े और चट नागरी कोष निकाल कर "तिड़-बिड़ंग" की खोज किये। देखा तो तिड़बिड़ंग का अर्थ टेढ़ामेढ़ा लिखा पाया। हँसकर बोले, भाई! तिड़बिड़ंग शास्त्री तो यहाँ कोई नहीं रहता, मैंने तो आज आपसे ही ऐसा नाम सुना है।

वे चपरासी फिर कुछ न बोले और उलटे कोर्ट की ओर चल दिये। राह में दोनों चपरासी आपस में लड़ने लगे। पहिला बोला, मैंने तो कह दिया था कि मैं न जाऊँगा तुम्हीं जमादार बनने की लालच में सुखमा अपनी नानी के साथ वैद बुलाने चल दिये! यह नहीं जाना कि आगे क्या है। लो, अब बनो जमामार। जमादार बनने चले गँवार बनके आए!

दूसरे ने कहा—अम्याँ तो टरति क्या हो, न गए होते?

पहिला०—मैंने कहा था कि चलो! अरे मियाँ, बड़ा धोखा खा गए। वे चारों कैदी ही थे जो चरका बताकर निकल गए। लो अब हाथ मलो।

यह कहते हुए वे दोनों कोर्ट की ओर चले गये।



चौथा परिच्छेद।

जाने दीजिये इन्हें कोट पतलून में और आइए अब हम आप काशी पुरी की झाँकी कर आएँ। भाई, खाने को भरपेट न मिले, पहिरने को मोटा फटा ही मिले, रहने को गंगा का घाट ही, सही परन्तु काशी का साथ न छूटे। क्योंकिः—

कुं०—दुइ फंका अच्छत मिले, दुइ अञ्जुलि जल गंग।
मढ़ो बुरज डासन भला, दुइ चुल्लू शिव-रंग॥
दुइ चुल्लू शिव-रंग, पास फटके नहिं चिंता।
इतनहिं होवै तऊ त्यागु, काशी जनि मिंता॥

हम काशी के लाल, हमारी काशी लंका।
पड़े रहो चुपचाप, मारि चरबन दुइ फंका॥
दो०—बुरजी पर बैठे करो, शिव गंगा का ध्यान।
चना चबैना चाभि के, कच्चरो मगही पान॥

इसमें सन्देह नहीं कि यदि जीवन का आनन्द चाहते हैं तो वह काशी ही में मिल सकता है। है भी वह आनन्द-बन। जब वह आनन्द-बनही है तो वहाँ आनन्द की क्या कमी है। जो सुख चाहो वह मिले। पैसा भी न हो तौ, भी सब आनंद ही आनन्द है। कोई न कोई माई का लाल तो मिल ही जाता है। और पैसा है तो फिर क्या पूछना। फिर तो आनन्द रूप धर कर स्वयं आनन्दानन्द खड़े हैं।

है हमारा यह बना-रस हम बना-रस के भ्रमर।
इस बना-रस को बिगाड़े कौन है वह वीर नर॥

चलो आओ देखो यही काशी है न! देखो सामने कुछ जलता दिखाई पड़ता है! जानते हो वह क्या जल रहा है! वह चिता है, किसी महाभागी का शरीर जल रहा है। यह स्थान महास्मशान है। यहाँ चिता की आग हमेशा दहकती रहती है। इसी से "स्मशान घाट" कहलाता है। सत्यवादी हरिश्चन्द्र इसी स्मशान पर नौकर थे। इसीलिये यह "हरिश्चन्द्र घाट" भी प्रख्यात है। चलो आओ हम भी स्मशान बाबा का दर्शन कर लें। अच्छा यह उत्तर की ओर जो पक्का घाट है, जिस घाट पर चार संगीन बुरजी हैं-जानते हो इस घाट का क्या नाम है! यह "केदारघाट" कहलाता है। बड़ा संगीन और प्रसिद्ध घाट है। अच्छा, इस घाट की उत्तरवाली बुरजी पर जो पाँच चार मनुष्य बैठे कहकहा लगा रहे हैं ये कौन हैं! आओ चलें उनकी भी सुनलें।

ये पाँच हैं और एकही अवस्था के हैं। रंग भेद तो जरूर

है परन्तु अवस्था भेद नहीं। मालूम होता है कि पाँचो एक ही उदर से एक ही साथ जन्मे हैं। एक इनमें जरा सुघर और साफ है। शेष चारों भी अभी गभरू हैं। जो इनमें सुघर और साफ है वह तेजमान भी है। जान पड़ता है, कि वह राजपुत्र (रजपूत-क्षत्रिय) है। इसे हम कुछ देर के लिये-जब तक इस का असली नाम प्रगट नहीं होता-राजपुत्र ही लिखेंगे।

उस राजपूत ने अपने एक साथी से कहा-चलो भाई, नहा धो लेवें। चलो तनक चौक में चलें दिल बहला आएँ।

एक साथी--दिलही बहलाते रहोगे कि कुछ करो कराओगे?

राजपुत्र॰ अरेयार, कर करा तो लिया। बाकी तो कुछ छोड़ा नहीं। हाँ, अब मौका है। ऐसी कोशिश करें कि सब के सब उसी में ऐसा उलझें जैसे मक्खी मकड़े के जाले में।

रा॰ पू॰-तो अब क्या देर है?

साथी॰-कुछ नहीं उनकी आज तिथि है।

रा॰ पू॰-क्या आज ही उसमें···पैठने की साइत है?

साथी॰-जी हाँ, आज तीन बजकर पैंतालीस मिनट पर वे लोग पैठेंगे।

रा॰ पू॰-तब क्या करोगे?

साथी॰-जो करेंगे वह मालूम हो जायगा।

रा॰ पू॰-फिर भी तो?

साथी॰-समय क्या करावेगा, उस समय कैसी सूझ सूझेगी, यह पहिले ही से कह कर बताया नहीं जा सकता। तब उन्हें पैठने दीजिये उस समय जो होगा उसे आप देखही लेंगे।

एक दूसरे साथी ने कहा-भाई, अब गपसप छोड़ो बड़ी देर हुई। नहा धोकर डेरे पर चलो, भूख लगी है। यह कह सब के सब गोता लगाए और चटपट डेरे की ओर रवाना हुए।

पाठकों की घबराहट दूर करने के लिये हम उपर लिखे

मनुष्यों का परिचय करा देना जरूरी समझते हैं। जिसे हमने राजपुत्र लिखा है वह हमारे पाठकों का परिचित कुँअर कर्मसिंह है। जिसे एक साथी लिखा है वह कर्मसिंह का प्यारा दुलारा धूर्त शंकर है। तीसरे चौथे और पाँचवे व्यक्ति का नाम क्रम से–सीताराम, रामनाथ, संतसिंह, भोज ःत्त आदि हैं।

इन सबों की बातों से पता चलता है कि ये कोई भारी षड़यन्त्र रच चुके हैं और शीघ्र ही कोई नया गुल खिलाना चाहते हैं। अच्छा इन्हें यहीं छोड़िये और और आइये अब हम आपको वहाँ ले चलें जहाँ इनके प्रतिपक्षी (मुख़ालिफ) चुनार वाले हैं।

लीजिए, देखिए! यहाँ तो खासी सभा (मीटिंग) हो रही है। आओ तनक पास चल कर देखें क्या हे: रहा है। सामने जो बड़ी आन बान से बैठे हैं यही चुनार के भावी महाराज़–वर्तमान युवराज, कुँअर शमशेर बहादुरसिंह हैं। इधर उधर बैठे हुए ध्यान, धीर, रनधीर, वीर और सुमेरसिंह आदि हैं।

कुँअर शमशेरबहादुरसिंह ने कहा, ध्यानसिंह, बटुकसिंह जैसा कहते हैं–अर्थात् इसी शिवाले की राह पैठा ज़ाय और देखा जाय कि बात क्या है, हम लोग राह पाते हैं या इसी में भटकते फिरते हैं अथवा कोई दूसरा ही गुल खिलता है! यह राह बटुक की ज़ानी हुई है इस लिये यही उत्तम है।

ध्यानसिंह ने उत्तर दिया–बटुकसिंह को खुद रास्ता मालूम नहीं, वह तो बिना लक्कड़ी का अन्धा है। उसके भरोसे पर चल निकलने में सिवा तक्लीफ के आराम नहीं।

बटुकसिंह ने कहा–हाँ, साहेब! ध्यानसिंह ठीक कह रहे हैं। मैं बिना लकड़ी (किताब) का अन्धा हूँ। परन्तु यह आशा है कि येकायेक ऐसी बारी न आएगी कि नितान्त ही अंधा बन जाऊँ। गुरु कृपा से इस तिलिस्म का उलझन सेवक ही से सुलझता रहा है और उनकी कृपा हुई तो फिर सुलझेगा।

किताब सुसरी गई तो जाने दूं, मैं तो अभी ज़ीवित हूँ। हाँ अब-जब किताब हाथ में नहीं है-यन्त्रों के समझने बूझने, चलाने फिराने, में समय अधिक लगेगा। और यह भी सम्भव है कि किसी गहरे चक्कर में पड़ कर वर्षों इसी में ठोकर खाते पड़े रहें।

शमशेर०-ऐसा भी सम्भव है।

बटुक०-जी हां, इसके कारीगर ने इसे ऐसा ही बनाया है कि यदि इसमें कहीं फँसे तो फिर फँसे। न राह मिलेगी और न निकल पायेंगे। और जो कहीं राह सूझती चली गई तो फिर महालक्ष्मी के दर्शन किये बिना नहीं लौटने के।

शमशेर०-महालक्ष्मी कैसी ?

बटुक०-जिनकी रक्षा के लिये यह गोरखधंधा रचा गया।

शम०-नहीं समझा।

बटुक०-अतुल खजाने को वैरियों से रक्षित रखने के दोही उपाय हैं। यदि धन थोड़ा है तो उसे धरती खोद कर गाड़ देने से रक्षा हो जाती है। वैरी उसके लिये कहां २ खोदता फिरेगा। वैरियों, डाकुओं, लुटेरों से रक्षा करने के लिये समय २ पर अकूत धन संपति धरती खोद कर गाड़ दी जाती है। शान्ति होने पर यदि गाड़ने वाले बच गए तो। पा गए और जो गये तो वह धन भी वहीं किसी अभागे के भाग की परीक्षा करता अनिश्चित समय तक बंद पड़ा रह गया। जिसके भाग में जब बदा हुआ तब वह पाया।

और जब धन संपति अकूत, अतुल और मूल्यवान है तो उसे धरते तो धरती ही में हैं पर उस तह में-जहाँ सम्पत्ति धरी जाती है-भाँति २ की कारीगरियों से पूर्ण यन्त्रों को लगा देते हैं जिसमें सम्पत्ति लेनेवाला यन्त्रों की उलझनों ही में उलझ कर वहाँ तक-जहाँ सम्पत्ति है-न पहुँच पावे और बीच ही में उलझा पड़ा रहे।

इसी दूसरे तरीके का यह भी तिलिस्म है। यद्यपि ऐसे अनेकों तिलिस्म चुनार और अष्टभुजा के बीच के पहाड़ में मौजूद हैं और यवनपूर में गोमती नदी के किनारे पर भी एक तिलिस्म है परन्तु यह तिलिस्म–महात्मा बुद्ध के समय किसी काशीवाल राजा ने बनवाया है। गुप्तवंश और मौर्यवंश के सारे धन रत्न इसी तिलिस्म में रखे हैं। अशोक नामक सम्राट ने तो दशों दिशाओं को विजय कर सारा धन रत्न इसमें धर दिया। यही नहीं कि इन तिलिस्मों में दौलत ही रक्खी जाती हो, इनमें कैदी भी रखे जाते हैं। जिन्हें बाहर की हवा न लगने देना चाहें और न वह किसी भी युक्ति से बाहर की हवा खा सकें वे ऐसेही तिलिस्मों में रखे जाते हैं। तभी तो इसमें चञ्चला रखी गई।

शम०–क्या उस महालक्ष्मी के दर्शन हम कर सकते हैं?

बटुक०–हाँ, यदि किताब मिल जाय तो........

शम०–किताब तो तुम इसी में छोड़ आए हो न?

बटुक०–जी हां छोड़ तो हम वहीं आए जहां वह औरत रखी गई।

शम०–तब वह वहीं मिलेगी।

बटुक०–जी हां, वहां न मिलेगी तो उस स्त्री के पास मिलेगी।

शमशेरबहादुरसिंह ने कहा–तो अब क्या देखते हो चलो उठो अब देर क्यों कर रहे हो। कहो भाई ध्यान! क्या मर्जी है?

ध्यानसिंह ने कहा–उतावला सो बावला। धीरा सो हीरा। देर आयद दुरुस्त आयद। समझने दो विचारने दो, आगा पीछा सोच लेने दो इसके बाद जो कहो हम वही करने को तैयार हैं। यह तिलिस्म है, मक्खी मकड़ी के जाले में फँस कर भी निकल जा सकती है परन्तु तिलिस्म के गोरख धंधे का फँसा हुआ जीव नहीं निकल पाता। "यह कैसा तिलिस्म है" यह उस

समय मालूम होगा जब इसमें पैठ कर इसे देखेंगे। यह सामने वाला वन कैसा है चलो तनक उधर चलें इसे पीछे लौटकर देखेंगे।

कुँअर शमशेरबहादुरसिंह, और ध्यानसिंह आदि वरुणा नामक नदी के पारवाले बन में घुसे। बसंत का महीना होने से वन में पतझड़ हो रहा था। बिना पत्तों के पेड़ ऐसे मालूम होते थे जैसे बिना वस्त्र और आभूषण की स्त्री। पत्तों के न होने से वनकी सघनता लुप्त हो गई थी और सूरज की रौशनी से अच्छा खासा उजेला फैला हुआ था।

चुनारकी धूर्त मंडली धीरे २ कदम बढ़ाये दूर तक उस वन में चली आई। सामने देखा तो एक ऊँचा टीला नज़र आया। धीर और वीर उस टीले को देख कर ध्यानसिंह से बोले-भाई साहेब यह क्या है?

ध्यानसिंह ने तो उत्तर न दिया परन्तु बटुकसिंह ने कहा-यह महात्मा का तप-स्तूप है। बुद्ध भगवान ने पहिले पहिल यहीं तपस्या की है। यह स्तूप (गुंबद) उन्हीं का है। मैं भी यहाँ आज आया हूँ। मुझे इस बन में आने को आवश्यता ही क्या?

उस ऊँचे स्तूप के पास पहुँच कर ध्यानसिंह ने ध्यान लगा कर उसे देखा। वह पचास साठ फोट ऊँचा इतना ही व्यास का एक स्तूप है। देखने से वह ऐसा मालूम होता है मानो किसी ने एक बड़ा गिलास औंधा दिया है। स्तूप में न कहीं द्वार है और न कहीं छेद। दशा भी उसकी जीर्ण शीर्ण हो रही है। क्योंकि बहुत पुराना हो जाने के कारण बाहर का प्लास्टर गिर गया है। ईंटें निकल आई हैं। उन ईंटों में भाँति२ की बनस्पति उगी हैं। पीपल, नीम, पाकर बर, गूलर आदि के पौदे ही अधिक हैं। घास भी कम नहीं है। घासों का स्तूप के मस्तक पर अखण्ड आसन लगा है। चारों ओर ताखे उन ताखों में मूर्तियों के नीचे कुछ लिखा हुआ भी है। क्या लिखा

है यह तो कभी फिर मालूम होगा इस समय स्तूप ही का वर्णन सुन लें।

ध्यानसिंह ने उस स्तूप को बड़े गौर से देखा और देख कर अनुमान किया कि यह गुंबद भी बेमतलब नहीं है। इसमें जरूर कुछ रहस्य है।

ध्यानसिंह ने बटुकसिंह से पूछा–बटुकसिंह! इस गुंबद का कुछ भेद जानते हो?

बटुक ने कहा–जी नहीं, मैंने इतना ही सुना है कि बौद्ध मजहब को चलाने वाले बुद्ध भगवान का यह यादगार है। कोई २ इसे लोरिक का कुदान भी कहते हैं।

ध्यानसिंह ने पूछा—लोरिक का कुदान कैसा?

बटुक बोला०–लोरिक नाम का एक अहीर था जो इस स्तूप पर से फरी मार कर एक दूसरे टीले पर जो इससे आगे है–कूद जाता था इसी से गँवार इसे "लोरिक का कुदान" कहते हैं।

ध्यान०–क्या कोई दूसरा टीला भी है।

बटुक०–देखा तो नहीं पर सुनते हैं कि दो टीले हैं।

ध्यानसिंह कुछ इधर उधर निगाह दौड़ा कर देखे। उन्हें पहिले टीले से पश्चिम दक्खिन के कोने पर पहिले टीले से छोटा अठपहला एक और टीला झलका। इस टीले में भीतर जाने का रास्ता भी था! उसी रास्ते सब लोग टीले के भीतर गए। इधर उधर नज़र दौड़ा कर टीले को देखे। फिर सबको साथ लेकर ध्यानसिंह उसी बड़े टीले के पास आए और उसकी परिक्रमा करते हुए एक स्थान पर ध्यान पूर्वक कान उस गुवन्द से लगा लगाकर कुछ सुनने लगे।

उस गुंबद के चारो ओर कान लगा २ कर न जाने क्या सुन रहे हैं। कभी वे चार अंगुल पर कान रखते हैं तो कभी हाथों की दूरी पर। कुछ देर इसी प्रकार सुनने के बाद

ध्यानसिंह ने बटुकसिंह को बुलाया और उससे कहा—बटुक २! तनक इस गुंबद में कान तो लगाओ!

बटुक सिंहने गुंबद की दीवार से कई बार ठहर २ कर कई स्थानों पर कान लगाया।

जब ध्यानसिंहने पूछा कि कहो, कुछ सुना? तो उसने दोबारा कान दीवार से लगाए हुए बोला—हां, कुछ सुन रहा हूँ। जब ध्यानसिंह ने पूछा-क्या सुन रहे हो? तो बटुकसिंह बोला कि कुछ गरजने और तड़पने की सी आवाज़ सुन रहे हैं।

ध्यानसिंह-इस आवाज़ का कुछ कारण बता सकते हो?

बटुक०-मैं इस तिलिस्म में कई बार प्रवेश करके भी यहाँ तक नहीं पहुँचा। मुझे यह भी नहीं मालूम था कि इस घनघोर वन में कोई गुंबद भी है। हाँ इतना जानता था कि यह वन बड़ा पुनीत और प्रसिद्ध है। इसी तपोभूमि में महात्मा गौतमबुद्ध ने तप किया है। यह गुंबद उन्हीं के स्मारक में उन्हीं के किसी भक्त भूपाल ने बनवाया है। अब इसमें आवाज़ कैसी आ रही है यह मैं नहीं बता सकता।

ध्यानसिंह ने कहा—देखो बटुकसिंह! अब तुम हमारे साथियों में शरीक हुए, कर्मसिंह से नाता तोड़ कर कुँअर समशेरबहादुर के मददगार कहलाए। कुँअर साहेब ने हुक्म भी दे दिया है कि बटुकसिंह को पाँच रुपये रोज खर्च खजाने से मिला करे और उसे किसी तरह की तकलीफ न होने पावे। अतएव अब तुम हमारे भाई हो। तुम्हें अब मुझसे किसी प्रकार का दुराव न रखना चाहिये। जो बात हो साफ २ कहना चाहिये। अब छिपा चुरा कर बात करने से कोई मजा नहीं। मर्दों की बात ही तो है:—

"हाँ करी तो हाँ करी जो ना करी तो ना करी"

आपने वादा किया है कि मैं इस तिलिस्म का रत्ती २ हाल

बता दूँगा और चंचला नामी स्त्री को-जो इसमें क़ैद है—आप से मिला दूँगा अतः अब आप दिल खोल कर हम से मिलें। हमारे भाई वीरसिंह ने जो पुरस्कार (इनाम) एवज में आपको देने कहा है वह तो आपको मिलेहीगा साथ ही राज से आपको आजीवन मदद मिलती रहेगी। कर्मसिंह का इतने दिन साथ देकर आपने क्या फल पाया?

बटुकसिंह ने कहा, भाई साहेब! कुँअर कर्मसिंह के यहाँ मैं और बेचूसिंह दोनों इसी तिलिस्म की बदौलत नौकर हुए सीताराम धूर्त इस तिलिस्म का कुछ निशान जानता था वही ढूँढ़ता खोजता हमारा पता लगाया और मुझे दो रुपये रोज देने का वादा करा कर कहा कि हम एक औरत भेजेंगे उसे तुम इस तिलिस्म में डाल देना और जब हम कहें हमारे सुपुर्द कर देना। उसी के कहे अनुसार मैंने सारा काम किया। लेकिन उसने दो रुपये रोज के हिसाब से छ महीने की तलब आज तक न दिलाया। मिर्जापूर भी गए। कुँअर कर्मसिंह से भी कहा। फल कुछ न निकला। कुछ मामूली सफर खर्च दे दिलाकर बिदा कर दिया। तब से मैं और मेरा साथी बेचू दोनों उनका साथ छोड़ दिये। फिर कभी इस तिलिस्म की ओर ताके तक नहीं। उस स्त्री को-जिसका नाम चंचला बता रहे हैं-मैंने ही इसमें रक्खा है। और जहाँ रक्खा है वह स्थान मुझे खूब मालूम है। परन्तु उस स्थान तक पहुँचने के लिये जो रास्ते हैं वे बड़े पेचीदे और तिलिस्मों से जकड़े हुए हैं। उन रास्तों के समझने के लिये गुरुजी ने एक किताब मुझे दी थी। उसी किताब के सहारे मैं इस तिलिस्म में ऐसा घूमता था जैसे अपने घरों में घूमता हूँ। वह किताब भी उसी में छूट गई! तब मैं एक सलाह आपको देता हूँ कि आप मेरे साथी बेचूसिंह को भी मिला लें।

वह यदि मिल जावें तो हम दोनों मिल कर बिना किताब के भी इसे खोलने की कोशिश करें । एक दूसरे की मदद से इसका खुल जाना कोई मुश्किल नहीं । जहाँ मैं भूलूँगा वहाँ वह मदद करेगा जहाँ वह भूलेगा तहाँ मैं मदद करूँगा।

बटुकसिंह के कहे अनुसार यह सलाह ठहरी कि लौट चला जाय और बेचूसिंह से मिला जाय । यह सलाह कर सबके सब शहर को लौट आए ।

पाँचवाँ परिच्छेद।

अब तनक चंचला का भी समाचार पाठकों को सुना देना उचित होगा । क्योंकि उस बिचारी का हाल न तो किसी सहृदय पाठक ने पूछा और न हमने लिखा । अब जब कि उसकी चर्चा जोरों पर है उसका कुछ समाचार सुन सुना लेना बहुत उचित जान पड़ता है।

यहां तक तो आपको मालूम है कि—बटुकसिंह और बेचूसिंह उसे एक साफ सुथरी दालान के साफ सुथरे बिस्तर पर लिटा कर उसकी नाक से कुछ लगाया और उसके सचेत होने से पहिले ही दोनों भाग कर सामने वाले तालाब में कूद पड़े [देखें भाग २ पृष्ट २५]

उसी भाग के उसी पृष्ठ में यह भी लिखा जा चुका है कि जो झोली बटुकसिंह और बेचूसिंह ने तालाब के घाट पर छोड़ी थी वह सचेत होने पर चंचला को पड़ी मिली। चंचला उस झोली के सामानों को देख बड़ी खुश हुई और उसमें की किताबें देख कर उसके आनन्द का वारापार न रहा।

किताब और झोली को सिरहाने रख वह यह कह कर सो गई कि कल इसे देखूंगी। (देखो भाग २ पृष्ठ २७)

दूसरे दिन चंचला उठी। अपने जरूरी कामों से निपट कर उस तालाब पर आई और उस किताब को गौर से पढ़ने लगी। उसकी भूमिका में लिखा था—"यह तिलिस्म महात्मा बुद्ध भक्त महाराजा अशोक ने अपनी अतुल धन सम्पत्ति के रक्षार्थ निर्माण कराया और अपने इष्टदेव महात्मा बुद्ध के स्मृतिस्वरूप इसका नाम " "बुद्ध तिलिस्म " रखा। इस तिलिस्म के यन्त्रों की सूची और उनके व्यवहार की विधि ब्रह्मगुप्त नामक विद्वान से लिखाया जिससे जब कभी जिस किसी के हाथ यह पुस्तक पड़े वह इसके सहारे इस तिलिस्म का बहार लूटे।

भूमिका पढ़ कर चंचला मनही मन बड़ी प्रसन्न हुई और उसके पृष्ठों को उलट कर देखा तो सब से पहिले उसमें यह लिखा मिलाः—

"इस तिलिस्म की लम्बाई उत्तर से दक्खिन चार कोस और पूर्व से पश्चिम दो कोस है।" उत्तर और दक्खिन दोनों ओर दो विशाल बुद्ध की मूर्ति है। यही मूर्तियाँ इस तिलिस्म की रक्षक हैं।"

इसी के नीचे लिखा थाः—

" इस तिलिस्म के बीच में जो तालाब है वही इसकी कुंजी है। "

इतना ही वह पढ़ पाई थी कि इतने में उस तालाब में बड़े जोर की खलबलाहट पैदा हुई। मालूम हुआ कि कोई उस तालाब को बड़े जोर से मथ रहा है। देखते ही देखते उसमें से सैकड़ों पीत-पट-धारिणी योगिनें हाथ में लम्बा त्रिशूल लिये बाहर निकलीं और चंचला के सामने खड़ी हो

कहने लगीं:—तुम कौन और कैसे यहाँ आई? यह स्थान तपोभूमि भिक्षुओं साधुओं और मुनिओं के रहने को है, यहाँ गृहस्थ स्त्री का क्या काम? फौरन बोलो कि तुम कौन हो?"

चंचला उन योगिनों के झुण्ड को देख घबराई नहीं क्योंकि वह जानती थी कि ऐसे स्थानों में ऐसी ही माया व्यापी रहती है। वह विन्ध्यगिरि के अनेकों तिलिस्मों में अनेकों प्रकार की माया देखी भाली थी। वह जानती थी कि ऐसे तिलिस्मों में इन्हीं योगी और योगिनों की भरमार रहती है। तिलिस्म एक प्रकार से इन्हीं के कब्ज़े में रहता है। येही तिलिस्मों की रानी बन बैठती हैं। उसने मन में मान भी लिया कि हो न हो येही इस तिलिस्म की रानी हों। उसने किताब को अंचल की ओट में कर प्रश्नकर्त्री को उत्तर दिया और अपनी राम कहानी उसे सुना गई।

आदि से अन्त तक उसकी (चञ्चला की) रामकहानी सुन कर उन योगिनों में की एक योगिनी ने हँस कर कहा—"अच्छा तो अब कुछ दिन इस शुद्ध तिलिस्म की भी हवा खा लीजिये। यह कह वह तालाब में कूद पड़ी। उसके तालाब में कूदते ही उसकी सारी साथिनें—जो गिनती में सौ से कम न रही होंगी"—एक साथ उस तालाब में कूद कर गायब हो गईं।

इन सबों के कूदने से तालाब का जल हाथों उछाल खाने लग गया कुछ देर में वह शांत हुआ। तालाब के शांत होतेही चञ्चला ने अपना बायाँ हाथ अंचल के बाहर निकाला। देखा तो हाथ में वह किताब नहीं! अरे, किताब कहाँ गई? वे सब तो मुझसे बड़ी दूर खड़ी होकर बातें कीं, मेरे पास तक न आईं और न मुझसे किताब ही लीं, फिर वह किताब हाथ की हाथही में गायब कैसे हो गई!! ज़रूर कुछ जादू की करामात है। उन योगिनों ने जादू के जोर से उस किताब

को ले लिया । तभी तो वे हँसती और किलकारियाँ मारती पानी में कूद पड़ीं ! हा दैव, विचारा था कि किताब की सहायता से इस गोरखधंधे से छूटूंगी अब वह भी गई । अच्छा, हारिये न हिम्मत विसारिये न राम ।

चुनार और अजयगढ़ वालों को मेरी मुसीबत का क्या पता और वे यहाँ आने ही कब लगे । हाँ, मेरी प्यारी सखी शशि ज़रूर मेरे लिये तड़पती होगी । पर वह तड़पकर कर क्या सकती है ? अबला तो अबला । ऐसे मोर्चों में प्रबल भी दुर्बल हो जाते हैं तो अबला बिचारी तो अबला ही ठहरी । अच्छा अब तो एक बार अपनी कोशिश कर देखूं यदि सफल हुई तो निकलीं और न भी सफल हुई तो कुछ चिन्ता नहीं । इसमें तो अब पड़ी ही हैं ।

प्रारब्ध में जो अंकित वह भोगना पड़ेगा ।
धुकपुक हृदय में जिसके वह खेत क्या लड़ेगा ?

यह कह कर वह उठी और उस मैदान की ओर चली जो उस तिलिस्मी दालान के उत्तर ओर कोसों तक फैला था ।

दालान से पचास साठ कदम आगे बढ़तेही एक बावली देखी जिसके चारों ओर सीढ़ी थी । चञ्चला पूरब की सीढ़ी से नीचे उतरी । नीचे देखा कि बावली में जल नहीं है, सूखी पड़ी है । कौतुहल वश वह उस गढ़े में उतर पड़ी जो जल निकलने के लिये बनी थी ।

गढ़े में उतर कर चञ्चला ने देखा कि जैसे इस बावली में सीढ़ी दार चारों दिशाओं में चार घाट हैं वैसे ही ठीक हर एक दिशा की सीढ़ी के नीचे एक २ दरवाजे हैं । तारीफ यह कि चारों दिशाओंके चारों फाटक और उन के साह चौखट एवं पल्ले सब पत्थरके हैं । पल्लों पर पत्थर ही के नकासीदार बेनी और पुस्तवान भी हैं । चञ्चला ने उत्तर वाले दर

वाजे को खोला तो दोनों पत्थर के पल्ले वैसे ही खुले जैसे लकड़ी के पल्ले खुलते हैं।

चंचला ने पत्थर के शाह चौखट तो देखे थे पर पत्थर के पल्ले नहीं देखे थे इसीलिये वह उन पल्लों को बड़े गौर से देखती रही। इसके बाद उसकी नज़र दरवाजे के ऊपरी मेहराव पर पड़ी जिसमें लिखा था:—

"बुद्ध द्वार"

जब उसने अपनी निगाह दक्खिन के द्वार पर की तो उस दरवाजे पर भी—"मुक्ति-द्वार" लिखा था।

यह देख वह पूर्व द्वार पर आई। देखा तो उसके मेहराव पर भी "गंगद्वार" लिखा था। जब वह पश्चिम के द्वार पर आई तो उसमें "वरुण द्वार" लिखा देखा।

तीन द्वार तो बंद थे परन्तु उत्तर का द्वार खुला पड़ा था उसने उन बंद द्वारों को खोलना चाहा पर वे न खुले। ऐसा उसे जान पड़ा मानो उन्हे कोई भीतर से जकड़ कर बंद किये है।

उत्तर के द्वार के पल्लों को देखा तो उसमें न बाहर से बंद करने को कुंडो वा पेंच पाया, न भीतरसे। नीचे चूल में लोहा जड़ा देखा जिसके सहारे वह पत्थर का पल्ला बड़ी आसानी से खुलता और बन्द होता था।

चञ्चला ने मनमें अनुमान किया कि इन पल्लों की चूलों में चुम्बक लगा होगा। उसी चुम्बक के द्वारा यह खुलता और बंद होता होगा। उसका यह अनुमान सही निकला। बावली के गढ़े के बीच में एक मोटे लोहे की छड़ गड़ी हुई थी। जैसे तालाबों के बीच में पानी का नाप रखने के लिये खंभे गाड़े जाते हैं वैसे बावली के बीच में लोहे कि मोटी छड़ गड़ी थी। उस छड़ पर चार मुख वाला धात का सिंह जड़ा हुआ था। सिंह के चारो मुख चारो दिशाओं की ओर थे। उन

सिंहों की बाहर कढ़ी हुई जीभों से एक २ पतला तार धरती की ओर तक लटक रहा था। चञ्चला ने सिंह के उत्तर वाले मुख के तार को खींचा तो वह पल्ला मुँद कर फिर खुल गया। जब उसने पूरब वाले तार को खींचा तो पूरब का पल्ला खुल गया परन्तु तार को ढीला करते ही वह फिर बंद हो गया।

अब वह समझ गई। उसने यह जान लिया कि यदि पल्लों को खुला रखना चाहें तो तार को खींचकर खम्भे में बाँध दें। जब तक तार बँधा रहेगा पल्ले न भिड़ेंगे। और जब बंद करना हो तार को खोल दें बंद हो जायगा। इसी रीति के सहारे चञ्चला ने पहिले बुद्ध द्वार ही में पाँव रखा। डेवढ़ीसे भीतर पाँव रखते ही उसने देखा कि दरवाजे के नीचे सौ डंडे की सीढ़ी बनी हुई है। साथ ही बगल में एक सीढ़ी ऊपर की ओर भी उतने ही डंडों की देखकर वह बड़ी असमंजस में पड़ी। वह विचारने लगी कि:—"नीचे की सीढ़ी उतरें वा ऊपर की सीढ़ी चढ़ें"।

सोच विचार को परस्पर लड़ाकर उसने यही तय किया की देखना ऊपर और नीचे दोनों जगह है। अस्तु, पहिले नीचे ही उतरा जाय।

यह विचार कर वह कोमलांगी षोड़सी बाला पहिले नीचे उतरी। नीचे की सीढ़ी अँधेरी थी और सौ डंडे की होने के कारण लम्बी भी थी। चञ्चला अपना पैर जमाती हुई नीचे उतरने लगी। ज्यों २ वह नीचे को उतरती गई त्यों २ अँधेरा भी बढ़ता गया। आखिरी सीढ़ी पर पहुँचतेही घनघोर अँधेरी से सामना पड़ा। मन में सोचा कि अब ऊपर चलें और दूसरी सीढ़ी को देखें, क्योंकि यहाँ तो अखंड अँधेरी का राज है। कुछ सूझता ही नहीं है।

फिर कुछ सोचकर वह आगे बढ़ी। कुछ दूर आगे

बढ़ने पर उसे मालूम हुआ कि मैं एक तंग गली में से होकर जा रही हूँ। यद्यपि जाने का मार्ग इतना चौड़ा नहीं है कि एक साथ दो जन उसमें चल सकें तथापि वह डेढ़ मनुष्य बराबर ऊँचा ज़रूर है- जिससे शिर फूटने का भय नहीं और न झुकने झुकाने की ही कहीं आवश्यकता है।

कुछ दूर इसी प्रकार घोर अँधेरे में चलकर उसे मालूम हुआ कि आगे की धरती गीली है और छत से पानी टपक रहा है यह पानी कहाँ से टपकता है? जान पड़ता है कि ऊपर की सतह पर कोई जलाशय है जिसका जल पृथ्वी तल में टपक रहा है। चंचला के जी में फिर यही आया कि लौट चलें पर "आगे इसके क्या है" यह सवाल उत्पन्न होते ही वह लौटने की इच्छा त्याग कर आगे ही बढ़ी।

कुछ दूर तक—करीब दो फरलाँग—नीचे कीचड़ ऊपर पानी की बूँदें ही मिलती रहीं। आगे बढ़ने पर धरती भी सूखी मिली और छत भी।

अब कुछ २ उजेले की झलक झलकने लगी। उजेले की आशा उत्पन्न होते ही चंचला का मन भी उजला हो चला। और अब वह अपनी चाल कुछ और तेज कर दी। ज्यों २ वह आगे बढ़ती गई त्यों २ उजेले की भी मात्रा बढ़ती गई। यहाँ तक कि कुछ ही देर में वह एक अच्छे उजेले में पहुँच गई। अब वह उस तंग गली में से निकल कर एक गहरे गढ़े में आ गई। चारों ओर निगाह दौड़ाकर देखी तो संगीन दीवार नज़र आई ऊपर आकाश भी दिखाई दिया। धरती की ऊपरी छोर से उस गढ़े की निचाई हजारों फीट से कम आज कल के इञ्जिनियर न बतावेंगे।

चंचला ने देखा कि यहाँ से आगे अब राह का कहीं पता नहीं। सिवा पीछे लौटने के और कोई चारा नहीं। पीछे

लौटने का अब साहस भी नहीं। क्योंकि सीढ़ियों के उतार चढ़ाव के कारण वह थक सी गई थी। यद्यपि अभी दिन था, क्योंकि सूरज की रोशनी उस गढ़े में काफी थी, तथापि अब लौटने की उसमें हिम्मत न रह गई। आगे देखा तो दीवार में एक पत्थर का बाघ जड़ा है।

"यह कैसी अच्छी कारीगरी है" कहकर चंचलाने जब उसपर अपना दहिना हाथ फेरा तो उसे मालूम हुआ कि उस बाघके शिर पर एक बटनदार लोहे को कील है जो शिर में छेद कर पहिराई हुई है। उँगली से उस कील के बटन को दबातेही उसकी बगल की दीवार में एक दरवाज़ा निकल आया उस दरवाजे में भी एक ऊँची सीढ़ी ऊपर को ओर चली गई थी।

चञ्चला उपरवाली सीढ़ी को देखते ही दंग हो गई। मन ही मन उसने कहा—क्या यह सीढ़ी स्वर्ग की है? बाप रे बाप इन अनगिनत सीढ़ियों पर चढ़ा कैसे जायगा? सीढ़ियाँ चढ़ते २ तो पिंडुलियाँ दर्द करने लगीं। "सीढ़ी भी खड़ी हैं इन पर चढ़ते ही दम फूलने लगेगा।" यह कह कर वह उसी दरवाजे पर बैठ गई।

कुछ मिनट दम मार लेने के बाद मनही मन कहने लगी– बड़ी गलती की। एकाएक तिलस्मी राहों में चल पड़ना भी मूर्खता है। क्या जाने कहाँ कैसे यन्त्र से मुठभेड़ हो जाय और कहाँ की मारी कहाँ जा पड़ूँ। वह उसी बावली पर से ही लौट जाना चाहती थी। इस तिलिस्म में अभी कोई तिलिस्म तो नज़र नहीं आया। जो कुछ मिली वह कारीगरी ही मिली। लेकिन कारीगरी भी जो मिली वह अभी तक अनोखी ही मिली।

कुछ ही मिनट विश्राम कर चंचला उठ खड़ी हुई और धीरे २ उन सीढ़ियों पर चढ़ने लगी। करीब सौ सवा सौ



सीढ़ी चढ़ने पर फरश नज़र आया। कुछ देर फरश पर विश्रामकर उठ खड़ी हुई। चारों ओर निगाह दौड़ाने पर मालूम हुवा कि ऊपरवाली बावली की भाँति इस स्थान में भी चारो दिशा में चार पत्थर के दरवाज़े हैं जिनमें पत्थर ही के पल्ले जुड़े हुए हैं। दरवाज़े सब बंद हैं, ये खुलेंगे क्योंकर, इसी उधेड़बुन में पाव घंटा बीत गया परन्तु कोई युक्ति उसे न सूझी।

कभी वह धरती टटोलती, कभी छत से निगाहें लड़ाती, कभी दायेंबायें हाथ फेरतीहै, परन्तु बुद्धि कुछ काम नहीं करती। मनमें कहने लगी—कोई कील काँटे तो जरूर होंगे। बिना इनके तो ये पल्ले जुड़े ही न होंगे। परन्तु वे कहाँ पर हैं और कैसे हैं उसी को ढूँढ़ना है। ढूँढ़ना भी दाल भात का कौर नहीं। यहाँ तो कुछ दिखलाई ही नहीं पड़ता है।

चंचला इसी प्रकार की चिंता में चूर है। समय बीता जा रहा है। साँझ होने आई। अभी किसी मंजिल या पड़ाव पर पहुँच भी न पाई। बीच ही में उलझी पड़ी है। दैव योग से उसकी दृष्टि में दरवाजे के मेहराब में एक सीपका बड़ा बटन झलका। हर्ष कर उसे उँगली से बाहर खींचना चाहा पर वह बाहर निकलने को कौन कहे हिला तक नहीं। ज्योंही उसने उसे भीतर को ठेला त्योंही वह बटन दीवार में घुस गया और चारों दरवाजे एक साथ खुल गए !!!

"हत्तेरे की! कहाँ जाकर बटन चिपकाया !!! हुनर न दारद खोज' सरदर्द पैदा करने वाला! किवाँड़े तो खुले। अब ये बंद क्यों कर होंगे? होंगे बंद, चलो अब पड़ाव खोजें। अच्छा किस दरवाजे में से हो कर चलें? उत्तर की राह आई हूँ उत्तर की ही राह फिर चलनाचाहिये। देखें तो यह उत्तर क्या गुल खिलाता है। यह कह वह उत्तर के दर-

वाजे से उस कंदरा में पैठी। ज्योंही दरवाजे के भीतर पाँव रक्खी त्योंही पल्ले बंद हो गए।

चंचला उन पत्थर के पल्लों को जुड़ते देख घबराई नहीं वरन् मन में कहने लगी कि इसमें एक ही पेंच से चारों दिशाओं के चारों दरवाजे खुलते हैं सम्भव है कि चारों बंद भी साथ ही होते हों।

धीरे २ नहीं बल्कि तेजी से चल कर वह अंचला एक बड़े लम्बे चौड़े घर में पहुँची। यद्यपि उसे ऊपर कही उत्तरी कंदरा में चलते समय सिवा अँधेरे के और कुछ नजर न आया तथापि वह कंदरा संगीन बना हुवा है और चौड़ा ऊँचा भी खूब है।

घेरे में पहुँचकर वह देखती क्या है कि एक संगीन सरोवर है जिसमें भाँति २ के कमल —जिनमें नीले, सफेद, लाल और गुलाबी ही अधिक हैं—फूले हैं। रस के प्रेमी भौंरे उन पर बैठे पराग (धूल विशेष) पान कर रहे हैं। लेकिन जम कर नहीं। इधर उधर से चक्कर काट काट एक निमिख कमल पर भी बैठ जाते हैं। उधर साँझ की अवाई है यह सोच कर वे और भी चौकन्ने हैं। "कहीं कमल बंद हो और हम उसी में कैद हो जावें तो बारह घंटे की कड़ी सजा भुगतनी पड़ेगी" इस विचार से वे बिचारे पराग को लोभ में जाते तो उन पर जरूर हैं पर उनका आना जाना केवल कानों सुना करते हैं आँखों से देख कर तो कुछ कही नहीं सकते। चकवा चकई आने वाले वियोग का अनुभव कर उदास बैठे हैं। अब वे दाना पानी तक का त्याग कर—"कब्ल-अज-मर्ग वावेला" वाली कहावत चरितार्थ कर रहे हैं। जो हो पखेरुओं में यह वर्ग संयोग वियोग दोनों का अपूर्व योग दिखाते हैं

साँझ का समय तो है ही हर एक घने पेड़ों की डालियों

पर भाँति २ के पखेरू बैठे भाँति २ की बोलियाँ बोल रहे हैं। अजब कोलाहल मचा है। सरोवर के किनारे फूलों की बाटिका है जिसमें भाँति २ के कुसुम फूले हैं उनकी महक वायु द्वारा कोसों फैली हुई है।

सरोवर के उत्तर ओर एक चबूतरा है उस पर पत्थर की मूर्तियां हैं। उन मूर्तियों का आकार प्रकार भी भिन्न २ है। कोई खड़ी हैं, कोई पद्मासन लगाए ध्यान में बैठी हैं। कोई किसी मुद्रा में बैठी हैं कोई किसी में। कोई २ नंगी मूर्तियां भी हैं। कुछ वस्त्रों से भी आच्छादित हैं। स्त्री और पुरुषों की मूर्तियां संख्या में सौ से कम नहीं हैं। पशुओं की मूर्तियां भी इतनी ही होंगी। पशुओं में सिंह, बाघ, हिरन, बारहसिंगा, सुअर, भैंसा बैल, गाय, हाथी, ही विशेष हैं। पक्षियों में तोता, मैना, सारस, बकुला, हंस, चील की विशेषता है।

चबूतरे के चारों ओर अनेक खंडित मूर्तियाँ पड़ी हैं। जान पड़ता है इन्हें किसी ने तोड़ कर बेकाम कर दिया है। बीच चबूतरे के एक पाँच हाथ लम्बी मूर्ति खड़ी है जिसके दोनों हाथ अंजुलि बाँधे हैं। आँखें भी बंद हैं।

चंचला इन मूर्तियों के झुंड को बड़े गौर से देखी और देख कर कहने लगी कि इस तहखाने की सारी करामात इन्हीं मूर्तियों में जान पड़ती है। मैंने तो समझा था कि इसमें सिवा कारीगरी के तिलिस्मी जाल नहीं है परन्तु यहाँ आकर उस कारीगर ने अपने हुनर का जाल बिछाया है! एक २ मूर्ति में सौ सौ तरह के पेंच निकलें तो आश्चर्य नहीं। हा! इस समय वह किताब न हुई।

सूर्य भगवान अस्ताचल पर मौज करने लगे। पक्षियों ने अपना चोंच बंद कर लिया। चकई सरोवर के इस पार और चकवा उस पार पहुँचा। वृक्षों में एक प्रकार का

सन्नाटा छा गया। अँधेरी इठलाती हुई सिर पर आ खड़ी हुई। घुग्घू घुघुआने लगे। चमगादुरें किचकिचाने लगे। चंचला एक दालान में पहुँच कर अपना बिस्तर लगाई। और सो रही।

छठवाँ परिच्छेद।



पाठक! चंचला को सोने दें और आवें अब ध्यानसिंह की तरफ।

दूसरे दिन ध्यानसिंह अकेले उठे और बटुकसिंहके घरपर पहुँच कर उससे बोले, भाई साहब! चलो बेचूसिंह के पास चलें–

बटुकसिंह गँजेड़ी तो था ही बोला अच्छा भाई साहेब गाँजे की दम मार कर चलता हूँ। यह कह उसने गाँजे की चिलम चढ़ाई और "हर हर बं बं" चिल्ला कर चिलम पी। सोंटा हाथ में लेकर बोलाः–"चलो भाई साहेब अब आपको बेचूसिंहसे मिलाऊँ।

ध्यानसिंह उठ खड़े हुए। और दोनों हड़हा मोहाल में आए!

हड़हा मोहाल के एक सड़ी सी गली में एक सड़े से कच्चे मकान के दरवाजे पर जा कर बटुकसिंह ने "बेंचू २" दो आवाजें दीं। घर के भीतर से एक काली कलूटी सूखी सी अधेड़ स्त्री दरवाजे पर आई और बटुक को देखते ही शिर पर की धोती सिर के सामने खींच कर कुछ सलज्ज शब्दों में बोली "का ही कहऽ"।

बटुक०—बेचू बाटन।

स्त्री०—बजारे गयल बायन।

बटुक०—कब तक अइहैं ?

स्त्री०—आवत होइहैं। बइठ जा।

यह कह उसने एक चारपाई–जो दरवाजे के भीतर पड़ी थी–बाहर डाल कर बोली "बइठ जा अब अउतै होइ हैं।" बड़ी देर क गयल बाटन।"

ध्यानसिंह आदि उसी चारपाई पर बैठ गए। स्त्री भी घर में चली गई। कुछ देर बाद हाथ में हरी तरकारी की पोटली लिये हुए बेचूसिंह आया। उसने सामने बटुकसिंह को देख कर हँसा और "सलाम भाई बटुक" कह कर बोला :—

कहाँ बटुक!–"आज कहाँ भुला पड़लऽ।"

बटुक०–तोहरै पास तो अइली है।

बेचू०–कहाऽभाई! का काम हौ, ई लोग–(ध्यानसिंह आदि की ओर इशारा कर) कहाँ से आवत बाटन ?

बटुकसिंह ने कहा–ई लोग मिर्जापुर क बाबू हउवैं। काशी क सयर करै आयल बायन। हमहूँ अइली है कोई जरूरतै से। का करी भाई साहेब ! छुट्टी तौ तनिकौ मिलतै नाहीं। घर कै झंझट सरवा जान मरले बा।

बेचू०–यही हाल येहरो बा भाई। गिरस्ती ससुरी के पीछे रात दिन बिरथै बीतल जात बा। न कहीं जाए के न कहीं आवै के। आज कल काम काज सब पट पड़ल बा। बड़े फेर में पड़ल हई ! परसों एक अदमी से झगड़ा हो गयल। ऊ सरवा फौजदारी में दावा कर देहलस। तौन ओकर तारीख पड़ल बा। देखऽ ओमें का होला।

बटुक०–झगड़ा काहे भयल ?

बेचू०–बातै बात में बढ़ गयल। रमफलवा के तौ तू जानत होबऽ। वही तबलचिया जौन बिट्टो क समाजी हौ। अन्नासै सरवा हमसे लड़ गयल। हमहूँ के कुरोध चढ़ आयल, लगौली

सारे के चार लप्पड़। बिटो के बड़ा बुरा लगल उनहीं दावा करवा देहलिन हैं। का हरज हौ देखल जाई। बाँई बिटो दाल की मंड़ैये में। कुछ हरज नाहीं।

बटुक०—अच्छा तो अब कुछ हमरौ सुनल जाय।

बेचू०—हाँ हाँ जौन हमरे लायक हो कहल जाय।

बटुक०—काम तो उहै हौ।

बेचू०—(कुछ सोच कर) उहै कौन ?

बटुक०—(कुछ ठिठक कर) उहै औरतिया वाला।

बेचू०—(फिर कुछ सोच कर) औरतिया वाला कैसन ? कौन औरतिया यार !

बटुक०—अरे वही मिर्जापुरिनियाँ समुझलऽ कि नाहीं।

बेचू०—(कुछ सोच कर) अरे हाँ, समझली। अच्छा तो का हुकुम बा ?

बटुक ने आदि से अंत तक सब कह सुनाया और कहा "अब इन कर कुछ मदद करै के चाही।"

बेचू०—(नाक सिकोड़ कर) ए भाई ! अपनी ऐसी तैसी में जायँ मरद और मेहरारू। अब हम ई झगड़ा में न पड़ब। एक बेर पड़के फल पउली अब कुछ पावै के बाकी बा।

बटुक०—(कान में मुँह लगा कर) अरे भयवा एक लाख रुपया नगदी क तार हौ।

बेचू०···पर चढ़ै एक लाख। तू तो हउवा लालची। हम ऐसन रुपया···पर मारी ला। ई मरदई नाहीं हौ कि धोखा-बाजी करी। हम लोग पानी रक्खीला। जेकर बात नाहीं ओकर बाप नाहीं। हम अपने बात में बट्टा लगाई ? करम-सिंह कहले रहलन येसे हम येमें पड़ली, नाहीं तो भला हम ? सैकड़न के तो हम चकमा बताईला। करम कुकरम का

चीज हउवै। ऐसन के तो हम चुटकी में उड़ाईला। आयल तो हउवन बच्चू, कहऽतो फिर भिड़ाईं तिकड़म।

बटुक०—कैसन ? का कर्मसिंह आयल बायन ?

बेच्चू०—हाँ विसनाथ जी पर भेंट भइल रहल। कहत रहलन की बटुक ओहर मिल गइलन। भला तू तो कुछ मदद करऽ। हम उनहूं के चरीऽ सुनउली। जौन जौन बात कहली कि नानी मर गइल। कुँअरसुअर होइ हैं अपने घर क होइहैं। जेकरे बात क इतबार नाहीं ओहू कौनो अदमी हौ। अच्छा जो हमार मेहनत होई तो हम उनसे ले लेब जइहैकहाँ।

बटुक ने देखा कि बेच्चू बिलकुल बिखरी हुई बातें कर रहा है। जिससे अनुमान होता है कि वह न मिलेगा। मिलना तो अलग रहा कहीं कोई नुकसान न पहुँचा दे इसका बड़ा भारी डर है। तुरंत उसे बैठक से बाहर उठा ले गया और अलग लेजा कर कहाः—"अरे यार! ई लोग कुछ औरै जीव हउवैं। इन कर कुछ मद्द जरूर करऽ। करमसिंह तो लुच्चा हौ। येही से हम उन कर संगत छोड़ली। लेकिन ई लोग बड़े भलेमानुस और मर्द हउवैं। राजा चुनार क ऐयार हउवैं। ई बेचारे बहुते तंग बाटन। ऊ मेहरुआ तिलिस्मवाँ में से निकाल के देदऽ बस छुट्टी। कुछ लाठी बाँस थोड़ै चलावै के हौ। फिर इन लोगन क मन हौ तिलिस्मवाँ क खजाना निकाले क। अगर जौ निकाल पइ हैं तो चौथाई ओहू में से तोहैं देइ हैं। ऐसन मौका काहे के छोड़ऽलऽ

बेच्चू०—तिलिस्मफिलिस्म के झगड़ा में अब हम न पड़ब भाई। के सरवा मगजपच्ची करै। आज कल फेकू से लगल बाय, तोहें मालुम हौ न ?

बटुक०—नाहीं तो!

बेचू०—हहह,, भारी झगड़ा लगल बा। दुइ पानी बज चुकल तिसरे क बारी हौ। चालीस गुंडा उनकर और चालीसै हमरौ दौरा सुपुरुद हउवैं। कल हाकिम फैसला सुनइहैं। कल कऽ फैसला सुन लेई तो कहो। एक पानी कोल्हुआ पर अउर बजा लेई तब जौन कऽहऽ तौन करी। लेकिन भाई अब येमें हम न पड़ब। हाँ, तोहैं कुछ मदद करै के होई तो कर देब।

बटुक०-अच्छा यही सही मददै तो माँगत हई। मददै देवै चाही।

बेचू०—अच्छा, पहिले फेकुवा सारे से तो निपट लेई। कल कऽ फैसला सुनले पर हाँ नाँहीं कऽ जबाब देब

बटुक०-फिर रमफलवा क अडंगा लगी?

बेचू०-अँह, रमफलवा क का हौ। दफा ३४ क तौ मामला हौ। एक २ रुपया अँधेरी में डाँड़ पड़ी। फेकुआ क मामला संगीन हौ। कतल क मामला हौ। येमें डामल फाँसी क बारी बा। देखी भगवान का करै चाहऽ ला। अच्छा तू परसों आवऽ तो कही।

बटुकसिंह, धीरसिंह, ध्यानसिंह आदि उठ कर खड़े हुए और जोहार सलाम करके आगे बढ़े। धीरसिंह ने पूछा बटुकसिंह! यह आपका साथी तो बड़ा जबर्दस्त बदमाश मालूम होता है?

बटुक ने कहा—जी हाँ, निस्सन्देह बड़ा भारी जबर्दस्त गुंडा है। सैकड़ों खून कर चुका है। हजारों मनुष्यों का सरदार है। साथ ही आला दर्जे का धूर्त और हुनरमंद भी है। तनक जीभ तेज है। यही कारण है कि इसको किसी से पटरी नहीं बैठती।

सुमेर०-काशी के गुंडे बड़े प्रसिद्ध हैं । ऐसी क्या खूबी इन गुंडों में है ?

बटुक०-खूबी ? खूबी न पूछिये । सब से बड़ी खूबी तो यह है कि इनके मारे महाजनों का नातिका बंद हैं । धनी बिल्ली की भाँति घर के माँदों में दुबके बैठे रहते हैं । जरा आँख दिखाई कि धोती बिगड़ी । यों तो ये महाजन हर बात में शेर हैं, पर जहाँ इनके कान में गुंडों की आवाज़ आई तहाँ ये मिआँव २ करने लगे । नहीं तो आप जानते हैं कि ये महा जन ? जोंक हैं जोंक ! जिससे चिमटे उसे चूसलिया। गरीबों की गाढ़ी कमाई का पैसा सूद में उड़ा जाने वाले, धन सम्पत्ति को नाना प्रकार के झूठ और दगाबाजी से हड़पने वाले, इनसे बढ़ कर दूसरा और भी कोई इस धरती पर है? ये धनी कैसे हुए वा होते हैं इसे आप जानते हैं ? दीन, दुखी, दरिद्र, मजूर, किसान, निर्धन मूर्ख आदि को चार देकर चालीस लिख कर चार सौ ले लेना यही इनकी जीविका है । इसी या ऐसीही जीविका के द्वारा ये धनी, मानी, महाजन, सेठ, साहूकार, दानीः धर्मी, सब कुछ बने और बनते हैं। धन-बल बड़ा प्रबल है । इस बल के सहारे चाहे जिसे बना बिगाड़ डालें । बसे को उजाड़ डालें। उजडे. को बसा डालें। धनी को दरिद्र बना देवें। दरिद्र को धनी बना देवें। चाहे जिसको मान मर्यादा धूल कर देवें । प्रतिष्ठा मिट्टी में मिला देवें। इसीके बल पर सारे कर्म कुकर्म अवलम्बित हैं। बस, इनके गुरू गुंडे ही हैं। इन घमंडी धनियों की नकेल गुंडों हीं के हाथ में है, जैसे चाहें वैसे इन्हे नचावें ।

नरकू साहु पनारू साहु, घुरक साहु, घिसिआवन साहु, फेकूसाहु कतवारू साहु, चिरकुट साहु चिथरू साहु, चमरू

साहु डोमन साहु आदि धनियों से तनिक पूंछे तो कि साहु जी! कैसी कटती है?

बटुकसिंह स्वयं गुंडा है और वह गुंडा ही नहीं बड़ा भारी प्रसिद्ध नौसरिया भी है। धूर्त भी अकेला है। इसीसे उसने अपने गुंडा-वर्ग की शानदार प्रशंसा कर डाली। ध्यानसिंह को ये बातें बड़ी बुरी लगीं। उन्हों ने धीरको डाँट कर कहा-क्या व्यर्थ बकवाद करते हो। हाँ तो, बटुकसिंह जी! बेचूसिंह का जवाब तो बड़ा रूखा है। मुझे तो इनकी मदद में शंका है।

बटुक ने कहा-अब तो कल एक बार उससे और मिललें देखें वह क्या कहता है। यदि कुछ उसने भरोसे की बात की तो अच्छा है नहीं तो कोई और उपाय करेंगे।

यह कह बटुक अपने घर की ओर मुड़ा। ध्यानसिंह वीरसिंह आदि डेरे पर आए। सुमेरसिंह और धीरसिंह दोनों चौक घूमने चले गए।



सातवाँ परिच्छेद।



दूसरे दिन ध्यानसिंह आदि बेचूसिंह के पास आए। सलाम जुहार होने पर देखे कि आज तो उसके दरवाजे पर सैकड़ों पचहत्थे जवान अपने २ आकार बराबर मोटे २ गिरहदार—जिनके नीचे लोहे जड़े हुए थे-लट्ठ लिये बैठे हैं। किसी २ की कमर में नैपाली खुखड़ी भी छिपी है। किसी २ के पास गँड़ासे तलवार बरछे आदि भी धरे हैं। आपस में सब बनारसी भाषा में तरह २ की "मारकाट" की बातें कर रहे हैं।

उन सबों ने—जो गिनती में सौ से कम न होंगे—ध्यानसिंह आदि को घूर कर कौतुक के साथ देखा और देख कर एक दूसरे से कुछ इशारा करने लगे। उनके इशारों से यही बोध होता है कि वे परस्पर एक दूसरे से पूछ रहे हैं कि—ये कौन हैं ?

बटुकसिंह को कुछ उनमें के लोग पहिले से जानते थे इसी कारण उससे कुछ लोग बड़े चावसे पूछे:—

अरे आव भयवा बटुक ! कहऽ कहाँ रहलऽ यार ?

बटुक ने उनका उत्तर दिया—हई तो बनारसै में भयवा।

एक—बहुत दिन पर देख पड़लऽ यार। चलऽ आज तनी तोहरौ पुराना पैतरा देखल जाय।

बटुक कुछ उत्तर देना ही चाहता था कि उसकी बात काट कर बेचू बोला: अब ई पड़ल बायन नौसर के फेर में। अब इन कर किहल गुंडई न होई।

बटुक०—आज कहीं कऽ धावा हौ का ?

बेचू०—हाँ, भयवा। आज सारे के भले निपट लेई। देखल-जाई लटके के तो बटलै बाय।

बटुक०—मोकदमा में का भयल ?

बेचू०—तारीख पड़ गइल। तब तक फिर आज दऽगऽला न।

बटुक०—आज केसे सटी ?

बेचू०—आज हमार और घुसई क बदल बा, चलत हई रेती में वही पार बजी।

बटुक—घुसई से काहे बिगड़ल ?

बेचू०—अन्नासै ! हम जात रहली कचौड़ी गल्ली में। ऊ एक तमोली के दुकान पर बइठल पान खात रहल। हमें देखलस देखतै खँखरलस और घुइरै लगल। खार तो पहिले क रह बै किहल, हम हूँ खूब घुइरली। बस सरवा अवाज़ा तवाज़ा कसै लगल ! हम कहली—अच्छा बच्चू ! देख लेब।

ओकरे मुँह से निकलल-कब ? हम कहली कल्है । कहलस कहाँ रेतीमें ? हम कहली का हरज हौ । बस यही बात हौ । आज जात हई । देखऽ ई लोग जुटल बाटन ।

इतने ही में एक उनमें से बूटी के तरंग में यह सैर पढ़ने लगाः—

बुद्ध् हमार नाँव बनारस में रहीला ।
छोड़ीला करके बात मुँह से जौन कहीला ।
शैवो पर छान बूटी हम गंगा नहाइला ।
अपने से जे लगावला ओसे लगाइला ।
भडुअन के झपड़ियाय के रंडिन क खाइला ।
बनियन के डाँट डपट के पैसा पुजाइला ।
कुछ हाल न रोजगार न तौ नौकरी करी ।
रंग देख झेंप जालैं महाजन औ जौहरी ।
गुन्डन क गुरू रंडिन क पूजपाद हई ।
शेखी औ शान बाजन क छोटका दमाद हई ।

बटुक ने पूछा०—कहऽ भाई आज क करार हौ का कहऽलऽ

बेचू०—भाई हमसे ई पचड़ा न चली । और न हमें फुरसत बा । हाँ हम एक रस्ता बता सकीला ।

बटुक०-ऊका ?

बेचू०-ऊ ई कि गड़वासी टोला में एक ओझा रहऽलँऽ वह्र थेकर हाल कुछ जानऽ लँऽ । उनसे मिलऽ तो तोहार काम पूरा हो । हमार अब आसरा मत करऽ ।

ध्यानसिंह ने देखा कि बेचू अपने गुंडई में निमग्न है । उन्होंने बटुक से कहा-बटुक! क्या तुम इस गुंडे के फेर में पड़े हो ? अजी चलो वहाँ चल कर कुछ अपनी बुद्धी लड़ायें । कुछ तो काम होगा । बेकार समय खराब करने से क्या प्रयोजन ?

बटुक ने कहा०—ठाकुरसाहेब ! आपका कहना बहुत ठीक है। लेकिन तिलिस्म है । तिलिस्म में बुद्धि उतनी ही काम करती है जितना साध्य है । अतएव सोच विचार कर चार से सलाह कर काम करने में अच्छा होता है । मेरे देखते २ इस तिलिस्म में सैकड़ों धूर्त, हजारों कारीगर और लाखों कैदी गायब हो गए । उनका पता तक नहीं लगा। न जाने इसकी धरती में कितने तह हैं । सुनते हैं धरती में प्राकृतिक सात तह होते हैं, पर इस तिलिस्म में उन कारीगरों ने न जाने कितने तह बना डाले हैं। तीन चार तह तक तो मैं हो आया हूँ लेकिन अब मुझे याद नहीं है कि वे तह कहाँ और उनके आने जाने के द्वार कैसे हैं।

यह मैं जानता हूँ कि यदि विचार कर उसमें पैठूँ तो उस तालाब तक बिना किसी रुकावट के पहुँच जा सकता हूँ और तालाब की ही राह फिर बाहर भी निकल आ सकता हूँ।

ध्यान—तालाबकी राह से बाहर कैसे निकल सकते हो ?

बटुक०—तालाब के भीतर होकर एक सुरंग "कोनियाँ" नामक स्थान पर निकली है । उसी सुरंग में से होकर "कोनियाँ" पर निकल जा सकते हैं।

ध्यान०—चलो, उसी सुरंग में पैठें !

बटुक०—सुरंग पर आदि और अंत दोनों ओर दो फौलादी दरवाजे जड़े हैं जिन्हें भीतर से खोल सकते हैं, बाहर से नहीं।

ध्यान०—नहीं समझ में आया।

बटुक०—याने जो तालाब में से हो कर आवेगा वही दोनों दरवाजे खोलता हुआ बाहर निकल आवेगा, बाहर से भीतर जाने वाला मनुष्य उन दरवाजों को खोल नहीं सकता और न उन्हें तोड़ ही सकता है।

ध्यान०—तो तुम तालाब तक तो चल सकते हो न ?

बटुक०-हाँ कुछ कोशिश से।

ध्यान०-"कोशिश से" इसके क्या अर्थ हैं?

बटुक०—अर्थात् कठिनता से। क्योंकि तिलिस्म में पैठने के भी कई मार्ग हैं और वे एक ही चबूतरे में हैं। अब हम यह नहीं कह सकते कि उन राहों में से वह कौन सी राह है जिस पर चलने से तालाब तक पहुँच सकेंगे।

ध्यान०-हमारी तो राय है कि इसका असली रास्ता छोड़कर एक दूसरा ही रास्ता बनाकर इसमें पैठें। वह वहीं पर-जहाँ वह गुंबद देखा था-और जिसमें कुछ सुनाई पड़ा था-ठीक हो सकता है।

बटुक-अच्छा चलो तनिक ओझा से भी तो मिल लें। ओझा बड़ा चतुर गुनी चालाक और पुराना धूर्त है। काशी का पुराना खुँर्राट तो है ही साथ ही वह इस तिलिस्म का भी बड़ा जानकार है। अब वह बूढ़ा हो गया है इसी से इस काम को छोड़ दिया। रुपया खूब कमा लिया है बैठे मौज मारता है। मुझे उसकी सुध ही न रही, नहीं तो मैं उससे पहिले ही आपको मिलाता। आइये रास्ते ही में तो उसका घर है, मिलते चलें। यह कह वे लोग वहाँ आए जहाँ उस ओझा का घर था।

बटुक ने ओझा के दरवाजे की सिकड़ी बजाई। सिकड़ी के बजाते ही दरवाजा खुल गया। दरवाजे के भीतर एक तंग और अँधेरी गली में से कुछ दूर जाने पर कुछ प्रकाश मिला। सामने एक छोटा गंदा पर पक्का आँगन मिला। आँगन के चारों तरफ पक्की पर गंदी दालान थी और आकाश की ओर लोहे का जँगला पड़ा था। ऊपर निगाह उठाने पर मालूम हुआ कि उसी प्रकार के तीन जँगले और ऊपर हैं अर्थात् प्रत्येक खंड में एक २ जँगला आँगन में पड़ा है। मकान छोटा ही है पर है चार खंड का।

काशी के मकान के ऊपर के खंड ही कुछ साफ सुथरे और हवादार होते हैं। नीचे का खंड तो किसी बिरले ही मकान

का स्वच्छ होगा। हवा किसे कहते हैं यह नीचे पड़े हुए पत्थर रोड़े बिचारे जानते ही नहीं। गायें यदि किसी भाग्यवान के यहाँ पली हुई हैं तो वे-इन्हीं खंडों में स्थान पाती हैं। हमारे ऊपर लिखे ओझा के मकान में भी नीचे के खंड में एक गाय और एक बछड़ा बँधा है। गोबर और मूत्र की दुर्गन्ध से आँगन में खड़ा होना कठिन है। मल की दुर्गन्ध भी कम नहीं है। क्योंकि "मलालय" भी इसी खंड की शोभा बढ़ाते हैं। नाक मुख दबा कर किसी प्रकार सब लोग आँगन में खड़े हुए। बटुक ने ओझाजी २ दो आवाज लगाई। तीसरे खंड से एक युवा स्त्री ने जँगले की ओर मुख कर जवाब दिया-कौन है?

बटुक०-ओझा जी हैं।

स्त्री०-क्या काम है, आप कौन हैं?

बटुक ने अपना नाम बताया और कहा-कुछ जरूरी काम है। स्त्री कुछ देर ठहर कर जँगले मेंसे बोली:-ऊपर चले आवें।

बटुक ध्यानसिंह धीरसिंह वीरसिंह और सुमेरसिंह पाँचो जन एक तंग सीढ़ी के सहारे तीसरे खंड पर पहुँचे। देखा तो तीन तरुणी स्त्रियाँ मुँह फेरे कुछ गृह कार्य में लगी हैं। कोई दूध औंट रही है, कोई हलुवा पका रही है। एक दाल और चावँल थाली में धरे बीन रही है। दाल चावँल बीनने वाली स्त्री ही ने मुँह फेर कर उत्तर दिया:-ऊपर के खंड में चले जाइये।

पाँचों जन ऊपरके खंड में आए। देखा तो ऊपर का खंड साक्षात् स्वर्ग है। नीचे का खंड जितना अँधेरा अस्वास्थ्य-कर और गंदा है, ऊपर का उतना ही प्रकाशपूर्ण स्वास्थ्यकर तथा स्वच्छ है। ऊपर चारों ओर छत और मुंडेरें शोभायमान हैं। फरस पक्की, छत पक्की, गच चिकनी और वह झाड़ी बोहारी साफ है। एक तिनके का कहीं पता नहीं। जिस कमरे में ओझाजी हैं वह कमरा भी शीशेकी खिड़कियों से सुसज्जित

चारों ओर से हवादार है। पूर्व का खिड़कियों से श्री भागीरथी की पुनीत धारा दिखाई पड़ती है। कमरा पुरानी चालकी तसवीरों से–जिनमें शीशे पर खिंची हुई काशी की तसवीरें ही अधिक हैं–सजा है। दो चार झाड़ दो चार शीशे की हाँड़ी भी टँगी है। फर्श पर दरी कालीने और शीतल पाटियाँ भी बिछी हैं। ताखों में देवी देवताओं के मिट्टी के रंग बिरंगे खिलौने धरे हैं। ब्राकिटों पर कागज के फूलदान हैं। एक फटे मैले चद्दर की छत भी ऊपर की छत में जड़ी है। फरस पर काशी का जालीदार पीतल का पानदान और एक उगाल दान भी धरा है। एक बढ़िया बारीक कलकतिया शीतल पाटी पर एकसेमर की रुई के गुलगुली तकिये के सहारे वह ओझा बैठा हुआ इन आगन्तुकों को बैठने का इशारा किया। सब लोग फरश और गलीचों पर बैठे। ओझा ने बड़ी धीमी आवाज में–क्योंकि वह नब्बे वर्ष की अवस्था से कम न था–कहा–आप लोग कहाँ से आए हैं, क्या काम है ?

बटुक०–तनिक तेज आवाज में–हम यहीं पियरी पर रहते हैं। ये बाबू साहब का स्थान मिर्जापुर है। इसके बाद ओझा से उसने कुल किस्सा कह सुनाया और कहा कि आपसे कुछ मदद माँगने आए हैं।

एक मीठी और धीमी हँसी हँस कर ओझा ने कहा–अब हम मदद देने लायक हैं ? चुनार के राजा विजयबहादुरसिंह के बाप रणबहादुरसिंह मेरे मित्रों में से थे। मैं प्रायः श्रावण के महीने में उनका मेहमान रहा करता था। वह जमाना बीत गया। वे लोग अब रहे नहीं। उनकी कहानी कहने सुनने को मैं ही अकेला बचा हूँ। अब मैं सब भूल भुला गया। धूर्तविद्या तिलिस्मविद्या सब भूल गया। वरना मैं आपको एक बार दिखाता कि धूर्त–विद्या और तिलिस्म–विद्या कहते किसे हैं।

अब धूर्त कहाँ हैं? जिन्हें आप धूर्त कहते हैं ये बिचारे धूर्ताई क्या जानें। सामने बैठे २ आँखों का काजल निकल जाय और मालूम न हो तब तो धूर्ताई है। अब तो दवा, शीशी, जड़ी, सुँघा खिला कर धूर्ताई दिखानाही उत्तम और ऊँची धूर्तता है। हम लोग इस धूर्तता को छिछोरपन मानते हैं। क्या करें अब बुढ़ापा है नहीं तो अपने मित्र के पोते को एक बार अपना सड़ा पर पुराना करतब दिखाते। हाँ, यह तो बताया ही नहीं कि आप लोग कौन हैं?

बटुक०—ये लोग महाराज विजयबहादुरसिंह के पुत्र कुँ० शमशेरबहादुरसिंह के लंगोटिये मित्र हैं। उन्हीं को मनोकामना-जिसका सविस्तर वर्णन आप सुन चुके—पूर्ण करने काशी आए हैं। इनमें ये (ध्यानसिंह की ओर उँगली दिखाकर) प्रधान हैं। इनका नाम ठाकुरध्यानसिंह है।

ओझा (हँसकर) इनका नाम तो मैंने किसी से सुना है। अच्छा, तो अब आप क्या चाहते हैं?

ध्यानसिंह०—चाहते हैं उस बुद्ध तिलिस्म में से उस स्त्री का उद्धार।

ओझा०—उसमें उसे डाला किसने?

बटुक०—मैं ने उसमें डाला। उस समय मैं कंतित के युवराज की ओर था उन्हीं के कहने से यह काम मैंने किया।

ओझा०—क्या तुम "बुद्धतिलिस्म" से वाकिफ हो?

बटुक०—हाँ कुछ २ वाकिफ जरूर हैं, परन्तु जिसके सहारे से काम करते थे वही खो बैठे हैं, इस कारण अब लाचार हैं।

ओझा०—वह क्या?

बटुक०गुरू गंगादास को आप जानते होंगे।

ओझा०—हाँ मैं उन्हें भली भाँति जानता हूँ।

बटुक०—उन्हीं की सेवा से मैं इस विद्या को कुछ जान

पाया। उन्होंने इस तिलिस्म का कुछ विवरण लिख कर मुझे दिया और कहा—इस पुस्तक को बड़ी चौकसी से रखना। जिस दिन उस स्त्री को उस में ले जाकर छोड़ा उसी दिन वापसी में उस तालाब पर—जिसके भीतर होकर तिलिस्म से बाहर निकलने का रास्ता है—वह किताब भूल आए। फिर भय के मारे उसे लेने न गए।

ओझा०—डर किस बात का था ?

बटुक०—डर यह कि कहीं भूलकर दूसरे मार्ग में न निकल जायँ। क्योंकि मुख पर और मध्य में भी कई रास्ते पड़ते हैं। फिर वह स्त्री भी साधारण स्त्री नहीं वह पाँच रक्षकों का गला काट कर राजघाट के धर्मशाले से भागी थी जिसे खबर लगतेही मैंने और एक मेरा साथी बेचूसिंह ने नगवा पर पकड़ा और कुं० कर्मसिंह के धूर्त सीताराम की आज्ञा से बुद्ध तिलिस्म में रक्खा। कहीं वह क्रोध में आकर मेरा गला भी न काट डाले यह दूसरा भय था।

ओझा०—आश्चर्यसे—तब वह स्त्री काहे को है वीर पुरुष है ! जिसके भय से पुरुष-पुरुषों में भी धूर्त-चतुर पुरुष—काँपे उसे स्त्री क्यों कहें "वीर पुरुष" क्यों न कहें ? धन्य है उस के साहस को। अच्छा तब,

बटुक०—तब क्या ? अब तो आपही का आधार है। यदि कोई युक्ति बतायें तो काम चले।

ओझा—अब तुम्हारे वश (बल) के बाहर है ?

बटुक०—निश्चय ही बाहर है। जैसे धुन्धे का चश्मा लेकर उससे कहें किपढ़, वही हाल अब मेरा है। अंधे की तरह अब मैं उसे टटोल तो सकता हूँ परन्तु पा नहीं सकता।

ओझा०—तालाब तक ही उस तिलिस्म में गए हो या और भी आगे ?

बटुक०–जी नहीं, कुछ नीचे के एक दो तह तक भी गए हैं, लेकिन दो चार बार से अधिक नहीं। प्रायः तालाब तक ही बिशेष आना जाना रहा है।

ओझा०–लाट भैरव के पास जो शिवाला है उसी रास्ते गये और तालाब में कूद कर सुरंग की राह बाहर आए?

बटुक०–जी हाँ।

ओझा०—और भी कोई रास्ता तुम्हें मालूम है या तुम्हारी उस किताब में लिखा था?

बटुक–जी नहीं, मुझे याद नहीं है कि कोई और भी रास्ता मेरी उस किताब में लिखा था कि नहीं।

ओझा०–कभी कोई कौतुक उस तालाब में या तालाब पर तुम्हें दिखाई पड़ा?

बटुक०—जी नहीं, मैं वहाँ बहुत नहीं ठहरता था। गया और भागा।

इतनी जिरह के बाद ओझा ने कहा–बटुक! तुम अभी बुद्ध तिलिस्म को भली भाँति समझ नहीं पाए हो। यह तिलिस्म तिलिस्म ही है (ठंढी साँस लेकर) क्या कहें अब शरीर में बल नहीं रहा नहीं तो आप लोगों को इस तिलिस्म की झाँकी कराते। अस्तु, अब आप लोग आए हैं और आशा करके आए हैं तो मैं आपको निराश नहीं लौटा सकता, कुछ तो खातिर आप लोगों की जरूर करूँगा। अब आप लोग एक काम करें कि पहिले उसी रास्ते से उसमें पैठें और वहाँ तक निर्भय चले जायँ, जहाँ तालाब है। तालाब की दालान में देखें कि वह स्त्री वहाँ है कि नहीं। यदि वहाँ हो तो उसे उसी तालाब के रास्ते से बाहर निकाल लावें। इसके बाद फिर मुझसे मिलें। यदि वह स्त्री वहाँ न मिले तो तुम लोग इधर उधर कहीं भटकना नहीं फौरन् बाहर निकल

आकर मुझसे मिलना। मैं फिर दूसरी तरकीब बताऊँगा। यह कह उसने एक कोठरी खोली। उस कोठरी में धुएँ से धुँआए हुए हजारों वस्ते बँधे टाँड़ पर धरे थे। ओझा ने सुमेरसिंह से कहा—आप इन टाँड़ों पर चढ़ कर एक २ वस्ता उतारते और मुझे दिखाते जायँ। उसके कहे अनुसार सुमेर उस अँधेरी कोठरी के अँधेरे टाँड़ों पर चढ़ २ कर वस्ते उतारने और जहाँ का तहाँ धरने लगे। इस काम में उन्हें घंटों परिश्रम करना पड़ा और सैकड़ों वस्ते टाँड पर से उतारने और धरने पड़े। अंत में एक वस्ता उसने अपने पास धर लिया और सुमेर से कहा—अब आप नीचे उतर आवें।

सुमेर उतर आए। ओझा ने वह वस्ता खोला उसमें एक बड़ी मोटी बाँस के कागज पर लिखी पुस्तक थी। उसे उसने निकाला। एक नकशा भी—जो शायद उसी बुद्ध तिलिस्म का था—निकाला उस नकशे का तह और सिलवट खोल—कर उसे फरश पर फैलाया और अपनी पुरानी ऐनक लगा कर उसे ध्यान पूर्वक कुछ देर देखा। कलम स्याही से एक कागज पर कुछ मानचित्र बनाया। उस मानचित्र को बटुकसिंह को दिखा कर समझाया और कहा कि इसी रास्ते इसी विधि से दालान और तालाब तक जा कर लौट आओ।

बटुकसिंह उस मानचित्र को लेकर ध्यानसिंह के साथ बाहर आया और कहा-देखा! मैं कहता न था कि पुराने लोग बड़े चतुर होते हैं जरूर कुछ न कुछ सहल उपाय बतायेंगे। यह बात बेचू के बूते की नहीं थी। वह केवल इतना कर सकता था कि मुझे कुछ मदद दे सकता था और यह तो तिलिस्म की कुंजी ही लिये बैठा है। यदि चाहे तो रत्ती २ पुरजे २ उखाड़ कर फेंक दे। शोक है कि ओझा नितान्त बूढ़ा है और साथ नहीं दे सकता है। यदि साथ देने योग्य

होता तो मिन्टों में इस तिलिस्म में जाते और घंटों में उसे उद्धार करते। अच्छा। चलो तो सही, फिर कभी इसके पास आवेंगे तो कहेंगे। सुमेर ने पूछा—बटुकसिंह, इस बूढ़े के पास ३ युवा स्त्रियाँ-जो अभी अवस्था में पच्चीस तीस वर्ष से अधिक नहीं हैं-कौन हैं?

बटुक०—इसे न पूछोः, पुरानो हड्डो है। बुढ़ापे में तीन २ हैं जवानी में न जाने कितनी रही होंगी। अपनी सेवा टहलके लिये बूढ़ा इन्हें रक्खे है। ये तीनों रखनी हैं।

सुमेर ने हँसकर कहा-बाबा, इस काशी में रखनियों की बड़ी भरमार है! जिसे देखो वही रखनी रखे है! यहाँ विवाहिता भी हैं या नहीं? ध्यानसिंह ने हँसकर उत्तर दिया-गधे हो कुछ जानते भी हो? काशी के प्राणी लहरी हैं। यहाँ का "लहर-बहर-सवा पहर" मशहूर है। तीर्थ है। तीर्थों में अनेकों यात्री आते जाते बसते उजड़ते रहते हैं। मरने के लिये देश२ के स्त्री पुरुष यहाँ आते हैं। उनके साथ उनके स्त्री पुत्र बेटी बहू आदि कुटुम्बके लोग भी रहते हैं। जब मरणाऽभिलाषी यहाँ मरकर अमर हो जाता है तो उसके सङ्गमें आए हुए कुटुम्बी जन यहीं के हो जाते हैं। यदि किसी के साथ उसकी तरुणी स्त्री, विधवा पुत्री वा अन्य कोई तरुणी प्रौढ़ा स्त्री हो अकेली रही तो उसके मरने पर वह अनाथिनी हो जाती है। भरण पोषण का ठीक २ प्रबन्ध न होने के कारण वह किसी काशी निवासी कि रखैती-घरनी बन जाती है। सिवा इसके और उसे कोई चारा नहीं। यदि रखैती, घरनी बनने योग्य वह नहीं होती तो बिचारी घर घर भीख माँगकर अपना पेट पालती है। इसके अतिरिक्त, नगरों और ग्रामों की वे बेवाएँ जो कुकर्म वश निज २ नगरों और ग्रामों से निकाली जाकर तीर्थ स्थानों विशेष कर काशी में लाकर इस अभिप्राय से छोड़ दी जाती

हैं कि उनका और उनके द्वारा उनके कुटुम्बियों का गुप्त पाप उनके निकटस्थ इष्ट मित्र बन्धु बान्धव न जान सकें। ऐसी बेवाएँ काशी में छूटते ही काशी के साँड़ों की शिकार होती हैं। जैसे स्मशान पर के गिद्ध लाश को देखते ही एक साथ उस पर टूटते हैं और नोचा नोची छीना छोरी कर आपस में लड़ते कटते हैं वैसे ही जहाँ तरुणी बेवाएँ व्यभिचार दोष वश काशी में छूटीं तहाँ दुष्ट दल उन पर गिद्ध सा टूटा। साधु, महन्त, पण्डा, पुरोहित, गुण्डा, बदमाश, धनी, महाजन, नीच ऊँच सभी में दुष्टों की कमी नहीं। दुष्टही सब शिकारी हैं। जिसके भाग की हो वह ले। कभी २ एक से छूट कर दूसरे की दूसरे से छूट कर तीसरे की तीसरे से छूट कर चौथे की शिकार होती हुई किसी पाँचवें की रखनी होकर बिचारी अपना पाप मय जीवन काटती हैं।

कोई चेली बना कर, कोई दासी बना कर, कोई रखनी बना कर कोई, चाकरनी बना कर, अपने २ कब्जे में रखता है, निस्सहाय अबला बिचारी सब कुछ करने को तैयार हो जाती है। उसे तो अपना अधम जीवन किसी प्रकार काटना। कहीं जो वह बाजरूपी वेश्या की शिकार हो गई तो फिर उसका मानों उद्धार हो गया !!! जिस अनजाने पाप के प्रायश्चित्त के लिये वह काशी में डाली गई वह पाप तीन पीढ़ी पिछली और तीन पीढ़ी अगली को तार दिया। न पाप रहा न पापी, दोनों का उद्धार हो गया! जिस पाप के कलंक से बचने के लिये उसके कुटुम्बी काशी में लाकर छोड़ गये वह पाप उन कुटुम्बियों की सात पीढ़ी का तारक हो गया! फिर न कलंक रहा और न कलंकी !!!

ऐसी ही रखनियों की काशी में भरमार है। इन्हीं में की कोई ओझा को भी मिल गई हैं।

इसके बाद सब लोग निज २ डेरे पर चले गये।



आठवाँ परिच्छेद।



कुँअर कर्मसिंह अपनी मंडली के साथ काशी ही में विराजमान हैं इसे हमारे पाठक ऊपर पढ़ चुके हैं। अब इनका कुछ आगे का हाल सुनिए:—

कुँअर कर्मसिंह अपनी मंडली सहित नीचीबाग के एक किराये के मकान में विराजमान हैं। चुनार को टुकड़ो का समाचार अपने धूर्त जासूसों से सुन रहे हैं। भोजदत्त ने कहा—

कुँअर साहेब! चुनार की धूर्त मंडली बड़ा सिरतोड़ परिश्रम कर रही है। तिलिस्म में पैठने की धुन में सब पड़े हैं। इसके लिये वे बेचूसिंह के पास गये परंतु उसने कोरा जवाब दे दिया।

कुँ०कर्म०—क्या?

भोज०—यही को मैं कुछ सहायता नहीं कर सकता। जब वे वहाँ से निराश हुए तो एक ओझा के यहाँ गए। ओझा ने कुछ भेद बताया है ऐसा सुनने में आया है।

कुँ०कर्म०—वह ओझा कौन है और कहाँ रहता है, कुछ इसका भी सुराग लगाया?

भोज०—हाँ लगाया क्यों नहीं। ओझा एक बड़ा चतुर पुराना खुर्राट धूर्त है वह इस तिलिस्म से खूब वाकिफ है। लेकिन वह बूढ़ा है किसी मदद के काबिल नहीं है। फिर भी उसने मदद करने का वादा किया है।

कुँ०कर्म—तो उस ओझा के पास चला जाय और उससे मिला जाय।

भोज०—चलिये चलें। यदि कहीं वह मिल जाय तो फिर ध्यानसिंह के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लग जाय और फिर वे दुम दबा कर चुनार ही में दम लेवें।

कुँ०कर्म—इस बिभीषन बटुकवा ने बड़ा काम बिगाड़ा। इसे तुम लोगों ने न फोड़ा तो कुछ न किया। यह नमकहराम बड़े वेमौके फूटा !

शंकर०—बटुक का कुछ कुसूर नहीं सारा कुसूर हमीं लोगों का है। उसने तो अपना काम पूरा कर दिया। हमने उसके परिश्रम का फल उसे न दिया और न उसके कर्त्तव्य का कुछ ध्यान रक्खा। वह बिचारा तो बहुत चाहा कि मेरी कद्र हो पर हमने तो कद्र करना तो दरकिनार उसे उसका महीना तक न दिया। बिना भोजन वस्त्र की स्त्री भी धर्म छोड़ देती है यदि उसने छोड़ा तो क्या अनर्थ किया?

भोज०—मैंने उससे बहुत कहा और बहुत कुछ लालच दिया लेकिन वह टस से मस न हुआ। एक लाख की गठरी उधार देने का वादा हो चुका है। चंचला के छूटते ही वह गठरी उसे मिलेगी। तब भला वह एक लाख छोड़ कर कैसे फूट सकता है? यद्यपि मैंने सवा लाख का लालच दिया तथापि उसने अपना रुख न बदला और न बदलेगा। यह ओझा सम्मेलन उसी के उद्योग से हुआ है।

भोजदत्त कुँअर कर्मसिंह तथा उनकी मंडली को लेकर ओझा के पास आए। पहिले तो ओझा ने समझा कि वही दल है जो पहिले आया था। इसी कारण उसने उनसे यही प्रश्न किया:—कहो तिलिस्म का हाल? क्या समाचार है? किन्तु जब बोल चाल में उसे संदेह हुआ तो वह ताड़ गया कि यह दूसरा दल है और उसने उनसे कहा:—आप लोग कहाँ के रहने वाले हैं और किस निमित्त पधारे हैं?

भोजदत्त ने सारा किस्सा कह सुनाया और कहा, आप से कुछ मदद मिलनी चाहिये।

ओझा हँसा और कहने लगाः—भाई सुनो, मैं अब बूढ़ा हूँ। मेरी अवस्था इस समय नब्बे वर्ष की है। भगवान जाने सौ पूरा करूँगा वा अधूरे ही में महायात्रा करूँगा। क्योंकि इस क्षण भंगुर–अनित्य–शरीर का भरोसा ही क्या? ऐसा विचार कर भी यदि मैं अधर्म करूँ तो सिवा कठोर दंड के और मिलेगा क्या? माना कि आप मुझे सौ दो सौ हजार दो हजार लाख दो लाख देंगे वा दे सकते हैं, लेकिन आपका देना और मेरा लेना दोनों ही पाप है। अतएव मैं एक को बचन देकर उसे निराश करूँ यह मुझसे न होगा। फिर वे पहिले आए, उन्हें मैं बचन दे चुका। जिस प्रकार पहिले और सामने आए हुए अर्जुन को कृष्ण ने बचन दिया और पीछे आए हुए कर्ण के कहने पर भी अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ी, वैसे ही अब मैं भी कदापि अपनी प्रतिज्ञा भंग न करूँगा। हाँ, यदि आप चाहें तो सुलह करा दूँ।

भोजदत्त ने देखा कि मनाने से काम न चलेगा वह उठ खड़ा हुआ और मंडली के साथ बाहर निकल कर कहने लगाः–इनके ज्ञान–काण्ड से काम न चलेगा। चलो सीताराम की सहायता से तिलिस्म खोल कर चंचला ही को लेकर चंपत हों। ये और इनके साथी टापते ही रह जायँ।

सीताराम इस चढ़ाई से प्रसन्न न था। वह चाहता ही न था कि काशी में चल कर अड़ंगेबाजी करें। अड़ंगेबाजी से कुछ होना जाना नहीं, यह भी वह बारंबार चिल्लाता आया। "काशी में कुछ न होगा सिवा इसके कि गलियों गलियों की खाक छानते फिरें" उसका यह कहना भी सही निकला। फिर "काशी में धूर्तपन भी न चलेगा किसी को पकड़ कर कहीं रखने का स्थान–जैसे मिर्जापूर में है–नहीं है। न खोह हैं न नारे हैं, न तह हैं न तहखाने हैं, फिर धूर्तता करके ही वहाँ क्या करेंगे" यह वह कह कर चला था। अब जब अड़ङ्गा बड़ङ्गा कुछ काम



न देखकर सब शिथिल हो गए तो वह बोलाः—भाई अब तो काशी आ गए और यहाँ का हाल भी बूझ गए! गली घाट बाजार धर्मशाले आदि की भी हवा खा चुके, अब बाकी रहा तिलिस्म। तिलिस्म का भी हौसिला निकाल लें जिसमें कोई अरमान जी में बाकी न रह जाय। भला कहो तो, आज पखवारों आए हुआ काम क्या किया? बेकार समय का नाश किया। अब तक वहाँ कुछ न कुछ बंदिश जरूर बाँध लिये होते। चलो, अब भी लौट चलो, कहा मानो। तिलिस्म फिलिस्म के फेर में न पड़ो। यह काम ठलुओं का है, कर्मठोंका नहीं। उन्ही को तिलिस्म में उलझने दो। उनका इसी में भला है क्योंकि उन्हें अपना कैदी छुड़ाना है। हमें अब क्या लाभ है? चंचला मिली तो क्या और न मिली तो क्या? फिर चंचला मिल कर भी कुँअर से प्रेम करने वाली है? मुझे तो विश्वास है कि वह प्रेम नेम न करके समय पर कुँअर का भी काम तमाम कर डालेगी, जैसे उन चारों का किया। क्योंकि वह बड़ी चालाक औरत है! देखने ही को कमसिन है पर है वह डेनामाइट बारूद निस्सन्देह वह साहसिन है, तभी तो उसने अपने को अब तक रक्षित रखा है। फिर बात की भी पक्की है। पृथिवी टल जाय तो टल जाय वह अपनी प्रतिज्ञा से टलने वाली नहीं! ऐसी धूर्ता स्त्री के पीछे पड़ कर अपना समय खोवें और प्राप्त होनेवाली वस्तु की उपेक्षा करें, यह कहाँ की बुद्धिमानी है?

प्राप्त वस्तु को त्याग कर अप्राप्य के लिये उद्योग करना वैसाही है जैसा वाटिकाओं से पुष्प न संग्रह कर आकाश के तारों के लिये प्रयत्न करना।

कुँअर कर्मसिंह को सीताराम की यह राजनैतिक कहानी न रुची। नाक भौं और मुँह सिकोड़ कर वे बोलेः—किसी काम को पहिले तो करना नहीं और करना तो फिर उससे मुँह

न मोड़ना। उसे पूरा करके ही छोड़ना चाहे उसमें कितनी ही बाधा क्यों न उपस्थित हो। मैं सीताराम की यह बात मानता हूँ कि इस प्रयत्न में लाभ कम हानि विशेष है। परन्तु अब हानि लाभ का विचार त्याग कर इसे तो करना ही पड़ेगा। न करने से करना कहीं अच्छा है। नपुंसकता तो न प्रकट होगी। चलो, एक बार तिलिस्म का भी प्रयत्न कर देखो। मिल जाय तो वाह वाह न मिले तो वाह वाह। कदराते क्यों हो?

शंकर चतुर पुरुष है वह चुप चाप बैठा सबको सुनता रहा। अपना मत नहीं दिया।

चुपमारे सबकी सुनै, पूछे ते बतराय।
कम भाखै बादै नहीं, सो चातुर कहलाय॥

अस्तु, शंकर ने यही नीति ग्रहण की। वह कुछ न बोला। यद्यपि भोजदत्त ने कहा भी कि शंकर क्यों चुप हैं तथापि उसने कुछ उत्तर न दिया।

अस्तु यही निश्चय हुआ कि तिलिस्म में अवश्य पैठा जाय और यह भी निश्चय हुआ कि आज ही रात में पैठा जाय। पहिले निश्चय हुआ कि कुं० कर्म को छोड़कर शेष सब लोग चलें। लेकिन इस राय को कुँअर ने पसन्द न किया और कहा कि मेरी भी इच्छा इस बुद्धतिलिस्म के देखने की है। मैं बाहर रह कर क्या करूँगा।

जब रात हुई चन्द्रमा का प्रकाश फैला तो ये लोग अपने २ साजो सामान झोली डंडे आदि से लैस हो राजघाट के खड़हर पर आए। जहाँ वरुणा नाम की नदी गंगा से मिली है उस कोन पर पहुँच कर उसी पुराने शिवालय के चबूतरे पर खड़े हुए।

यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि इस तिलिस्म का थोड़ा बहुत खोल मूँद सिवा सीताराम के और कोई न

जानता था। यद्यपि सीताराम भी पूरी तरह से वाकिफ न था—फिर भी वह औरों की अपेक्षा कुछ क्या बहुत जानकार था। उसी के ऊपर तिलिस्म के खोलने मूँदने का भार पड़ा। अनिच्छा रहते भी वह कुँअर कर्मसिंह की मन चाही करने पर कटिबद्ध हुआ।

जिस प्रकार पहिले बटुकसिंह ने उस चबूतरे का पत्थर हटाया और संगी का पत्थर सरकते ही सीढ़ियाँ निकल आई थीं उसी रीति को सीताराम ने भी किया। सीढ़ी के द्वारा नीचे तह में उतरतेही चबूतरे का संगी और सीढ़ी का द्वार बंद हो गया। संतसिंह ने मसाल जलाया, क्योंकि सुरङ्ग में इतना अँधेरा था कि जी घबड़ाता था। मसाल के उजेले में कुछ दूर चलकर वहाँ आए जहाँ पहिले दोराहा लिख आए हैं और जहाँ महात्मा बुद्ध के आकार की एक बड़ी मूर्ति थी जिसको बटुक ने शिर पकड़ कर हिलाया था। देखें भाग २ पृ०—१३८

इस दोराहे पर पहुँच कर सीताराम सिद्ध की मूर्ति का हिलाना भूल गया और वह सबको लिये दिये दक्खिन वाली सुरंग से चल पड़ा। दक्खिन की सुरंग बड़ी टेड़ी मेढ़ी सर्पाकार और चारो तर्फ से तंग थी। तब वह पक्की थी और फरश दीवार छत सब उसके संगीन थे। चलते २ सब थक गये पर न तो कोई स्थान मिला न सुरंग का अंत होता दीखाई पड़ा। सीताराम को अपनी भूल मालूम हो गई। वह समझ गया कि रास्ता वहीं छोड़ आए जहाँ दोराहा था। परन्तु सबके थक जाने के कारण उसने फिर पीछे लौटने की भी सलाह न दी।

कुछ देर बैठ कर विश्राम कर लेने के बाद सब आगे बढ़े। सबेरा हो गया था किन्तु सुरंग में सबेरे अँधेरे का कुछ भी बोध नहीं। धीरे २ सामने कुछ प्रकाश झलका। ज्यों २ आगे बढ़ते गए त्यों २ उस प्रकाश की मात्रा भी बढ़ती गई। अब

प्रकाश खूब झलकने लगा जिससे बोध हुआ कि सूरज निकल आया है उसी की यह रौशनी है। आगे आने पर देखा कि ऊपर की छत ८-१२ के आकार में खुली हुई है। परन्तु ऊँचाई एक हजार फोट से कम न होगी। सीताराम ने अनुमान किया कि जिस सुरंग से हम आ रहे हैं वह ढालुआँ है जिसकी ढाल अँधेरे के कारण जान न पड़ी। यहाँ प्रकाश की छत में ८—१२ का छेद रक्खा गया है जिसमें सुरंग का यात्री अँधेरे से ऊब कर यहाँ कुछ दम ताजा कर ले।

ऊजेले में पहुँचने पर मालूम हुआ कि यहाँ चौराहा है इसी कारण यह प्रकाश द्वार बनाया गया है। रात भर के थके माँदे भूखे प्यासे सब इसी चौराहे पर प्रकाश में बैठ गये। छागल से पानी निकाल कर मुख धोए। झोली में से लड्डू निकाल २ खाए और छागल का पानी पी कर ठंढा हुए।

बिश्राम करते हुए वे लोग सीताराम से सलाह करने लगे कि अब किधर से किस रास्ते से चलना होगा। सीताराम ने झोली में से कम्पास निकाल कर दिशा का ज्ञान किया और कहाः—हमने बड़ी गलती की है। हमें उत्तर जाना था लेकिन हम दक्खिन और दक्खिन भी दूर निकल आए। इस तिलिस्म का फैलाव विशेष कर उत्तर की ही ओर है। क्योंकि पूरब में गंगा। दक्खिन में काशी। पच्छिम में भी काशी की बस्ती ही है केवल उत्तर में वरुणा के उस पार मृगदाव वा मृगारण्य नाम का बन है। वन ही की ओर इसका तिलिस्म का फैलाव है अतएव हमें उत्तर की ही ओर चलना चाहिये था क्योंकि— उत्तर की ही ओर चलने से अपना मनोरथ सिद्ध होगा। भोजदत्तने पूछाः—उत्तर की ओर तो वरुणा नाम की नदी है। क्या तिलिस्म का सुरंग नदी के नीचे होकर उत्तर को गया है?

सीता०—सुना तो यही गया है। और इसमें अचरज क्या

है ? कारीगरों ने तो समुद्रों–महासमुद्रों–के नीचे सुरंग बनाया है। उनके सामने यह क्षुद्र नदी किस गिनती में है। हमने यह भी सुना है कि एक सुरंग इस तिलिस्म में से गंगा की पेंदी के नीचे होकर उस पार के किले में चली गई है। कहीं यह पूरब वाली सुरंग वही न हो! क्योंकि पूरब में तो गंगा ही है। जरूर यह सुरंग गंगा के नीचे २ किले को गई होगी। देखो न? यहीं से ढार शुरू है कुछ दूर जाने पर यह ढार सैकड़ों फीट नीची हो गई होगी।

भोजदत्त०–तो क्या अब उत्तर की सुरंग में से होकर चलें।

सीताराम०–अवश्य उत्तर की ओर चलने ही में तिलिस्म का रहस्य खुलेगा और वह (चंचला) भी कहीं उधर ही होगी।

कुँ०कर्म–भाई मैं तो थक गया। मुझ में इतनी ताकत कहाँ की मैं अँधेरे सुरंगों में पाँव पैदल चलूँ। मैंने तो समझा था कुछ दूर चलने पर मंजिल मिल जायगी। जैसा डइनियाँ खोह आदि में मिलती है। मुझे नहीं मालूम था के भीतर हजारों कोश को मंजिल मारनी पड़ेगी!

सीता०–क्रोध से–जी हाँ, तिलिस्म नही खाला जी का घर है। जब चाहें तब चलेजायँ और जब मन करें तब चल दें। अब चाहे थकें चाहे मरें अब तो इसमें पड़ गए। अब चाहें भी कि उसी राह से वापिस लौटें तो नहीं लौट सकते। यही तो तिलिस्मों में गुर रक्खा है। अब तो कोई दूसरा ही रास्ता मिलेगा जिसमें होकर इसके बाहर कढ़ेंगे। चलिये क्या मजा योंहीं हासिल हुआ करता है कुछ तकलीफ के बाद आराम मिलता है।

कुछ देर विश्राम कर लेने पर सब लोग उत्तर की सुरंग में पैठे। यह सुरंग यद्यपि पहिले की अपेक्षा कुछ चौड़ी है तथापि उससे अर्थात् पहिले वाली से अधिक अँधेरी और

गंदी है। थोड़ी २ दूर पर कभी २ कुछ उजेला भी झलक पड़ता है लेकिन वह इतना नहीं कि उसके प्रकाश में किसी का मुख भली भाँति देख सकें।

दो पहर चलते २ बीत गया पर सुरंग का खातमा न हुआ। कुँअर कर्मसिंह तो मारे थकावट के काँखने और कराहने लगे। और कान पकड़ कर कहने लगे कि जीते बचे तो फिर कभी तिलिस्म का नाम न लेंगे। अस्तु तीसरे पहर सुरंग का अन्त हुआ। बाहर निकलते ही उजेले का दर्शन हुआ। सामने देखा तो एक छोटा सा मैदान दिखाई पड़ा। उस मैदान में एक जलाशय और एक मढ़ी भी दीख पड़ी। सब लोग उस जलाशय पर आए। जल बड़ा निर्मल और मीठा था। नहा धोकर जलपान किये। मढ़ी को सुनी देख उसी मढ़ी में थकावट मिटाने के लिये लेट रहे। लेटते ही सबके सब खर्राटा मारकर सोने लगे। किसी को किसी की सुध न रही। झोली दण्डा इधर उधर पड़ा छोड़ कर सब नींद में मात गए। नींद बड़ी प्यारी लगती है कबकि जब मनुष्य परिश्रम वा मंजिल का थका हो।

करती है शान्त चित्त को श्रम दूर नींद ये।
दुख–द्व को बुझा देती है भर पूर नींद ये॥

नवाँ परिच्छेद।

चंचला की भाँति इन सबों को भी सोने दें और आयें चुनार वालों के पास चल कर उनका भी करतब देख आएँ।

दूसरे दिन बटुकसिंह ध्यानसिंह को लेकर तिलिस्म की ओर आया और दोनों पूर्व कथित रीति से सुरंग में पैठे।

सिद्ध की मूर्ति के सहारे-जिसका मान चित्र में भी इशारा था-दोनों उस तालाब पर आए। तालाब और तालाब के दालान की शोभा देख कर ध्यानसिंह दङ्ग रह गये। कहने लगे-ऐसा मनोहर स्थान सुन्दर बाटिका और निर्मल सरोवर तो किसी तहखाने में मैंने नहीं देखा। हमारे यहाँ सैकड़ों तहखाने हैं उनमें एक से एक सुन्दर स्थान, घर, महल, कोठा अटारी, और दालानें हैं, एक से एक बढ़ कर नदी, सरोवर, झील, झरने, ताल बावली, वन, उपवन हैं, फिर भी यह अपने ढंग का अनूठा है। इसकी बारहदरी विश्वकर्मा ने स्वयं बनाई जान पड़ती है। घाट भी अनूठे हैं। माली न रहने पर भी पौदों की हरियाली बनाने वाले कारीगर को हृदय से आशीर्वाद दे रही हैं। आप से आप सरोवर के जल से प्रतिदिन दोनों समय कियारियों का जल से पूर्ण हो कर पौदों को हरा भरा रखना क्या कुछ कम अचरज की बात है!

अच्छा, क्या इसमें यही स्थान है कि है कि और भी?

बटुकसिंह ने कहाः-यह तो केवल एक साधारण स्थान है, अभी न जाने कितने स्थान इसमें ऐसे होंगे कि उनका पता भी मनुष्य न पाए होंगे। यह तो एक मुख द्वार पर विश्राम-स्थान बना है यहीं प्रवेश यहीं पर निकास भी बनाया है।

इसी दालान में मैंने चंचला को सुला कर इसी तालाब पर किताब छोड़ इसी तालाब के भीतर से बाहर निकले थे। यहाँ तो न वह चंचला दीखती है और न वह किताब। जान पड़ता है वह उसी किताब के सहारे यहाँ से आगे बढ़ी है और कहीं किसी सुरङ्ग में भटक कर किसी तह में जा पड़ी है।

ध्यान०-अब क्या करना चाहिये?

बटुक०-ओझा के पास चलना चाहिये। क्योंकि उसने

कहा था कि–वहाँ पहुँचने पर यदि वह न मिले तो लौट आना फिर मैं दूसरी तरकीब बताऊँगा।

ध्यानसिंह और बटुक दोनों उस तालाब में कूदे। तह पर पहुँचते ही एक सुरंग में जा पड़े। बटुक ने कुछ दबा दुबु कर वह फाटक खोला। दोनों एक लम्बी अँधेरी सुरंग के द्वारा एक लोहे के फाटक पर आए। फाटक टटोलने पर फौलाद का बना मालूम पड़ा। बटुक ने कोई जंजीर खींचा और कुछ पैर से दबाया जिससे वह फाटक गिर कर जमीन में धँस गया। ज्योंही दोनों अपना २ पैर एक साथ बाहर धरे त्योंही वह फाटक ऊपर को उठकर बंद हो गया। दोनों जन राजघाट के उत्तर पच्छिम के कोने पर वरुणा नदी के किनारे पर निकले। इसके उपरांत दोनों अपने२ डेरे पर आकर भोजन विश्राम किये।

शाम को दोनों ओझा के पास गये। ओझा से तिलिस्म का भुगतान किया और कहा कि न वह स्त्री ही वहाँ है और न वह किताब!

ओझा ने फिर वह बस्ता उतरवाया। किताब खोलकर कुछ देर पढ़ा। नक्सा फैला कर देखा। देख भाल कर वह नक्सा बटुक और ध्यानसिंह को दिखाया और एक एक तह और उनके दुख सुख निकलने पैठने के रास्ते बताकर उन रास्तों के यन्त्रों के विषय में कहा कि इनके खोलने मूँदने पैठने निकलने का ज्ञान इस नक्से से न होगा। नक्से में केवल तिलिस्म का खाका (प्लेन) है। जिससे यह सूचित हो सकता है कि कहाँ कहाँ पर क्या २ तिलिस्म है, उन में आने जाने के लिये किस ओर कैसे २ मार्ग हैं, उन स्थानों में क्या क्या करामात है। देखो, यह स्थान–(उँगली से नक्से में दिखा कर–जिसमें इस समय चंचलाको सोती छोड़ आए हैं) बड़ा भयानक है। पूरा जानकार हो इन मूर्तियों के भीतर लगे हुए कील काटों और यन्त्रों

की परीक्षा कर सकता है। क्योंकि इन मूर्तियों के जाल में फँसा हुआ पुरुष शीघ्र छूट नहीं सकता।

उत्तर की ओर इस गुंबद के भीतर (नकशे में ऊँगली से दिखा कर) एक महात्मा तप कर रहे हैं। इन महात्मा को कभी न छेड़ना क्योंकि इनका ध्यान भंग होते ही उस पुरुष की वैसीही गति होगी जैसे शंकर के ध्यान भङ्ग से काम की हुई थी। एक वार एक अनजान राजकुमार ने-जो इसमें छिपा कर रक्खा गया था-अनजानपन के कारण महात्मा को जगा दिया। महात्मा के नेत्र खुलते ही वह अबोध बालक क्या हुआ सो आज तक पता न चला।

इसके उपरान्त ओझा ने तिलिस्म में पैठने के कई मार्ग नकशे में दिखाए जिनमें चार मुख्य थे। (१) वही जिसमें होकर बटुक और ध्यानसिंह गये थे। यह द्वार मुख्य और गुप्त बताया और कहा इसका पता हर किसी को नहीं लगता। चउतरा टूट फूट जाने पर भी द्वार की कारीगरी अभी ज्यों की त्यों है। इसका बनाने वाला कारीगर न हुआ न है और न होनेको है

चबूतरे के संगी का सरकना एक अद्भुत बात है। ऐसा ढक्कन किसी भी तहखाने में न देखे होंगे।

(२)(३) और (४) उत्तर पूर्व और पच्छिम में है। उत्तर का द्वार वहाँ है जहाँ बड़े गुंबद के निकट एक और छोटे गुंबद के भीतर एक तहखाना है उसी तहखाने के भीतर लोहे का फाटक है।

पूरब में गंगा के तट पर के ऊँचे करारे में एक कच्ची गुफा है। उसी गुफा में प्रवेश करने पर पूरब का फाटक प्राप्त होगा पच्छिम का फाटक एक टीले में से होकर चला आया है। यों इसके चार मुख्य फाटक हैं। और चार ही मुख्य निकलने के द्वार हैं।

दक्खिन वाला प्रवेश द्वार जैसा गुप्त और कुटिल है वैसाही

उसके निकलने का द्वार एक तालाब के भीतर से बनाया है। जिसे अभी देखे चले आ रहे हो। इसी प्रकार (नकशा दिखा कर) ये तीनों निकलने के द्वार हैं। इनमें ही होकर निकल सकते हैं। इस तिलिस्म में एक यह विशेष कारीगरी है कि जिधर होकर भीतर पैठो उधर होकर फिर निकल न सकोगे। निकलने के लिये दूसरा द्वार ढूँढ़ना पड़ेगा। जितने दरवाजे भीतर जाने के लिये बने हैं उनमें होकर चले भले ही जायँ किन्तु लौट कर निकलना चाहो तो निकल न सकोगे। फिर वे खुले हींगे नहीं। और इसी प्रकार जिन द्वारों से बाहर कढ़ोगे उनमें होकर भीतर न पैठ सकोगे।

इसी प्रकार की कुछ और जरूरी बातें समझा कर ओझा ने नकशा और वह किताब देकर कहा कि इस नकशे और किताब को प्राण के समान रखना और इनके सहारे अपना काम पूरा करके फिर इन्हें मुझे वापिस दे देना। हाँ, इसे भी न भूलना कि इस तिलिस्म में क्या प्रायः ऐसे तिलिस्मों में कुछ मायाविनी योगिनें रहती हैं जो ऐसी २ जरूरी किताबें इत्यादि उड़ा ले जाती हैं जिसमें उस तिलिस्म का यात्री राह न पाकर अथवा साधन हीन हो कर उसी में गल पच जाता है। ऐसी मयाविनें इस तिलिस्म में भी हैं। उनसे खूब सावधान रहना।

इस प्रकार तिलिस्म के कोल काँटे समझा कर ओझा ने वह नकशा और किताब ध्यानसिंह को दिया और कहा इनके सहारे तुम सब तिलिस्म को सैर कर चाहे जिस द्वार से बाहर निकल आओगे।

पाठकों को यह सुन कर अचरज होगा कि तमाम तिलिस्म का हाल तो वह ओझा रत्ती २ ध्यानसिंह को समझा गया पर खजाने का उसने कहीं कुछ जिक्र तक न किया। ऐसा नहीं कि तिलिस्म में खजाना न हो। क्योंकि खजाने की रक्षा के लिये ही

तो तिलिस्म बनाए जाते हैं। फिर भी नहीं विश्वाश हो सकता कि जो तिलिस्म का रत्ती २ हाल जानता हो उसे खजाने का पता न हो। कुछ समझ बूझ कर ही उसने इस बात को छिपाया है। आगे चल कर आप ही खुल जायगा कि क्यों उसने छिपाया।

नकशा और किताब पाकर जितना हर्ष ध्यानसिंह को हुआ उससे कहीं अधिक दुःख बटुकसिंह को हुआ। उसका मुख सूख गया और एक प्रकार की निराशा छा गई। ध्यानसिंह ने पूछा भी–क्यों बटुक! उदास कैसे हुए? इसका उत्तर उसने न दिया। ध्यानसिंह उसकी उदासी का कारण समझ गये–और उससे कहने लगेः–बटुक! यह कर्मसिंह का झूठा दरबार नहीं है। यह है शमशेर बहादुरसिंह का सच्चा दरबार। एक बार जो मुख से कह दिया वह हो गया। फिर उसमें उलट फेर होना नहीं। यह न समझो कि मैं तिलिस्म की कुंजी पा गया अब इसमें तुम्हारा अहसान जाता रहा और एक लाख रुपये का जो तुम्हें वचन दिया है वह अब न मिलेगा। तुम्हारा रुपया दूध पीता हुआ चुनार के अतुल खजाने में मौज से पड़ा है। काम करके लौटो और ले लो। यह कुंजी जो ओझा से मिली है–तुम्हारी ही कोशिश से मिली है, क्या मैं इसे भूल जाऊँगा? कभी नहीं अच्छा अब किस दिन तिलिस्म में पैठें?

बटुक०–सब सामान जुटा कर गुरुवार को इसमें पैठें।

ध्यान०–हमी तुम चलें या सबको ले चलें?

बटुक०–अब तो सब को ले चलना चाहिये। क्योंकि अब कोई डर नहीं।

ध्यान०–क्या कुँ० शमशेर बहादुरसिंह को भी?

बटुक०–हाँ, क्या हरज है? वह भी सैर कर लेंगे। ऐसा उत्तम तिलिस्म बार बार २ नहीं देखने को मिलेगा। यह बड़ा

पुनीत तिलिस्म है, जैसे काशी का पुनीत महात्म्य है वैसे ही इस "बुद्ध तिलिस्म" का। यह महात्मा बुद्ध के स्मारक (यादगार) में बना है और इसका नाम भी "बुद्ध तिलिस्म" बड़ा पवित्र नाम रक्खा है।

ऐसी ही वार्तालाप करते हुए दोनों अपने अपने डेरे पर चले गए।

दसवाँ परिच्छेद।

तीन बजे दिन की सोई हुई कुँ० कर्मसिंह की मंडली दूसरे दिन प्रातः काल उठी! उठ कर देखती है तो झोली झण्डा सब गायब है। "अरे यह क्या? यहाँ चोर कहाँ? कौन ले गया? अब क्या खाकर पानी पीयें। लड्डू भी झोली के साथ गए!! सामान धूर्तता का और जरूरी सभी चला गया। पाँचो खाली हाथ। लकड़ी तक टेकने को पास न रह गई! यह बड़ा तमाशा है" कह कर कुँअर कर्म और उनके साथी उठे। उत्तर दक्खिन पूरब पच्छिम चारो दिशा घूम कर देखे। कोई न दीखा। और न कहीं उस मैदान के बाहर होने की राह नजर आई। चारो ओर से वह मैदान घिरा मिला! शंकर ने कहाः—यह मैदान नहीं है तहखाना है। छत खुली हुई है इससे मैदान मालूम होता है। इसी तालाब और बारहदरी के उजेले के लिये इसकी छत खोल रक्खी है। हमको यह न समझना चाहिये कि हम सुरंग वा तहखाने से अथवा तिलिस्म के गोरखधंधे के बाहर निकल आए। सच पूछो तो एक प्रकार से हम लोग कैद हो गये। अब न आगे जा सकते हैं न पीछे। यह मैदान नहीं वरन तिलिस्मी हवालात है!!

शंकर की जबानी तिलिस्मी हवालात की कहानी सुनते ही कुँ० साहेब को तो नानी मर गई। भोजदत्त सन्तसिंह सीताराम तीनों कुछ सोचने लगे। कुछ सोच विचार के बाद सीताराम ने यह स्थिर किया कि उसी रास्ते पीछे लौटा जाय जहाँ से चले हैं। अर्थात् सुरंग के उसी चौराहे से—जहाँ विश्राम किया था—फिर लौटा जाय। उस चौराहे पर चल कर निश्चय किया जाय कि किस दिशा की सुरंग से अब चलें।

कुँअर०—इस लौटा फेरी में तो मेरे लौट जाने का अंदेसा है।

सीता०—फिर किया क्या जाय ? आखिर कहीं किसी ओर चलना तो जरूरी है। यहाँ पड़े २ क्या करेंगे ?

कुँ०कर्म०—अरे भाई चलने की भी ताब तो हो ?

सीता—फिर आए काहे को ?

कुँ० कर्म०—कम्बख्ती सवार थी।

सीता०—इसमें भी कुछ सन्देह है ? मना किया कि आप न चलें। आप कष्ट मुसीबत न झेल सकेंगे। नहीं माना तो उसका फल भी भोगिये।

मजे हमने लिये हैं हम मुसीबत भी उठायेंगे।
हमी जूती पिन्हाये हैं हमी जूती भी खायेंगे॥

भोजदत्त ने कहा—भाई सीताराम ! इस समय यही उचित होगा कि दो तीन दिन यहीं ठहर कर विश्राम कर लें। इसके बाद लौटें तो अच्छा हो क्योंकि कुँअर थक गये हैं यहाँ कुछ फल भी हैं जल भी है रास्ते में ये कहाँ नसीब होंगे। झोली भी नहीं, छागल भी नहीं, रास्ता विकट, कैसे निबाह होगा ? लौट कर भूखे प्यासे चलेंगे तो खायँगे क्या ? न मिला कोई ऐसा स्थान कहीं इससे भी बीहड़ मिला, तब क्या करोगे ? दाना पानी बिना इसी में फँस कर मरोगे ? यहाँ तो फिर भी कुछ दिन क्या कुछ महीने कट सकते हैं। आगे चल कर कोई ऐसा ही स्थान मिलेगा

कि नहीं यह कौन बता सकता है। इससे मेरी राय में यहीं ठहर कर विश्राम भी कर लो और विचार भी लो कि अब क्या करें।

सीताराम ने कहा–कहते तो ठीक हो परन्तु बिना चले बिना ढूँढ़े पाओगे कैसे ? बैठें २ तो राह सूझ न जायगी और न कोई इससे सुखकर स्थानहो आँखों में झलकने लगेगा। चलने ही से कुछ होगा। फिर भी यदि सब की यही राय हो तो यह कर सकते हैं कि मैं और शंकर दोनों पहिले जाऊँ और ढूँढ़ खोज कर स्थान ठीक कर आऊँ तब आप लोगों को ले चलूँ। लेकिन इसमें भी एक खटका है, वह यह कि ढूँढ़ते खोजते किसी स्थान पर पहुँचे और वहाँ से वापिस लौटने की राह न पाए–क्योंकि तिलिस्म है, कभी २ इसमें ऐसा भी होता है कि जिधर से गये उधर से फिर वापिसी न हुई–राह बंद हो जाते हैं। यदि ऐसा हुआ–तो और भी मुसीबत आई। अच्छा दो दिन यहीं ठहर कर सोच विचार लो। जैसी सब की राय होगी वही किया जायगा।

ग्यारहवाँ परिच्छेद।

गुरूवार के दिन प्रातः काल ही से तिलिस्म में पैठने की तैयारी होने लगी। ध्यानसिंह, धीरसिंह, वीरसिंह सुमेरसिंह, पहाड़सिंह, बटुकसिंह आदि अपनी २ झोली में जरूरी जरूरी चीजें धरने लगे। रस्सी, छेनी, हथौड़ा, सँकड़ी, कील काँटे आदि भी साथ में रक्खे गए। शमशेर बहादुरसिंह ने कचौड़ी गली से बढ़िया और ताजे मोतीचूर के फरमाइसी लडडू और कुछ निमकी मँगा कर साथ लिये। गणेशजी का सुमिरन कर सब लोग राजघाट पर आए। बटुक ने पूछाः–ठाकुर साहेब! किस रास्ते पैठने का इरादा है ?

ध्यानसिंह ने कहा—ओझा कहता था कि पूरब वाला रास्ता बड़ा सुगम है उसी रास्ते चलें (नकशा देख कर) इधर से चलने पर भी घूम फिर कर वहीं पहुँचेंगे जहाँ पहिले उतरे थे।

बटुक ने कहा—चाहे जिस रास्ते चलें अब तो सभी रास्ता सुगम हो गया है। मेरी तो राय है कि पुराने रास्ते ही से चलें जिससे ढूँढ़ते खोजते सब स्थानों से होते हुए मृगवन की राह बाहर निकल आवें।

लाट भैरव के मंदिर वाले राह से सब लोग भीतर पैठे। इस रास्ते और दरवाजे का हाल पाठक कई बार पढ़ चुके हैं अतएव कुछ लिखना व्यर्थ है। जब सब लोग दो राहे पर पहुँचे। उजेले में नकशा देखा गया। दक्खिन का रास्ता कुछ दूर आगे जाकर चार रास्तों में बँट गया है। एक शहर में जाकर समाप्त हुआ है। दूसरा गंगा की पेंदी में से होता हुआ पार के किले में चला गया है। तीसरा कोनियाँ स्थान में जाकर फिर चौथे से मिल गया है। चौथा कुछ दूर आगे जाकर एक घेरे में खुला है।

दक्खिन के तीनों रास्ते अर्थात् पूरब दक्खिन और पश्चिम के रास्ते तिलिस्म में पैठने ही के लिये हैं, परन्तु चौथा। रास्ता तिलिस्म में उलझाने वाला है।

दो राहे की उत्तर पच्छिम वाली राह तालाब पर आई है इसी राह से लोग आगे बढ़े। कुछ दूर चलने पर सुरंग खतम हुई। सब लोग तालाब पर आए। आज इसी स्थान में विश्राम करने को ठहरे। दालान में सामान धर २ सब लोग तालाब पर आए। देखा तो तालाब बड़ा मनोहर है। सब लोग स्नान ध्यान पूजा तर्पण से निपट कर दालान में आए। वीरसिंह बाग में से मेवे तोड़ लाये। बाग में प्रायः सब मेवे के पेड़ थे, दाख, चिरोंजी अंगूर, अनार, किशमिश, छोहारा, बादाम, मुनक्का, गरी, आदि लाकर सब को दिये। सबों ने खाया और जल पीकर विश्राम किये।

शाम होते ही सब लोग टहलने उठे। देखा तो वह बाग एक मील के घेरे में है चारों ओर ऊँची दीवार-जिसकी बनावट तिरछी और चिकनी-जिसपर कोई हजार प्रयत्न कर के भी चढ़ न सके-और जो ऊँचाई में सैकड़ों फीट ऊँची थी-खड़ी है।

कुँअर शमशेरबहादुर ने पूछाः—ध्यानसिंह, इस दीवार पर चढ़ सकते हो?

ध्यानसिंह ने उत्तर दिया-हाँ चढ़ क्यों नहीं सकते, परन्तु यह ऊँची अधिक है इस कारण इस पर चढ़ना जरा कठिन है। कुछ ही दूर चढ़ने में थक जायँगे और कहीं फिसल पड़े-जिसकी कि अधिक सम्भावना है-तो हड्डी कहीं और पसली कहीं! इतनी फिसलन इसमें रक्खी है कि कील गाड़ कर भी कोई दो चार कदम नहीं चढ़ सकता है।

उत्तर की ओर लम्बाई अधिक है। और इसी ओर की दीवार में एक चौखूटा चिकना काला पत्थर भी जड़ा है। तालाब की ओर दीवार में भी एक वैसा ही पत्थर दिखाई पड़ा। पूरब पच्छिम की दीवार चिकनी और साफ है उनमें कोई पत्थर नहीं जड़ा है।

ध्यानसिंह ने कहा—यह तहखाना वैसा ही है जैसा डइनियाँ खोह उलटा खोह आदि में हैं। चंचला इसी में रही पर अब नहीं मालूम कि वह कहाँ और किसमें है।

कुँ०शम०-इसमें तो कहीं राह भी नहीं है फिर वह गई कहाँ?

ध्यान०-राह क्यों नहीं है। राह नहीं है तो लोग जाते आते कैसे हैं। तिलिस्मों की राहें भी तिलिस्माती होती हैं। नक्शा देख कर बतावेंगे कि राह किधर है।

इधर उधर घूमते फिरते सब बाग के बीच में आए। वहाँ एक संगीन चबूतरा देखा। चबूतरा बड़ा पुराना और ईंटों का बना था और यत्र तत्र उसकी ईंटें टूट फूट कर निकल भी गई थीं। घास

फूसों से उसकी शकल बिगड़ गई थी। चबूतरे का कुछ भी विचार न कर सब लोग तालाब पर आए और तालाब की फरश पर बैठ कर बातें करने लगे।

ध्यानसिंह ने कहा—कुँअर साहेब! यह तालाब भी बड़ा अनोखा है। इसमें कूद पड़िये। नीचे आपको एक सूखा कमरा मिलेगा उस कमरे से एक सुरंग पच्छिम को निकल गई है बस वही सुरंग तिलिस्म के बाहर निकाल देती है! ऐसी कारीगरी जरा कम देखने में आई होगी।

कुँअर०—अगर ऐसा है तो बेशक अनोखी कारीगरी है। पानी के भीतर से होकर रास्ता बनाना साधारण काम नहीं है। इससे जान पड़ता है कि गुप्त और मौर्यबंशी राजाओं के काल में अच्छे २ चतुर कारीगर हिन्दुस्थान में रहे और बहुत सम्भव है कि उन्हींके समय में मिर्जापूर प्रयाग आदि के तहखानों की भी नींव पड़ी हो।

हिन्दुस्थान हिन्दुस्थान ही है। इसका मोकाबला कोई भी देश नहीं कर सकता।

बटुक०—कुँअर साहेब! हिन्दुस्थान तो हिन्दुस्थान है ही परन्तु काशी भी हिन्दुस्थान की नाक है:—देखिये एक कवि क्या ही अच्छा काशी के विषय में कह गया है:—

नाक तीर्थों का शहरों का है सरदार बनारस यह।
तीन लोक चौदहो भुवन का है सिंगार बनारस यह॥ टे०
तरन तारनी पूरब में जहाँ बहै गंग की धारा है।
उत्तर बरुना नदी औ दक्खिन असी नदी का नारा है॥
बीच में वाराणसी बसी चहुँदिस पचकोश किनारा है।
परिक्रमा पच्चीस कोस की देवों ने विस्तारा है॥
सच पूछो तो भारत के है हिय का हार बनारस यह।
तीन लोक चौदहो भुवन का है सिंगार बनारस यह॥१॥

कुँअर साहेब०-बेशक २ काशी काशी ही है। यहाँ की उपमा ही निराली है।

इसी प्रकार की गपशप में एक पहर रात बीत गई। ध्यानसिंह ने कहा-सुमेर लाओ मेवे वगैरह खा पी कर सोवें। सोने का समय हो गया।

सुमेरसिंह मेवा मीठा लाकर तालाब की सीढ़ी पर धरे। सब लोगों ने खाया और खा पी कर फिर उसी दालान में आए और अपना २ बिस्तर बिछा कर सो रहे।

आधी रात बीतते ही एक स्त्री जोगिया साड़ी पहिने दालान में आई और ध्यानसिंह के सिरहाने से उनकी झोली निकाल कर ज्योंही चाही कि भागें त्योंही शमशेरबहादुरसिंह की आँखें खुल गई और उन्होंने स्त्री जान कर भी झपट कर उस का वही हाथ पकड़ लिया जिसमें वह झोली लिये हुए थी।

कुँअर की आँखें खुलते ही और "कौन२" का शब्द मुँह से निकलते ही सब की आँखें खुल गईं। मार २ कहते हुए सब उठ खड़े हुए। कुँअर साहेब के हाथ में स्त्री का हाथ देख सब अचम्भे में हुए। "कौन है कौन है" का प्रश्न सबों ने करना आरम्भ किया। उधर वह स्त्री अपनी शक्ति भर हाथ छोड़ाने की कोशिश की मगर वह छत्री के कठोर हाथ में पड़ा हुआ हाथ भला छूट कैसे सकता था। जब उसने देखा कि ऐसे कठोर हाथ में से हाथ छुड़ाना कठिन है तो वह बड़े जोर जोर से उछलने और छोड़ो छोड़ो चिल्लाने लगी और बोली—देखो, कहना मान लो। मुझे छोड़ दो। नहीं अनर्थ हो जायगा। एक भी जीता न जायगा। सब की लाश यहीं पर सड़ेगी। तुमने अपने जी में साधारण स्त्री समझा होगा, यह विचार भूल जाओ। कहना मानो। छोड़ दो नहीं पीछे बहुत पछताओगे। देखो तुमने किस कठोरता से मेरा हाथ पकड़ रक्खा है कि

कलाई का रक्त भ्रमण (दौरान खून) रुक गया है। किसी स्त्री का हाथ कभी पकड़े हो कि नहीं ? मालूम तो होता है कि अभी तक किसी स्त्री का हाथ ऐसे कठोर हाथ में नहीं पड़ा। यदि पड़ा होता तो इसमें इतनी कठोरता न रहती। (हाथ झटक कर) छोड़ो अब भी छोड़ दो। क्यों हकनाहक विपत्ति को शिर पर चढ़ाते हो। एक तो विपत्ति के वश में पड़ कर विपत्ति के डेरे में विपत्ति के मेहमान होकर आही गये हो अब और अधिक विपत्ति से क्या याचना करते हो ? (फिर हाथ झटक कर) छोड़ो, कहा मान लो, भलाई को कह रही हूँ, पछताओ और फिर पछताओगे, बार बार कहती हूँ कि जिस हाथ से मेरा हाथ पकड़े हो उसी हाथ को मल मल कर पछताओगे और उसीसे शिर धुन धुन कर पछाड़ खा खा कर, चीख २ कर यहीं इसी दालान में-अभी इसी समय अपना और इन अपने साथियों का प्राण गँवाओगे। (फिर हाथ को सामने खींच और झटक कर) छोड़ दो मान जाओ इसी में भलाई है।

कुँअर०-(हाथ कुछ नरम कर) तुम कौन हो, क्यों इतनी रात में यहाँ आई हो, तुम्हारा नाम क्या है, इस झोली को क्यों उठाई ? बिना इसका उत्तर पाए मैं तुम्हें छोड़ने का नहीं।

स्त्री०--(कुछ हँस और कुछ क्रोध कर) "सेंध में चोर कोतवाल को डाँटे" तुम तो इस कहावत को चरितार्थ करते दीखते हो ! यह प्रश्न जो तुमने मुझ से किया है मुझे करना चाहिये उलटा तुम्हीं मुझसे कर रहे हो ! मेरा तो यह घर है मैं यहाँ की चौकीदारिन हूँ, मालिक हूँ, जब चाहूँ आऊँ और यहाँ आए हुए को गिरफ्तार करूँ, मारूँ, या निकाल बाहर करूँ और जो कुछ उसके पास हो छीन लूँ, छोड़ दूँ, जो जी चाहे करूँ। तुम बताओ कि तुम कौन हो, क्यों यहाँ, आए, और किस के हुक्म से आए ? क्या तुम नहीं जानते कि यह स्थान

पराया है पराये स्थान में बिना मालिक की इच्छा के जाना अपराध है ?

ध्यानसिंह को ओझा की बात याद आई कि "वहाँ मायाविनें रहती हैं उनसे चौकस रहना" और वे बोलेः—देखो ! सुभगे............

आगे बिचारे कुछ बोलने भी न पाए कि उस स्त्री ने दपट कर कहाः—खबरदार ! ऐसा शब्द मुँह से न निकालना। मैं बाल ब्रह्मचारिणी बाला हूँ, सुभगा नहीं।

ध्यानसिंह ने आगे कहाः—अच्छा माफ करो। बाल ब्रह्मचारिणी ही सही तो फिर अपने प्रश्नों का उत्तर भी सुनोगी कि नहीं?

स्त्री०—कभी नहीं, तुम कौन होते हो उत्तर प्रत्युत्तर करने वाले ? मेरा जिसका उत्तर प्रत्युत्तर हो रहा है, जो मेरा हाथ पकड़े मेरे सामने खड़ा है। जिसको अधिकार मुझसे बोलने का है वही बोलेगा। तुम "दाल भात में मूसर चन्द" कौन ?

ध्यानसिंह ने उसकी आन्तरिक भावना समझ कर फिर कुछ न कहा परन्तु धीरसिंह क्रोध से लाल हो गये और छड़ी में से गुप्ती निकाल कर चाहे कि वार करूँ इतने ही में ध्यानसिंह ने उछल कर धीर की गुप्ती का कब्जा मय उनकी कलाई के थाम लिया और तड़प कर आवाज दीः—हाँ हाँ खबरदार ! यह क्या कर रहा है ? गधा, खबरदार ! बिना मेरी आज्ञा के कोई मुँह से चूँ न करना।

स्त्री०—आहा, बड़े बहादुर बड़े वीर और योद्धा हैं "बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ पर छोटे मियाँ सुबहानअल्ला !!" मेड़की को भी जुकाम ! हमें गुप्ती से डराने चले हो ? खैर माँगो, जान की खैर माँगो। गुप्ती धर लो।

ध्यानसिंह—माफ कीजिये। अभी वह नादान ही है तभी तो नादानी कर रहा है।

स्त्री०—(हाथ झटक और सामने खींच कर) छोड़ दो हाथ छोड़ दो नहीं अब विनाश होने ही चाहता है। यह मेरी ही भूल है जो मैं छोड़ दो २ करती खड़ी हूँ और अपना कर्तव्य पालन नहीं कर रही हूँ। तभी तो कोई आँखें निकाल रहा है। कोई गुस्सा दिखा रहा है। (फिर हाथ झटक कर) छोड़ो, मुझे बड़ी देर हुई। उफ, इतनीदेर ! क्या कहूँगी ? (फिर हाथ खींच कर) छोड़ो जी! चलो हटोनाहक रुई में चिनगारी छिपा रहे हो।

कुँअर०—जब तक आप साफ २ सच्चा २ अपना और अपने कर्तव्य का सारा हाल मुझ से न सुनायेंगी तब तक प्राण भले ही चला जाय कुछ परवा नहीं, पर—छोडूंगा नहीं।

स्त्री०—नहीं छोड़ोगे ?

कुँअर०—हरगिज नहीं।

स्त्री०–कहो तो मैं निकल जाऊँ और आप टापते ही रह जायँ।

कुँअर०—यह आप की खुशी है परन्तु मैं तो बिना मतलब समझे और अपना समझाए अब चैन नहीं लेने का। और न आप को छोड़ने का हूँ।

स्त्री ने देखा की बड़ी देर हुई। हाथ छूटता नहीं है। उधर कड़ी सजा का भय है कि देर क्यों हुई। पहिले ही चिल्ला पुकार कर सब को गिरफ्तार करा दिये होती तो कुछ सन्देह किसी को न होता और अब यदि गिरफ्तार करा देती हूँ तो मुझ पर भारी सन्देह उपस्थित होने का भय है। अब इन सबों का प्रगट होना मेरे लिये दोनों ओर से दुखदाई है। इन्हें छिपा कर फिर मौके से बाहर कर देने में मैं भी कलंक और संदेह से बच जाऊँगी और ये भी। मैंने बड़ी भूल की जो इनसे झक झक बक बक की। मुझे चाहता था कि जैसे इन्होंने हाथ पकड़ा था वैसे ही वहाँ खबर करती। अस्तु, मेरी भूल का लाभ अब इन्हें ही मिलना उचित भी है। यह विचार कर उसने

(हाथ खींच कर) कहाः—देखिये मैं आप लोगों पर इतनी दया क्यों दिखा रही हूँ यह मैं जान कर भी नहीं जान रही हूँ। भगवान की प्रेरणा ही से शायद मैं ऐसा कर रही हूँ। नहीं तो मेरा कर्तव्य यह है कि इस तिलिस्म के इस रम्य स्थान में भूल भटक कर, अथवा जान बूझ कर यदि कोई प्राणी-पुरुष वा स्त्री-आ जाय तो मैं उसके जीवन और सुख के साधन को युक्ति से वा जबर्दस्ती से हरण कर लेती हूँ और उसे इस तिलिस्म के कारागारों में डाल कर ऐसी यातनायें पहुँचाती हूँ कि वह फिर जीवित बच कर इसमें से जा नहीं सकता। सैकड़ों इसमें आए और इसी में गल सड़ गए। अब भी कुछ मृत्यु की बाट जोहते किसी कोने में पड़े होंगे। यही मेरा नित्य का धंधा है। आज न जाने मुझे क्या हुआ जो इतनी देर से झक झक करती हुई भी तुम सबों पर दया दिखा रही हूँ। अपना कर्तव्य भूल कर तुम से सरबर करती बंदिनी की भाँति तुम्हारे सनमुख हूँ। मानों अपराधी तुम लोग नहीं, मैं हूँ।

कुँ०—अच्छा अब आप बैठ जाइये। पाँव दर्द करते होंगे। बैठ कर मेरे मन को शान्ति दीजिये।

स्त्री०—आप चाहते क्या हैं ?

कुँ०—आप का किस्सा आप के मुख से सुनना।

स्त्री०-सुना तो दिया कि मैं यहाँ इसी काम पर तैनात हूँ।

कुँ०—किस की ओर से ?

स्त्री०—यह पूछ कर क्या करेंगे ?

कुँ०—इसी से मुझे सन्तोष होगा।

स्त्री०—इसमें मुझे क्या लाभ होगा ? सिवा इस के कि मैं रुसवाई बदनामी बेइज्ज़ती सहूँ और मुझे क्या लाभ ! एक तो वैसे ही आज मैं कर्तव्यच्युत (अपने काम से गाफिल) हुई हूँ और इसकी सजा मुझे भुगतनी पड़ेगी दूसरे और भी अपराध

करूं कि अपना और अपने मालिक का भंडाफोड़ कर घोर दंड को भागी बनूं (हाथ सामने को खींच कर) छोड़िये मुझे अब जाने दीजिये । आप के साथ मैं यही अहसान करती हूँ कि बिना कुछ दंड दिये ही आप लोगों को इस स्थान से चले जाने को कहती हूँ । बस बेहतर यही है कि सूरज न निकले और आप इसके बाहर निकल जायँ । मैं सच कहती हूँ कि यदि अब आप मेरा कहा न माने और कुछ देर इस दालान में रहे तो मैं न सही मेरी बहिन दूसरी ही आप के लिये आने ही चाहती है (हाथ खींच कर) छोड़ो इसी में भला है ।

कुँ०—अब तो चाहे जो हो । हाथ तभी छोड़ूँगा जब मैं तुम्हारा और तुम्हारे मालिक का सारा किस्सा तुमसे सुन लूँगा।

स्त्री०-अच्छा पहिले आप अपना समाचार तो सुनावें । देर तो हो ही रही है परिणाम चाहे जोहो अब तो सहना ही पड़ेगा।

कुँअर०-हाँ, यह आपने ठीक प्रश्न किया:-अच्छा बैठ जाइये। स्त्री के बैठने पर बोले-मैं चुनार राज का युवराज हूँ। ये मेरे साथी और भाई बिरादर हैं। मेरी भावी प्रिया की प्रिय सखी को मेरे प्रतिपक्षी (कुं०कर्मसिंह) ने इसी तिलिस्म में डाल दिया जिसके लिये मेरी भावी प्रिया बड़ी चिंतित व्यथित और व्याकुल है। उसी के लिये हम लोग यहाँ आए परन्तु वह इस स्थान में मिली नहीं, नहीं मालूम क्या हुई ।

स्त्री०—हँस कर-यहाँ जो आया वह लौट कर भी गया ?

इसका नाम "बुद्ध तिलिस्म" है बुद्धिमान ही बुद्धि बल से इसमें से निकल जा सकता है, मूर्ख नहीं। मैं योगिनी हूँ और सब मिला कर पचास की संख्या में हूँ। हम पचासों योगिनी एक सिद्ध की सेविका हैं जो इसी तिलिस्म के उत्तर भाग में योग साधन कर रहा है। छ महीने वह ध्यान में रहता है और छ महीने ध्यान रहित। जब वह ध्यानरत रहता है, तो

हम पचासों योगिनें इसी बिहार में स्वतन्त्रता पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करती हैं और जब वह ध्यान विरत होता है तो सब उसकी सेवा में लग जाती हैं। आज कल वह ध्यानरत है, इसी कारण हम स्वतन्त्र जीवन बिता रही हैं। हम पचास में एक प्रधान है जो उनचासों की देख रेख रखती है। प्रधान काम हम लोगों का यही है कि इस तिलिस्म की रखवाली करें। इसमें कोई बाथबी आदमी न आवे और आवे तो उसे किसी बंद स्थान में कर देवें जिससे वह हमारी स्वतन्त्रता का बाधक न हो और न इसके गोरखधंधे को समझने पावे। स्त्रियों के साथ हम उतनी कड़ाई नहीं करतीं जितनी पुरुषों के साथ करती हैं। पुरुषों में भी उन पुरुषों के साथ विशेष कड़ाई की जाती है जो इस तिलिस्म के समझने बूझने के अभिप्राय से इसमें आते हैं। उनकी झोली झण्डा छीन कर उन्हें किसी बन्द स्थान में कर देती हैं जहाँ वे भूख प्यास से सिसक सिसक कर कुत्तों की मौत मर जाते हैं।

कुँअर०—पुरुषों के साथ इतनी कठोरता और निर्दयता (बेरहमी) का कारण क्या है?

स्त्री०—पुरुष बड़े निर्दयी और कठोर होते हैं इसीसे उनके साथ वैसा ही बर्ताव होता है जैसी उनकी स्वाभाविक (कुदरती) प्रकृति है। लोहा लोहे से ही कुटता पिटता और कटता है। विष की औषधि विष से ही होती है। दुष्टों का दमन दुष्टता ही से होता है, शिष्टता से नहीं।

कुँ०—यह तो आपका पुरुषों के प्रति एक तरफा न्याय है क्या स्त्रियाँ दुष्टा, विश्वासघातिनी और कुलटा नहीं होतीं? स्त्रियाँ तो वह जुल्म ढाती हैं जिसका अनुमान करना कठिन है।

स्त्री०—खैर, यह विषय बड़ा गहरा है इस विषय में फिर कभी-यदि समय मिला तो-चर्चा करूँगी। यहाँ इतना ही

कहना काफी होगा कि पुरुषों को इस तिलिस्म-में आना मना है।

कुँ०—आप अपने को संख्या में पचास बताई हैं पचास में भी एक सरदार हैं। क्या कृपा कर के यह भी बतावेंगी कि उनमें कितनी विवाहिता और कितनी अविवाहिता हैं?

स्त्री०-हँस कर-सब की सब अविवाहिता (बे व्याही) हैं।

कुँ०—(आश्चर्य से) यह क्या?

स्त्री—समाज का नियम।

कुँ०—समाज का कैसा नियम?

स्त्री०-हर एक समाज का कुछ न कुछ नियम होता है। उस नियम का पालन प्रत्येक स्त्री पुरुषों को-जो उस समाज में रहते हैं—उचित है। हम भी सिद्ध समाज की योगिनें हैं हमारे समाज का एक यह भी नियम है कि स्त्री पुरुष दोनों अविवाहित रह कर गुरु की सेवा करें।

कुँ०—कब तक?

स्त्री०—जब तक निभे तब तक। फिर भी निभाने से आजन्म (उम्रभर) निभ सकता है। यह तो अपने शक्ति पर निर्भर है, इस में किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं। यद्यपि निर्वाह) कठिन (असंम्भव) नहीं कहा जाता है तथापि निबाहने से निभ सकता है। अनेकों उदाहरण हैं कि अनेकों स्त्रियाँ आजन्म बालब्रह्मचारिणी ही बनी रहीं, पुरुष की छाया तक स्पर्श नहीं की। हमी लोगों को देखिये, हम सब एक अवस्था की तरुणी होकर भी अब तक अपना धर्म निर्वाह की हैं। आज आप ही ने हाथ पकड़ा है। और इस कर ग्रहण से वह अमूल्य व्रत-जिसका संकल्प करके योगिनी दीक्षा ली थीं-भंग हो गया! शास्त्र में पाणि ग्रहण एकही बार लिखा है और यह भी लिखा है कि एक ही व्यक्ति करे, अस्तु आज आपने मेरा पाणि ग्रहण किया है अतः इसका निर्वाह भी करना होगा। क्योंकि अब मैं योगिनी व्रत से च्युत हो गई अब सिवा

गृहस्थाश्रम के और चारा नहीं।

पहाड़सिंह (मनमें) यह कहिये असली मतलब यही है!

सुमेरसिंह (मनमें) ली इसने खबर कुँअर साहेब की। और हाथ पकड़ें!

धीरसिंह (स्वगत) असल मतलब तो यही जो अब खुला है।

वीरसिंह०—(स्वगत) ज्ञान में तो मालूम हुई कि सती है पर भेद खुलते ही सारा सत व्रत कपूर हो गया। वाह रे भगतिन!!!

ध्यान०—(मनमें) न भये कुँअर कर्मसिंह। उन्हीं जैसे पुरुषों की यहाँ आवश्यकता है। हमारे कुँअर साहेब में इतना जीवट कहाँ।

कुँअर साहेब कुछ न बोले वरन् हाथ छोड़ कर शिर नीचा कर लिये।

हाथ छूटते ही उस स्त्री ने कहा—अच्छा अब मैं जाती हूँ। रात में फिर मिलूँगी। तब उस स्त्री का—जिसे ढूँढ़ने आप आए हैं—समाचार कहूँगी। इस समय आप यही करें कि फौरन इस खंड से निकल कर उत्तर ओरके किसी खण्ड में चले जाँय। मुझे देर हो गई है। इस कारण जरूर यहाँ कोई तलाश करने पहुँचने ही चाहती हैं। उत्तर की ओर दूसरे खण्ड में जाने का दरवाजा और उसके खोलने की तरकीब भी उसने बता दी और यह कहती हुई वह से तीर की तरह भागी कि" फौरन यहाँ से निकल कर दूसरे खंड में चले जाँय, देर न करें।

बारहवाँ परिच्छेद।

——::※::——

स्त्री के चले जाने पर ध्यानसिंह ने कुँअर साहेब से कहाः—कहिये महाशय! कैसी बला नाजिल हुई? लीजिये अब वह आप के गले पड़ी, और अब आपका पिंड नहीं छोड़ने की।

कुँअर शमशेर बहादुर ने हँस कर पूछाः—कुछ न पूछो भाई, न जाने कहाँ की बला पहुँची। अच्छा जो कुछ वह अपने बारे में कह गई उसमें कहाँ तक सत्य है ?

ध्यानसिंह ने उत्तर दियाः—मायावी सिद्धों का यह काम है कि इधर उधर की द्विजातीय छोटी २ कन्याओं को चेली बना कर रखते और उनसे सेवा टहल कराते हैं। एक एक मायावी सिद्ध के पास पचास पचास सौ सौ चेलियाँ होती हैं। उन चेलियों की अवस्था बढ़ते ही वे पुरुषों की इच्छा करने लगती हैं, किन्तु गुरु की भयानक प्रकृति का स्मरण करके वे इच्छा रख कर भी कुछ कर नहीं पातीं। सिद्धों की सिद्धियाँ कुछ वे भी सीख लेती हैं, अथवा सिद्ध ही उन्हें सिखा देते हैं। उन्हीं के बल पर वे नाना प्रकार के कौतुक किया करती हैं और अपने कौतुकों से संसारी पुरुषों को मोह कर उनके साथ अपना मनोरथ पूर्ण करती हैं। आपने उस स्त्री से सुना है कि वे संख्या में पचास हैं और पचासों एक ही अवस्था की नहीं हैं। रात वाली स्त्री की अवस्था अभी २४—२५ वर्ष से अधिक की नहीं है। रंग रूप का कहना ही क्या है। क्योंकि जैसे रंग रूप अवस्था देख कर ही किसी कन्या के साथ विवाह किया जाता है वैसे ही रंग रूप देख कर ही सिद्ध गण चेली मूड़ते हैं और उनका पद योगिनी, भैरवी, देवी, दासी, भिक्षुणी इत्यादि रख कर अपने आश्रम में रखते और उनसे सेवा वृत्ति कराते हैं।

मायावी सिद्धों का तिलिस्म, तह, खोह दरों ही में मठ होता है। विशेष कर ऐसे स्थानों में जहाँ मनुष्यों का वास नहीं। अथवा कठिनता से वास हो। इसी कारण इनकी योगिनी भैरवी आदि पर पुरुषों की दृष्टि छाया तक नहीं पहुँचती। फिर ये मायावी होने के कारण बड़े प्रभावशाली होते हैं। इनके प्रभाव ही के कारण इनके स्थानों (आश्रमों) में मनुष्य की

कौन कहे पक्षी भी पर नहीं मार सकते। और इन्हीं सिद्धों के प्रभाव के कारण इनकी तरुणी योगिनें इच्छा कर के भी स्वेच्छा से कोई कार्य नहीं कर सकतीं और सदा सशंकित रह कर इनकी आज्ञा पालन करती रहती हैं। यद्यपि ये मायावनी योगिनें चाहें तो सिद्ध की आँखें बचा कर अपनी माया से सब कुछ करने पर उद्यत हो जावें और सिद्धजी के सिद्धाश्रम को व्यभिचाराश्रम बना डालें। किन्तु नहीं, इतनी साहस इनमें नहीं है कि सिद्ध की अथवा सिद्ध की प्रधान चेली की आज्ञा का उल्लंघन कर मन मानी कर सकें। इन पर प्रधान चेली का कड़ा नियन्त्रण रहता है। तभी तो कल्ह रात को वह योगिनी विलम्ब का स्मरण कर २ घबरा २ उठती थी और कहती भी जा रही थी कि "आज कुशल नहीं" इत्यादि।

इन सिद्धाश्रमों में दैवात यदि कोई राजा, राजपुत्र अथवा अन्य कोई शिकारी आ पड़ता है तो ये योगिनें उसके गले लिपट जाती हैं। इसकी खबर यदि सिद्ध को वा सिद्ध की चेली को लग जाती है तो वे उसे भस्म ही कर के पानी पीते हैं। क्योंकि उनके यहाँ उसी को गुजर है जो बालब्रह्मचारिणी हो, कुलटा को वे अपने आश्रम में रखते ही नहीं। अथवा यों समझ लें कि उनके दुर्गम आश्रम में पुरुष की छाया न पड़ने के कारण उन की तरुणी चेलियाँ कुलटा बननेही नहीं पातीं। परन्तु इच्छुक वे अवश्य रहती हैं। यह योगिनी भी कोई द्विजाति कन्या है। युवा अवस्था के कारण अब वह कर्तव्यच्युत हो रही है।

कुँअर०—मारो गोली, कहो अब करना क्या चाहिये ?

ध्यान०—अब क्या पूछते हो, अब तो "दुहू हाथ मुद मोदक मोरे"

ओझा की कृपा से नकशा हाथ आही गया अब योगिनी की कृपासे सहज ही चंचला भी हाथ आ जायेगी। परिश्रम और

परेशानी से बच गये। क्योंकि सहज दवा हाथ लग गयी।

कुँ०—नहीं मजाक न करो सच कहो।

ध्यान०—नहीं साहेब! मैं मजाक (हँसी) नहीं कर रहा हूँ, सच कहता हूँ। अब चंचला को ढूँढ़ना भी न पड़ेगा और वह मिल जायगी। और आज ही कल्ह में मिल जायगी। हाँ आज कल्ह कहें कि फौरन से भी पेशतर उस योगिनी का हुक्म तामील करें।

कुँअर०—वह क्या?

ध्यान०—वह यही कि इस खंड को छोड़ कर उसके बताये हुए दूसरे खंड में चले चलें। यह स्थान उन्हीं सबों के विहार का है। जान पड़ता है, यही कारण है, जो चञ्चला यहाँ से हटी या हटाई गई।

यह कह सब के सब अपना २ बधना बोरिया उठा कर उत्तर की दीवार की ओर आए। और उसी दीवार में जड़े हुए काले पत्थर को-जिसे कल्ह घूमते हुए देखे थे—कुछ दबा दुबू और घटा बढ़ा कर-जैसा उस स्त्री ने बतलाया था उसी के मोताबिक उसे-खोले। वह पत्थर सरक कर एक ओर को हो गया और जब ये लोग उस दरवाजे के बाहर निकल गये तो वह काला पत्थर का चौका आप से आप अपने स्थान पर सरक आया जिससे वह दरवाजा—रास्ता-बन्द हो गया !!!

सहन के उस पार पहुँचने पर सबेरा हो गया था। देखा तो पहले से भी यह दूसरा सहन बड़ा है इसमें भी लंबा चौड़ा मैदान, बाग, बाटिका, अमराई, उपवन आदि हैं। कुछ आगे बढ़ने पर एक झील भी दिखाई पड़ी, इधर उधर आँखें उठा कर देखा तो झील के उत्तर एक फरलाँग पर एक दो मंजिला पक्का संगीन मकान भी नजर आया। ये सब लपके हुए उसी मकान की ओर चले। पास पहुँच कर देखा कि महल तो

महल ही है। ऐसा सुखदायक महल तो काशी जैसे नगर में भी नसीब नहीं। कश्मीरीमल की हवेली इसके सामने क्या चीज है। इसकी बाहर की दालाने मिर्जापुर के जंगीलाल की बैठक से भी बढ़ चढ़ कर हैं। सब लोग उसी बाहरी दालान में डेरा डाले, महल के भीतर नहीं गए।

निपट निपटा, नहा धो कुछ जलपान आदि कर सब लोग उसी दालान में विश्राम किए। रात में नींद अच्छी नहीं आई थी इस कारण लेटते ही सो गए। एक पहर रात बीत गई पर इनकी नींद न खुली। जब रात आधी के करीब रह गई तब सब जगे और भूख २ चिल्लाने लगे। कोई बोला—वाह भाई, ऐसी गहरी नींद कभी नहीं सोए थे! कहीं इस स्थान का प्रभाव तो नहीं है? कोई बोला-स्थानवान का प्रभाव कुछ नहीं नींद ही का प्रभाव है। कभी २ थकावट वा जागरण के कारण ऐसी ही गहरी नींद आती है। रात में उस स्त्री के धर पकड़ के कारण नींद न आई, वही रात की बची हुई नींद दिन में मिली है। इसके बाद वे अपनी २ झोलियों में से मोदक निकाल कर खाना शुरू किये। झील का पानी छागलों में से उडेल कर पिये और लेटे ही लेटे कुछ इधर उधर की बात सोचने लगे।

अभी लेटते देर न हुई थी कि किसी के आने की आहट सुन पड़ी। चौंक २ कर सब उठ बैठे, इतने ही में वह रात वाली स्त्री (योगिनी) शिर पर टोकरा लिये दालान में पहुँची। वह टोकरा कुँ० शमशेर बहादुरसिंह के सामने धर कर बोली:— लीजिये, ताजे २ फल अभी तोड़े लिये चली आ रही हूँ। इसे आप खाइये और अपने इष्ट मित्रों को खिलाइये।

भूखे थे ही सब के सब एक साथ गिद्ध की भाँति उन फलों पर टूटे और देखते २ टोकरा खाली कर दिये। जब खा पीकर निश्चिन्त हुए तो वह स्त्री कुँअर साहेब से बोली-कुँअर जी!

कल्ह जो मुझे देर हुई उसका परिणाम बड़ा बुरा हुआ। बड़ी डाँट फटकार पड़ी। और धमकी भी मिली कि सिद्धजी जब समाधि से छूटेंगे तो पेशी होगी। आपके चले आने के कुछ ही देर बाद वह (प्रधान योगिनी) अपना दल लेकर वहाँ पहुँची परन्तु वहाँ किसी को भी न पाकर खिसिया कर चली गई।

कुँअर०—फिर आप कैसे यहाँ आने पाईं ?

स्त्री०—हम लोगों को पारी बँधी है। अपनी २ पारी में बारी २ से सब इस बाग, तालाब आदि की रात भर देख भाल करती हैं। पहर रात रहते ही हमें लौट कर खैरियत सुनानी पड़ती है, आज कल्ह मेरी ही पारी है। कल्ह लौटने में देर होने के कारण जवाब तलब हुआ। मैंने सो जाने का बहाना किया परन्तु वह सन्देह वश मेरी बात न मानी। स्वयं आकर देख गई तब उसे विश्वास हुआ।

कुँअर०—उसी खंड की चौकसी करती हो या और भी खंडों की ?

स्त्री०—जी नहीं, उसी खंड की।

कुँअर०—उसी खंड की क्यों ? और खंडों की क्यों नहीं ?

स्त्री०—यही खंड हम लोगों के लिये मिला है। उसे विशेष सुरक्षित समझ कर ही सिद्ध ने उसे "जनाना खंड" बना रक्खा है।

कुँ०—बटुकसिंह की ओर इशारा कर—ये तो कई बार उस खंड में आ जा चुके हैं। उस स्त्री (चंचला) को भी येही उसमें छोड़ गए।

स्त्री०—चोरी से आए होंगे। किसी को न देख पड़े होंगे। हाँ, कभी रात में यहाँ टिके होते तो मजा मालूम होता। यह जरूर है कि उस खंड में वही आ जा सकता है जो बड़ा तेज, चालाक और धूर्त हो, मामूली आदमी का काम नहीं है जो उसमें पैठे। जो उसके राह रीति से वाकिफ होगा, निकलने

पैठने की (बिधि) क्या जानता होगा वही आ जा सकेगा। स्त्रियों को रखने के लिये प्रायः धूर्त इसमें आते हैं और उन्हें छोड़ कर चले जाते हैं। जिस स्त्री को आप ढूँढ़ने निकले हैं वह उस सहन में महीनों पड़ी रही। स्त्रियों से हम लोग न कुछ कहें और न उनसे बोलें। यहां तक कि अपनी छाया भी उन्हें नहीं दिखातीं और न उनको कुछ सहायता ही करती हैं। जब तक उनकी खुशी हो पड़ी रहें। उन्हें हम न तंग करें और न मदद करें। वह स्त्री भी महीनों उसमें पड़ी रही। एक दिन एक किताब तो जरूर उससे छीन ली गई परन्तु और किसी प्रकार का दुःख उसे किसी ने न दिया। जान पड़ता है कि उस स्थान से घबरा कर वह रास्ता ढूँढ़ने निकली है और किसी तह या दरें में भटक कर पड़ गई है। मैं उसकी तलाश करूँगी आप लोग परेशान न हों।

कुँ०—मैं इस तिलिस्म को देखने आया हूँ और चाहता हूँ कि इसके सब तह और कारीगरियों को घूम २ कर देखूँ।

स्त्री०—हाँ, देख सकते हैं और मैं देखने का सुभीता भी कर दे सकती हूँ परन्तु यह एक दो दिन का काम नहीं है। इसमें महीनों लगेगें।

कुँ अर०-तो हानि क्या है। हम तो इसी लिये प्रबंध करके चले हैं।

स्त्री०—ठीक है, परन्तु अब सिद्ध के उठने के दिन हैं। इसी महीने के आखीर में वह उठेगा। छ महीने तक-जब तक वह समाधिस्थ न हो-तिलिस्म घूमने का समय न मिलेगा।

कुँ०-क्यों?

स्त्री०—वह स्वयं सारे तिलिस्म की देख रेख रखता है और जिसे पाता है आग में डलवा देता है। उसके जगते ही आग

की चिता सुलगेगी और वह छ महीने तक सुलगती रहेगी। जहाँ कोई दृष्टि पड़ा तहाँ वह पकड़ कर उसी अग्नि में झोंका गया।

कुँ०—तब वह सिद्ध काहे को है वह तो पूरा राक्षस है!

स्त्री०-जो कुछ समझें है वह बड़ा उग्र प्रकृति का पुरुष!

कुँअर०—कहो तो मैं उसका खातमा कर दूं।

स्त्री०—तब तो बड़ा गजब हो जायगा। क्योंकि पहिले तो आप उसका कुछ कर नहीं सकते वह मायावी और पूरा सिद्ध है। चाहे तो वह आप के कुछ करने के पहिले ही आपका अनिष्ट कर दे।

कुँअर०—सो कैसे?

स्त्री०—उसके पास ऐसा बल है।

कुँअर०—अच्छा तो अब करें क्या?

स्त्री०—जो सलाह मैं आपको दे रही हूँ आप उसी के अनुसार काम करें।

स्त्री०—उसके समाधि से उठने के पहिले ही आप इस (तिलिस्म) के बाहर हो जायँ जब वह छ महीने बाद फिर समाधिस्थ हो तो फिर इसमें प्रवेश करें और निर्भय घूम २ कर इसकी सैर करें। अब वह इसी सप्ताह में उठेगा।

कुँअर ने पूछा—वह हमारी स्त्री कैसे मिलेगी? भला एक सप्ताह के भीतर ही इसे कुछ देख भाल लेते तो अच्छा होता यहां का आना तो सुफल हो जाता। सुनते हैं यह तिलिस्म सात खंड पृथ्वी के भीतर बना है, तनिक देखते तो कि किस कारीगरी से सात तह धरती को फोड़ कर सात खंड बनाये गये हैं।

स्त्री ने कहा-अच्छा, यदि आप इसके खंडों को देखना चाहते हैं तो उनके भीतर जाने की एक राह इसी महल के भीतर है। आइये हम आप को बतावें। यह कह उसने सुमेर सिंह से मसाल जलवाया और उसकी रौशनी में सबको साथ

ले उस महल के भीतर गई। महल के भीतर आँगन के दक्खिन एक बड़ी दालान थी उसी दालान में पहुँच कर उस स्त्री ने कुँअर से कहा—देखिये! इसके प्रत्येक खंडों में ठीक इसी महल के नीचे क्रम से सात महल मिलते जाँयगे। प्रत्येक महल की दक्खिनी दालान में इसी प्रकार एक ही कारीगरी के सातों रास्ते मिलेंगे। उन्हीं राहों से नीचे जाना और जब आखिर तह (खंड) में पहुँचेंगे तो पच्छिम को एक सुरंग मिलेगी। उसी सुरंग में कुछ दूर जाने पर एक लोहे का फाटक मिलेगा। उस फाटक को विधि से खोलने पर एक सीढ़ी मिलेगी। उसी सीढ़ी की राह ऊपर के खंड में चढ़ना। फिर क्रम से उसी प्रकार छहों खंडों की सीढ़ियों से ऊपर के खंड में आकर इस खंड के इसी महल के पच्छिमी दालान की सीढ़ी से ऊपर चले आना। एक २ खंड में एक २ दिन लगाने से सात दिन लगेंगे। इससे अधिक समय न लगाना। अगर इस बीच में, अर्थात् सप्ताह के भीतर ही वह सिद्ध जाग गया तो मैं आपको इसके बाहर निकाल दूँगी। अच्छा, अब मैं जाती हूँ। हाँ, यह ध्यान रखना भूलना नहीं कि आखीर खंड में दक्खिन पच्छिम की ओर चारो ओर से ऊँची दीवारों घिरा एक हुआ स्थान मिलेगा उसमें पशु, पक्षियों और मनुष्यों की अनेकों मूर्तियाँ मिलेंगी। उन्हें दूर से ही देखना उनके पास न जाना। लौट कर आने पर इसका कारण बताऊँगी। यह कह कर वह स्त्री विदा हुई।

ध्यानसिंह ने कुँअर शमशेर बहादुरसिंह से कहा:—कुँअर साहेब! इस स्त्री का मिलना बड़ा काम आया। जो बात ओझा के नकशे में भी नहीं है वह इसकी जुबान पर है। इस तिलिस्म के तालों और यन्त्रों की खोल मूँद किस सरलता से इसने बताया है कि मूर्ख भी समझ लेवे। और रास्ता ऐसा सहज

चला गई कि जिसे हम किताबों के पन्ने उलटते २ परेशान हो जाते और न पाते। इसी एक महल की राह सातों खंड तिलिस्म का सैर कर फिर दूसरे सुरंगी सीढ़ियों की राह यहीं-जहाँ अब हैं—पहुँच जाना कितना सुगम रास्ता है। इसका पता ओझा के नकशे में भी नहीं है। ओझा का नकशा इसी ऊपर वाले खंड का चिन्ह सूचित करने के लिये बना है, नीचे के खंडों के लिये नहीं। जो हो स्त्री से बड़ा उपकार हुआ। इसका अहसान भूलने योग्य नहीं है।

कुँअर०—हँस कर—भूलने योग्य क्योंकर है? जन्म भर याद रखने योग्य है और वह तो अब जन्म भर के लिये आप के गले पड़ने चाहती है?

ध्यान०—कुछ चिंता नहीं, राजपूतों के यहाँ इसकी बड़ी गुंजाइश है। चाहे जितनी गले पड़ें। फिर यह तो बड़े काम की चीज है। इसका पास रखना निहायत जरूरी है (सब हँस पड़े)

उसी समय जहाँ पर दक्खिन की दालान में वह दरवाजा था वहाँ सब आकर स्त्री के बताये हुए उपाय से उसे खोले। वह दरवाजा दीवार में की एक जंजीर के सहारे खुलता था। वह जंजीर छत में लटक रही थी। ध्यानसिंह ने उस जंजीर को दोनों हाथों से खींचा। परन्तु मोर्चा लग जाने अथवा बहुत दिन से व्यवहार में न आने के कारण वह जंजीर सरकी तक नहीं। बहुत कुछ झटक पटक कर उसे खींचा पर वह तिल भर भी नहीं सरकी। ध्यानसिंह उस जंजीर को दोनों हाथों से पकड़ कर लटक गये। सारे शरीर का बोझ पाकर वह जंजीर खड़खड़ाती हुई दो हाथ नीचे सरक आई। उसके नीचे सरकते ही दालान के दक्खिन दीवार में एक ८+४ का दरवाजा खुल गया। देखा तो नीचे को ओर सीधी सीढ़ियाँ चली गई हैं। उन्हीं सीढ़ियों की राह वे सब नीचे उतरने को उद्यत हुए। गिनती में वे

सीढ़ियाँ दो ढ़ाई सौ से कम न रही होंगी और ऐसा मालूम होता था मानों वे पाताल में जाकर समाप्त हुई हैं। घंटों के बाद सब नीचे के महल में उसी ओर को उतरे जिस ओर से ऊपर के महल से चढ़े थे। अर्थात् दक्खिन की दालानकी ओर से।

वहाँ देखा तो ऊपर के दो मँजिले महल में और इसमें कुछ भी भिन्नता नहीं। ज्यों की त्यों ऊपर की नकल है। दोनों में कुछ भी फर्क ढूँढ़ने पर न पाइयेगा। एक ही कारीगर के हाथ का, एक ही समय का, एक ही नक्शे का दोनों महल बना है। जैसा उस स्त्री ने कहा था वह ठीक निकला।

वे लोग महल के बाहर आकर देखे तो वही दालान जिसमें ऊपर टिके थे। पहाड़ सुमेर और धीरसिंह को तो विस्वास ही न हुआ कि यह दूसरा महल है। उनका कहना था कि हम लोग उसी सीढ़ी के सहारे घूम फिर कर फिर वहीं उसी स्थान पर उसी महल में आ गए। जब कुँअर साहेब और ध्यानसिंह ने उन्हें बहुत समझाया और मैदान की ओर नजर दौड़ाकर दो एक चिन्हों पर उनका ध्यान खींचा तब कहीं उन्हें विश्वास हुआ कि हम दूसरे खंड में हैं। कारीगरी इसको कहते हैं। "मकान के नीचे मकान मैदान के नीचे मैदान और उसमें तिल भर भी भेद नहीं, कहो कैसी अचरज भरी कारीगरी है?" यह कह कर ध्यानसिंह ने उस झील की ओर सब का ध्यान खींचा जो ऊपर वाली झील के ठीक नीचे उसी आकार प्रकार की बनी थी। यह झील गंगा से नहर निकाल कर बनाई गई थी। यही इसमें और ऊपर वाली में भेद था। और पेड़ पौदे आदि दोनों खंडों के भिन्न थे यह दूसरा भेद था। इन्हीं भेदों से प्रकट होता था कि यह खंड ऊपर वाले खंड से भिन्न है।

स्नान ध्यान जलपान आदि से निपट कर सब लोग उस खंड की सैर करने लगे। पूरब, उत्तर, दक्खिन से घूमते ह-

पच्छिम की ओर आए। देखा तो पच्छिम में एक बड़ा घेरा एक कोस के मुरब्बे का दिखाई पड़ा। जिसकी चारों ओर की दीवारों की ऊँचाई आकाश से बातें करती थीं। "यह क्या है? कहीं उस स्त्री का बताया हुआ" मूर्ति स्थान" तो नहीं है यही आपस में विचारने लगे।

ध्यानसिंह ने कहा—वह "मूर्ति-स्थान" तो सातवें खंड में बताया है। यह तो अभी दूसरा है। यह है क्या इसे देखना चाहिये। इसमें कहीं दर दरवाजा तो नजर ही नहीं आता है !!!

बहुत छान बीन करने पर भी उसमें उन्हें कोई राह न मिली। लाचार सब महल में लौट आए और कुछ खा पीकर वहीं विश्राम किये।

——o*o——

तेरहवाँ परिच्छेद।

——*——

दूसरे दिन वे सब उठे और उस स्त्री के कहे अनुसार तीसरे खंड में जाने के लिये महल की दक्खिनी दालान में आए। यहाँ भी उसी प्रकार जंजीर लटक रही थी। ध्यानसिंह ने खींच तान कर उसी जंजीर के सहारे दरवाजे को खोला। सब लोग सीढ़ियों के रास्ते तीसरे खंड में पहुँचे। तीसरे खंड का भी वही नमूना जो पहिले और दूसरे खंड का था। गंगा से नहर निकाल कर यहाँ भी वैसी ही झील दर्साई गई है।

झील में नहा धो और कुछ जलपान कर सब लोग सैर को निकले। दक्खिन पूरब उत्तर का चक्कर काटते हुए पच्छिम की ओर आए। वहाँ देखा तो वह घेरा यहाँ भी वैसा ही बना है जैसा ऊपर वाले खंड में देखा था। तब यहाँ एक अनोखी बात

दिखाई पड़ रही है। अर्थात् उस ऊँचे परकोटे के दक्खिनकी ओर एक खुली हुईसुरंग दिखाई पड़ रही है। "यह क्या है" कह कर ध्यानसिंह उसके निकट गये। झाँक कर देखा तो सुरंग दिखाई पड़ी। "यह कैसी सुरंग है" कह कर वे उसमें उतर गये। उनके पीछे कुँअर धीर वीर सुमेर और पहाड़सिंह आदि भी उतर पड़े। मसाल जला कर कुछ दूर उस सुरंग में चलना स्थिर हुआ। मसाल जलाई गई। उसकी रौशनी में सब लोग आगे बढ़े। कुछही दूर अर्थात् दस बीस क़दम ही आगे बढ़ने पर उजाला दीखा। मालुम हुआ कि सुरंग नहीं इस घेरे में आने की कच्ची सेंध किसी ने खोद कर बनाई है। सब लोग उस घेरे के भीतर पैठे जिसकी चहार दिवारी आसमान को चूम रही थी। घेरे में निकल आने पर मालुम हुआ कि यह भी एक छोटा सा लेकिन सुखदायक खंड है।

कुँअर साहेब ने कहा—भाई ध्यानसिंह, ऐसा न हो कि हम राह भूल जावें। चलो इसे देख लिया अब अपने खंड में वापिस चलें। यह खंड और रास्ता दूसरे २ खंडों का है।

ध्यानसिंह बोले," घबराइये नहीं। राह भूलने के नहीं है। तनिक इस खंड का भी तो नज़ारा देखलें। यह खंड बड़ा रमणीक मालुम होता है। वह देखो कैसा सुन्दर इसमें तालाब और बाग है। आओ तनिक उस तालाब की सैर तो कर आवें। तनिक ठंडा जल पीकर शीतल हों इसके बाद अपने खंड में लौट चलेंगे,,

यह कहते हुए ध्यानसिंह उसी तालाब की ओर चले। कुछ दूर आगे बढ़ने पर उन्हें मालूम हुआ कि तालाब के ऊपर एक छोटी सी बारहदरी भी है। कुछ और आगे बढ़ने पर उन्हें कुछ मनुष्यों के चिन्ह दिखाई पड़े।

ध्यानसिंह ने कुँअर शमशेर बहादुरसिंह से कहा—कुँअर



साहेब ! वह जो तालाब पर बारहदरी है उसमें कुछ मनुष्य बैठे दिखाई पड़ रहे हैं। क्या आप भी उन्हें देख रहे हैं ?"

कुँ०—जी हाँ, हैं । ५-६ पुरुष हैं । चलो लौट चलें। न जाने वे कौन हैं।

ध्यान०—नहीं २ साहेब ! आओ वहाँ चलें। देखें वे कौन हैं। चलने में क्या हरज है । कोई हों, क्या वे हमें घोल कर पी जायँगे या खा जायँगे ?

ध्यानसिंह सब को साथ लेकर उसी तालाब और दालान की ओर बढ़े। दालान में बैठे हुए पुरुषों ने अपनी ओर आते हुए ५। ६ पुरुषों को देखा । उन सबों में भी तरह २ के तर्क वितर्क शुरू हो गये। दोनों दलों में अपार आश्चर्य अपार भय और नाना प्रकार के संकल्प विकल्प होने लगे।

ज्यों २ ध्यानसिंह उस दालान के निकट होते जाते थे त्यों त्यों दोनों दलों की उत्सुकता बढ़ती जाती थी। कुछ ही मिनटों में ध्यानसिंह मय कुँअर और अन्य साथियों के दालान के करीब पहुँच गये।

हां, यह कहना तो हम भूल ही गये कि दालान में बैठे हुए पुरुषों ने ध्यानसिंह को अपनी ओर आते देख बड़ी घबराहट प्रकट की एक ने एक से कहा-भाई, ये लोग केवल हम लोगों की ही तलाश में यहाँ आये हैं। अन्यथा इनके यहां आने का क्या काम था ? सावधान हो जाओ। मरने मारने को तैयार रहो । जो होगा, होगा। हाँ अपनी ओरसे शिकायत का मौका न देना । पहिले उन्होंकी ओरसे वार होने दो। मौक़ा अच्छा ढूँढ़ कर चले हैं। सोचा होगा कि इस समय वे सब मुसीबत में गिरफ्तार हैं चलो, निपट निपटा लें। अच्छा, आने दीजिये। हारिए न हिम्मत बिसारिये न राम।

दूसरे ने कहा—यह तो होना ही था, इसी की शंका करके

तो हमने कहा था कि तिलिस्म में न चलिये।

तीसरा कुछ तेज होकर बोला—तो क्या हुआ । आने न देवें। कर लेने दें उन्हें भी जो वह करा चाहते हों।

इसी प्रकार की इधर भी कहा सुनी होने लगी। ध्यानसिंह ने कहा-कुँअर साहेब ! आज तो मुठभेड़ हो गई !

कुँ०—घबराकर—किस से ?

ध्यान०—आपके प्रतिपक्षियों (मुख़ालिफों) से।

कुँ०—आश्चर्य से-अच्छा ! क्या वे कंतित वाले ही हैं ?

ध्यान०—मालूम तो वही पड़ते हैं।

कुँअर०—ये इस घेरे में कहाँ मरने चले आए ?

ध्यान०—आए थे चंचला को निकालने लेकिन जान पड़ता है कि तिलिस्म की उलझन में उलझ पड़े।

बटुक०-ऊँची गरदन उठाकर-हाँ कुँअर कर्मसिंह भी तो हैं।

ध्यान०—कुँअर कर्मसिंह, सीताराम, शंकर, भोजदत्त आदि सभी हैं। पूरी टुकड़ी ही है।

वीर०—तो आज यहीं फैसला कर लें।

ध्यान०—ख़बरदार अपनी ओर से ज़रा भी इशारा न होने पावे नहीं तो वे कहेंगे कि उलझन में देख कर इन्होंने वार किया। जिससे लड़ना ललकार कर लड़ना। घायल, विवश, असहाय, घिरे हुए, कायर शत्रु पर हमला करना कायरता है। देखो तो सही वे क्या कहते हैं। सामना तो एक मुद्दतों के बाद हुआ है। आज तक छिपे ही घात प्रतिघात होते रहे, सामने की नौबत नहीं आई। दैवयोग से आज आई भी तो बड़े बेबसी में। अच्छा ख़बरदार ! मेरी आज्ञा के बिना कोई मुँह न खोलना।

ध्यानसिंह आदि को जब यह निश्चय हो गया कि वे कर्मसिंह आदि ही हैं, दूसरे नहीं तो वे सामने की दालान में न

जाकर तालाब के घाट पर चले गये और दालान की ओर पीठ करके बैठ गये। कुछ विश्राम कर लेने के बाद तालाब का ठंढा जल पान कर आपस में बात चीत करने लगे।

धीरसिंह उन सबों को सूरत देखते ही क्रोध से बावले हो गये और हाथ जोड़ कर ध्यानसिंह से बोलेः—भाई साहेब! माफ कीजियेगा, वैरी और साँप इन दोनों पर दया दिखाना मूर्खता ही है। पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन मोहम्मद ग़ोरी पर दया दिखा कर जो फल पाया वह इतिहास साक्षी है। अतएव इस समय वैरी अपने दल बल से सामने हैं। आज्ञा हो तो आज इनसे परस्पर निपट लें जिसमें फिर किसी को यह हौसला न रह जाय कि सामने नहीं निपट पाए।

वैरी जैसा छली, दुष्ट, घमंडी और क्रूर है वह आप जानते ही हैं। फिर ऐसे को सामने मौके पर पाकर भी क्यों छोड़ रहे हैं?

ध्यानसिंह ने कहा—धीर, यह बहादुरी नहीं है कि जब वैरी घायल होकर गिर पड़ा, या डर से भाग चला, या रोगी हो गया, या अकेला कहीं घिर गया, अथवा शस्त्रहीन हो गया, या आत्मसमर्पण कर चुका, अथवा किसी कठिन शंकट में पड़ गया, तब उस पर वार करें। यह कायरों, नामर्दों और डाकुओं का काम है। देखो तनिक धीरज धरो, आपही सब भेद प्रकट हो जाता है।

उधर सीताराम ने कर्मसिंह को समझायाः—कुँअर साहेब! इस समय जरा भी जबान न खोलना और न कोई ऐसी हरकत करना जिससे अनायास ही विनाश हो जावे। वे सब साजो सामान से दुरुस्त हैं और हम अपनी लुटिया तक गँवा के बैठे हैं। फिर घिरे हुए हैं, कहीं निकलने का ठौर है न ठिकाना। ऐसी दशा में उचित यही है कि चुप मार कर दो बात सह कर इस कठिन समय को काटें।

कुँ० कर्म०—मुझसे तो उनकी शेखी देखी न जायगी।

सीता०—इस समय तो देखनी ही पड़ेगी। कर क्या सकते हैं?

कुश्ती लड़कर उन्हें परास्त करेंगे? कमर में एक चाकू भी तो नहीं है, झोली झण्डा, तरवार, कटार सभी तो गँवा बैठे?

कुँ० कर्म०—फिर क्या करें?

सीता०—इस समय सुलह और समय पाने पर युद्ध करें और क्या करेंगे।

कुँ० कर्म—ऐसी कोई नीति है?

सीता०—है क्यों नहीं। समय के अनुसार काम करना ही राजनीति है। कभी भाग कर, कभी छिप कर, कभी धोखा देकर, कभी सुलह कर, कभी मिलकर, कभी मिला कर शत्रु से लड़ना उचित है। कृष्ण ने जरासंध से भाग कर, राणाप्रताप ने शत्रु से लुक छिप कर, अलाउद्दीन और औरंगज़ेब ने राणाभीमसिंह और शिवाजी को धोखा देकर, शिवाजी ने औरंगजेब से सुलह कर, औरंगज़ेब ने मुराद से मिल कर, लार्ड क्लाइब ने मीरजाफर को मिला कर और अमीचंद को लालच देकर राजनीति का उदाहरण दिया है। क्या ऐसी राजनीतियों से इन राजनीतिज्ञों की नाक कट गई?

कुँ० कर्म०—तुम्हारी इच्छा क्या है?

सीता०—हम इस समय बलहीन, साहसहीन, सहायहीन, शस्त्र अस्त्रहीन, और उद्योगहीन हो एक घेरे के भीतर घिरे पड़े हैं और वे सब तरह से शक्ति सम्पन्न होकर आए हैं। अतएव इस समय हमें उनसे संधि भिक्षा माँगने में भी शरमाना न चाहिये। इससे यह आई हुइ बला कुछ समय के लिये सहज ही टल जायगी अन्यथा सब प्रकार का अपमान सहकर भी शत्रु के शरणापन्न होना पड़ेगा। क्योंकि कोई चारा नहीं है।

कुँ० कर्म०—वाह साहेब ! उनसे न हम धन में कम, न जन में कम, न राजमें कम, न जाति में कम, न सेनामें कम, न बल में कम, न मान और मर्यादा ही में कम, फिर हम क्यों उनसे सुलह की भीख माँगे ?

सीता०—ठीक है, किसी में भी कम नहीं हैं पर समय की कमी तो है ? समय तो आपके मोआफ़िक नहीं है। सबसे बड़ी भारी तो यही कमी है न ।

कुँ० कर्म०—क्यों जी शंकर ! तुम्हारी क्या राय है ?

शंकर०—सीताराम की राय ठीक है ।

भोज०—जी हाँ, सीताराम की राय ही इस समय कार-गर होगी ।

इस समय सुलह करलें, बाद को देखा जायगा । यह तो राजनीति है कभी उलटी भी चलती है और कभी सीधी भी । इसमें मानापमान का स्थान ही नहीं और न हानि लाभ का हर्ष और शोक ही है ।

कुँ० कर्म०—जो कुछ हो भाई ! हमें तो इसमें इतनी लज्जा होगी कि सामने मुख न कर सकेंगे ।

भोजदत्त-अभी आपने राजनीतिका अध्ययन नहीं किया है इसीसे लज्जा, शोक, इत्यादि की भावनायें करते हैं । राज-नीति ने अर्जुन को बृहन्नला बना दिया और कपट से ब्राह्मण का रूप धर कर युद्ध भिक्षा माँगते समय जरासंध ने फटकारा भी कि-"मैं इससे क्या लड़ूँ यह तो जानना है" परन्तु अर्जुन को तनिक भी ग्लानि न हुई । आप जैसे लोग होते तो गोली मार कर मर जाते ।

कुँ० कर्म०-फिर अब जो कुछ हो आपही करो कराओ मुझसे कुछ न पूछो ।

भोज०-सीताराम जायँ और सुलह की बात चीत करें ।

सीता०-शंकर को भेजें वे भली भाँति इसमें निपुण हैं।

शंकर०—संधि कराने वाला ऐसा पुरुष होना चाहिये जो भद्र हो, विद्वान हो, नम्र (नरम) हो, शहनशील हो, चतुर हो और हो वक्ता । तभी संधि होती है । ऐसा पुरुष न हो जो उग्र (तेज) हो, असहनशील हो और संधि के नियमों से अनभिज्ञ (नासमझ) हो । संधि के लिये क्षत्रियों की अपेक्षा ब्राह्मण बड़े उपयुक्त होते हैं । इनमें वे सब गुण वर्तमान हैं जो संधि कर्ता में होने चाहिये । अतएव पं० भोजदत्त ही को भेजना उचित है।

सीता०-बहुत उचित है मैं भी इस राय को पसन्द करता हूँ।

भोजदत्त का जाना निश्चय हुआ । जाते समय भोजदत्त के कान में सीताराम ने न जानें क्या कहा । भोजदत्त ने कहा हाँ हाँ मैं इस बात का ध्यान रखूंगा।

भोजदत्त को अपनी ओर आता हुआ देख ध्यानसिंह समझ गये कि कुछ मेल मिलाप की बात के लिये ही भोजदत्त इधर आ रहे हैं। उन्होंने कुँ० शमशेरबहादुर से भी कहा—देखिये ! पीछे भोजदत्त आ रहे हैं। इतने ही में भोजदत्त सामने पहुँचे। ध्यानसिंह ने पैलगी किया। कुँअर साहेब ने भी पैलगी किया। दोनों को आशीर्वाद देकर भोजदत्त सामने बैठ गये।

पाठक यह न समझें कि भोजदत्त शत्रु पक्ष का पुरुष था। वह शत्रु की ओर से नाना घात अपघात कर चुका था उससे संधि से पहिले पावलागन कैसे किया ?

शत्रु पक्ष का हो चाहे मित्र पक्ष का, ब्राह्मण क्षत्रियों के गुरु हैं अस्तु बंदनीय हैं। यहां ब्राह्मण भाव से ही बन्दना की है, शत्रु भाव के नहीं। यह विचार उन आस्तिक बुद्धिवालों के लिये है जिन्हे सनातन धर्म पर आस्था (एतकाद) है और जिनकी श्रद्धा ब्राह्मणों पर वैसी ही बनी हुई जैसी उनके पूर्वजों की रही।



जिन्हे ब्राह्मण के नाम से जूड़ी चढ़ आती है और जिन्हे उनकी सूरत से ही सन्ताप होता है उनके लिए ब्राह्मण भक्ति अब नहीं रही और इसकी अब वे आवश्यकता भी नहीं देखते।

भोजदत्त ने कुँअर शमशेर बहादुरसिंह से कहा—कुँअर साहेब! आज एक मुद्दत के बाद हमारा आप का साक्षात् हुआ है। आशा है कि इस अनायास सम्मिलन का फल भी अच्छा ही होगा। जो कुछ बुराई या भलाई दोनों ओर से हुई हो रही वा आगे होने को है उनका भी अंत इस सम्मेलन से हो जाना सम्भव है। मनुष्य का स्वभाव सदा एक सा नहीं रहता, क्षण क्षण में बदलता रहता है। स्वभाव ही के अनुकूल वह और उसका आचरण भी रहता है। उसी प्रकार हम भी स्वभाव वश ही वैर, द्रोह, आदि जो अब तक किये, किये। परंतु अब आगे न करें और न करने की इच्छा ही रखें यही हमारी ओर से चेष्टा होनी चाहिये। हम अपने दल की ओर से आप को विश्वास दिलाने आए हैं कि अब हम ऐसी कोई हरकत न करेंगे वा करने की इच्छा प्रकट करेंगे जिससे आप का वा आपके दल का जी दुखे अथवा आपके कार्य्यों में किसी प्रकार की अड़चन हमारी ओर से पड़े। और न अब हम वैर द्रोह, द्वेष, डाह इर्षादि को अपने पास फटकने देंगे! जैसा पड़ोसियों का धर्म है उसे पालेंगे और अपने दल से पालन करावेंगे। आशा है कि आप भी ऐसा ही विचार प्रकट कर इसे सफल करने में कोई कोर कसर न रखेंगे और बिना किसी मनोमालिन्य के परस्पर भाई भाई की भाँति वर्ताव करेंगे। न हम और न आप एक दूसरे के मार्ग में रोड़े डालेंगे और न किसी अन्य को डालने देंगे। वरन् तीसरे के लिये दोनों एक होकर रहेंगे। आप अपने चित्त से और हम अपने चित्त से मनोमालिन्यता को दूर कर आज इसी "बुद्ध तिलिस्म" में गले

से गला मिला लेंवे। आशा है कि ऐसा करने को आप हमें अनुमति (इजाजत) देंगे।

ध्यानसिंह ने कहा—परिडत जी! अब तक जितनी बुराई भलाई हुई है वह आपही की ओर से हुई और पहिले हुई है। हम तो केवल आप के आक्रमणों (हमलों) से बचने का उपाय ही अब तक करते आए हैं। शशि और उसकी सहेलियों को आप लोगोंही ने दुःख पहुँचाया और पहुँचा रहे हैं, हमारे कुँअर भी आपलोगों के दिये हुए कष्टों को भोगे और भोग ही रहे हैं। फिर भी हम लोग इसकी जरा भी चिंता न किये और न आगे करेंगे। यह आपही की इच्छा पर निर्भर है कि चाहे जैसा बर्ताव बर्त लें। हमें सब मंजूर है। यदि आप की अभिलाषा मिलने की है तो हम दोनों हाथ फैलाए मिलने को तैयार हैं और यदि वैर ही रखने की है तो हमें इस की भी चिन्ता नहीं सारांश यह कि संधि और विग्रह (सुलह और नाइत्तफाकी) यह दोनों हम आप ही की मर्जी पर छोड़ते हैं जिसे आप पसंद करें वह मुझे भी मंजूर है।

भोजदत्त०—बस तो हम यही चाहते हैं कि अब सुलह हो जाय।

ध्यान०—बहुत अच्छी बात है। लेकिन पहिले कीसी सुलह तो न होगी?

भोज०—वैसी उम्मेद तो अब नहीं है।

ध्यान०—अच्छी बात है। जाइये आनन्द कीजिये।

इसके बाद भोजदत्त ने अपने आने और इस प्रकार राह भटक कर घेरे में घिर जाने का जिक्र किया और कहा—यदि आप को कोई राह मिली हो तो हमें भी बता दें हम लोग इस घेरे के बाहर निकल जायँ।

ध्यानसिंह के पूछने पर कहा—हम लोग राह ढूँढ़ चुके

हमें कहीं राह नहीं मिली। हमें तो बड़ा ताज्जुब है कि आप लोग कैसे और किधर से इसमें आए।

ध्यानसिंह ने कहा—अच्छा, आप लोग मेरे साथ चले आवें। यह कह वे उन लोगों को लेकर एक सुरंग की राह पैठे और घूमते फिरते एक तंग सुरंग की राह गंगा के किनारे उन्हे निकाल कर आप फिर वहीं पर—जहाँ सबको छोड़ आए थे—पहुँच गए।

——✻——

चौदहवाँ परिच्छेद।

——::✻::——

कुँअर शमशेर बहादुरसिंह ने कहा-ध्यानसिंह, कन्तिल की चौकड़ी ने तो बड़ी मुँह की खाई? सारा घमण्ड भूल गए?

ध्यानसिंह ने कहा-जी नहीं, अभी उनकी ऐंठ नहीं गई है। जैसे रस्सी जल बल जाने पर भी ऐंठी ही रहती है उसी प्रकार प्रतिष्ठा खोकर भी उनकी ऐंठ ज्यों की त्यों बनी है। अब तो वे कुचले हुए साँप की तरह वार करेंगे।

कुँ०शम—मरने दो चांडालो को। जब करेंगे तब देखी जायगी। अब तो चलो अपने रास्ते पर चलें और दूसरे खण्ड की सैर करें।

वीर०इस घेरे में वे (कंतित वाले) किधर से और कैसे आए?

ध्यान०-(सामने उँगली का इशारा दिखा कर) इसी सुरंग में होकर आए। यहाँ आने पर उन्हें पता लगा कि यह तो कुदरती(प्राकृतिक)कैदखाना है। इसमें से निकलने का कहीं रास्ता नहीं।

धीर०—चलो तनक हम लोग भी इस सुरंग को देख लेवें।

ध्यान०बस २ माफ करो। बहुत मन न चलावो। यह तिलिस्म है कुछ मौसी जी का महल नहीं। कहीं कन्तित वालों

की तरह इसमें उलझ पड़े तो फिर इसी में पड़े सड़ गये। आवो चलें अपने खण्ड में।

यह कह वे सबको साथ में ले उसी तीसरे खण्डमें आए। रात हो जाने के कारण उसी मकान की दालान में विश्राम किये।

दूसरे दिन बड़े तड़के उठकर चौथे खण्ड में पहुँचे इसकी भी बनावट ऊपर के खण्डों से भिन्न न थी। निर्मल जल, से भरी नील कमलों से पूर्ण लहलहाती हुई झील, हरे २ पौदों और सुन्दर २ फूलों से सोभित बाग़ उस बाग़ के चारों ओर मेवों के पेड़–जिनमें भाँति २ के मेवे लगे हुए–बीच में महल, महल में आँगन, आँगन के चारों ओर दालानें सब ज्यों की त्यों जहां की तहां एक समान दीखती हैं। भेद तो कुछ जान नहीं पड़ता!

इसी प्रकार पाँचवें और छठे खण्ड की भी सैर हुई। कोई नई बात इनमें भी देखी सुनी न गई। वही ताल, वही झील, वही बाग, वही मैदान, वही महल सब ज्यों का त्यों और जहां का तहां देख लेवें! छ खण्ड की सैर छ दिन में कर अब सातवें दिन सातवें खण्ड की सैर की तैयारी है।

नहा धो खा पीकर सब लोग सातवें खण्ड में उतरने के लिये दालान में आए। जंजीर के खींचते ही दरवाजा खुला और उसके भीतर सिढ़ियां नज़र आईं। उन सीढ़ियों की राह सब लोग नीचे उतरे। नीचे उतर आने पर मालूम हुआ कि यह खण्ड ऊपर के छओं खण्डों से कुछ भिन्न है।

इस खण्ड का मैदान कोसों लम्बा चौड़ा है। जितना भाग राजघाट के स्टेशन से लेकर "धमेख" तक और गंगा के तट से लेकर कोनियाँ तक ऊपर दिखाई पड़ा था उससे भी यह मैदान अधिक लम्बा चौड़ा मालूम हुआ। इसमें नहर झील तो नहीं परन्तु चौखूटे तालाबों की भरमार है।

हर एक तालाब पक्के और किनारों पर लहलहाते हुए बागों से शोभित हैं। सारस, हंस, चकोर, चक्रवाक, बतख, पनडुब्बियां आदि किनारों पर बैठे तालाबों का लहर ले रहे हैं। धरती पर जितनी बनस्पति और वृक्ष वर्ग विधाता ने सिरजा है वे सब इस छोटे से मैदान में उगे वा उगाये गये हैं अथवा अपने आपही उगे हैं। मालूम होता है कि प्रलय के भय से विधाता ने अपनी सृष्टि के सारे बनस्पति के बीजों और पौधों को इस पृथ्वी तल में छिपा रक्खा है।

इस मैदान में एक और विशेषता है। इसमें स्थान २ पर स्तूपों (गुम्बदों) की बड़ी भरमार है। मालूम होता है कि ये गुम्बद सिद्धों की समाधि स्थान हैं जो हो आओ पाठक! हम भी इन्हीं चुनारी टुकड़ी के साथ इस स्थान की सैर कर लेवें। क्योंकि यह स्थान नन्दन काननहीं नज़र आता है।

इस रमणीय मैदान में आकर धीरसिंह आदि बड़े प्रसन्न हुए और कुँअर शमशेर बहादुरसिंह भी बिन्ध्याचल की सीनरी भूल गए। सब लोग अवाक् और चंचल हो चारों ओर आँखें फाड़ २ उस हरे भरे लहलहे मैदान और उसके भीतर के बाग़ तालाब और वृक्षों को देखने लगे।

इस प्रकार अचरज में भरे हुए वे सब एक तालाब पर आए। देखा तो तालाब बड़ा निर्मल, मीठे जल से भरा है और हवा से अठखेलियाँ खेल रहा है। किनारे पर, शाल, तमाल, ताल, और इसी प्रकार के बहुत से लम्बे और घने वृक्ष खड़े ताल को अपनी शीतल छाया से शीतल किये हैं।

ठण्डी २ हवा पाकर सब लोग उसी ताल पर डेरा डाले और एक छन विश्राम कर आपस में बातें करने लगे।

कुँ० शम०—विधाता की अनूठी कारीगरी तो उसकी सृष्टि रचना देखने ही से जाहिर है पर मनुष्यों की अनूठी कारी-



गरी भी कम अनूठी नहीं होती। कोई २ कारीगर तो विधि से भी विरल दीखते हैं। और उसकी रचना का ऐसा अपूर्व नकल उतार लेते हैं कि देखने वाले दंग रह जाते हैं और पारखियों का दिमाग चक्कर खाने लगता है।

देखो तो! पृथ्वी के हजारों हाथ नीचे सात तह (पर्दे) के नीचे कैसी मनोहर रचना रची गई है। कोई कह सकता है कि यह धरती के सात तह के भीतर है। कहीं से तनिक भी भ्रम नहीं होता कि हम धरती में सात तह के भीतर बैठे हैं। ऐसा अनुमान होता है कि धरती के ऊपर किसी उपवन में बैठे हैं।

ऐसी रचना साधरण (मामूली) नहीं वरन् असाधारण (गैर मामूली) है और मानवी (इंसानी) नहीं वरन् दैवी (खुदाई) है पर नहीं मनुष्य बल भी बड़ा प्रबल है। जल थल नभ तीनों में मनुष्यों ने अपने अद्भुत चमत्कार दिखा दिये और दिखा रहे हैं। यह "बुद्ध तिलिस्म" भी संसार में अकेला है इसमें की रचना विधि की सृष्टि के बाहर है। और बाहर क्यों न हो, महात्माओं का स्थान है कि दिल्लगी। जिस स्थान पर गौतम बुद्ध जैसे त्यागी योगी ने अपने योगाभ्यास का श्रीगणेश किया और जहाँ से उस साधक ने अपने साधन से त्रिलोक को वश में कर लिया वह पुनीत स्थान यदि स्वर्ग से भी बढ़-कर सुखदाई हो तो अचरज क्या है?

ध्यानसिंह०—इसका नाम मृगदाय-मृगदाव वा मृगवन है ऐसा पुनीत और सुरम्य स्थान इस धरती पर है ही नहीं।

धीर०-भाई इस तह को तो एक दिन में देखना कठिन है?

वीर०—चाहे जो हो देखना एक ही दिन में पड़ेगा। योगिन क्या कह गई है?

पहाड़०—सैर करना चाहते हो तो योगिनी भोगनी का विचार छोड़ो।

सुमेर०—ऐसा सैर न करना कि इसी में फैर दगने लगे। योगी योगिनों का प्रभाव कम नहीं होता है। एक योगी ने एक राजा की फौज का मूत बन्द कर दिया था।

ध्यानसिंह०—अच्छा, उठो चलो तो सही। यहीं पर समय क्यों खराब कर रहे हो।

सब लोग पहिले पूरब की ओर आए जिधर स्तूपों का झुंड था, देखा तो छोटे बड़े कई स्तूप हैं और उन पर कुछ लिखा हुआ है।

एक पर लिखा है:—

" अहिंसा परमो धर्मः " अर्थात् अहिंसा ही परम (श्रेष्ठ) धर्म है।

एक पर लिखा है:—

" सत्यमेव जयते नानृतम् " अर्थात् सत्य की विजय (फतह) होती है झूठ की नहीं।

एक पर लिखा था:—

दया धर्म का मूल है नरक मूल अभिमान।
तुलसी दया न छाँड़िये, जब लग घट में प्रान्॥

एक बड़े स्तूप पर लिखा था:—

तजि हिंसा अभिमान मद दया मया करु प्रीति।
सब समान जग जीव गुनि, लेहु मुक्ति कहँ जीति॥

एक पत्थर की चट्टान पर जो उसी ओर की पक्की दीवार में जड़ी थी यह लेख खुदा था:—

सौ धनु पच्छिम उत्तर चार।
तेंतिस धनु हीं दक्खिन धार।
आठ हाथ नीचे जो जावे।

गौतम की गति गुनि सो पावे।

कुँअर ने पूछा—ध्यानसिंह। इस दोहें का क्या अर्थ है?

ध्यानसिंह ने कहा बस, इसी दोहे में इस "बुद्धि तिलिस्म" को सारी करामात बन्द है!

कुँ०—अर्थात्

ध्यान०—अर्थात् यह कि इतनी दूरी के भीतर गौतम बुद्धि की गति = नीति (बुद्ध तिलिस्म की कुंजी) है जो ढूँढ़े सो पावे।

कुँ०—फिर अब आगा पीछा किस बात का है? चलो न?

ध्यान०—जी नहीं, मौका नहीं है। यह मौका इन सब बातों की छान बीन का नहीं है। इस समय तो हमें चंचला मिले बस उसे लेकर हम बाहर निकल चलें। आजमगढ़ पहुँच कर आप चंचला को शशि को दें और शशि को आप लें। इसके बाद काशी आकर इस तिलिस्म का तह तोड़ें और इसमें की सम्पत्ति (धन) निकाल कर तब अपने शत्रुओं का मान मर्दन करें। सारे भारत को एक छत्र तले लेवें अब इसका छेद भेद समझ चले हैं अब इसके तोड़ फोड़ में किसी प्रकार की अड़चन न होगी।

यह कह कर उत्तर की ओर आए, देखा तो एक बड़े भारी शिखर के भीतर एक पाँच हाथ ऊँची मूर्ति ध्यान में बैठी है। आकार प्रकार से न वह पत्थर की मालूम होती है न मिट्टी की और न जड़ चैतन्य ही का कुछ अनुमान होता है। ध्यानसिंह ने कहाः—कुँअर साहेब! यही वह सिद्ध है और यह गुंबद है जिसे हम ऊपर मृगवन के भीतर देखा था! (तलवार के कब्जे पर हाथ रख कर)।

वीर०—मौका तो अच्छा है, कहो तो उड़ा दूँ अभी?

ध्यान०—(तलवार का कब्जा मय हाथ के पकड़ कर और दपट कर) खबरदार ! ऐसा काम न करना ! नहीं; यहीं जल बल कर राख की ढेर हो जाओगे। सिद्धों पर साधुओं पर हाथ उठाना शूरों का काम है कि कायरों का ? फिर उसने हमारा क्या बिगड़ा है ? भगवान की उपासना में तन मन प्राण लगाये जो अचेत बैठा हो उसे तो छेड़ना ही न चाहिये। राजा सगर के पुत्रों ने कपिल को ध्यान में छेड़ कर क्या फल पाया ! याद है ? अकबरशाह जैसा सहनशील बादशाह ने सुना कि—एक आदमी को एक ने उस समय मारा जब वह नमाज़ पढ़ रहा था—वह आग बगूला बन गया। और उसे बड़ी बुरी तरह किले पर से ढकेल कर मरवा डाला। उचित तो यह है कि यहाँ से हट चलो।

यह कह कुँअर का हाथ अपने हाथ से थाम कर पच्छिम की ओर मुड़े और घूमते घामते एक बड़े घेरे के निकट पहुँचे।

यह घेरा भी उसी आकार प्रकार का—पर उससे चौगुना बड़ा था जिसमें कुँअर कर्मसिंह आदि फँसे थे। कुँअर शमशेर बहादुरसिंह ने पूछाः—ध्यानसिंह, इसमें भी कोई फँसा न हो।

ध्यान०—अचरज क्या है।

कुँ० शम०—यह भी तो वैसा ही घेरा है।

ध्यान०—इसमें सन्देह नहीं।

कुँ० शम०—इसके भीतर चलकर देखें ?

ध्यान०—राह भी तो कोई हो।

कुँ० शम०—राह तो ज़रूर होगी।

ध्यान०—हाँ होगी तो ज़रूर पर अपने को सूझे तब न ? यह कह वे उस घेरे के चारो ओर घूम आए परन्तु उन्हें राह कहीं न सूझी। दक्खिन की ओर देखा कि दीवार के

प्लास्टर में एक छ हाथ लम्बी चार हाथ चौड़ी चौकोर दरार सी पड़ी है। दरार भी ऐसी नहीं कि उसमें तिनका समा जाये वरन् बाल भी नहीं समाने योग्य थी। ध्यानसिंह उस बारीक दरार को बड़ी बारीकी निगाह से देख कर मन में अनुमान किये कि हो न हो यह किसी सुरंग या दर की राह ज़रूर है। उन्हों ने अपना यह अनुमान मजबूत करने की गरज से चाकू से उस दरार को कुछ खुरच कर बढ़ाया। चाकू की धार किसी कठोर वस्तु पर लगने के कारण मोथड़ी हो गई। और उस दरार में एक फौलादी लोहे की चादर की कोर दीखने लगी।

ध्यानसिंह ने अपने साथियों से कहा–भाई ! है यह कोई दरवाजा जरूर मगर यह नहीं मालूम की यह खुलता कैसे है और इसके खोलने का यन्त्र कहाँ लगा है ?

धीरसिंह ने कहा—इस लोहे पर के प्लास्टर को खुरच कर देखें तो पता चले।

वीरसिंह ने कहा—इसे तोड़ ही क्यों न डालें।

ध्यानसिंह ने कहा—ठहरो, जल्दी न करो। जल्दी में बनता हुआ काम भी बिगड़ जाता है और सूझ असूझ हो जाती है। यह कह वे बड़े ध्यान से उसके ऊपर नीचे अगल बगल नज़र दौड़ाने लगे। कुछ देर के बाद एक सुई की भाँति कील उनकी दृष्टि में पड़ी जो उस दरार की दांईं ओर दीवार में गड़ी थी। चिमटी के सहारे ध्यानसिंह ने उस कील को सामने को खींचा। मुद्दतों की गड़ी और मोर्चे से बिगड़ी हुई वह कील अपनी जगह से जरा भी न हिली।

ध्यानसिंह ने फिर जोर लगाया और उसे सामने को खींचा। अब की बार वह बाहर निकल आई उसके निकलते ही वहां से एक हाथ लम्बा भीतर से पोला लोहे का एक छड़ बाहर निकल आया। और दीवार में हाथ जाने भरका एक सूराख

बन गया ध्यानसिंह ने यह अनुमान कर—कि शायद यह छेद आरपार हो और इसमें से उस पार कुछ दीखे-उस सूराख में झाँका तो एक सफेद मोती की भाँति चमकती हुई वस्तु उसके भीतर नज़र आई। हाथ डाल कर देखा तो गोल बटन मालूम हुआ। उसे सामने खींचा परन्तु वह न निकला। फिर हिला डोला कर खींचा लेकिन वह न हिला। अब की बार उन्होंने उसे भीतर को ठेला मगर वह भीतर भी न धँसा। एक बार भर पूर जोर लगा कर फिर उसे भीतर को दाबा। अब की बार वह बटन दो इंच भीतर धँस गया। उसके धँसते ही एक फौलादी दरवाजा खट खटा कर उसी ओर से खुला जिधर ध्यानसिंह खड़े उसे खोल रहे थे। दरवाज़े के फौलादी पल्ले की चोट से ध्यानसिंह घायल हो गये। उनके शिर में ऐसी कड़ी चोट आई कि वे धरती पर बेहोश गिर पड़े। कुछ देर बाद उन्हें होश आया। धीर और वीर दोनोंने उनके शिर पर पानी की पट्टी बाँधी जिससे रक्त का बहना बंद हुआ।

कुछ देर के बाद ध्यानसिंह उठे और कुँअर साहेब से बोले कि आप सब को लेकर यहीं ठहरे रहिये मैं अकेला इसके भीतर जाकर पहिले देख आऊँ कि उधर क्या है। यदि उधर कुछ मनोरंजन होने योग्य स्थान होगा तो आप को आकर ले चलूँगा।

कुँअर ने कहा—जी नहीं, मैं आपको इसमें अकेले जाने की कभी सलाह न दूंगा। न जाने उधर क्या और कैसा है। फिर जिसका दरवाजा ही खूनी निकला उसका मैदान कैसा होगा?

ध्यान०—यह दरवाजा बड़े तरकीब और कारीगरी से बना है। पहिले तो इसे हर कोई पाही नहीं सकता। दरार देखने से दरवाज़े का बोध उसी को हो सकता है जिसने

ऐसे छिपे दरवाजे देखे हों। ऐसे दरवाज़े तहखानों और तिलस्मों ही में देखे जाते हैं। इस दरवाज़े में एक बड़ी अजूबा बात यह है कि इसका खोलने वाला यदि असावधान (गाफिल) हो तो वह इसके पल्लों की चोट से चोटीला, और सख्त घायल हो सकता है। बेढब और अचानक चोट खाकर मर भी जा सकता है। इसके कारीगर की मंसा भी यही रही जान पड़ती है। अर्थात् जो इसे खोलेगा वह यदि इसके पल्लों के अघात से मरेगा नहीं तो बेकाम तो जरूरही हो जायगा। भगवान ही आज मे रक्षक हुए तभी मैं बाल २ बच गया।

अब यदि यों हीं इसके भीतर चले चलें और ये पल्ले अपने आप जुड़जावें—जैसाकी प्रायः तिलिस्मी दरवाज़ों के जुड़ने का कायदा है—तो फिर इसमें से निकल भी पावेंगे कि नहीं यह सन्देह भारी है। मुझे तो यह घेरा चूहे दानी सा दीखता है। अस्तु इन पल्लों को डोरियों से खींच कर दीवार में कील गाड़कर बाँध देवें तब इसमें पेठें।

ध्यानसिंह ने डोरियों से उन पल्लों को दीवार में जकड़ कर बाँध दिया। इसके बाद सब भीतर पैठे। कुछ दूर तक तो बड़ा अंधेरा रहा परन्तु दो तीन सौ कदम आगे जाने पर एक मैदान नज़र आया। यद्यपि यह मैदान छोटा था तथापि हरा भरा और फल फूल कंद मूल और निर्मल जलाशयों से पूर्ण था—

मैदान देख कर कुँअर और उनके साथी बड़े प्रसन्न हुए और सब लोग एक जलाशय पर पहुँच कर पिश्राम करने लगे।



पन्द्रहवाँ परिच्छेद ।

अब आयें पाठक ! वहाँ आयें जहाँ आप चंचला को छोड़ आए हैं। यह ऊपर पढ़ चुके हैं कि चंचला रात हो जाने के कारण एक दालान में चुप चाप सो रही। देखें भा०—पृ०—

सुबह होते ही वह उठी और स्नान कर कुछ फल तोड़ कर खाई। इसके बाद वह उस घेरे का चक्कर काटने लगी। यह हम ऊपर कह आए हैं कि यह घेरा एक कोस के मुरब्बे का था। चंचला उस घेरे के चारों ओर चक्कर लगा कर थक गई; कहीं राह न पाई। घर की चहार दीवारी भी नीची नहीं जो उस पर चढ़ कर देखे कि उतरने योग्य वह है कि नहीं। उसने मनमें अनुमान किया कि यह घेरा उस घेरे से—जिसमें पहिले पहिल रही—कहीं कठोर और दुख दाई है। "क्या मैं इसी में पड़ी रहूँगी" ऐसा विचारते ही उसकी आँखों से आँसुवों की धारा बह निकली और वह एक छन के लिये बड़ी अधीर हो उठी। फिर कुछ सम्हल कर मन ही मन कहने लगीः—अधीर होना व्यर्थ है। भगवान ने शरीर कष्ट सहने ही को दिया है, चिकनाने को नहीं। जो शरीर को एक अमूल्य वस्तु समझ कर सदा उसकी रक्षा ही में तन्मय रहते हैं। घाम, शीत बयार आदि से बचाकर गुल गुले गद्दे पर कमरे के भीतर पालते हैं, इतर, सुगंध, चोवा, चंदन, अगर, अरगजा, आदि के लेपनों से सुवासित कर उत्तम महीन मुलायम वस्त्रों से ढांके रखते हैं, और तरह २ के स्वाद पूर्ण—मीठे, खट मीठे, तीते, चरपरे चटकीले षट रस व्यञ्जनों से उसको बढ़ाते और तोंद फुलाते रहते हैं; उनकी वह काया भी एक दिन रोग ग्रस्त होती और अंतमें गिर जाती है। जब इतनी मेहनत और मशक्कत की पाली हुई

चिकनी चोपड़ी काया भी नौ मन लकड़ी की आग में झोंकी जाती है ! तब सूखी, रूखी, गली, पिचकी, रोगी, भूखी तथा दुखी काया का क्या कहना है, वह तो जीते ही चिताग्नि और क्षुधाग्नि में जलती सुलगती रहती है।

तब इस अधम, मल मूत से भरी, तथा कौव्वा सियार गिद्ध की भक्ष्य काया से किसी का उपकार हो जाय तो क्या बुरा हो। यह काया कष्टों से कठिन और कठोर होती है और सुख से शीघ्र नाश हो जाती है। तब इसे कठिन और कठोर बनाने के लिये कष्ट को स्वीकार करना चाहिये।

चिता ग्लानि और वियोगाग्नि को बढ़ती हुई देख चंचला ने ईश प्रार्थना की:—

प्रभु अब काटो कष्ट हमारे ॥ टेक० ॥
जब २ भीर परी भक्तन पर तब २ तुमहि निवारे।
हमरी ओर कोर दृग कीजे हम हैं सरन तिहारे ॥ १ ॥ प्रभु० ॥
द्रुपद सुता जब बीच सभा में टेरी हाथ पसारे।
तनक विलम्ब किये नहिं मोहन भाँजत पलक पधारे ॥प्रभु०॥२॥
खड्ग काढ़ि हिरना कुश पूछत तेरो राम कहाँरे।
खंभ फाड़ि फाड़े निशिचर कहँ सुत प्रहलाद उबारे ॥ ३ ॥
सुनत अधम ते अधम तिराये अतरन योगहु तारे।
हमरी बेर श्रवन कस मूंदे हे यशुदा के प्यारे ॥ ४ ॥ प्रभु० ॥

इस पद के गाते ही चंचला का मन कुछ हलका हुआ और वह पासही के एक ऊँचे पेड़ पर चढ़ कर घेरे का हाल और उसके बाहर की दशा जानना चाही। उसने देखा कि एक शाल वृक्ष बड़ा पुराना और लम्बा है और मन में सोचा कि यदि इस पर चढ़ कर देखूं तो इस इहाते के बाहर का हाल जान पाऊँ इस अभिप्राय से वह उस पुराने और लम्बे शाल वृक्ष पर चढ़ गई। चंचला साधारण स्त्री नहीं वरन् बडी

चालाक धूर्ता स्त्री है; यह हमारे पाठक जानते हैं। वह धूर्त (ऐयार) नहीं जो चौंशठों कला में से मुख्य २ कलाओं को न जानता हो। गाना, बजाना, रूप बनाना, तैरना पेड़ पर चढ़ना इत्यादि २ निसिदिन के काम हैं। चंचला एक प्रकार से इन मुख्य २ कलाओं को अच्छी तरह जानती थी इसीसे उसे पेड़ पर चढ़ने में कोई कठिनाई न जान पड़ी। ज्योंही वह उस पेड़ के शिखर पर पहुँची त्योंही उसे ५। ६ जन उस घेरे के उत्तर की ओर दीख पड़े जो एक जलाशय पर बैठे उसी पेड़ की ओर—जिस पर चंचला चढ़ी थी—बड़े अचरज के साथ आँखें फाड़ २ कर देख रहे थे।

चंचला अपने घेरे में पाँच छः पुरुषों को देख मन ही मन कहने लगी कि—कहीं वेही दुष्ट तो नहीं हैं जिन्होंने मुझे इस खंदक में डाला ? आह ! अगर कहीं वेही हैं तो अब उन राक्षसों से धर्म बचाना कठिन है। हाय ! मेरी तलवार, खुखड़ी, झोली, सब उन दुष्टों ने छीन ली। आज उनमें से एक भी मेरे पास होती तो बड़ा काम निकलता। इन्हें मैं यहाँ से जीवित जाने ही क्यों देती ! अस्तु, पहिले यहीं से बैठे २ यह देख लूं कि ये वे ही (कंतितवाले) हैं अथवा कोई दूसरे। स्त्रियाँ तो कई एक कई बार इसमें दीखीं परन्तु पुरुष नहीं। आज पुरुष भी—सो भी एक दो नहीं एक साथ सात—दीख रहें हैं भगवान की क्या इच्छा है।

यही सब सोचती विचारती वह चंचला पेड़ पर एक डार के सहारे बैठी उन्हीं सप्तऋषियों को देखने लगी।

इधर एक सुहावने जलाशय पर बैठे हुए सातोंजन उसी पेड़ की ओर दृष्टि गड़ाकर एक दूसरे से कह रहे हैं। भाई ! यह क्या बला है ? भूतनी, प्रेतनी, पिशाचिनी, राक्षसी वा चुरैल अथवा कोई देव यह कौन है ? ऐसे समय ऐसे घेरे में इसके

रहने का कारण क्या है ? फिर यह पेड़ पर क्यों चढ़ी, किसी बनैले जन्तु के भय से तो नहीं पेड़ पर चढ़ी है। कहीं वही योगिनी न हो जो हम लोगों को डराने के लिये पेड़ पर चढ़ी हो। अच्छा आओ वहाँ निकट चल कर उसे देखें।

अचरज और कौतुक समझ कर सातोंजन उस पेड़ के नीचे आए। उनमें से एक ने बड़े विनीत भाव से कहा— सुन्दरी ! क्या हम आपसे पूछ सकते हैं कि आप कौन किसकी बहू बेटी हैं यहाँ कैसे आईं। आपका नाम क्या है। धाम कहाँ है। इस पेड़ पर चढ़ कर बैठने का कारण क्या है ? आपकी अवस्था बहुत थोड़ी होने पर भी शरीर सूख गया है, युवा अवस्था के आरम्भ ही में जरा के चिन्ह प्रकट होगये हैं। शरीर का रंग तपे हुये सोने के समान होने पर भी मलीनता के मैल से रँगा हुआ है आपको एक वस्त्र से कितने दिन निर्वाह करते होगये ?

चंचला ने देखा कि वे दुष्ट—तो नहीं हैं जिनका वह अनुमान करती थी—परन्तु उन्हीं के समान दुष्ट न सही तो कामी तो ये भी ज़रूर हैं। क्योंकि इनकी बोली में काम वासना है ?

कामी बचन विनीत मृदु डारि मोहिनी देंय।
वशिकरि डारैं बचन ते चितवन ते हरिलेंय॥

अस्तु, कामी होने पर भी इनमें सौजन्यता, शिष्टता, है और ये कोई भद्र पुरुष ज़रूर हैं। प्रगट में वह कुछ उत्तर न दी किन्तु चुप ही रही।

फिर उस पुरुष ने कहाः—बाले ! आप अपना पूरा परिचय देकर मेरे मन का संदेह दूर करें।

चंचला ने वृक्ष पर से उत्तर दियाः—पहिले आप लोग परिचय दें पीछे मैं अपना दूँगी।

एक ने एक के कान में धीरे से कहाः—देखा, कैसी चतुर स्त्री है। अपना परिचय पहिले न देकर दूसरे का पहिले पूछ लेना यही तो चतुरों के काम हैं।

प्रकट में उत्तर दियाः—सुन्दरी ! मैं क्षत्रिय हूँ मेरा नाम ध्यानसिंह है। यह मेरा छोटा भाई धीरसिंह है और ये मेरे साथी वीर, सुमेर और पहाड़सिंह हैं। ये चुनार के युवराज कुँअर शमशेरबहादुरसिंह हैं। हमलोग चुनार के रहने वाले हैं। अजयगढ़ की राजकन्या शशिप्रभा की प्यारी सखी चंचला को ढूँढ़ने निकले हैं। सुना है कि वह इसी "बुद्ध तिलिस्म" में कहीं छिपाई गई है।

पाठक तो समझ ही गये। कैसा गंगा यमुना का संगम है ! परन्तु न तो चुनार की टुकड़ी कभी चंचला को देखी और न चंचला चुनार की टुकड़ी को देख पाई। न ये चंचला को जान सके और न चंचला इन्हें पहचान सकी। तब चंचला इन लोगों का नाम सुन रखी थी इसी से वह नाम सुनते ही कुछ सहम और लजा उठी। फिर भी उसे यह संदेह हुआ कि कहीं धूर्त न हों जो चुनार के नाम से मुझे छलने आए हों। इसका निर्णय करने के लिये उसने उनसे कुछ ऐसे प्रश्न किये जिसका उत्तर अजयगढ़ राज का शुभचिंतक ही दे सकता था; विरोधी नहीं। तब उसने उनसे कहा—आप लोग जरा किसी झाड़ी की ओझल में हो जायँ तो मैं आप लोगों को अपना परिचय दूं।

सब लोगों के ओझल में चले जाने पर चंचला नीचे उतरी और अपनी मैली साड़ी सम्हाल कर धरती पर बैठ गई।

ये लोग भी ओझल में से निकल कर उसके सामने पहुँचे और आसन लगा कर बैठ गये। उस रमणी ने अपना नाम धाम का परिचय देने के पहिले बड़ी २ आँखों से बड़ी २ मोती

के समान आँसुओं की बूंदें गिरती हुई कहा—आपलोग जिस अधमा के लिये इतनी मेहनत, मशक्कत, मुसीबत, और आफत उठाकर यहाँतक आए हैं वह यही आपके सामने है। इतना कहते २ उसका गला भर आया और वह आगे अधिक कुछ न कह कर फूट २ कर रोने लगी।

चंचला की प्राप्ति पर जो अपार हर्ष ध्यानसिंह को हुआ उससे बढ़कर कुँअर शमशेर बहादुरसिंह को हुआ। ध्यानसिंह ने कहा—चंचला! तुमतो एक चतुर और समझदार स्त्री हो फिर भी इतना अधीर हो गईं। क्या चिंता है। जो लड़ता है वही गिरता है। तुम्हारे साथ जैसा सलूक उन बेइमानों ने किया वैसा वे फल भी भोगे। फिर वे लोग गुट बाँध कर मुझसे पहिले यहां आए थे और इरादा किये थे कि हमारे पहुँचने से पहिले ही वे पहुँच जाँय और तुम्हें ले भागें। भगवान उनके इस संकल्प में बाधक हुए और वे यहाँ आकर ऐसे फँसे कि यदि हम उन्हें न निकालते तो वे यहीं गल पच जाते।

चंचला क्या वे यहाँ हमारी ही तरह फँस गये थे?

ध्यान०—तुमसे भी बुरी तरह फँसे थे।

चंचला—(शोक के साथ।) हाय! उन्हें निकाला क्यों? अरे उन निगोड़ों को यहीं सड़ने दिया होता। वे दया के योग्य नहीं वरन् इस योग्य हैं कि उनकी बोटी २ काट कर कौवे कुत्ते और चीलहों को खिला दें। आपने बड़ा बुरा किया जो उन्हें निकाला। मैं होती तो उन्हें और भी वहीं जकड़ देती और ऐसा करती कि कहीं पानी भी न मिले। वे बेईमान लुच्चे सी योग्य हैं।

ध्यान०—जब वे गिड़गिड़ाने लगे और माफी माँगने लगे

तो फिर उनपर दया दिखानी ही पड़ी। अब तो वे वादा करके गये हैं कि फिर कभी आपके रास्ते में रोड़े न डालूँगा।

चंचला०—(हँसकर) भली कही। अजी वे इतने बड़े बेहया हैं कि कुछ कहा नहीं जाता। न जाने कितनी बार वे माफी माँगे होंगे लेकिन फिर वही बेढंगापन! खैर, अबकी बार यदि वे मस्तक उठाये तो फिर बिना उसका फल चखे न रहेंगे।

चंचला की क्रोध भरी बातें सुन कर बटुकसिंह की नाड़ी सिकुड़ी जा रही थी। वह ऐसा ज़ुबान बंद किये चुपचाप सबके पीछे बैठा रहा मानों वह साथ में हैही नहीं।

ध्यानसिंह ने भी बटुकसिंह का परिचय न कराया क्योंकि उन्होंने चंचला का भाव देख कर विचार किया कि यदि मैं बटुक का परिचय चंचला को करा देता हूँ तो संभव है कि वह उसपर वार कर बैठे अस्तु वेही अकेले चुप रहे सो नहीं वरन् उन्होंने अपने साथियों को भी चुप रहने का इशारा किया।

ध्यानसिंह ने अपनी झोली में से अपने पहिरने की धोती निकाल कर चंचला को दी और कहा—अब तुम इस पास के जलाशय में स्नान कर धोती बदल डालो। क्योंकि धोती तुम्हारी बड़ी ही गंदी हो रही है।

चंचला ने कहा—मुझे अजयगढ़ छोड़े आज आठ महीने हुए तब से मेरे पास यही एक धोती है। इसीसे काम चला रही हूँ और जब तक अजयगढ़ न पहुँचूंगी और अपनी प्यारी सखी के दर्शन न कर लूंगी तब तक मैं इस धोती को न बदलूंगी और न सिर के लट पड़े हुए बालों को ही बाधूँगी।

कुँअर शमशेरबहादुरसिंह ने भी बहुतेरा समझाया, अपना आयना कंघी दिया। फुलेल की शीशी भी आगे धरी परन्तु वह स्वीकार न की। उसने कहा—कुँअर जी! जब आठ नौ

महीने इसी दशा में कट गए तब आठ नौ दिन और भी सही। मैं इसी दशा में इन्हीं आँखों से (आँसू बहाकर) अपनी प्यारी··· (आँखों से अविरल अश्रुधारा बहाती हुई) को देखूंगी। फिर (क्रोध से) मैं तनिक उन पापियों की भी खबर लेलूँ तब न चैन मिले। हाय! उन दुष्टों की पापात्मायें न जाने अभी क्या २ पाप कमायेंगी।

चंचला का क्रोध बढ़ता देख और उसे शान्त करने की गरज से ध्यानसिंह ने दूसरी बात छेड़ दी।

ध्यानसिंह ने कहा—इस तिलिस्म में तुम्हें आए कितने दिन हुए। क्या क्या कौतुक यहाँ देखा और कैसे रहीं?

चंचला ने कहाः—सावन सुदी को मैं इसमें लाई गई। कौन लाया, कैसे लाई गई यह मुझे ज़रा भी मालुम नहीं। जिस समय मैंने अपने रक्षक उन पाँचों पापियों को पाप का बदला देकर गंगाजी के किनारे २ अपनी मजदूरनी जमुना के साथ अस्सी के नाले को पार करके चाहा की आगे बढ़ूं, उसी समय पेड़ों की झुरमुट में से दो काले २ मनुष्यों को अपने सामने पेड़ पर से कूदते देखा। उनके कूदते ही मैं अचेत हो गई। इसके बाद इसी तहखाने के ऊपर या नीचे मुझे याद नहीं एक अच्छे रमणीय स्थान की सुन्दर दालान में मेरी आ-खें खुलीं। देखा तो सामने एक निर्मल जलाशय है। उसके चारों ओर सुन्दर बाटिका है। अपने को उस स्थान में घिरी हुई मान कर उस तालाब पर गई। देखा तो उसके किनारे के सीढ़ी ऊपर एक झोली पड़ी है। मैं उस झोली को उठा कर फिर उसी दालान में आई। झोली में देखा तो और सामानों के अलावह एक किताब भी है। उस किताब को निकाल कर पढ़ा। मालूम हुआ कि उसमें इस तिलिस्म में पैठने और निक-लने की रीति लिखी है। मैं उस किताब की रीति समझने को

उसे लिये हुए उसी तालाब पर गई और उसे खोल कर पढ़ने लगी। इतने ही में पानी में खलबलाहट सुन पड़ी। मैं चौंक कर जल की खलभलाहट देखने लगी। एक पलक में ही उस जल में से सैकड़ों योगिनें निकलीं। और वे तट पर आकर मुझ से कुछ प्रश्न कीं। मैं उनका उत्तर देने भी न पाई कि वे सब फिर तालाब में कूद पड़ीं। उनके कूदते ही मेरे अंचल में छिपी हुई वह किताब न जाने कैसे ग़ायब हो गई!

अब तो मेरी बेकली का ठिकाना न रहा। उस किताब से कुछ मुझे आधार हो गया था और विचारा भी था कि इसके सहारे इसमें से ज़रूर निकल जाऊँगी। परन्तु उसके ग़ायब होते ही मुझे अँधेरा दीखने लगा!

मेरा साहस जाता रहा और मुझे मालूम हुआ कि अब उद्धार होना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। कौन यहाँ आता है, किसे इसमें आने की पड़ी है। कौन जानता है, कि कौन कहाँ किसमें और किस तरह है। मुझे तो बड़ा ही अचरज मालूम होता है कि आप लोग कैसे मेरा पता पाए और कैसे इस गोरख धंधे में पड़कर इस कठोर और अगम कारागार में पहुँचे! मुझे आप के इस साहस पर बड़ा आश्चर्य है।

हाँ, जब मैंने देखा कि अब इसमें से निकलने की कोई तरकीब नज़र नहीं आती तो एक दिन साहस करके उठी और एक सुरंग में-जो मुझे वहीं मिली-पैठी। उसी टेढ़ी सीधी सुरंग में भूलती भटकती ठोकरें खाती इस घेरे में घिर गई। आज मैं इसमें से निकलने का उपाय सोच रही थी और इसी गरज से इस ऊँचे पेड़ पर चढ़ी थी कि देखें इसके (घेरे के) उस तरफ क्या है। धरती है कि आकाश है, नाला है या नदी है, पहाड़ है, या दर्रा है क्या है। बस यही जानने के लिये इस ऊँचे शालकी फुनगी पर चढ़ी। वहीं से आप लोगों पर

मेरी नज़र पड़ी। मेरी यही संक्षेप में यहां की राम कहानी है। अच्छा; अब कहो क्या किया जाय ?

ध्यान०—अब घबराने की कोई ज़रूरत नहीं। अब तो निकलेंगे तो सब साथ निकलेंगे और नहीं तो सब इसी में मर मिटेंगे।

चंचला०—फिर भी तो कुछ प्रयत्न करना ज़रूरी है।

ध्यान०—हाँ, उसकी चिंता न करें। जब भगवान ने बिछड़े को मिलाया है तो वह घर भी पहुँचावेगा।

पाठक ! यद्यपि यहाँ स्त्री पुरुष सम्वाद में कुछ मनोरंजक बात चीत की आवश्यकता थी तथापि गहरे शोक चिन्तादि के कारण ऐसी बातें यहाँ उचित न जान पड़ीं। इसी कारण कुछ न लिखा गया। आगे चल कर आपको इस मनोरंजन का मज़ा आवेगा। फिर अभी चंचला दुखी ही है। जब तक वह अपने प्रिय सखी शशि से भेंट नहीं लेती तब तक उसे हँसी मज़ाक नहीं भाने की। इस विचार से भी इस स्थल पर ऐसी वार्ता बन्द रक्खी गई।

इसके उपरान्त सब लोग कुछ कन्द मूल फल भोजन कर विश्राम किये। थके माँदे थे ही खूब गहरी नींद में सो गए। चंचला भी अपना बिस्तर उन लोगों से कुछ दूर लगाकर सो रही।



शशि-प्रभा ।

सातवाँ भाग ।

पहला परिच्छेद ।

कुँअर कर्मसिंह, सीताराम, शंकर, भोजदत्त, सन्तसिंह, रामनाथ आदि तिलिस्म से निकलने पर गंगा के किनारे रामघाट पर आए। देखा तो घाट बड़ा मनोहर है। स्त्री पुरुषों के झुंड स्नान, ध्यान, पूजा, तर्पण आदि में निमग्न हैं। काशी के छटे छबीले छैले भी अपनी छहराती हुई छाती पर हाथ फेरते। "रँघः रँघः संगी", "अरे आव भाय भयवा", "मफार डफल्लू राजा", "अरे कहः चिरई !" इत्यादि २ बनारसी आवाज़ाकसी करते इधर उधर घाट बाट बुरजी आदि पर बैठे हैं।

कन्तित की चंडाल चौकड़ी भी इन्हीं ऊपर कही बनारसी टुकड़ी के बीच एक खाली चौकी पर बैठ गई और आपस में कुछ गुप्त बातें करने लगी।

कुँ० कर्म०—कहो जी शंकर ! अब क्या करना चाहिये।
शंकर०—आपकी क्या इच्छा है ?

कुँ० कर्म०—मैं तो बिना बदला लिये मानूंगा नहीं। चाहे विश्वासघात का दोष ही क्यों न लगे।

रामनाथ०—बदला लेने का यही मौक़ा है। हम लोगों को यहाँ से चलकर नारायणपूर में ठहरना चाहिये और वहीं से पीछा करना चाहिये।

भोजदत्त०—यह कैसे मान लिया कि वे नारायणपूर की सड़क से जायँगे ?

रामनाथ०—वीरसिंह से मालूम हुआ। और उनका वही रास्ता भी है।

सीता०—(झुंझलाकर) इसमें बड़ी खराबी होगी।

कुँ० कर्म०—क्या खराबी होगी ?

सीता०—चुनार से इधर छेड़ छाड़ करने में वे चुनार की मदद बहुत जल्द पा जायँगे और हम कंतित से दूर पड़ने के कारण निस्सहाय हो जायँगे। नतीजा यह होगा कि वे बली होकर विजयी होंगे और हम निर्बल होकर हार खा जायँगे। अतएव खुले मैदान लोहा बजा कर चुनार से इधर वा उधर अथवा निकट ही कहीं हमें लड़ना अपनी हार को निमंत्रण (न्योता) देना है।

कुँ० कर्म०—(क्रोध से) तब क्या करें ?

सीता०—धूर्तताई (ऐयारी) वह भी यहाँ नहीं चुनार के उधर और उस समय जब वे पलट कर आवें और आजयगढ़ को जाने लगें।

शंकर मैं भी सीताराम की राय से सहमत हूँ। ऐसा ही करना उचित होगा। चलो हम लोग कंतित को चलें और सब प्रकार की तैयारी करें।

संत०—सब प्रकार की तैयारी से आपका क्या मतलब है ?

शंकर०—अर्थात् धूर्तताई, की सारी तैयारी साथ ही युद्ध की भी तैयारी जरूरी है। क्योंकि अब यही आखिरी तैयारी है। अब उनकी ओर आनन्द बधाई बजेगी। मंगल गीत गाई जायँगी। मंडप में वर बधू का विवाहोत्सव होगा। इधर से उन उत्सवों का जवाब युद्ध, धूर्तताई आदि से देकर या तो

विजय लाभ करेंगे या मर मिटकर सदा के लिये इस "प्रेम संग्राम" से बिदाई लेंगे।

भोज०—ठीक है। ऐसा ही होना उचित भी है। यही आखिरी उद्योग है। इसी में भाग्य का फैसला है और देखना है कि स्त्री-रत्न (शशि) किसके भाग्य में है। अजयगढ़ की शशि किसके हृदयाकाश में अपना प्रकाश फैलाना चाहती है। अच्छा तो अब देर न करो। चलो तैयारी करो।

कंतित का कुमार कर्म भला क्यों जल्दी काशी छोड़ने लगा। उसने कहा—अच्छा शंकर, सीताराम, रामनाथ ये चारों प्रमुख धूर्त पहिले चलें और वहाँ पहुँच कर प्रबन्ध करें। मैं भी संतसिंह के साथ दो दिन में आता हूँ। तनिक काशी का दरस परस तो करलूं। काशी में सुनता हूँ कि पाप रह नहीं जाता। पापी इसके दर्शन से ही पापों से छूट जाता है। हम भी तो अपने पाप धो डालें।

भोजदत्त०—हँस कर—कुँअर साहेब ! देखना कहीं काशी करवट न लेने लगना !

रामनाथ०—हँसकर-अरे हां नहीं तो सब तिरपट होजाय।

भोजदत्तः-इन्हें तिरपट चौपट की परवाह नहीं। यह सुनते ही सब हँस पड़े। सीताराम, शंकर, भोजदत्त और रामनाथ सलाम जोहार करके वहां से चल दिये। कुँअर कर्मसिंह, संतसिंह के साथ बात चीत करते चौक की ओर आए।

कुँअर कर्मसिंह ने कहा, संत ! तुम तो काशी को खूब जानते हो, यहाँ वर्षों रह चुके हो। बड़े २ घरों में नौकरी कर चुके हो ! कहो यहां तो बड़े ही मजे होंगे !!!

संत०—हाँ, बस कुछ पूछिये नहीं।

मुक्तिजन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस शंभु भवानि, सो काशी सेइय कस न ?

इस पर एक कजली के शायर ने क्या ही अच्छा कहाः—
विविध योनिमय महि जहाँ, जहँ शिवलिंग प्रधान।
नर नरी दोउ परसि कर, पावत मुक्ति महान ॥

ठीक ही कहा है। यहाँ ऐसा कोई पुरुष न होगा और न कोई स्त्री ही होगी जो मनमथारि का पुराण प्रसिद्ध "आदि लिंग" का पूजन दर्शन तन मन से न करती हों। भोलानाथ के आदि लिंग के दरस परस से नाना प्रकार की योनियों का आवागमन छूट जाता है अन्त में वह योनियों से छूट कर साक्षात् "लिंग स्वरूप" हो जाता है। तभी तो कहा है:—

"काशी के कंकर शिवशंकर के समान हैं"

अस्तु; जिन्हें चौरासी लाख योनियों में जाना (जन्म लेना) स्वीकार न हो और जिन्हें योनियों! के कष्टों से मुक्त होना मंजूर हो उन्हें चाहिये कि काशी में निवास करें और "आदि लिंग" का दर्शन, स्पर्शन, पूजन, भजन और ध्यान कर स्वयं "लिंग रूप" हो जावें अर्थात् मुक्त हो जावें।

कुँ० कर्म०—यार तुमने तो ग्यानकांड बांचना शुरू कर दिया।

संत०—कुँअर साहेब! काशी है न? यहाँ तो कुछ काल के लिये मूर्ख भी पंडित बन जाते हैं मैं तो भला कुछ पढ़ा लिखा हूँ। यहाँ के ब्राह्मण विद्वान होकर भी बुद्धू हैं। उनसे कहीं चतुर और बुद्धिमान् तेली, कलवार, कहार, अहीर आदि अपने को मानते हैं और वे तिलक छाप माला कंठी धारण कर कथा पुराण बाँचते हैं और द्विजातियों को सुनाते हैं।

कुँअर कर्म०—इसे आप बुरा क्यों मानते हैं?

संत०—मैं क्यों बुरा मानूं। भगवान की उपासना, कथा, वार्ता कहने करने का सभीको अधिकार है। रैदास, कबीर,

धन्ना, पलटू आदि उदाहरण है ही हैं। इसमें बुराई क्या है जो बुरा मानें ?

काशी की प्रतिष्ठा में कहा—कि यहां जो आया वह ज्ञानी हुआ। क्योंकि यह ज्ञान खानि है यहाँ भी जो अज्ञानी रहा वह दुर्भागी है।

कुँ०कर्म०–अरे भाई! बंद करो इस खानि को, जी ऊब गया!

संत०—लीजिये बंद होगया। कहिये अब क्या कहते हैं।

कुँ० कर्म०—(झुंझलाकर) कहते हैं तुम्हारा सिर। चलो, तनिक काशी का गान टान सुनें। जिसमें जी बहले।

संतसिंह समझ गया। उन्हें साथ लेकर चौक में आया और कहाः—कुँअर साहेब! यह मिर्ज़ापुर नहीं है कि जो जी में आया कर गुजरे। यह है बनारस। यहाँ की मंडी में लुच्चे, गुण्डों का राज है। यहाँ भले आदमियों की—खास कर आप जैसे राजपुत्रों की—ख़ैर नहीं। यहाँ की रंडियाँ भलेमानुसों का दिवाला निकलवा देती हैं और जब लूट खसोट कर खुक्ख कर देती हैं तो फिर उनसे आँखें नहीं मिलातीं। इनके कोठों पर भले आदमियों की पगड़ी गुंडे उतार लेते हैं। जान तक चली जाती है। अस्तु, मैं आपको कभी सलाह न दूंगा कि आप इनके कोठे पर जायें।

जिसके पास बहुत धन बड़ी भारी जायदाद और भारी से भारी रियासत हो वह आकर काशी में टिके और देखे कि जो धन जो जायदाद जीवन भर खर्चने में नहीं कम होने की वह काशी में महीने दो महीने में हवा हो जायगी। यहाँ की रंडियाँ इन जायदादों को हजम करके डकार भी नहीं लेने की।

कुँ० कर्म०—वह कैसे ?

संत०—सुनिये, इसपर मुझे एक सच्ची घटना याद आई जिसे मैं संक्षेप में सुनाता हूँः—

बंग देश के एक बड़े भारी रियासत का कोई युवराज काशी में आया। यहाँ के वेश्या के दलालों ने उसे एक धनी वेश्या के यहाँ उतारा। युवा अवस्था बड़ी अंधी अवस्था होती है। इसमें न भूत सूझता है न भविष्य। मनुष्य अंधे की तरह गिरता पड़ता ठोकरें खाता किसी नदी, नाले, ताल पोखरे वा भारी गढ़े में गिर कर मर जाता है या कठिन चोट खाकर उसकी पीड़ा से जनम भर पीड़ित रहता है। अंधा तो अंधा उस बिचारे का क्या दोष? दोष तो उसे राह बताने वाले का और लकड़ी पकड़ कर आगे चलने वाले का है।

इन नवयुवक रूपी कामांधों को राह बताने वाले शिक्षक, वा माता पितादि हैं। और लकड़ी पकड़ कर आगे ले जाने वाले वेश्याओं कुलटाओं के दलाल हैं। पहिले से ये पिछले बड़े भयानक हैं। पहिला उसे राह दिखा दिया। जाने वाला अंधा उसके बताए हुए राह पर अपनी बुद्धिरूपी लकड़ी के सहारे चला जाये। दूसरा जो लकड़ी पकड़ कर आगे २ चल रहा है वह बिचारा अंधा उसी के सहारे चलने पर लाचार है। वह चाहे सीधा ले जाय चाहे टेढ़ा और चाहे उसे किसी गहरे गढ़े में ही गिरा दे। अंधा बिचारा विवस है। और उसे उस लकड़ी धर कर आगे चलने वाले पर पूरा विश्वास है। इसी से वह जिधर मुड़ता है उधर ही वह मुड़ता है जहाँ वह खड़ा होता है वहाँ ही खड़ा होजाता है।

काशी में कामांधों की लकड़ी पकड़ कर आगे २ चलने वाले दलाल बहुत हैं। और वे ऐसे अंधों की ताक में रहते हैं। जहाँ कोई आँख का अंधा गाँठ का पूरा उन्हें दीखा तहाँ वे चट पट उसकी लकड़ी पकड़ने को उठ दौड़े।

हमारे ऊपर कहे हुए वंग देशीय कामांध युवक को भी एक लकड़ी पकड़ कर राह दिखाने वाला (वेश्याओं का दलाल)

मिल गया। उसने उसे एक पथरकला नाम की वेश्या से जो बड़ी सुन्दरी और गवैया थी—मिलाया। युवक उस वेश्या की प्रीति में फँस गया। वेश्या ने भी अपने झूठे और बनावटी प्रेम से उस युवक युवराज को मोह लिया। धीरे २ उस वेश्या ने उस युवक से ऐसी प्रीति बढ़ाई की युवक उसके प्रेम में घरबार राज परिवार सबको त्याग कर गुड़ चिउँटे की भाँति लिपट गया। जब उस वेश्या ने उस युवक का सारा धन रत्न आभूषण आदि हँस बोल खेल खिला कर हर लिया तो धीरे २ उसने उससे विराग दिखाना आरम्भ किया। ज्यों २ वह वेश्या अपना विराग प्रगट करने लगी त्यों २ उस युवक का अनुराग उस वेश्या में अधिक बढ़ने लगा। चुरा छिपा, नोच खँसोट कर जो कुछ रियासत से अब तक पाया उसे लाकर दे दिया। जब उसके पास कुछ न रहा और न पिता से आगे कुछ मिलने की आशा ही रही तो उसने ऋण लेना निश्चय किया।

कहना नहीं होगा कि जैसे वेश्या के दलाल कामांधों की लकड़ी पकड़ कर उसे वेश्या के फन्दे में फँसा कर माल मारते हैं उसी प्रकार महाजनों के दलाल ऐसे कामांधों की माँगी या संचित रखी हुई सम्पत्ति को लूट लेते हैं।

"राजा का लड़का ऋण लेगा" यह सुनते ही महाजनों के दलाल दौड़े। एक २ दलाल पारी २ से उससे मिले और बोलेः—आपको जितना धन चाहिये वह हमारे साहु से लीजिये। दलालों की चढ़ा ऊपरी में जो जीता वही पाया। अंत में एक दलाल के हाथ युवराज पड़ गए। उस दलाल ने युवराज को ले जाकर एक महाजन से—जिसका नाम टकादास था—मिलाया। टकादास ने कहा—कुमार साहेब! आपको जितने धन की जरूरत हो लीजिये, कुमार ने पूछा—सूद क्या देना होगा?

टकादास ने कहा—सूद की चिन्ता न करें। हम और महाजनों से एक पाई कम ही लेंगे।

कुमार को तो धन की हाय २ थी, सूद व्याज चाहे जो हो। उन्होंने कहा एक लाख पहिले देवें पीछे फिर और भी लेंगे।

टकादास ने एक मुंशी को बुलाकर एक सादे स्टाम्प पर कुँअर साहेब का दस्तख़त और अँगूठे का निशान बनवा कर दस हजार के दस नोट दिये और कहा कि इतना खर्चा कीजिये बाकी रुपए दो चार दिन में लीजियेगा। इस समय रुपए तैयार नहीं हैं। दो चार दिन में आसामियों से वसूल तहसील कर चुकता कर देंगे।

कामांधों को धन की जितनी चाहना होती है उतनी दरिद्र को नहीं। रुपया हाथ में आया मानों संसार का सारा सुख हाथ आया। क्योंकि विषयों का साधन धन और धन की साधन वेश्या और वेश्या का साधन विषयी हैं।

दस हजार लेकर युवराज पथरकला के कोठे पर पहुँचे। पथरकला ने पहिले ही से एक दलाल से सुन लिया था कि आज युवराज कर्ज लेने गये हैं। युवराज को प्रसन्न मन देख कर हा उसने ताड़ लिया कि कर्ज़ हाथ लग गया। पथरकला आज युवराज को बड़े आदर भाव से बगल में बिठाई और अपने हाव भाव कटाक्षों में उसे फाँस कर बोलीः—कहिये कर्ज़ मिल गया। युवराज ने कहा—कर्ज़ की क्या कमी है। साठ सत्तर लाख की रियासत का मैं मालिक हूँ यदि चाहूँ तो इतना ही कर्ज मुझे मिल सकता है। पथरकला के यह पूछने पर कितना कर्ज लिया" युवराज ने कहा—एक लाख अभी लिया है। उसमें भी महाजन ने केवल दस हजार दिया है बाकी कल परसों में देगा। यह कह उन्होंने दस हजार के नोट

उसके सामने धर दिए। वेश्या ने उन्हें उठाकर अपने बक्स में धर लिया।

कुछ दिन बीतने पर याने एक हफ्ते के बाद पथरकला ने युवराज से कहा—"प्यारे! उन नोटों के मैंने हार बनवा लिये अब खर्च नहीं है। जाओ बाकी रुपए ले आओ"

युवराज तुरन्त गये। महाजन से और दश हजार लाकर उस वेश्या को दिये। महाजन उस कोरे स्टाम्प पर जिस पर युवराज के अँगूठे का निशान था—पाँच लाख का कर्ज़ा लिखा कर रजिष्टरी करा लिया और दो तीन बार में तीस हजार से ज्यादा उन्हें नहीं दिया। जब युवराज ने एक लाख पाने की बात कही तो वह महाजन बोला—रकम की चौथाई दलाली होती है अतएव एक लाख की चौथाई पच्चीस हजार दलाली में गए! हम लोग जितना देते हैं उसका दूना लिखाते हैं। अर्थात् एक लाख नकद देते हैं तो कागज दो लाख का लिखाते हैं यही मौजूदा महाजनी कर्ज़ की शरह है। आपका एक लाख ही का कागज़ लिखा गया। यह मुंशी की भूल से ऐसा हुआ। अतएव पचास हजार बाद निकाल देने पर आपको २५ हजार ही मिलने चाहिये था परन्तु आपके नाम तीस हजार रुपया लिखा है जिसे आप तीन किश्त में ले गये हैं। पचीस हज़ार कर्ज़ मध्ये काट कर पाँच हजार आप के नामें लिखता हूँ। इस प्रकार पहिले कर्ज़ का हमारा आपका एक लाख का लेना पावना बराबर हो गया। अब यदि आपको और रुपए की ज़रूरत हो तो दूसरा स्टाम्प लिखें।

कहना नहीं होगा कि पथरकला के तकाज़ों से तंग आकर युवराज को फिर स्टाम्प लिखना पड़ा। इस स्टाम्प की लिखाई और देन लेन भी पहिले ही की तरह हुई। इसके रुपये भी एक

महीने के भीतर ही भीतर हार हुमेल, बाँकड़ी, तागड़ी आदि की फरमाइशों में सफा हो गए !

इसी प्रकार कई बार के लेन देन में महाजन का कुल जोड़ मय सूद दर सूद के पचास लाख रुपया हो गया, उसने युवराज के नाम नालिश ठोंक दी। अदालत में युवराज ने बहुतेरा कहा कि पाँच छ लाख का कागज़ लिखा था उसमें दो ढाई लाख से ज्यादा मुझे नहीं दिया गया। कुछ दलाली कुछ दस्तूरी में काट छाँट कर प्रत्येक स्टाम्प की रकम में से एक चौथाई ही मुझे मिली इत्यादि।

महाजन टकादास तीन फटाका शिर में लगाये और एक गाड़ी बही खाता साथ लिये अदालत में हाजिर हुआ और एक एक रकम का जमा खर्च बही में दिखा कर कहा—सरकार! महाजन देता भी है और बेवकूफ भी बनता है। क्या कहें, यह वह पेशा है कि गाँठ का देकर "चेवाव" बनना पड़ता है! भला सरकार! महाजन भी कभी बेईमान होते हैं !!! हरे राम हरे राम !! कच्ची, पक्की, रोकड़, जमा, सैकड़ों बहियों में लिखा पढ़ी करके तब लेन देन किया जाता है भला कहीं कागज़ की लिखा पढ़ी भी झूठी होती है ? हम महाजन कागज़ पर झूठा लिखना और गौ का मारना दोनों बराबर समझते हैं !

अदालत तो कागज़ी है। उसने कागज़ के इन्दराज के मोताबिक महाजन को मय खर्चे के डिगरी दे दी। महाजन ने सारी रियासत कुर्क करा कर नीलाम पर चढ़ा दिया। सारी रियासत कौड़ियों की मोल लुट गई ! देखते २ एक भारी राज्य का तहस नहस हो गया।

राजपरिवार के लोग दरिद्र हो गए। खाने पहिरने तक का ठिकाना न रह गया। जो महलों में रहते, तर माल खाते,

गुलगुले गलीचों पर सोते थे, वे अब फूँस की सड़ी झोपड़ियों में चने चबाते, फटी पुरानी कथरियों पर सोने लगे !

युवराज की उनसे भी बुरी हालत हो गई। पथरकला ने भी उनसे अपना मन फेर लिया। अब न वह प्यार रहा न वह दुलार। अब तो युवराज की सूरत देखना भी उसे पसन्द नहीं। कुछ दिन तो उसने योंही निबाहा अर्थात् कभी मुँह से कुछ कह दिया कभी बोलना भी बन्द कर दिया। परन्तु जब उसने देखा कि अब यह बला है और इससे बचना चाहिये तो उनसे साफ कह दिया कि। सुनिये साहेब ! वेश्या टके की हैं, प्रेम और प्रेमियों की नहीं ! बस ! टका पास है तो वेश्या की आस है। टका पास नहीं, वेश्या की आस नहीं। क्योंकिः—

"रंडी किसकी जोरू और भँडुआ किसका साथी।"

बस, अब माफ़ करें। अब यहां न आया करें। क्योंकि आपके आने जाने से दूसरे प्रेमी भटकते हैं जिससे मेरा नुकसान होता है"।

यह उस वेश्या से सुनते ही युवराज सूख गये और चुप चाप उसके कोठे पर से नीचे उतर गंगा के किनारे आये। कुछ सोच विचार कर वे गंगा में कूदकर डूब मरे। इस प्रकार इस वेश्या प्रेम का अंत हुआ।

यह इतिहास सुना कर संतसिंह ने कहाः—क्या आप भी यही चाहते हैं। चलो, अपना काम देखो, इन वेश्याओं के फेर में न पड़ो।

कुँ० कर्म०—तो इससे तो यह फल निकला कि किसी भी स्त्री से प्रेम न करना ?

संत०—जी नहीं, इससे यही फल निकला कि बाजारू स्त्रियों (वेश्याओं) से प्रेम न करो। क्योंकि ये दुकानदार हैं

और उसी के साथ सौदा करती हैं जिसकी टेंट में टके देखती हैं। अब समझ में आया?

संतसिंह से अधिक उलझना अच्छा न समझ कर कुँअर कर्मसिंह आगे बढ़े और मनमें कहने लगे कि हकनाहक इस वेदान्ती को मैंने अपने साथ लिया।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर संतसिंह ने कहा—कुँअर साहेब! यहाँ अब बेकार ठहरना है। चलो चलें कंतित को, वहां चल कर कुछ बंदिश बाधें जिसमें आगे चल कर कुछ लाभ हो। समय बरबाद करने से क्या प्रयोजन निकलेगा?

कुँअर ने कहा—भाई, मुझसे तो पैदल न चला जायगा। जाओ दो अच्छे घोड़े, मय साजो सामान के, खरीद लाओ उस पर सवार होकर कंतित को चलें।

संतसिंह गया और दो घोड़े ले आया। अपना २ बिस्तर अपने २ घोड़ों पर रख कर दोनों सवार हुए और गंगा पार कर पहाड़ी रास्ते से कंतित की ओर चले गए।

दूसरा परिच्छेद।

—*:*:*—

अभी रात आधी ही बीती थी सब लोग गहरी नींद में खर्राटे ले रहे थे। इसी समय एक स्त्री ने कुँअर शमशेर बहादुरसिंह का हाथ झटक कर कहा—क्यों साहेब! भूल गये! मैंने आपसे क्या कहा था? आज सातवाँ दिन और आप इतने बेखबर सो रहे हैं। कुछ डर है कि नहीं?

हाथ में झटका लगते ही कुँअर हकबका कर उठ बैठे देखा तो सामने वही योगिनी जो ऊपर मिली थी खड़ी है। दोनों हाथों आँखें मीचते हुए वे उसका उत्तर दियेः—"हाँ हाँ,

मुझे याद है। क्या करूँ थक गया था इस कारण सो गया। अच्छा; माफ़ करो, आज यहाँ से चले जायँगे।

योगिनी०—आज चले जायँगे कि अभी चले जायँगे ?

कुँ० शमशेर०—नहीं, आज किसी समय में चले जायँगे।

योगिनी०—अजी किसी समय नहीं अभी इसी समय हटें वरना प्राण बचाना कठिन होगा। भोर होते ही वह सिद्ध समाधि त्याग कर उठेगा और वह पहिले यहीं आवेगा।

कुँ० शम०—क्यों, पहिले यहाँ क्यों आवेगा ?

यो०—है कुछ गुप्त बात।

कुँ०—कुछ तो कहो !

यो०—यदि कहने योग्य न होतो ?

कुँ०—फिर भी तो कुछ कहो।

यो०—जहाँ जिस घेरे में आप इस समय हैं यहीं पर तिलिस्म का खजाना है। उसे देखने वह पहिले यहीं आवेगा। यहाँ की देख भाल करके तब वह दूसरे स्थानों का दौरा करेगा। जब सारा तिलिस्म देख भाल कर लौटेगा तब हम लोगों को बुलावेगा।

कुँ०—हम भी उस खजाने को देखना चाहते हैं।

यो०—आपसे तो पहिले ही कह दिया कि इस समय चुप चाप यहाँ से चले जायें। जब सिद्ध समाधि में हो उस समय यहाँ आकर खूब जी भर कर इसकी सैर करें और उसी समय खजाने को भी देखें।

कुँ०—वह समय कब आवेगा ? कितने दिनों बाद सिद्ध समाधि लेगा।

यो०—आज से छ महीने बाद।

इनकी वार्तालाप से ध्यानसिंह आदि भी जग पड़े। चंचला यह तमाशा देख कर मनही मन कुढ़ने लगी और

कहने लगी "यह राँड़ कहाँ से आ मरी। मुझे किसी राँड़ ने सहायता न दिया। यार देख कर कैसी दौड़ी आई। भला रंडो।"

शमशेर बहादुरसिंह ने ध्यानसिंह को अलग बुलाकर कहाः—कहो क्या करना चाहिये ?

ध्यान०—योगिनी की बात मान लेना चाहिये।

कुँ० शम०—और भी कुछ सुना ?

ध्यान०—(आश्चर्य से) नहीं तो !

कुँ० श०—योगिनी की जबानी मालुम हुआ कि इस तिलिस्म का खजाना यहीं है जहाँ पर इस समय हम लोग हैं।

ध्यान०—तब ?

कुँ० शम०—तब उसे लेना चाहिए। मगर योगिनी की यह भी राय है कि इस समय चुपचाप यहाँ से चले जायँ। क्योंकि तिलिस्म का रक्षक सिद्ध आज समाधि से जागेगा। उसके जागते रहने पर कोई काम सिद्ध न होगा। यहाँ का रहना भी वह भयानक बतला रही है। उसकी राय है कि आप लोग उसकी समाधि के समय आएँ और अपना मनोरथ पूरा करें। छ महीने बाद वह समाधि लेगा।

ध्यान०—ठीक तो कहती है। चलो इस समय चलकर शशि को व्याह लें बाद विवाह के यहाँ आकर इसकी छान बीन करें। बिना तिलिस्म तोड़े तो खजाना मिलता नहीं। इसे तोड़ना पड़ेगा और तोड़ फोड़ कर खजाना लेना पड़ेगा। इसमें महीनों लगेंगे। और बड़ी मगजपच्ची की जरूरत है। एक तिलिस्म उलटा खोहवाला छोड़ आए हैं। दूसरा यह छोड़े जाते हैं। अब पहिले इसे तोड़ लेंगे तब उलटा खोह में हाथ लगावेंगे। क्योंकि उलटा खोह की अपेक्षा यह बड़ा

पेचीदा और पुराना तिलिस्म है। माल भी इसमें उसकी अपेक्षा अधिक है। चलो इस समय चले ही चलो।

कुँअर शमशेर बहादुरसिंह, ध्यानसिंह से बात चीत कर फिर योगिनी के निकट आए और उससे हँस कर बोले:—“सुन्दरी! अच्छा अब यह बताओ कि हम इसमें से निकलें कैसे?” यहाँ तक जिस राह से आए हैं उस राह वापिस जाने में तो फिर वही सप्ताह बीतेगा। सात दिन में सातवें तह पर पहुँचेंगे। आठवें दिन कहीं बाहर निकल पायेंगे। कोई ऐसी राह बतलाओ जिसमें सुबह होते २ इसके बाहर निकल जायँ।”

योगिनी०—हँसकर, चलिये उठिये मैं आपको राह बताती हूँ।

योगिनी की बात समाप्त भी न होने पाई कि सब अपना २ विस्तर लपेट उठ खड़े हुए। आगे २ योगिनी पीछे चुनार की धूर्त मंडली उसी सुरंग में घुसी—जिसमें होकर चंचला इस घेरे में आई थी। सुरंग में घनी अँधेरी होने के कारण एक का हाथ एक पकड़े हुए आगे पीछे चलने लगे। चंचला का हाथ योगिनी ने पकड़ा और चंचला ने ध्यानसिंह का। कुछ दूर सीधे उस सुरंग में जाकर बड़ी पेचीदह राह से चलना पड़ा। ध्यानसिंह के यह पूछने पर कि “मसाल जला लिया जाय, अँधेरा बहुत है” योगिनी ने मसाल जलाने को मना किया और कहा कि उजेला देखते ही योगिनों का दल पहुँच जायगा फिर वे आपकी और मेरी दोनों की मरम्मत करने लगेंगी।

बड़े; टेढ़े मेढ़े, ऊबड़ खाबड़, नीचे, ऊँचे, रास्ते से चल कर वे सब एक संगीन फौलादी फाटक पर पहुँचे। अँधेरे ही में योगिनी ने उस फाटक को खोला। फाटक के खुलते ही सब

लोग भीतर घुसे। देखा तो आगे अभी और अँधेरी सुरंग चली गई है।

इसी प्रकार उस सुरंग में और भी फौलादी लोहे के संगीन छ फाटक एक २ दो २ माइल के फासले पर मिले। योगिनी ने उन छओं को खोला। कैसे खोला यह नहीं मालुम हुआ। कारण कि अँधेरी इतनी घनी थी कि अपना ही हाथ अपने को नहीं सूझता था। तब खुलना खोलना देखना तो असम्भव ही था।

छठवें फाटक से दो मील रास्ता बहुत बुरा और साँप की चाल की भाँति का था। इस रास्ते चलने में बड़ी हँसी मजाक हुई। कोई ठोकर खाया। किसी का शिर दीवार से टकराया। किसी का माथा फूटा। किसी का घुटना टूटा। ठोकर खाकर गिरने से तो कोई भी न बचा। योगिनी भी एक स्थान में गिर पड़ी।

कुँ० शमशेर बहादुर ने पूछाः—सुन्दरी ! क्या इसके अतिरिक्त और कोई राह इसके (बुद्धतिलिस्म के) बाहर निकलने की नहीं रही ? यह राह है कि यमपुरी ! मालूम नहीं इसका बनानेवाला कौन था। कहीं उसने भाँग तो नहीं पी रक्खी थी। राम २ जी तो घबड़ा गया।

योगिनी ने कहा—कुँअरजी ! बनानेवाले ने इसे कुछ समझ कर ही बनाया है। सीधी बनावट तो सब बनाना जानते हैं तनिक पेंचदार बनावट बनाने में बुद्धी की पेचीदगी खर्चनी पड़ती है। सीधा रास्ता होता तो लोग सीधे इसमें चले आते और आँख मूंद कर इसमें से निकल भी जाते। फिर यह तिलिस्म क्यों कहा जाता फिर तो एक सैर करने का स्थान बन जाता। यह बात बनानेवाले को मंजूर न थी। उनका अभिप्राय था कि आने जाने वालों को पद २ पर अड़चनें पड़ें। और भाँति २

के भय उत्पन्न हों। स्थान २ पर रुकावट, उलझन और अडंगे हों जिसमें वे समझें कि हाँ, यह "तिलिस्म" है। इसमें पैठना जितना कठिन है उससे कहीं अधिक कठिन निकलना है। आइये, अब सातवें फाटक पर पहुँच गये। बस, अब इस सुरंग का इसी सातवें फाटक पर खातमा है।

जिस स्थान से आपने यात्रा की है वहाँ से इस सातवें फाटक तक आने में ८ माइल का रास्ता है। आप लोग आठ माइल यहाँ तक आये। तिलिस्म का घेरा तो पाँच छ माइल से अधिक नहीं है। पर रास्ता पेंचदार होने के कारण उसकी दूरी ८ माइल हो गई है। चार कोस चल कर आप लोग थक जरूर गये होंगे। अस्तु, आवें एक छन यहाँ बैठ कर विश्राम कर लें। इस फाटक के बाहर निकलने पर भी सौ कदम और सुरंग में चलना पड़ेगा। उसके बाद आप एक नदी के—जिसे बरुणा कहते हैं—किनारे एक छोटे से शिवाले में से निकल कर मैदान में पहुँच जायँगे।

सब थक तो पड़े ही थे और थकने का कारण भी था। सीधे रास्ते चार कोस की अपेक्षा छ कोस चलना पड़े तो नहीं खलता परन्तु ऊबड़खाबड़ टेढ़ेमेढ़े और नीचे ऊँचे रास्तों से कोस दो कोस चलते ही दम फूलने लगता है। थकावट मिटाने की इच्छा से सब वहीं—उसी सातवें फाटक के निकट—बैठ गये। योगिनी भी कुँअर के निकट बैठकर कहने लगी—कुँअर जी! अब तो हमारा आपका साथ इसी फाटक तक है। फाटक के बाहर आपको निकाल कर मैं किसी दूसरे रास्ते से सूरज निकलते २ उसी स्थान में पहुँच जाऊँगी जहाँ आपकी और मेरी पहली भेंट हुई थी। मुझे पकड़ते समय आपसे मैंने कुछ कहा था, क्या वह बात आपको याद है?

कुँ० शम०—हँसकर—हाँ जरूर याद है।

यो०—मुझे क्योंकर विश्वास हो ?

कुँ० जो धर्म जानते हैं और धर्म के अनुसार नीति वर्तते है उनकी मनसा वाचा कर्मणा से कियी हुई प्रतिज्ञा कभी झूठी नहीं होती। हम क्षत्रिय पुत्र हैं। हमारा धर्म ही बल है और बचन ही हमारी शूरता है। बचन देकर हम मुकरना जानते ही नहीं। अर्थात् यों समझलो कि बचन देकर पलटने की हमें शीक्षा ही नहीं मिली। तब तुम मेरा विश्वास करो। मैंने जो कुछ अपने मुख से कहा है उसका पालन करूँगा। क्योंकि—

जिसका बच्चन ही सत्य नहिं फिर कर्म कैसे सत्य हो।
अपवित्र मन जिसका भला वह शुद्ध क्यों आम्रत्य हो॥
जो मुख से कह कर हाँ बचन देकर पलट जाते नहीं।
वे धर्म-प्राण विरल हैं जग में शीघ्र दिखलाते नहीं॥

योगिनी० हँसकर—ठीक है, आपका क्षत्रिय—धर्म गुण और योग्यता प्रशंसनीय है। फिर भी शुक्रनीति हैः—

स्त्रीषु नर्म विवाहेषु वृत्यर्थे प्राणशंकटे।
गो ब्राह्मण हिंसायां नानृतस्या जुगुप्सितम्॥

स्त्री से झूँठ बोलना शुक्राचार्य की नीति में झूठ-अधर्म-नहीं माना है।

कुँ०—यह अपनी सहधर्मिणी के विषय में नीति है। सब स्त्रियों के लिये नहीं।

यो०—अच्छा तो फिर आप कब दर्शन देंगे ?

कुँ०—जब आप बुलायें।

यो०—आज से ठीक छ महीने के बाद सिद्ध समाधि लगावेगा। जिस दिन वह समाधि लगावे उसके दूसरे ही दिन आप यहाँ आ जावें। उसी राह से आइयेगा जिससे होकर अबकी बार आए थे। फिर मैं आपको अनेकों राह दिखा दूंगी।

कुँअर ने कहा—अच्छा अब आप फाटक खोल कर मुझे

बाहर निकालें आपको भी देर हो रही है। मेरे लिये आपको अनेक कष्ट उठाने पड़े। अस्तु, मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ।

जवाब में योगिनी ने भी क्षमा प्रार्थना की। उसने फाटक खोल कर सबको सुरंग के बाहर किया और सबको प्रणाम कर फिर फाटक बंद करली।

फाटक के बाहर सुरंग में सौ क़दम चलकर सब लोग एक छोटे से हनूमान जी के मंदिर की राह बाहर निकले। यह मंदिर बरुणा के तट पर एक ऊंचे क़रार के ऊपर बना है। "कोनिया का मंदिर" इसे कहें तो बहुत अच्छा हो।

सब लोग उसी वरुणा नदी में स्नान कर सूर्य को जल चढ़ाये और हनूमान जी का पूजन कर जंगली फलों का—जो वेरे में से तोड़ कर साथ लाये थे-फलाहार किये। इसके उपरांत सब हर्षित मन नगर में प्रवेश किये।

ध्यानसिंह ने बटुकसिंह से कहा—बटुक! इस समय तुम जाओ। कल परसों में चुनार आना। तुमसे जो कहा गया है वह पूरा किया जायगा।

बटुक उन सबों से सलाम बंदगी कर अपने घर को चला। राह में वह सोचत चला कि इस वक्त इन सबों ने बड़ा धोका दिया। आज महीनों से इनके साथ मेहनत कर रहे हैं मिला इनसे एक टका भी नहीं। खैर, समझ लिया। मिर्जापुरी लोगों की बात बर्ताव सब समझ लिया। ईश्वर ने जान बचा दिया यही बड़ी गनीमत है। अब तो जब खजाना लेने ये यहाँ आयेंगे तब देखा जायगा।

कुँअर शमशेर बहादुरसिंह डेरे पर आये। धीरसिंह को बुलाकर उससे बोले, "बाजार में जाकर सात अच्छे २ घोड़े खरीद कर लाओ। पहाड़सिंह को बुलाकर उनसे कहा कि तुम जाकर सात भाले, सात तलवार, सात बंदूक और सात

तमंचे खरीद लाओ। इतनी ही खुखड़ी और गुपती भी ले लेना। गोलीबारूद, मसाला आदि भी धर लेना। अपनी २ झोलियों को भरपूर सामानों से भर लेना। क्योंकि ये वस्तुयें यहां सस्ती और सहज में मिल जायँगी। गरज के यहाँ से चलो तो लैस होकर चलो जिसमें काम पड़ने पर बगलें झाँकने की बारी न आए। जो जो सामान जिस २ को जितना ज़रूरत हो वह बाजार से खरीद कर पास धर ले। बस अब यहां से जल्द कूँच करो।

कुँअर साहेब के कहे अनुसार सारा सामान खरीद लिया गया। ऐयारी के सामानों से झोलियाँ भर ली गईं। कोई ऐसी जड़ी, बूटी, बुकनी, शीशी, न बची। सब अधिक परिमाण में रख ली गईं। हरबे हथियार भी नये चमचमाते हुए खरीदे गये।

जब सब सामान खरीद लिया गया और हरबे हथियार भी चुन चुना लिए गए तो कुँअर साहेब ने ध्यानसिंह से कहा—भाई ध्यान! कोई नई चाल की नई वर्दी आप अपने मन की तैयार करा लें। काशी के दरजी बड़ा अच्छा काट छाँट जानते हैं।

ध्यानसिंह कुंजगली में गये और मखमल, साटन, सरज आदि कपड़ों की कई प्रकार की वरदियां तैयार करा लाये। जिन पर बनारसी जरी के काम थे। साफे भी ज़री की कोर के गुलाबी रंग के बहुत सोफियाने खरीद किये जिनकी कोर पर कलाबत्तू की झालरें थीं। धीरसिंह के चुने हुए घोड़े खासे के घोड़े थे। जिनकी उँचाई बारह मुट्ठी और रंग तेलिया कुम्मेत था। घोड़ोंपर बनारसी कारचोबी का चारजामा और अंधरा के पुल की बनी मोहरी और दुमची थी। जिस समय सातों घोड़े और सातों युवा—जिनमें एक चंचला भी थी और

वह भी अपना भेष पुरुषों का सा बनाये थी—सजधज कर घोड़ों पर सवार हुए उस समय उनकी शोभा देखते ही बनती थी। मालूम होता था कि एक माता पिता के सातो भाई हैं।

घोड़ों पर सवार हो वे सातों जन गंगापार होते हुए चुनार की ओर चले।

तीसरा परिच्छेद।

कुँअर शमशेरबहादुरसिंह ध्यानसिंह आदि के साथ घोड़ा फेंके चले जाते हैं। अभी दोपहर का समय है क्योंकि सूरज शिर पर चमक रहा है। अहरौरा के पास पहुँचते ही एक सवार दिखाई पड़ा जो बड़ी तेजी से घोड़ा दौड़ाए सामने चला आता था। जब वह इन लोगों के सामने पहुँचा घोड़े को रोक लिया और उसने सलाम कर कुँ० शमशेरबहादुर के हाथ में एक चीठी दी। लिफाफा खोलकर कुँअर साहेब चीठी पढ़ने लगे। उसमें यह लिखा थाः—

चिरंजीवी कुँअर !

चीठी पाते ही सीधे अजयगढ़ चले आओ। बड़ा ज़रूरी काम है।

आपका—

महताब।

कुँअर ने चीठी ध्यानसिंह को दिखाया और कहा चुनार न चलकर सीधे अजयगढ़ को चले चलो। रात में कहीं टिक कर कल्ह ८। ९ बजे तक पहुँच जायँगे।

ध्यानसिंह ने कहा—टिकने की कौन जरूरत है। रात उजेली है। चले चलेंगे। हाँ कहीं घोड़ों को कुछ आराम देना और इन्हें दाना घास खिलाना ज़रूरी है। यह सुभीता चुनार

ही में मिलेगा। चलो, घंटा आध घंटा चुनार में विश्राम कर चल देंगे। सुबह होते २ अजयगढ़ पहुँच जायँगे। चालीस माइल का सफर चुनार से पड़ेगा।

सवार यह कह कर आगे निकल गया कि मुझे रापटगंज जाना है। वहां कुछ काम निजी करके कलह वापिस लौटूंगा।

ये सातोंजन घोड़े दौड़ाते चुनार की ओर चलें। पहर भर दिन बाकी था जब ये लोग चुनार पहुँचे। अपने अपने माता पिता परिवार से मिलने को सब अपने अपने घर गये। ध्यानसिंह का परिवार क़िले ही में था वे अपने घर चले गए। चंचला शमशेर बहादुर के साथ गई और उनके कमरे में आराम की। महल के भीतर चंचला इस लिये नहीं गई कि वह मरदाने लिवास में थी और अभी थोड़े ही देर में फिर सफर करना था।

अपने २ कुटुम्बियों से मिल भेंट और कुछ जलपान कर कराकर सब लोग इकट्ठे हुए और सलाह किये कि कूँच करो मंजिल लम्बी तै करनी है। सातोंजन उसी पोशाक में घोड़े पर सवार हो अजयगढ़ को चले।

क्योंकि पहाड़ी रास्ते से घोड़े की सवारी पर जाने में देर होती इस कारण सब लोग पक्की सड़क से ही चले। यह सड़क अष्टभुजा देवी की तलेटी में जाकर कच्ची पगदंडी में मिल गई है। अस्तु ज्योंही ये सातोंजन अष्टभुजा के पास हनुमान जी की मढ़ी पर पहुँचे। त्योंही इनके कानों में पीछे घोड़ों की टाप की आवाज़ आई।

पहर भर रात बीत गई थी। ध्यानसिंह ने पीछे फिर कर देखा तो सचमुच दस पन्द्रह सवारों की झलक दिखाई दी।

ध्यानसिंह ने चौंककर कहाः—कुँअर साहेब! होशियार! शत्रु पीछा किये चले आ रहे हैं।"

यह सुनते ही सब के सब अपने २ हरबे को हाथ में निकाल चौकन्ने हो गये। कुँअर साहेब की राय हुई कि चंचला अष्ट भुजा के उस नाले में—जो मंदिर के दाहिने ओर है—छिपा दं जाय। परन्तु चंचला ने इस राय को पसन्द न किया। उसने कहा—कुछ चिन्ता नहीं, देखिये तो मैं क्योंकर अपनी रक्षा आप कर लेती हूँ।

कुछ ही मिन्टों में वे सवार शिर पर आ पहुँचे और हरबों से वार करना आरम्भ किये। ध्यानसिंह, धीरसिंह, बीरसिंह, सुमेरसिंह और पहाड़सिंह, कुँअर शमशेर बहादुर और चंचला को बचाते हुए ऐसे लड़े कि बैरियों के पैर उखड़ गए। यद्यपि वे गिनती में पन्द्रह और ये सात थे तथापि इन सातों ने उन पन्द्रहों के बखिये बखेर डाले। चंचला की तलवार से दो सवार जमीन पर छटपटाते हुए गिरे। उनके घोड़े दुलत्ती झाड़ते न जाने कहाँ भाग गये। बाकी के सवार कुछ तो पीछे विन्ध्याचल की ओर बेतहासा घोड़े फेंके चले गए और कुछ सामने बिरोही की ओर भागे। विन्ध्याचल की ओर भागने वालों का पीछा ध्यानसिंह और वीरसिंह ने किया और विरोही की ओर भागने वाले सवारों का पीछा धीरसिंह और सुमेर-सिंह ने किया। पहाड़सिंह और कुँअर चंचला के साथ वहीं डटे रहे। पहाड़सिंह ने धरतीपर गिरे हुए सवारों को मोम बती जला कर देखा। वरदी और पेटी से वे कंतितराज के सिपाही मालूम हुए। चञ्चला की कारी तलवार एक ही हाथ में उनका काम तमाम कर डाली। यह देख कुँअर शमशेर बहादुर सिंह बड़े प्रसन्न हुए और उसकी पीठ ठोंक कर—उसकी प्रशंसा कर—कहने लगेः—शाबास!

"बेटा ते बेटी भली जो कुलवन्ती होय"

इतने ही में ध्यानसिंह और वीरसिंह भी लौट आए और

कहने लगे कि वे-जिनका हम पीछा किये थे-भाग कर कांतित के क़िले में घुस गये। फिर भी मैंने तमंचे से दो को घायल कर दिया है। मेरे तमंचे की आवाज़ से क़िले में बड़ी खलबली मच गई है। संख और घंटा बजने लगा है। अस्तु, अब देर न करें, तुरंत यहाँ से पहाड़ी रास्ता पकड़ें।

कुँअर शमशेर बहादुरसिंह ने कहा—तनिक ठहर जाओ। धीर और सुमेर को भी आ जाने दो।

ध्यानसिंह बोलेः—आप चलें वे आते रहेंगे। नहीं तो हम यहीं घिरकर पकड़े जायँगे। फौज पीछा करने को आने ही चाहती है।

तीनों घोड़ा फेंकते हुए एक ढालुआँ पहाड़ी के निकट पहुँचे। घोड़ों को पहाड़ी पर चढ़ाकर पहाड़ी पगदण्डी के सहारे वे अजयगढ़ की ओर चले।

सवेरा होते २ तीनों जन अजयगढ़ की सीमा में पहुँच गए। चंचलाने अपना लिवास उतार कर जनानी साड़ी पहिन लिया और अपना घोड़ा पहाड़सिंह को सौंप कर आप पैदल क़िले की ओर चली। कुछ ही मिण्टों में वह क़िले में पहुँची। शशि के महल पर पहुँचते ही महा कोलाहल शुरू हुआ। "चंचला आ गई, चंचला आ गई" का कोलाहल सुनकर शशि जग पड़ी और वह पलंग से उठ आँगन में आई। देखा तो समाने चंचला खड़ी है। दौड़कर उसे गले से लगा ली और खूब ऊँचे स्वर से दोनों रोईं। बड़ी कठिनता से सुखमा ने दोनों को चुप कराया और कहा—अब आप लोगों को हर्ष मनाना चाहिये न कि रोना"।

इसके उपरान्त दोनों सखी स्नान ध्यान पूजा तर्पण से निपटकर भोजन कीं और विश्रामागार में कुछ काल विश्राम कर आपस में अपना २ दुख सुख कहने सुनने लगीं।

उधर दरबार में कुँअर शमशेर बहादुरसिंह की भी आ
भगत होने लगी। ध्यानसिंह वीरसिंह और पहाड़सिंह आ
का भी यथोचित सत्कार होने लगा।

स्नान पान से निपटने पर कुँअर शमशेर बहादुरसिंह
ध्यानसिंह से कहा—ध्यान भाई! धीर और सुमेरसिंह अ
तक लौटे नहीं। मालूम नहीं उनपर क्या बीती। देखना चाहि
कि वे कहाँ और किस दशा में हैं?

ध्यान०—उनको आप चिंता न करें। उनका कोई कुछ
न कर सकेगा। वे अपने साजो सामान हरबे हथियार सं
दुरुस्त हैं। अचरज नहीं कि वे उन भागे हुए भगेडुओं को
धरती पर गिराकर आवें।

इसी समय द्वारपाल ने दो सवारों के आने का समाचार दिया। ध्यानसिंहने उन्हें भीतर बुलाया। दोनों सवार भीतर आए।

ध्यानसिंह—क्या बीती?

धीर०—भाई साहेब! पाँचों को काट डाला!

ध्यान०—किस प्रकार?

धीर०—ज्योंही वे पाँचों सवार अकोढ़ी बिरोही गाँव की ओर बेतहासा भागे हम दोनों भी बेतहासा घोड़े फेंके उनके पीछे चले गए। उसी गाँव के निकट एक ने लौटकर मेरा सामना किया। उसे मैंने वहीं भाले से छेदकर घोड़े से नीचे गिरा दिया और एक ही तलवार में काम तमाम कर डाला। सुमेर भी बचे हुए सवारों के पीछे चले गए। मैं भी उनके पास पीछे से पहुँच गया और गैपुरा के पास गंगा के कछार में वे चारो भी मारे गए।

ध्यान०—लाश देखकर तुमने उन्हें पहिचाना कि वे कौन थे?

धीर०—हाँ वे कंतित के सवार थे। लेकिन उनमें धूर्त कोई न था।

ध्यान०—यह कंतित वालों की बेईमानी है जो अब वे फिर अकारण छेड़छाड़ शुरू कर दिए। उनकी इस बेईमानी का फल उन्हें भोगना पड़ेगा।

धीर०—मैंने तो वहीं कहा था कि "इन सबों का विश्वास न करें। ये जो इस समय सुलह २ कर रहे हैं अपने मतलब के लिये कर रहे हैं। समय पर अपने ऐबों से बाज़ न आयेंगे"।

ध्यान०—(क्रोध से) अच्छा अब तो उन्हे मुँह दिखलाने का मौका नहीं है। फिर तो सुलह और भाईचारे का सवाल न करेंगे ?

धीर०—परन्तु आश्चर्य है कि इन सवारों में धूर्त कोई न था ?

ध्यान०—वे समझ गये होंगे कि वे हरबे हथियार से दुरुस्त हैं यह खबर उन्हे उनके दूतों से मिल गई होगी।

इसी समय एक दरबान ने आकर कुँअर साहेब को सलाम किया और कहा आप लोगों को महाराज दरबार में बुलाते हैं।

सब लोग अपने २ कपड़े पहिन कर दरबार में आए। और बड़े सनमान के साथ दरबार में बिठाए गये। स्वयं महाराज महताबसिंह ने उठकर इन लोगों से हाथ मिलाया। और अपने सिंहासन के पास बिठाया कुँअर शमशेर बहादुरसिंह ने पूछा, "सरकार ने किस सेवा के लिये इस सेवक को याद किया है।"

रा० म०—आश्चर्य से—मैंने तो नहीं बुलाया !

कुँ० श०—चीठी निकालकर—यह देखिये इसे एक सवार ने मुझे दिया।

राजा० म०—चीठी लेकर-हाँ, मुहर तो हमारी ही है पर मैंने लिखा नहीं। यह किसी कर्मचारी की शरारत है। (दीव को बुला कर) दीवान! तहकीकात तो करो कि यह ची किसने लिखी और इस पर मेरी मुहर कैसे लगी?

दीवान०—चीठी लेकर-जो आज्ञा सरकार मैं अभी इस खोज कराता हूँ और पता लगने पर अपराधियों को क दंड दिलाता हूँ।

रा० मह०—अच्छा तो ध्यानसिंह जी! अब तो अ लोगों ने बड़ी मुसीबतें उठाईं और बड़ी परेशानी और मेहन के बाद कुछ विश्राम पाये हैं। अब कुछ दिन बैठ कर विश्रा करें। मैं भी महाराजा विजयबहादुरसिंह को बुलाया हूँ- उनसे बात चीत करके शशि के विवाह की तिथि मिती तै करत हूँ। भगवान ने अब सब कंटक दूर कर दिये। शशि भी अपन प्यारी सखी को पा गई। अब तो दोनों को......

ध्यान०—महाराज! कुमारी की सखी बड़े पेचदार तिलिस् में थी और बड़ी परेशानी उठा कर आई है।

राजा० म०—भगवान उसकी परेशानी को दूर कर दि अब वे उसे अवस्य सुख देंगे। हाँ, तो आप महाराज विजय बहादुर के पास जाकर समाचार दें। टीका लेकर नाउ ब्राह्मण को मैं भेजता हूँ।

ध्यान०—जैसी आप की आज्ञा हो।

राजा०—बस, अब बिलम्ब करने का क्या प्रयोजन है?

ध्यान०—(मस्तक नीचाकर) कुछ नहीं।

राजा०—तो अब आप जायें और मेरा शुभ समाचार विजय को सुनायें। यह चीठी उन्हें दें और इसका जो वे उत्तर दें उसे मेरे पास भेजवायें। सलाम जोहार करके कुँअर सहित धूर्त मंडली चुनार को रवाना हुई।

चौथा परिच्छेद ।

—:***:—

यह हम ऊपर लिख आये हैं कि चंचला के आने से जनाने महल में जो अपार आनन्द सागर उमड़ा उसे यहां यथा तथ्य (ज्यों का त्यों) लिखने में हम असमर्थ हैं। किसी बिछड़े हुए प्रेमी को पाकर कैसा आनन्द होता है यह पाने वाले के सिवा और कौन बता सकता है ?

किसी परदेसी की स्त्री (प्रोषितपतिका) से पूछिये कि पतिके घर आने पर तुम्हे कितना हर्ष हुआ ? वह कहेगी असीम (जिसकी हद नहीं) अकथनीय (जो कहने काबिल नहीं) और अपार (जिसकी इंतहा नहीं) बस इसी से समझ लीजिये कि अपनी प्यारी लाड़िली, मुँहबोली, सखी चंचला को पाकर शशिप्रभा को कितना हर्ष हुआ ।

महल में जिसे देखो वही मुस्कुराती और खिलखिलाती नज़र आती है । राजा, रानी, लौंडी, बाँदी, नौकर चाकर सब मारे खुशी के फूले नहीं समाते हैं। केवल इसीलिये नहीं कि चंचला मिलगई, वरन् इसलिये भी कि अब कुमारी कि शादी होगी ।

राह घाट में यही चरचा है कि भगवान ने जोड़ी अपने हाथों गढ़ी है। कुँअर यदि अधखिला गुलाब है तो कुमारी चंपा की खिलती हुई कली। कुँअर की अवस्था अभी चौबीस है और कुमारी की अठारह ! आहा ! कैसे समय पर संयोग है। भगवान इस जोड़ी को चिरंजीवी करे ।

कुछ लोगों के मुँह से यह भी चरचा सुनी जाती है कि कुमारी की तीनों (चंचला सुखमा और सौदामिनी) सहेलियों

का विवाह भी उसी मंडप में कुमार के लँगोटिये सखाअं
साथ होगा। इस विवाह को भी महाराज ही करेंगे।

उधर कुमारी और चंचला दोनों गुलाबबाग में बैठी
निज दुखड़ा एक दूसरे को सुना २ कर मन का बोझ हल
कर रही हैं।

शशि ने पूछा०—सखी! कैसे अकेली इतने दिन तुम
और कैसे उन असहनीय विपत्तियों का सामना कीं।

चंचला०—विपत्तियां तो सब ठौर सब अवस्था में—
पुरुष दोनों को—घेरती हैं। इससे कोई विरले ही भाग्यवती
भाग्यवान बचा हो या बच सकता है। सखी! दुख और सु
वैसे ही चक्कर काटते हैं जैसे रात और दिन। तब जैसे र
दिन का रोकना या बदलना मनुष्य के सामर्थ्य के क्या जिस
इन्हे बनाया है उसके भी सामर्थ्य (ताकत) के बाहर है वै
ही सुख दुख भी न किसी के रोके रुकता है और न बदले ब
लता है। ये भी मनुष्य और विधाता के पौरुख के बाहर है
जब दोनों का होना अनिवार्य है तो उस विषय की चिन्तना ह
व्यर्थ है।

निज धैर्य को त्यागे नहीं आपत्ति से भागे नहीं।
केवल विरक्त बना रहे विषयों से अनुरागे नहीं॥
फिर सुख हो वा हो दुःख दोनों भोगना ही श्रेय है।
और हारना हिम्मत नहीं यहि मुख्य जीवन ध्येय है॥

शशि०—ठीक कहती हो। मैंने भी वही दुःख भोगे जो तुम
भोगे चली आ रही हो। मुझे भी उन दुष्टों ने कठोर कारगार
(क़ैदखाने) में डाल दिया था परन्तु मेरे साथ एक बड़ी धूर्त
और बड़ी चालाक नई आई हुई सखी भी थी।

चंचला०—वह कौन और कहां है?

शशि०—वह चुनार से आई है। वह उसी दिन यहां आई

जिस दिन तुम ग़ायब हुईं। तुम्हें ग़ायब कर तुम्हारा श
तुम्हारी ही सूरत बनाकर एक महीने मेरे साथ इसी बाग
पड़ा रहा। मुझे तनिक भी संदेह उसपर न हुआ। वह निगोड़
ऐसा सच्चा तुम्हारा रूप बनाये था कि मैं क्या किसी ने भ
उसे न पहचाना। मैं—जैसे तुम से हँसती बोलती-खेलती थ
वैसेही—उस नकली से भी हँसती खेलती रही। तुम्हारी कुरत
तुम्हारी साड़ी तुम्हारे आभूषण (गहने) सब तुम्हारा धोका
दिलाते रहे। एक दिन उसी चुनार से आई हुई सखी (सौदा-
मिनी) ने उसे पहचाना। उसने मुझसे कहा कि यह—जिसे
आप अपनी सखी समझे हुई हैं—हकीकत में सखी नहीं
है। सखी का रूप धर कर कोई किसी का सखा है। मुझे उसके
कहने पर तनिक भी विश्वास न हुआ वरन् मैंने मन में कहा कि
इसे भ्रम हो गया है। अभी नई आई है किसी को भले प्रकार
देखा सुना नहीं है इसी कारण इसे भ्रम हो गया है। उसने
कहा—जी नहीं मुझे भ्रम नहीं हुआ है यह मुझे सच्चा ज्ञान
हुआ है। आज मैं शाम को बाग में उसका असली रूप तुम्हें
दिखाऊँगी।

शामको मैं सुखमा सौदामिनी और नई चंचला चारों बाग
में गईं वहां सौदामिनी ने आँखमिचौनी खेल आरम्भ किया।
नकली चंचला चोर हुई। उसकी आँखें सौदामिनी ने मीच कर
हम लोगों से कहा कि छिपे रहें। जब हम लोग मालती की
झाड़ियों में छिपीं तो सौदामिनी ने चिल्लाकर कहा सखियों!
आओ देखो अपनी चंचला का हाल!

उसने उसका मुँह—जिसपर उसने कोई रंग पोत रखा था—
पानी से रगड़ कर मुझे दिखाया तब मैंने जाना कि यह छली
पुरुष है और इसने तुम्हें कहीं छिपाकर तुम्हारा रूप बना कर
अब मुझे छलने की घात लगाता था।

चंचला०—(क्रोध से) लगवाया नही चाँद पर सौ जूते।

शशि०—हाँ, सौदामिनी ने कोई कर्म बाकी न छोड़ा। उसे किसी खोह में क़ैद भी कर आई थी लेकिन उसमें से वह निकल गया-क्योंकि वह धूर्त था।

चंचला०—फिर क्या हुआ ?

शशि०—फिर कुछ दिन के बाद वह सब दुष्ट सुरंग खोद कर उसी सुरंग की राह मुझे और मेरी चुनार वाली सखी को बेहोश कर उठा ले गये और ऐसे पेंचदार खोंह में बंद किया कि वहां हम छ महीने पड़ी रहीं और उसी भूलभुलइयां में भटकती फिरीं। कहीं बगला लीलता रहा तो कहीं साँप। अजब तरह का तमाशा था। कहीं कूंओं में गिरतीं तो कहीं चक्करदार महलों में चकरातीं। कभी ताल सरोवरों पर काटती कभी किसी घेरे और तंग दर्रों में भटकतीं। सारांश कि छ महीने तक इसी प्रकार उस तिलिस्माती खोह में मैं और सखी सौदामिनी चक्कर काटती फिरीं कुछ दिन हम दोनों साथ रहीं परन्तु मेरी भूल से हम दोनों अलग अलग भटकती रहीं।

चंचला०—आपकी भूल कैसी ?

शशि०—एक स्थान पर वह चबूतरा था उसपर बहुत सी पत्थर की मूर्तियाँ थीं। सौदामिनी ने मना किया था कि इन मूर्तियों के पास न जाना और न इन्हें हाथ से छूना। एकदिन वह किसी काम से बाग में गई। मैं उठकर उस चबूतरे को देखने लगी। ज्योंही उसके पास मैं गई त्योंहीं एक बगले ने (जो लोहे का बना था) लील लिया। मैं उसके मुख में से होकर नीचे गिरी और उससे (सौदामिनी से) जुदा होगई।

चंचला०—आपकी वह चुनार वाली सखी कहाँ हैं ?

शशि०—उन्हीं दुष्टों की फिक्र में पड़ी कहीं घूम रही होगी। उसे गये दो सप्ताह हुए कुछ पता नहीं कि कहाँ है।

चंचला०—आप पर भी कम नहीं बीती, मुझसे भी कड़ी सजा आपने पाई !

शशि०—इसमें क्या संदेह है।

चंचला०—मुझे अपनी तनिक भी सुध नहीं कि मैं यहाँ से कैसे किसके द्वारा कब हटाई गई। मुझे तो चेत तब हुआ जब मैं काशी के एक बड़े छ मंजिले मकान पर पहुँची। मुझे वहाँ मालूम हुआ कि मैं दुष्टों के फंदे में फँसी हूँ। पाँच धूर्त मेरी रखवाली पर थे। इसी समय चुनार के कोई पहाड़सिंह हैं वे काशी गए और मेरा समाचार मेरी एक मजदूरनी से बूझे। उन रक्षकों को कुछ मुझपर सन्देह हुआ तुरन्त वे मुझे एक पंडे के निराले मकान में उठा लेगये। वहाँ मैं उन्हीं के खाँड़े से उन पाँचों रक्षकों को साफ कर वहाँ से भागी लेकिन कुछ दूर पर फिर पकड़ी गई और बेहोश कर एक ऐसे गोरखधंधे में डाली गई जिसमें से निकलना ही कठिन था। चुनार वालों के प्रयत्न से किसी प्रकार उस गोरखधंधे से निकल पाई कंतित वाले भी मुझे लेने उसमें गये और वहाँ बड़े भारी चक्कर में फँस गये थे उन्हें भी चुनार वालों ने छुड़ाया।

शशि०—यह चुनारवालों की बेवकूफी थी जो दुश्मन को सहायता दी जानते तो थे कि ये छाती परके साँप हैं, समय पर बिना काटे न छोड़ेंगे।

चंचला०—संसार में जितने धर्म हैं उनमें हिन्दू-धर्म बड़ा पुराना और उदार धर्म है। इसमें वैरी के प्रति भी जो उदारता रक्खी है वह स्यात् ही किसी अन्य धर्म में मिले। भले ही अंत में उससे हानि हो लेकिन यदि वह शरण आगया है तो हिन्दू-धर्म तज्जनित भविष्य दुःख को विचार कर भी उसकी रक्षा करने का उपदेश देता है। ऐसा व्यापक धर्म पृथ्वी पर

दूसरा है ही नहीं; जो साँप जैसे दुष्ट जीव को भी पूज्य मानत
और उसे पूजता है।

शत्रु मित्र समान समदर्शी विषय से मौन है।
सत्य ही है धर्म जिसका धर्म ऐसा कौन है?
जड़ सचेतन मय सकल यह सृष्टि पूज्य समान है।
इस प्रकार उदार जग में कौन धर्म प्रधान है?

यद्यपि उन सबों ने बड़ी बुराई की थी तथापि जब वे रक्ष की भिक्षा माँगने लगे तो उन्हें तरस खाना ही पड़ा। आखि उनपर भी तो किसीने तर्स खाया।

शशि०—उनपर किसने तरस खाया?

चंचला०—एक स्त्री ने।

शशि०—चौंककर-स्त्री ने! वह कौनसी स्त्री है?

चंचला०—क्या संसार में स्त्री ही नहीं हैं।

शशि०—मेरा मतलब उस स्त्री से है जिसकी कृपा से व पुरुषार्थ से चुनार वाले तुम्हारी और कंतित वालों की मद कर सके।

चंचला०—हाँ वह स्त्री ही थी, उसीके बल पौरुष औ परिश्रम से हम वे और उनके बैरी उस कठोर अगम कौतु कारागार से छूटे। उसका नाम धाम मैं नहीं जानती। योगि उसे कहते सुना है। उसकी सूरत तो राजकन्या सी पर भे योगिनी का सा था। उसने उस गोरखधंधे से सहज ही हम लोगों को बाहर कर दिया।

शशि०—वह उस गोरखधंधे (तिलिस्म) में कहाँ आ पड़ी?

चंचला० यह सब मुझे नहीं मालूम और न मैंने उससे बू पूछी क्योंकि वह अधिकतर कुँअर साहेब से ही बोलती

दूसरों से नहीं। हाँ; तिलिस्म से बाहर निकाल कर जब बिदा होने लगी तब कुछ साहेब सलामत सबों से की थी।

चंचला ने उस योगिनी का अंतिम अनुरोध कि "देखना भूलना नहीं" और छ महीने बाद कुँअर के जाने की प्रतिज्ञा" शशि से नहीं कही। क्योंकि वह जानती थी कि इसे सुनकर शशि दुखित होगी। हाँ, उसने मुस्करा कर यह अवश्य कहा कि स्त्रियों के बिना कहीं पुरुषों का काम चला है। पुरुषों का पुरुषार्थ और बल स्त्रियाँ ही हैं, स्त्री ही पुरुषों की जीवन और जन्म की भी दाता हैं। स्त्री के बिना पुरुष वैसे ही अधूरा है जैसे बिना लकड़ी की कुल्हाड़ी!

देखती नहीं हो कि क्या देवकर्म क्या मनुष्यकर्म सभी बिना दोनों के पूर्ण नहीं होता। लौकिक वैदिक व्यवहारिक सभी कामों में दोनों साथ हैं। तब क्यों आप इसमें अचरज करती हैं कि कुँअर को एक स्त्री ने सहायता दी!

इतने ही में सामने देखा तो एक स्त्री मस्त हाथी की भाँति झूमती इठलाती हँसती हुई शशि की ओर लपकी चली आ रही है।

शशि ने चंचला से कहा—देखो सामने चुनारवाली (सौदामिनी) आ रही है। यह अभी बहुत दिन तक जीवेगी। अभी २ इसकी चरचा ही कर रही थीं कि वह आ पहुँची!

इतने में वह पास पहुँच गई और धन्यवाद धन्यवाद करती हुई शशि से लिपट गई। इसके उपरांत उसने खिल खिला कर चंचला को दोनों हाथों गोद में उठाकर उसका मुख चूमा और बड़े प्यार से पूछा—कहो! अच्छी तो रहीं? इसमें सन्देह नहीं कि तुमने बड़ा दुःख उठाया परन्तु तुम्हारी खोज में तुम से कहीं अधिक दुःख चुनारवालों ने उठाया। उन्हें जितनी परेशानी तुम्हारी खोज में हुई उतनी हमारी और शशि में नहीं।

अच्छा सबकी कट गई। केवल नहीं कटी तो उन्हीं की न
कटी जो नकटे (बेहये) हैं। यह कह वह खिलखिला क
हँस पड़ी।

शशि ने पूछा—कहो कहां रहीं ? दो सप्ताह से तुम ग़ाय
रहीं इसका क्या कारण ?

सौदामिनी ने कहा—कुछ पूछो न। कुँअर कर्मसिंह अप
मंडली लेकर काशी को गये। उनकी नानी जानकी ने अप
रंग अजयगढ़ पर जमता न देख अपने यारों को साथ लिये दि
चुनार पहुँची। दोनों बहिनें खिलौने और बिसातवाने क
टोकरा लेकर रनिवास में घुसीं। बिल्लौरी चूड़ियों को भी र
ले गईं। सबों ने-जो जिसे भाया-खरीदा। जब खरीद की हु
चीज़ें लेकर महल की स्त्रियां महल के भीतर अपने २ कमरे
चली गईं तो कुमारी सरोजसुन्दरी (कुँअर शमशेर बहादु
सिंह की छोटी बहिन) जिसकी अवस्था अभी चौदह वर्ष क
है—चूड़ी पहिरने लगी।

शशि०—अच्छा फिर क्या हुआ ?

सौदा०—चूड़ी पहिराते ही पहिराते उसने कोई बेहोशी का
फाहा-जिसे उसने अपने कान में खोंस रक्खा था—कुमारी की
नाक से लगा कर उसे बेहोश किया और अपने बड़े टोकरे
में बेहोश कुमारी को धर कर दोनों वहां से चल दीं।

क़िले के बाहर रामसरोवर के पास मैं बैठी कुछ सुस्ता
रही थी प्रेतनाथ भी मेरे साथ थे।

शशि०—ठंढी सांस लेकर—अच्छा, तब क्या हुआ ?

सौदा०—मैंने देखा कि वे दोनों स्त्रियां किले में से निकली
आ रही हैं और दो पुरुष जो भेष बदले वहीं खड़े थे उन्हें इशारे
से पास बुला रहे हैं। मैंने समझा कि कुछ ज़रूर दाल में काला
है। टोकरे को शिर पर धर कर क़िले के भीतर से निकलना

फिर दो पुरुषों से संकेत (इशारे) करना पूरा सन्देह पैदा करता था।

शशि०—ओ हो! यह गजब!—अच्छा फिर क्या हुआ?

सौदा०-फिर मैंने प्रेतनाथ को उभारा और कहा कि पुरुषों का पीछा तुम करो स्त्रियों का पीछा मैं करती हूँ।

एक पुरुष जो तनक मोटा ताजा था उसने स्त्री के सिरसे वह टोकरा उतार कर अपने शिर पर धर लिया। और दूसरी स्त्री ने अपना टोकरा दूसरे पुरुष को दिया। उसने उस टोकरे को अपने शिर पर लिया। एक टोकरा जिसमें—कुमारी थीं—कपड़े से ढँका था।

चारों जन दुर्गाखोह की राह पहाड़ी पर चढ़े और पहाड़ी पगदंडी की राह विंध्याचल की ओर चले।

शशि०—हत्तेरे कम्बख्तों की! अच्छा दिन था कि रात?

सौदा०—दिन था और ठीक दोपहर का समय था। हाँ, बदली के कारण न तो सूरज दिखाई पड़ता था और न धूप ही।

शशि०—आगे क्या हुआ?

सौदा०—आगे यह हुआ कि हम दोनों भी उनके पीछे लगे चले गए। हाँ हम इस तरह उनके पीछे लगे कि उन्हें यह न मालूम हो कि हम पीछा किये हैं। प्रेतनाथ ने अपनी धोती चूतड़ से ऊपर खसका कर काछा बाँध लिया और झोली अपने सोंटे में लगाकर कंधे पर धर लिया। पैर का जूता हाथ में उठा कर नंगे पाँव गँवार पहाड़ी की सूरत में चले। मैंने भी अपनी साड़ी का कछाड़ा मार लम्बा घूंघट काढ़ लिया और प्रेत-नाथ के पीछे २ चली। देखने से यह कोई नहीं कह सकता था कि ये चालाक या धूर्त हैं वरन् यही बोध होता था कि ये दोनों देहाती गँवार हैं। मर्द अपनी बीवी को (सब हँस पड़ीं) बिदा कराये अपने घर लिये जा रहा है।

उन चारों ने भी पीछे फिर कर हम दोनों को देखा परन् गँवार जान कर हम पर कुछ संदेह न किया। इसी प्रकार कु दूर जाने पर हमारा उनका साथ हो गया। नाम गाँव पत ठिकाना पूछा पुछवाया गया। फिर तो वे चारों हम दोनों मददगार हो गये और बोले—चलो "बरकछा" तक हमार तुम्हारा साथ रहेगा।

तीन बजे दिन को हम "बरकछा" पर पहुँचीं। वहाँ एव पहाड़ी नदी बहती थी उसी के किनारे हम लोग उतरे। हम दोनों ने झोली मेंसे कुछ गुड़ निकल कर खाया और पानी पिय थोड़ा २ गुड़ उन चारों को भी दिया। वे चारों स्त्री पुरुष गुड़ पाकर बड़े प्रसन्न हुये। क्योंकि सब भूखे थे और पास में कुछ था नहीं। पहाड़ी रास्ते में सिवा रोड़े पत्थर के पेड़ का कहीं नाम नहीं फिर फलवल कहाँ जो तोड़ कर खायें।

कम्बल बिछा कर प्रेतनाथ तो वहीं उसी पेड़ की छाया में लेट गये और लेटते ही उनकी नाक बोलने लगी। वे जान बूझ कर अपनी नाक बोलाने लगे जिसमें वे जान जायें कि यह थका हुआ है गरीब नींद आई सो गया।

वे सब भी दोहर धरती पर बिछा कर लेट रहे। स्त्रियाँ भी उनकी बगल में लुढ़क रहीं लेकिन अपना हाथ टोकरे पर धरे रहीं। मैं लम्बा घूँघट काढ़े प्रेतनाथ के पैताने सिर नीचा किये बैठी रही (खूब खिलखिला कर हँसी)।

शशि०—हाँ, आगे क्या हुआ ?

सौदामिनी०—थोड़ी ही देर में वे सब आँखें मूँद २ नाक से खर्राटे लेने लगे।

चञ्चला०—गुड़ की गर्मी चढ़ गई होगी! अच्छा कहे चलिये रुकिये मत।

सौदामिनी०—उनकी नाक की आवाज़ सुन प्रेतनाथ उठ

बैठे और मुझसे बोलेः—घूंघट उलट कर खड़ी हो (हँसी) और देखो इन बादमाशों की बदमाशी। यह कह उन्होंने कुमारी को टोकरे से बाहर निकाला और अपनी झोली में से एक जंगली जड़ी का टुकड़ा निकाल कुमारी की नाक से लगाया। दो चार छींकें छींककर जँभाइयाँ लेती हुई कुमारी जाग पड़ीं। अपने को अनजान पुरुषों और स्त्रियों में देख कर रो पड़ीं और घबरा कर बोलीं "हा! मैं कहाँ हूँ मेरी माँ कहाँ है" मैंने उन्हें ढाढ़स दिया और कहा—अभी आपको आपकी माँ के पास पहुँचाती हूँ। वह विचारी बालिका मेरे कहने का विश्वास न कर सकी और बारंबार मेरी ओर घूर २ कर देखती और पूछती रही कि "तुम कौन हो, क्यों मुझे यहाँ लाई हो; ये सब कौन सो रहे हैं, यह मोटा काला आदमी कौन है इत्यादि २। जब मैंने सारा किस्सा कह सुनाया और अपना पूरा परिचय देकर उसे विश्वास दिलाया कि अब डरने का कुछ काम नहीं आप निडर रहें, दो तीन पहर में घर पहुँच जाओगी इत्यादि तब उसे कुछ बोध हुआ।

शशि०—ठंढी साँस लेकर—फिर क्या हुआ?

सौदामिनी०—कुमारी को लेकर मैं वहाँ से कुछ दूर एक पाकर के पेड़ तले हट आई।

शशि०—क्यों?

सौदा०—प्रेतनाथ ने मुझसे कहा कि तुम कुमारी को लेकर दूर किसी ओझल में हट जाओ। इसलिये कि मैं इन चारो की दुर्गति कर के तब आऊँगा। इनकी दुर्गति देख कर कुमारी के डर जाने का भय है।

शशि०—अच्छा फिर?

सौदा०—मैं कुमारी को लेकर दूर ओझल में हो रही। प्रेत ने उन सबों के कपड़े उतारे।

शशि०—क्या उन स्त्रियों के भी कपड़े उतारे ?

सौदा०—जी हाँ,

शशि—छिः छिः, स्त्रियों पर तो उन्हें तरस खाना था आखिर तो प्रेत ही न ? स्त्री कैसी ही हो फिर भी उस पर दया दिखानी चाहिये। अच्छा फिर।

सौदा०—प्रेत ने सबके वस्त्र उतार स्त्री पुरुष दोनों को नंग कर दिया (खूब हँसी) और उनके वस्त्रों में मोमबत्ती जल कर आग लगा दिया। उसी आग में एक ताँबे की चौखूंटी मोहर—जिसमें प्रेत का नाम खुदा था—गरम किया और उसे दोनों पुरुषों के चूतड़ों में लगा दिया।

शशि०—हाय हाय, वे जगे नहीं ?

चंचला०—जग नहीं सकते थे। हाँ जलाते समय हाथ पैर पटके ज़रूर होंगे।

सौदा०—हाँ, हाथ पैर पटके पर जगे नहीं। क्योंकि गुड़ में दी हुई बेहोशी अपने आप तब तक नहीं जाने की—जब तक पूरे बारह घंटे न बीत जायँ। हाँ कोई दूसरी जड़ी सुँघा दें तो तुरन्त उठ बैठें।

शशि०—अच्छा फिर, उन स्त्रियों का क्या किया ?

सौदामिनी०—स्त्रियों के शिर के बाल कैंची से काट कर छोड़ दिये। और चारों की टांग पकड़ पेड़ के नीचे चारों को चित्त लिटा कर चल दिये।

शशि०—(शोक के साथ)—इससे फायदा ?

सौदा०—कुछ नहीं केवल बेइज्जती, जिसमें वे शरमा कर फिर बुरे फेल न करें। किसी की बहू बेटी को रुपये की लालच में न भगायें। शरारत छोड़ दें। और क्या फायदा है ?

शशि०—इससे अच्छा तो क़ैद कर देते या जान से मार डालते।

सौदा०—क़ैद वैद से तो वे डरते नहीं और न इसकी उन्हें लज्जा ही है। न जाने कितनी बार कठोर से कठोर कारागार में पड़ चुके। अभी २ चंपतराय और गुलाबकली बन कर येही तो आए थे। जिन्हें पकड़ कर लोहे के पींजड़े में क़ैद किया था। उसी रात सब के सब लोहे के पींजड़े से निकल भागे। याद है कि नहीं?

शशि०—आश्चर्य से—अरे! वे वेही गुलाबकली और चम्पतराय थे जो मुझे और सरकार को ठग गये थे?

सौदा०—तब क्या दूसरे थे! वही जानकी मानकी दोनों बहनें—जो गुलाबकली और चम्पतराय बन कर आए थे—और वही यूसुफ और क़रीम दोनों मुसलमान छोकरे—जो उन्हें छुड़ा ले गये।

शशि०—तब तो बड़ा अच्छा किया। उन निगोड़ी निगोड़ों को अच्छी सजा दी।

चञ्चला०—क्या सजा दी? चाहता था कि चारों को वहीं काट डालना। मैं होती तो एक को भी जीता न छोड़ती।

सौदा०—जी हाँ यह ठीक है। बेहोश को मारने में देर कितनी लगती है? परन्तु नहीं यह धूर्त नियमों के खिलाफ है। यों भी बेहोश को, पागल को, सोते हुए को, घायल को, भागते हुए को, मारना निषेध है। फिर भी धूर्त नियमों में तो धूर्त (ऐयार) अवध्य माना है। इन्हें चाहें जैसी सजा देलें और चाहें जितनी इनकी साँसत कर लें पर जान से न मारें। यदि मारने का नियम होता तो जब चाहे तब जिस किसी धूर्त को (ऐयार को) जड़ी बूटी सुंघा खिला कर मार डालते इसमें तरद्दुद क्या थी। बिना लड़ाई बिना झगड़ा के जब चाहें तभी खतम कर दें। पर न्हीं, ऐसा होता नहीं। न

शत्रु करे और न उसका विपक्षी ही। दोनों नियमों में जकड़े

शशि०—अच्छा आगे क्या हुआ ?

सौदा०—उन दोनों पुरुषों और दोनों स्त्रियों को न धड़ंग उसी पेड़ के नीचे लिटा कर हम लोग चुनार को लौ चुनार में कुमारी के खो जाने से तहलका पड़ गया। चा ओर सिपाही दौड़ाये गये। पहाड़ पर भी सिपाहियों व गरोह मिला। उन सबों ने कुमारी को हमारे साथ देख ह घेर लिया और गिरफ्तार भी कर लिया। प्रेतनाथ के हा में हथकड़ी पहिराने लगे परन्तु कोई हथकड़ी उनके हाथ न आई। तब रस्से से उनकी कमर कसी गई। मुझे सिपाहिय ने अपने घेरे में ले लिया। कुमारी घोड़े पर सवार कराई गई यों हम बड़े तड़के चुनार के क़िले में दाखिल हुईं और महाराज के सामने पेश की गईं।

हमने सच्ची २ घटना का वर्णन किया और मेरे इजहार पर महाराज और महारानी ने विश्वास भी किया। लेकिन दीवान हमारे खिलाफ था उसका कहना था कि ये भी उन सबों के शरीक थीं। इतने ही में कुँअर साहेब और उनकी मित्र मंडली वहाँ पहुँच गई। कुँअर मुझे देखते ही महाराज से बोलेः—नहीं २ ये लोग हमारे आदमी हैं ये जो कहेंगे ठीक कहेंगे। इन्हे छोड़ दिया जाय।

कुँअर की शिफारिश पर हम (मैं और प्रेत) वहाँ से छूटीं। प्रेत तो कुँअर को गालियाँ देने लगे। कुँअर ने हंस कर उनसे कहा—जाओ २ अजयगढ़ जाओ, वहाँ अब तुम्हारी ही तलाश है।

मैं चली आई प्रेत वहीं कूँड़ी सोंटा लिये चले गये। इतने ही में रात अधिक हो गई। सब वहाँ से उठ कर महल में चली गईं।

पाँचवाँ परिच्छेद ।

प्यारे पाठक ! जिन दो स्त्रियों और दो पुरुषों को बरकछा पर बेहोश नंगे छोड़ आए हैं अब उनका हाल लिख कर तब आगे बढ़ने की इच्छा है। क्या आप भी मेरी राय से सहमत हैं ? जरूर सहमत होंगे। क्योंकि दो स्त्री और दो पुरुष एक जंगल में नदी के किनारे मादरजाद नंगे पड़े रहें यह आपको भी अच्छा न लगता होगा। अच्छा, आइए ! पहिले उन्हींको देख आवें कि वे वैसे ही पड़े हैं वा उठकर चले गए।

नंगी स्त्री को देखना लोक और वेद दोनों में निन्दित है। यहाँ तक कि जब अपनी भी स्त्री को किसी दशा में नग्न न देखे तो पराई तो पराई ही है। उसकी तो उत्तम पुरुष छाया तक बराते हैं देखने की कौन कहे ! लेकिन भाई ! हम लोग तो इस नीति नियम आदि से बरी हैं। ऐसा करने पर हमें कोई अपराधी न मानेगा। अस्तु; आओ चलें, तनिक उनकी भी दशा आँखों से देख आयें।

वह देखिये चारों जन जिनमें दो स्त्री और दो पुरुष हैं नदी के किनारे एक पाकर के पेड़ के नीचे नंगे चित्त पड़े हैं। अब ये हाथ पैर चलाने लगे हैं। इससे अनुमान होता है कि अब ये कुछ देर में जगने वाले हैं।

धीरे २ इधर उधर करवटें बदल चारों जन आँखें मींचते उठे और आँखें खोल कर देखें तो सब नंगे ! स्त्रियां तो हाथ का पर्दा किये नदी के कछार में पत्थरों की आड़ में भाग कर छिपीं। परन्तु पुरुष वहीं बैठकर चूतर खुजाने लगे।

एक ने दूसरे की ओर चूतर फेर कर और हाथ से दिखा कर कहाः—अरे भाई करीम ! तनक देख तो मेरा चूतर क्यों जलता और खुजाता है ?



करीम ने अपना चूतड़ उसकी ओर फेर कर और हाथ से इशारा कर कहाः—अरे यार! मेरा भी जल और खुजा रहा है तनक देख तो क्या बात है!

करीम ने कहा—अरे वेवकूफ! तू मेरा पहिले देख ले तो मैं तेरा भी देखूं। जान पड़ता है कि इसे किसी ने आग से जला दिया है तभी तो इसमें इतनी जलन है।

युसूफ ने घूम कर उसका चूतर देखा और कहाः—यह तो मोहर गरम करके दागा है! इसमें नागरी में नाम भी है। अच्छा, तनक मेरा तो देख। यह कह उसने अपना चूतर उसकी ओर फेरा।

करीम ने उसकी तरफ घूम कर देखा और कहाः—हां यार! तेरे भी चूतर पर जले हुए मोहर का दाग़ है और इसमें भी नाम उभरा हुआ मालूम होता है!

यूसुफ बोला! बड़ा धोका हुआ और बड़ी बेइज्जती हुई! अब क्या मुँह दिखायेंगे। सारी चालाकी धरी रही चूतर पर दाग़ खा गए!!!

करीम०–जान पड़ता है कोई धूर्त यहाँ आया, हमें सोता देख कपड़े निकल लिया और बेहोश कर चूतर दाग कर चला गया!

यूसुफ़—अबे उल्लू हुआ है क्या! कोई धूर्त आया कि वही धूर्त साथ में था जिसने गुड़ खिला कर यह गुल खिलाया। चलो अब इस बहस को बन्द करो पहिले चूतर ढाँकने की फिक्र करो। कपड़े वपड़े तो यहाँ मिलेंगे नहीं। पलास के पत्ते तोड़ लाओ उन्हीं को सींक से सी कर चूतर ढाँको। पीछे चलकर कपड़ों की तलाश करो क्योंकि वे औरतें बिना कपड़े के कैसे लज्जा ढँकेगी जो पत्थरों की आड़ में मुंह छिपाए बैठी हैं!

करीम गया और पत्ते तोड़ लाया। यूसुफ और करीम

उन पत्तों की जाँघिया सिये और उसे पहिन कर नदी के करार पर आए। जानकी और मानकी को आवाज देकर बोले:—तुम दोनों पत्थर की आड़ में थोड़ी देर छिपी बैठी रहो मैं आगे के गाँव में जाकर कपड़े माँग लाता हूँ। यहाँ इस समय कोई आने जाने का नहीं तुम कुछ चिंता न करना। पत्थर की चट्टान के बाहर सिर निकाल कर जानकी ने कहा—जाओ पर देर न करना जल्दी ही वापिस आना।

यूसुफ और करीम दोनों। कपड़े की तालाश में निकले।

उन दोनों के जाते ही कोलों की एक बड़ी गरोह तीर कमान लिये उसी स्थान पर आई और पानी पीने को नदी के किनारे पर उतरी।

एक कोल की निगाह पत्थर की चट्टानों में गई उसने ठट्ठा मार कर अपने साथियों से कहा-अरे यार! इधर आओ, देखो इस पत्थर की आड़ में एक जोड़ा अजूबा शिकार छिपा है!

शिकार वह भी अजूबा है यह सुनते ही उसके साथी तीर कमान चढ़ा २ कर नदी की कछार में उतरे। जानकी ने देखा कि ये जंगली सचमुच शिकार समझ कर कहीं तीर का वार न करदें इस डर से वे दोनों हाथ का पर्दा किए चट्टानों की आड़ में से बाहर निकल आईं और बोलीं कि हम शिकार हैं न जानवर, हम भले घर की स्त्री हैं। चोरों ने हमें लूट कर नंगा कर दिया है। लज्जा से पत्थर की आड़ में मुँह छिपाए बैठी हैं। हमारे आदमी कपड़े लेने गए हैं आने ही चाहते हैं।

इन स्त्रियों की नंगी सूरत देखते ही वे जंगली ताली बजा २ कर कूदने उछलने लगे और हँस २ कर कहने लगे वाह २ कैसी गोरी है। उनमें से कुछ बोले इसे पकड़ ले चलो टुकड़ी के सरदार को इन्हें तुहफा में देंगे। यह अभी नई नवेली

खूबसूरत है। रंग भी इनका गोरा है। हमारा काला सरदार इन्हें पाकर बड़ा खुश हो जायगा।

इनका प्रस्ताव सब कोलों ने पसन्द किया। वे इन दोनों नंगी स्त्रियों को पकड़ कर अपने साथ दक्खिन को ले चले। कोल खुद पत्ते लपेटे थे उनके पास वस्त्र कहां जो उन्हें पहिराते। अस्तु इन दोनों स्त्रियों को भी पत्ते के लहँगे से ढाँक दिया। और पत्तों की चोली भी बना कर उन्हे पहिरा दिया जिससे उनकी लज्जा तो ढँक गई मगर उनकी सूरत बदल कर उन्हीं जंगलियों में मिल गई।

रास्ते भर दोनों स्त्रियाँ रोती पछताती थीं। जगह २ पर निकल भागने की कोशिश भी करती थीं। परन्तु उनके पैने तीरों को देख कर उनका भागने का विचार मन में ही रह जाता था। एक तो पहाड़ी प्रदेश, दूसरे राह भी मालूम नहीं, भागके जायँ तो कहाँ जायँ!

कोल भी जंगली थे। उनका काला २ गठीला शरीर, भूरे २ शिर के बाल, आँखें बड़ी लाल २ जिन्हें देखते ही यम-दूतों का स्मरण हो आता था। वस्त्र को तो वे जानते भी न थे। केवल चौड़े २ पत्तों को सींकों से टाँक कर उसीको कमर से लपेटे थे। उनके हाथों में भयानक तीर और कमान इसीके सहारे वे जंगली जीवों का शिकार करते और उन्हें भूज कर खाते थे।

जानकी और मानकी इन जंगली कोलों की डरावनी सूरत देख अपने जीने की आस छोड़ बैठीं। उन्हें विश्वास हो गया कि यदि इनके पंजे से न छूटीं तो निश्चय ये किसी न किसी समय मार डालेंगे। क्योंकि ये शिकार खाते २ स्वभाव के भी कठोर हो गये हैं। इन्हें दूसरों के प्राण लेते क्या देर और क्या शील संकोच है।

इन दोनों स्त्रियों को यही नहीं मालूम कि ये हमें लिये कहाँ जा रहे हैं। हाँ, नदी किनारे इतना सुनी थीं कि सरदार को तुहफा (उपहार) देंगे। राम जाने वह सरदार कहाँ और कैसा है ? वह भी इन्ही की भाँति बर्बर और दुष्ट होगा।

रास्ते भर वे काले २ कोल कूदते उछलते नाचते गाते और जगह २ पर हिरन, खरगोश, श्याही, बारहसींगा, नील गाय, आदि मारते खाते चले जाते थे। बिचारी जानकी और मानकी भी कमर और छातियों में पत्ते लपेटे बनमानुषों की भाँति चुपचाप उनके गोल के साथ चली जाती थीं।

सूरज डूबते २ ये लोग रापटगंज पहुँचे। एक घने और फैले हुए बरगद के पेड़ के नीचे डेरा डाले। रात को शिकार अच्छे मिलते हैं इस बिचार से वे कोल इधर उधर शिकार की खोज में गये। एक कोल जो चोट के कारण बहुत चल फिर नहीं सकता था उन दोनों स्त्रियों की रखवाली करने लगा।

रापटगंज पहाड़ पर एक बस्ती है जिसके चारों ओर पहाड़ ही पहाड़ हैं। यह स्थान अहरौरा से ६।७ कोश दक्खिन है। इसी बस्ती के बाहर एक पेड़ के नीचे अभागिन जानकी और मानकी बैठी अपनी किस्मत को रो रहीं हैं।

रात नौ बजा होगा। चारों ओर सन्नाटा है। जंगली जानवरों की बोलियाँ सुनाई पड़ने लगीं। इस स्थान पर बाघ, भालू भेड़िया और चीता भी कभी २ आ जाते हैं। आज भी कोई भयानक जीव आ गया है इसी कारण जंगली जीव जहाँ तहाँ चिल्लाते और भागते दिखाई पड़ रहे हैं।

रात उजियाली है चन्द्रमा अपनी किरणों से सारे पहाड़ को सुफेद कर डाले है। ऐसे प्रकाश में काले २ जंगली जीव यत्र तत्र (जहाँ तहाँ) भागते दिखाई पड़ रहे हैं। स्त्रियों में

यद्यपि कुछ साहस है तथापि वे डर के मारे पेड़ों से चिपटी बैठी हैं। एक दूसरे से बोलती तक नहीं हैं।

थोड़ी ही देर में कुछ घोड़ों के टाप के शब्द सुनाई पड़े। जानकी ने देखा कि दक्खिन की ओर से एक बड़ा भारी सवारों का दल आ रहा है। कुछ ही देर में वे सवार—जो गिनती में सौ सवा सौ से कम न होंगे—वहाँ आ पहुँचे जहाँ जानकी और मानकी बैठी अपनी किस्मत को रो रही थीं।

उन सवारों का सरदार सब से आगे के घोड़े पर था इस कारण इन तीनों जनों पर—जो बरगद के पेड़ तले सिकुड़े बैठे थे—उसकी आँख पहिले पड़ी। उसने चाँदनी में देखा कि दो औरतें और एक मर्द बैठे हैं। उसने डपट कर मर्द से पूछा—"कौन है रे तू?"

कोल अपना तीर कमान तान कर उत्तर देने जाही रहा था कि उस सरदार की चमचमाती हुई तलवार उसके गरदन पर पड़ी जिससे वह दो टुकड़े हो धरती पर छटपटाने लगा।

यह दशा देख दोनों स्त्रियाँ चीख पड़ीं। उनकी चीख कान में पड़ते ही सरदार घोड़े से नीचे उतर पड़ा। क्यों कि वह जान गया कि यह चीख स्त्री की है। स्त्रियों की चीख चिल्लाहट पुरुषों की अपेक्षा कुछ नरम और धीमी होती है। स्त्री का निदान कर उस सरदार ने उनपर वार नहीं किया बल्कि घोड़े से नीचे उतर कर उनके पास आया।

उजेली रात में उनके गोरे बदन की चमक देख और उनकी अवस्था और जवानी का ख्याल कर सरदार के मुँह में पानी भर आया। उसने मीठी आवाज़ में उनसे उनका नाम धाम पूछा।

"ये कोई राजा महाराजा के सेना नायक हैं हमारी मदद करेंगे" इस विचार से जानकी ने अपना पता ठिकाना बताया और रास्ते का सारा किस्सा कह सुनाया।

स्त्रियों की कहानी सुन कर सरदार की नीयत बिगड़ी उसने मनमें कहाः—हमारे गरोह में एक से एक जवाँ मर्द हैं मगर उनकी खिदमत के लिये औरतें नहीं हैं। खाना पकाने के लिये औरतों की जरूरत मर्दों को पड़ती ही है क्योंकि खाना जैसा औरतें पकाती हैं वैसा मर्द नहीं। अल्लाह ने चाँदनी रात में एक नहीं दो चाँद के टुकड़े आसमान से बख्शे हैं, अब हमें चाहिये की उसका शुक्रिया अदा करें और उसकी बख्शी हुई नियामत को दिलसे कबूल करें।

उस सरदार ने-जो जातिका मुसलमान था—उन स्त्रियों से कहा—"देखो तुम लोग खुदा का शुक्रिया अदा करो क्यों कि उसने मेहरबानी कर के हमको तुम्हारी हिफाजत के लिये भेजा है। अब तुम जरा न डरो किसी का खौफ अब नहीं है। हमारे साथ चलो हम तुम्हारी हिफाजत करेंगे।"

मानकी यह जान कर-कि यह मुसलमान है आगे चल कर न जाने कैसा बर्ताव करे-मनमें डरी परन्तु जानकी-उन कोलों से जो निहायत जंगली और बर्बर थे—इन्हें गनीमत समझी। उसने उस सरदार से कहा—मेरे पास पहिरने को कपड़े नहीं हैं मेरे कपड़े सब चोर चुरा ले गये। मैं नंगी हूँ; कैसे चलूं।

सरदार ने सिपाहियों के साफे पहिरने को दिया। जिसे दोनों बहिनों ने पहिरा। इसके उपरान्त एक को (मानकीको) खुद सरदारने अपने आगे बिठाया और दूसरी को (जानकीको) एक सवार ने। यों वह डाकुओं का गरोह आगे बढ़ा।

पाठकों को इस गरोह का परिचय करा देना उचित है। यह गरोह खुदखुदाखाँ नाम के प्रसिद्ध डाकू का है जो रीवाँ के भयानक जंगलों में रहता है। इसमें जितने डाकू हैं सब मुसलमान हैं। क्योंकि हिन्दू डाकुओं से खुदखुदाखाँ बहुत डरा हुआ है। हिन्दू डाकुओं ने कई बार खुदखुदाखाँ के साथ

विश्वासघात किया था जिसके कारण वह कई स्थानों में गिरफ्तार होते २ बचा। खुदखुदाखाँ ने कसम खा लिया कि अबसे हिन्दुओं को अपने गरोह में न रक्खूंगा। यही कारण है कि उसने हिन्दुओं को निकाल कर उनके स्थान में मुसलमान पठानों को भरती किया है।

आज यह डाँकू दल अहरौरा के प्रसिद्ध धनी मटरसाहु के घर डाँका डालने जा रहा है। इसकी सूचना आठ दिन पहिले ही मटरसाहु को मिल चुकी है और उनसे कहा गया है—कि; या तो दस हजार रुपये भेज दो नहीं तो अमुक दिन लूटे जावोगे।

खुदखुदाखाँ रुपये न पाने के कारण मटरसाहु पर बे तरह बिगड़ा हुआ है और वह आज उन्हें मिट्टी में मिला कर छोड़ने की कसम भी खा चुका है।

उधर मटरसाहु भी निश्चिंत नहीं हैं। उन्हों ने चुनार और काशी के महाराजाओं की एक जबर्दस्त सैना अपनी रक्षा को माँगा है। दोनों राज्यों की एक जबर्दस्त सैना ने आकर पड़ाव डाल दिया है।

रात के दो बजे खुदखुदाखाँ का दल अहरौरा पहुँचा और उसने मटरसाहु के घर पर छापा मारा।

चुनार और काशी राज्यों की सम्मिलत सैना बैठी रही। ज्योंहीं डाकू दल मंटर के घर में घुसा त्योंहीं सैना ने उन्हें घेर कर उनपर वार करना शुरू किया।

बड़ी घमासान लड़ाई हुई। तलवारों और बंदूकों की मार से डाकू दल धराशायी हुआ। खुदखुदाखाँ मारा गया और उसके साथियों में कुछ तो कट मरे और कुछ गिरफ्तार हुए।

खुदखुदाखाँ ने उन दोनों स्त्रियों को (जानकी और मानकी को) छापा मारने के पहिले अहरौरा के सिवान में एक

घनी झाड़ी में बैठा आया था। और उनसे कह आया था कि तुम दोनों यहीं बैठी रहो हम अभी आते हैं तो चलते हैं। उनसे यह नहीं कहा कि हम डाँका डालने जाते हैं। परन्तु चालाक जानकी उनके भावों से यह जान गई कि ये मुसलमान बड़े भयानक डाँकू हैं और कहीं डाँका डालने को निकले हैं।

इन दोनों स्त्रियों ने सलाह किया कि डाँकू तो अपने शिकार में गए अब हम भी अपना रास्ता लें। क्योंकि ऐसा मौका फिर हाथ न आयेगा। यह विचार कर दोनों स्त्रियाँ नारायण पूर की ओर भागीं। सवेरा होते २ वे गंगा पार कर काशी में आईं। अब उनके जी में जी आया और वे बोलीः-इस समय हम पर बड़ी बुरी ग्रहदशा थी जिसके कोप के कारण इतनी मुसीबत उठानी पड़ी। जो बात जिन्दगी में न हुई सो आज हो गई लाज तो गई ही थो जात भी जाते २ बची। भगवान ने बड़ी कृपा की जो जान सौर जात दोनों से बच गईं।

मानकी ने कहा चलो बहिन! जौनपूर को चलें। भाड़ में पड़े मिर्जापूर। यहां हम लोगों की कद्र करने वाला ही कोई नहीं। कुँअर कर्मसिंह सिलबिल्ला ऐयाश है। ऐयाशी की उसमें तमीज़ नहीं। ऐसे नादान् के साथ रहने में अपनी कोई भलाई नहीं।

जानकी ने कहा सो तो ठीक है परन्तु अब तो "तेरी माँने खसम किया; बुरा किया, करके फिर छोड़ दिया और बुरा किया" वाली कहावत है। फिर हमारी कम बेइज्जती नहीं हुई। धूर्तताई में चाहे जैसा कड़ा दंड दे दिया जाय और चाहे जैसी कड़ी से कड़ी साँसत कर ली जाय पर नंगा करना चतर दागना, बाल काट लेना इत्यादि निर्लज्ज दंड कोई नहीं देता। वह धूर्त नहीं कोई पापी है जिसने हमारे साथ ऐसा बर्ताव किया। अब तो मैं उससे इसका बदला लिये बिना कहीं जाने की नहीं।

चाहे जैसे हो बदला जरूर लूंगी। चलो एक बार और चलें इसके बाद फिर जौनपूर को लौट चलेंगे।

यह कह दोनों मिर्जापूर की सड़क पकड़ और कछवा मझवा और गंगापूर से होती हुई गंगा को पार कर मिर्जापूर पहुँच गईं।

—:***:—

छठवाँ परिच्छेद।

—:***:—

शिवपूर के पहाड़ी बँगले पर कंतित के धूर्त जमा हैं। कुंअर कर्मसिंह भी सटक लगाए एक गलीचे पर बैठे कुछ सोच रहे हैं। बहस इस बात की होरही है कि आगे क्या किया जाय।

कुँअर कर्मसिंह—राज, धन और प्यारा प्राण भी शशि के लिये नेवछावर कर देंगे पर जीते जी उसे चुनार के क़िले में पाँव न धरने देंगें। अब तो यही प्रतिज्ञा है:—

धिक्कार है उस को समर में प्राणले और दे नहीं।
दो में बस अब एक हो या हम नहीं या वे नहीं॥

जो हो, इसका अब निपटारा ही हो जाना चाहिये कि शशि किसकी है और वह किस के लिये जन्म धारण की है। इसका निपटारा भी धूर्तता से होगा नहीं, होगा तो तलवार ही से। अतएव अब तलवार ही को म्यान के बाहर करें। क्षत्रियों का विवाह भाई चारे से न हुआ और न होनेका। इनका विवाह तलवारों हीं से होता चला आया है अब भी उसी से होगा।

स्त्रियां अपने मन से कभी राजी नहीं होतीं। वे भी देखती हैं क्या भलीभाँति जानती हैं कि "जिसकी लाठी उसकी भैंस!"

भोजदत्त०—यह हम कभी मानने के नहीं कि तलवार के

बल पर स्त्रियां वशीभूत होती हैं। यदि ऐसा होता तो श्री सीताजी रावण की तलवार के सामने सिर झुका दिये होतीं। स्त्रियों को प्रेम वश में करता है वह प्रेम गुण, बल, और पराक्रम को देखकर उपजता है।

कुँ० कर्म०—तो क्या मुझ में गुण, बल, वैभव, पराक्रम, आदि का अभाव है? फिर मुझमें शशि का प्रेम क्यों नहीं। मेरी जाति और पांति चुनारवालों से ऊँची, मेरा राज्य चुनारवालों से दूना, मेरा रूप रंग अवस्थादि भी शमशेर से कम नहीं फिर वह (शशि) मुझसे प्रीति क्यों नहीं करती?

सीता०—जो जिस वस्तु के लिये अधिक लालायित रहता है वह वस्तु उसे प्राप्त नहीं होती यह भी एक ईश्वरीय नियम है:—

"अनमाँगे मोती मिलै माँगे मिलै न भीख।"

शंकर०—प्रेम; बल से नहीं मिलता यह तो स्वयं प्राप्त होता है। फिर प्रेम दो प्रकारका होता है एक सच्चा एक झूठा। सच्चा प्रेम स्वाभाविक होता है और वह अपने आप उपजता है और सदा एक रस अटूट रहता है। झूठा या बनावटी प्रेम किसी स्वार्थ पर टिका रहता है। जहाँ स्वार्थ सिद्ध हुआ तहां वह गिरा। झूठा प्रेम तलवार से वश किया जासकता है परन्तु वह क्षणिक होने के कारण उससे कोई लाभ की सम्भावना नहीं। अस्तु तलवार के बल पर सच्चे प्रेम का जीतना कठिन ही नहीं वरन असम्भव है।

कुँ० कर्म०—आप लोगों के ग्यान-भंडार से तो मालूम होता है कि तलवार के जोर पर यदि शशि छीन ली जाय तो उसका सच्चा प्रेम मुझमें न होगा। क्यों यही न?

भोज०—जी हां।

कुँ० कर्म०—अलाउद्दीन ने कमला को प्रेम के बल से जीता या तलवार के बल से?



सीता०—कमला सरीखी सैकड़ों स्त्रियां भारत में हो गईं और अब भी हैं।

कमला स्वभाव ही से चंचल थी। उसकी चंचलता का सुबूत उसी समय मिल गया जब उसने अपनी बेटी देवल देवी को अलाउद्दीन से यह कर कर पकड़ मँगवाया कि "वह! मुझसे भी कहीं सुन्दरी है।" !

ऐसी बहुत कम स्त्रियां होंगी जो स्वयं पाप पंक (गुनाह के कीचड़) में गिरकर अपनी सन्तान (औलाद) को भी उसमें खीचेंगी। इसी एक बात से कमला के मनकी वृत्ति जानी जा सकती है। उसी तलवार के बलपर अलाउद्दीन ने पद्मिनी को क्यों नहीं वश में कर लिया? वह तो कमला से भी कहीं सुंदरी थी और उसके पाने को वह लालायित भी बहुत रहा!

भोजदत्त०—प्रेम प्रेम ही से जीता जाता है, तलवार से नहीं।

कुँ० कर्म०—और जो कहीं शशि भी कमला निकल गई?

भोज०—तब तो तलवार की विजय मानी ही जायगी।

कुँ० कर्म०—बस तो एक बार आजमायश करो। क्योंकि प्रेम से उसे जीतना अब कठिन है। प्रेम परीक्षा तो हो चुकी कि वह और उसके कुटुम्बी मुझे नहीं चाहते। उनका प्रेम चुनार वालों ही की ओर है। फिर भी एक बार तलवार पर धार धर कर देखें तो कि वह कैसा काट करती है।

इतने ही में वहाँ कराहते हुये यूसुफ और करीम भी पहुँचे। कुँअर के पूछने पर सारा किस्सा कह गये। जानकी और मानकी को कहा कि उन्हें कोई जानवर उठा ले गया।

सीताराम ने उनका चूतर देखा जिसमें प्रेतनाथ का नाम था। प्रेतनाथ का नाम सुनते ही यूसुफ मियाँ ने कसम खायी कि प्रेतनाथ की नाक काटूं तब तो मेरा नाम यूसुफ! सब लोग

खखाकर हँस पड़े। इसी समय जानकी और मानकी दोनों वहिनें भी पहुँचीं। कुँअर ने यूसूफ से कहा क्यों म्याँ! तुम तो कहते थे दोनों वहिनों को जानवर उठा ले गया!

जानकी०—हाँ, साहेब! जानवर ही उठा ले गया था किस्मत से बच कर चली आई हूँ। इसके उपरान्त उसने अपना क़िस्सा कह सुनाया और यह कहा जो जीती रहूँगी तो प्रेत-नाथ निगोड़े का मांस कच्चा खा कर तब अराम लूँगी। उस बेईमान बदजात ने बड़ा बुरा बर्ताव किया जिससे मेरी इज़्ज़त हुरमत सब खाक में मिल गई!

कुँअर कर्म०—गरज कि झगड़ा फिर मोल ले लिया गया।

सीता०—इससे भी बढ़ कर अब झगड़े की सम्भावना है। अब तो और भी आग भमक उठेगी। यह इन लोगों से बड़ी नादानी हुई कि जो चुनार की कुमारी पर हाथ बढ़ाया अब वे भी रनिवास पर छापा मारें तो ये क्या करेंगे? इतने हीं में किसी के रोने की आवाज कान में आई। कुँ० कर्मसिंह ने कहा—"सीताराम! देखो तो कौन रो रहा है?"

सीताराम ने बँगले के बाहर निकल कर सुना तो वह आवाज़ दक्खिन दिशा की ओर दूर से आती मालूम हुई। उसने कहा—कुँअर साहेब! वह आवाज यहाँसे कोसों दूर है। बयार दक्खिनी है इसीसे यहाँ तक सुनाई पड़ रही है।

कुँअर कर्मसिंह भी बँगले के बाहर निकल आये और अपना कान उसी आवाज़ की ओर लगाकर बोलेः—भाई यह आवाज यहाँ से कोस डेढ़ कोस की दूरी से आ रही है और पुरुष की नहीं किसी स्त्री की मालूम पड़ती है।

भोजदत्त०—कान लगा कर—हाँ, यहाँ से कोश दो कोश से अधिक दूरी पर नहीं है। और यह आप बहुत ठीक कहते

हैं कि किसी स्त्री की है। (हँस कर) अब तो आप स्त्रियों की आवाज़ पहिचानने लग गए !

सीताराम०-(दक्खिन की ओर दाहिना कान फाड़कर) स्त्री पुरुष का निदान तो कठिन है परन्तु हाँ आवाज़ आ रही है और वह धीरे २ बढ़ती जा रही है।

संतसिंह०—गरदन टेढ़ी कर और कनपटी घुमा कर-अरे यारो ! यह आवाज़ स्त्री की है और दूर नहीं यहीं मोतिया ताल या सेंहुड़ा खोह के नीचे ही है। आओ चलें अभी तो मालूम हो जाता है।

कुँअर कर्मसिंह ने कहा—बेहतर होगा कि हम लोग घोड़े पर चलें क्या जाने दौड़ने धूपने का काम पड़े।

यूसुफ और करीम मियाँ तो चूतर खुजाने लगे। क्योंकि उनके चूतरों में आबले पड़े थे। वे वहीं छोड़ दिये गए। जानकी और मानकी भी सफर से अभी आयी थीं। थकी मांदी होने के कारण वे भी कंतितको चली-गईं। कुँअर कर्मसिंह, सीताराम शंकर, भोजदत्त, रामनाथ और संतसिंह अपनी २ झोली और हर्बा हथियार उठाकर घोड़े पर सवार हुए और घोड़ा उसी ओर को फेंके जिधर से वह आवाज़ आ रही थी। गेरुहवा (गेरुहा) ताल पर पहुँच कर एकबार फिर उस आवाज़ की दिशा मालूम की। वहाँ सुनने पर वह आवाज़ कुछ तेज़ और दक्खिन पश्चिम के कोने से आती सुनाई पड़ी।

आवाज़ जिधर से आ रही थी उसी ओर ये लोग घोड़े फेंकते चले गए। मोतिया तालाब पर पहुँचते ही वह आवाज़ बिलकुल करीब दक्खिन की ओर सुन पड़ी। घोड़ों की बाग दक्खिन की ओर मोड़ कर ये लोग सेंहुड़ा खोह से नीचे एक छोटे से मैदान में आये। अब वह आवाज़ साफ और पास ही सुन पड़ी। इधर उधर देखने पर एक कँटीली झाड़ी की आड़

में एक अट्ठारह बीस साल की स्त्री बैठी दोनों हाथों से सिर पीट २ कर रो रही थी। स्त्री रंग की गोरी और उसका मुहँ मोती के समान चमकदार था। यद्यपि उसके शरीर पर कोई गहना न था तथापि वह सुंदरता में किसी गहने वालियों से कम न थी। गहने वाली स्त्री तो गहने के साज बाज से सुंदर लगती है परन्तु जिसे परमात्मा ने स्वाभाविक (कुदरती) सुन्दरता। (खूबसूरती) दी है वह बिना गहने के ही चन्द्रमाँ की भाँति चमचमाती नजर आती है।

सुन्दरता जेहि ईशते स्वाभाविक मिलिजाय।
ताँहिं आभरन का सुहै लखि शृङ्गार लजाय॥

यद्यपि अभी दिन एक पहर बाकी है सूरज पश्चिम की ओर तेजी के साथ भागा जा रहा है उसकी सुनहली किरणें उस सुंदरी के मुखपर पड़कर उसके मुख की सुन्दरता को चौगुनी बढ़ा रही है। इसी समय हमारे ऊपर कहे छवों सवार हाथ में बर्छी कमर में कटार काठी में बन्दूक लिए उस स्त्री के पास पहुँचे।

कु० कर्मसिंह तो उसे देखकर अवाक् रह गये उनकी बोलती ही बन्द हो गई। सीताराम ने पूछा—सुन्दरी! अपना हाल कहो क्यों तुम जारबेजार सिर धुन २ रो रही हो। अपने इस दुख का कारण कहो?

स्त्रीने आँख उठा कर इन सावरों को देखा और देखते ही बाप २ चिल्लाती सीधी दक्खिन को भागी। ये लोग भी अपना घोड़ा उसके पीछे लगाये और यह कहते हुये दौड़े:—"सुन तोलो, अपना हाल तो कहो, क्यों भागती हो, हम डाँकू नहीं हैं, हम तुम्हारा रोना सुनकर तुम्हें मदद देने आए हैं। ठहरो, सुनों अपना, दुख सुनाओ, भागो नहीं इत्यादि २।"

इस प्रकार वह स्त्री भागती हुई वहाँ आई जहाँ भैंसोर

की पहाड़ी है। अर्थात् पाँच छ कोश निकल आई। और जब उसने देखा कि ये लोग बराबर पीछा किये चले आ रहे हैं तो वह उस पहाड़ी के नीचे एक घने पेड़ की छाया में बैठ गई और बोलीः—अरे बाबा! अबतो मेरा पिंड छोड़ दो? अब मेरे पास क्या धरा है, जो पीछा नहीं छोड़ते हो। जो कुछ रहा उसे ले चुके। पति देवर आदि को भी मार डाला या क्या किया भगवान जाने अब मैं नंगी और असहाय सामने हूँ लो (गरदन झुका कर) गला काट डालो छुट्टी हो। सिवा इसके और क्या मुझसे आशा रखते हो।

सीताराम ने उस स्त्री की बातें सुन मन में बिचार किया कि यह अबला किसी हमसूरत सवारों द्वारा लूटी और सताई गई है। इसके पति और कुटुम्बियों को वे धर ले गये या मार डाले हैं। इसी कारण यह हम लोगों की सूरत देखते ही प्राण (जान) लेकर भागी। इस विचार से कि फिर वही डाँकू आ गए और अबकी वे मुझे मारने आए हैं। तभी तो वह हम पर इतना झल्ला और दुखिया रही है?

उसने यह भी अनुमान किया कि—जिनने इसे लूटा है वे डाँकू या कोल थे। उनका इरादा इसे लूटना ही था। लूटते समय पति और देवर ने कुछ कहा सुनीं की होगी इसीलिये या तो वे मारे गए या धरे गए। यदि वे डाँकू न होते तो ऐसी स्त्री रत्न को त्याग क्यों देते? वे धन और प्राण के लोभी थे स्त्री के नहीं। प्रकट में वह उससे बोला,—सुन्दरी। हम वे नहीं हैं जिनका तुम अनुमान कर रही हो। हम तो तुम्हारे सच्चे मददगार हैं। हमसे अपने हृदय का दुख कहो हम तुम्हारे दुख का उपाय करेंगे। हम तो तुम्हारा रोना सुन कर भागे आए हैं।

स्त्री ने एक ठंढी और लम्बी साँस खींच कर बड़ी २ आँखों से आँसुओं की बूंदें टपकाते हुए कहाः—जिन पापियों ने मेरा

सर्वनाश किया वे अधम तुम्हारी ही सूरत शक्ल के थे। मैं क्योंकर विश्वास करूं कि तुम वे नहीं और ही हो?

सीता०-सुभगे! यह मैंने माना कि जिन पापियोंने तुम जैसी सती को सताया और तुम्हारे पति को घर ले गये वे हमारे ही समान हथियार बंद सवार रहे इसी से तुम्हें भ्रम हो रहा है कि वे लोग हमीं हैं। परंतु इसका क्या सुबूत है कि वे और हम एक ही सूरत मूरत के हैं?

स्त्री०—हाय मार कर—ठीक है ऐसाही होगा। लेकिन यहाँ तोः—

"दूध का जला मठा फूँक २ कर पीता है"

मुझे तो अब सवारों की सूरत देखते ही उन बदमाशों का खयाल आ जाता है जिन्हों ने मेरा धन मेरा प्राण मेरे प्यारे पति और देवर को लूट कर मुझे अनाथ कर दिया।

सीता०—वे कितने थे और किधर से आए थे।

स्त्री०—यह मैं कुछ नहीं जानती। फिर भी वे बीस पचीस से कम न रहे होंगे। वे अपने मुँह को काले परदों से छिपाये हुये थे इसलिये मैं यह भी नहीं कह सकती कि वे काले थे या गोरे। हिन्दू थे या मुसल्मान।

सीता०—तुम इस वीरान में क्या करने आईं?

स्त्री०—हँह, मेरी कमबख्ती यहाँ ले आई!

सीता०—फिर भी तो?

स्त्री०—मैं अपने मैके (नैहर) से अपने पति और देवर के साथ अपनी ससुराल मनोहरगढ़ को जा रही थी। रास्ते में मोतियाताल पर भोजन बना खाकर विचार किया कि भैंसोर पहाड़ी की ओर पगदंडी की राह चलकर वहाँ से मनोहर गढ़ को चलें। ज्योंही हम सेंहुड़ा खोंह के नीचे उतर कर पगदंडी पर पाँव धरी हैं त्योंही न जाने किधर से काले २

घोड़ों पर काले २ कपड़ों से ढँके, मुँह पर काला नकाब डाले बीसों सवार सिर पर आ धमके! उन सबों ने मेरे पति और देवर की मुश्कें बाँध उन्हे अलग बैठा दिया और मुझसे कहा कि अपने सारे जेवर उतार कर धर दो। मैंने डर के मारे सारे जेवर उतार दिये। जो कुछ धन रत्न वस्त्र आदि था वह मेरी पिटारी से निकाल और जो कुछ जेवर मैंने अपने शरीर के दिये उसे सम्हाल कर वे पापी मेरे पति और देवर को बाँधकर घोड़े पर लाद लिये और इसी भैंसोर की पहाड़ी की ओर घोड़ा फेंके चले गए (खूब दाढ़ें मारकर) हाय! अब मैं क्या करूं और कैसे अपने पति को पाऊँ।

सीता०—सुन्दरी! धीरज धरो। भगवान चाहेगा तो तुम्हारा पति मय धन रत्न के तुम्हें मिलेगा। अच्छा, उन्हें गए कितनी देर हुई होगी?

स्त्री०—दोपहर को उन्होंने मुझे लूटा है। पहर भर हुआ होगा।

सीता०—अच्छा, तुम यहीं बैठी रहो क्योंकि यह स्थान निरापद है सूरज डूबते २ हम लौट आते हैं। (साथियों से) दो दो जन एक संग इन दोनों रास्तों में दौड़ो। आगे चलकर यह राह मिल गई है। अस्तु; जहाँ यह मिली है वहीं हम लोग मिलें। दोनों दल में से जो दल पहिले दोराहे पर पहुँचे वह दूसरे दल की राह देखता वहीं ठहरा रहे और जब तक दोनों दल वहाँ मिल न लें वें तब तक कोई वहाँ से हटे नहीं।

कामी का मन भी बड़ा कुटिल और पापी होता है। चाहे वह कैसी ही स्त्री क्यों न हो (अपनी माता, भगिनी तथा पुत्री ही क्यों न हो) उसकी अर्थात् कामी पुरुष की दृष्टि जब पड़ेगी तब बुरी ही। क्योंकि उसका मन तो आठों पहर पापवासना में लिप्त रहता है। इन्द्रियाँ विषय भोग

की ओर ऐसी झुकी रहती हैं जैसे मांस पर चील्ह ! ऐसे पापियों का तन मन प्राण आठों पहर स्त्री ही में लगा रहता है। फिर ऐसों की आँखें कब निष्पाप रहने की ? सबसे पहिले आँखें पाप करतीं हैं। आँखों के इशारे पर मन चलायमान होता है। मन के चलायमान होते ही इन्द्रियां विचलित हो उठती हैं। इन्द्रियों में विकलता होते ही चित्त चंचल हो जाता है। चित्त की चंचलता में बुराई भलाई सोचने का समय नहीं मिलता और फिर वह कामी अपना पराया कुछ भी नहीं देखता। फिर तो वह अधम न मरने को डरता है, न मारने को लोकलाज, कुलकानि, मान मर्यादादि सबको तिलांजलि देकर निर्लज्ज निडर और निन्द्य हो जाता है।

सिर पर जूते पड़ रहे हैं, मार खाते २ धोती में हग मारे हैं, बाँधे गए हैं, ऐसी कोई दुर्गति नहीं जो न सहे हों, नाक काट ली गई, हाथ पैर तोड़ डाले गए, छुरी छुरा भोंक दिये गये लेकिन उन पापियों की लत इन कठोरतर साँसतों से भी न गई और न जाने की है। इसे कहते हैं ऐयाशी !!!

दाने २ को तरस रहे हैं, चूतर पर चिथरा लपेटे हैं, बाल बच्चे घर में फाँका कर रहे हैं, परन्तु वे विषयों के नशे में चूर गली २ राह बाट घाट में फिरने से बाज नहीं आते।

हम अपने प्रिय पाठकों से ही पूछते हैं कि जिन पापियों की आँखें पराई स्त्री पर पड़ते ही मन में पाप पैदा कर देती हैं उनकी वह आँखें यदि अपनी मां बेटी बहू और बहिनों पर पड़ती होंगी (और पड़ती ही हैं) तो क्या गजब ढाती होंगी ? मल को जल में घोलने पर जो दुर्गन्धि होगी वही दूध में घोलने पर भी होगी। क्योंकि मल तो मल ही है। उसमें सुगन्ध कहाँ। इसी प्रकार मनुष्य जो कुछ पाप पुण्य करता है वह पहिले आँखों से ही करता है यह हम ऊपर कह आए हैं। आँखों

से देखकर ही मन से इच्छा करता है यह भी हम ऊपर समझा आए हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि पापवासना उत्पन्न करने वाली ये दोनों आँखें ही हैं। यही पहिले भोग को देखकर लालायित होती हैं और यही मन को भोगने के लिये उभाड़ती हैं। पुराने लोग शायद इसी भय से कह गये हैं कि "स्त्रियों को आँखों से भी देखना पाप है।"

कामियों की आँखें कामवासनापूर्ण रहती हैं। ऐसी आँखें पर स्त्रियों पर पड़ते ही उनमें पापभावना उत्पन्न करती हैं। ऐसी दूषित आँखें (जो स्वभाव ही से दूषित हैं) दोष रहित कभी रह नहीं सकतीं, जो दूसरों के लिये दूषित हैं वह अपने लिये भी वैसी ही हैं। इसी से शास्त्रकार कह गए हैं कि:—

"पुरुष एकांत में अपनी माता, भगिनी, पुत्री आदि के भी निकट न रहे!"

परम कामी कुँअर कर्मसिंह के लिये ही इतना प्रसंगविरुद्ध कामियों की चर्चा हमें करनी पड़ी है अस्तु, पाठक हमें क्षमा करेंगे।

सुन्दर युवा स्त्री को अकेली निस्सहाय देख परम कामी कुँअर कर्मसिंह का मन विचलित होगया। वे मंजरी की सुधि भूल गये। सुन्दरी भी इस समय याद न पड़ी। यदि इन दोनों में से एक का भी उन्हें स्मरण हो आता तो शायद वे इस अनजान स्त्री पर सहसा लट्टू न होते। परन्तु विधि की वामता के कारण वे मंजरी की याद एक दम भूल गए। वे बोलेः—भाई! मैं तो थक गया हूँ अब मुझसे दौड़ धूप न हो सकेगी। मैं यहीं इस स्त्री की निगरानी करता हूँ तुम लोग जाओ घूम फिर कर चले आओ।

"खग जाने खग ही कर भाषा" इस कहावत के अनुसार कुँअर की इच्छा सीताराम ही भली भाँति जानता था। जिस

मतलब से कुँअर साहेब वहाँ रह कर निगरानी किया चाहते थे उसे वह ताड़ गया। उसने संतसिंह से कहा—देखो! कुँअर साहेब इस स्त्री की निगरानी करें तुम कुँअर साहेब की करो। इसके अतिरिक्त कुछ संतसिंह की कान में भी कहा—जिसे संतसिंह ने सिर हिला कर कहा "हाँ हाँ जरूर २।"

कुँअर कर्म को सीताराम की यह हरकत—एक स्त्री के सामने—अच्छी न लगी। फिर भी वे कुछ बोले नहीं चुप रहे। कुँअर को सावधान कर—सीताराम, भोजदत्त दायीं सड़क से शंकर और रामनाथ बायीं सड़क से सीधे दक्खिन को घोड़ा फेंकते चले गए।

सातवाँ परिच्छेद।

सीताराम आदि के चले जाने पर कुँअर कर्मसिंह मनमें सोचने लगे—यार! यह स्त्री बेजोड़ सुंदरी है। मैं कैसा भाग्यमान हूँ कि मेरी नज़रों में आज तक जितनी स्त्रियाँ पड़ीं सब सुन्दर! बदसूरत तो कोई नज़र में ही न आई। यह और कुछ नहीं मेरी आँखों का प्रभाव है, इन आँखों में जो पड़ीं वह सुंदर हुईं। अर्थात् मेरी आँखों में वह तासीर है कि:—

अगर तासीर आँखों की ज़रा उनको यक़ीं हो जाय।
ज़ुल्फ़ की ज़न भी या अल्लाह इन आँखों हसीं हो जाय॥

(लाल)

वाहरे हम और हमारी आँखें! देखो तो यह भी मिली तो बेजोड़ मिली! मगर यार, इस कम्बख्त संतसिंह ने इस समय बड़ा मज़ा किरकिरा किया। इससे जो दो दो बातें करना चाहते थे सो इसके मारे वह भी न कर पाएँगे। ——

सामने बातें करना भी बेवकूफी है। क्योंकि यह है मशखरा (विदूषक) उन सबों से एक का चार लगायेगा। यदि इस मौके पर उस (स्त्री) से दो दो बातें निराले में नहीं कर लेते तो भगवान जाने फिर ऐसा मौका कब मिलेगा और मिलेगा कि नहीं? अच्छा, इसको किसी काम के लिये टरका कर तब इस (स्त्री) से दो दो बातें करें और इसके मन की भी मालूम करें! प्रकट में संतसिंह से कहाः—अरे भाई संत! मुझे तो भूख मालूम हो रही है?

संत०—हँसकर, हरे २ रूख देखकर भूख को ठंढा करो।

कुँ० कर्म—नहीं भाई हँसी न करो। सच कहता हूँ भूख बड़ी जोरों की लग रही है।

संत०—(चिढ़कर) भूख लगी है तो पत्थर रोड़े तो पड़े हैं इन्हें खाते क्यों नहीं? आप तो ऐसी मजेदार बातें करते हैं कि न जमीन की न आस्मान की! भला, इस वियाबान सूनसान जंगल में इस समय मैं कहाँ से खाना लाऊँ और आपको खिलाऊँ।

कुँ०—कर्म०—(क्रोध से) हौ तो तुम बड़े उजड्ड, अरे भाई उठोगे जाओगे ढूँढ़ोगे तब कुछ मिलेगा कि बैठे ही बैठे बात बना दिये बस हो गया। देखो फल फूल कंद मूल जो कुछ भी मिले ले आओ तनक खाकर पानी पीयें। तबीयत हरी हो। वे न जाने कब आयेंगे तब तक क्या हम भूखों मरें?

संतसिंह झल्ला कर उठ खड़ा हुआ और बोलाः—"लो जाते हैं" यह कह कर वह पहाड़ की तलेटी में कंद मूल फल ढूँढ़ने चला गया। इधर मैदान सूना पाकर कर्मसिंह ने उस स्त्री से कहाः—सुन्दरी तुम दुखित क्यों हो रही हो? हमारे आदमी तुम्हारे आदमी को खोजने गए हैं। वे उन्हें ढूँढ़ कर लावेंगे या लाते ही होंगे। फिर यदि तुम्हारा आदमी न मिला

तो हमतो हैं न। हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। चिन्ता किस बात की है?

स्त्री०—(रोकर) चिंता पति की है और किसकी चिंता है?

कुँ०—ठीक है? स्त्री तो पति के साथ है। जहाँ पति वहाँ स्त्री। अच्छा तो पति तुम्हारा तुम्हें मिलेगा। यदि उन दुष्टों ने उसे मार न डाला और वह जीवित होगा तो जरूर मिलेगा।

स्त्री०—ठंढी साँसले कर – और यदि वह न मिला?

कुँ०—मिलेगा नहीं तो जायगा कहाँ? सारा विंध्य पर्वत तो हमारे कब्जे में है।

स्त्री०—आप कौन हैं?

कुँ०—(मन में खुश होकर) मैं? कंतित का युवराज हूँ, मेरा नाम कर्मसिह है।

स्त्री०—कंतित कहाँ है?

कुँ०—कंतित एक बड़ा जबर्दस्त राज्य है जिसके भीतर यह सारा विंध्यपर्वत है। पूरब में बनारस, दक्खिन में रीवाँ पच्छिम में प्रयाग, उत्तर में जौनपूर यही इस विशाल राज्य की सीमा है। इसकी राजधानी बिन्ध्याचल देवी का धाम है। इतने बड़े विशाल राज्य का मैं हीं अकेला मालिक हूँ।

स्त्री०—ये आपके साथी सवार आपके कौन हैं?

कुँ० कर्म०—वे हमारे संगी साथी (यार दोस्त) हैं। कोई मेरे दीवान का लड़का है और कोई मुसाहिब का। हाँ यह तो कहो कि तुम्हारा नाम क्या है?

स्त्री०—मेरा नाम सुशीला है। मैं ठाकुर सुमतिसिंह की बेटी और सुजनसिंह की बहिन हूँ। मेरा विवाह मनोहरगढ के सरदार हरिजनसिंह के पुत्र दलभंजनसिंह के साथ हुआ है जिन्हें वे डाँकू पकड़ ले गए हैं।

कुँ०—विवाह हुए कितना दिन हुआ?

स्त्री०—अभी गत आषाढ़ सुदी तीज को तो हुआ है। आज ही मेरा पति गवन लिये जा रहा था जिसे डाँकू पकड़ लेगये।

कुँ०—ऐसे बड़े सरदार की पतोहू पैदल क्योंकर चलीं ?

स्त्री०—डोला डोली दास दासी घोड़ी साईस आदि सब साथ में थे। डाकू सबको घर पकड़ लूट ले गए। केवल न जाने वे क्यों मुझे ही–छोड़ गये।

कुँ०—तो अब आपका क्या इरादा है ?

स्त्री०—मेरा पति मुझे मिले।

कुँ०—मन में (भगवान करे वह जीता भी होतो मर जाये) प्रकट–पति तो मिलेहीगा वह जायगा कहाँ। और यदि वह न भी मिला तो तुम्हे कोई चिंता नहीं। दलभंजनसिंह मेरा मित्र है। उस मित्र की वस्तु का मित्र होकर मैं रक्षा करूँगा। जब वह सही सलामत (भगवान ऐसा न करे) लौटेगा तब उसकी वस्तु उसे सौंप देंगे "धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी। आपद काल परखिये चारी"। मित्र गाढ़े ही में परखे जाते हैं। इस समय में अपने लँगोटीये मित्र के गाढ़े में अपनी लड़कपन की मित्रता निभाउँगा।

स्त्री०—साँझ होगई वे लोग अभी तक लौटकर नहीं आए ?

कुँ० कर्म०—अभी तो वह मशखरा–जो कंद मूल लेने गया सो गया—लौटा नहीं। कहीं उसे किसी भेड़िये ने तो नहीं धर लिया ? हाँ तो अब आप चिंता दूर कर मुझसे बातें करें। यह तो अब तुम्हे निश्चय हो गया कि मैं तुम्हारे प्यारे पति का परम मित्र (या परम शत्रु ?) तुम्हारा रक्षक (या भक्षक ?) और तुम्हारे पति के गैर हाजिरी में तुम्हारे भरण पोषण का हकदार (या पति की अनुपस्थिति में भावी पति ?) हूँ अब तुम्हें शोक त्याग कर मेरी छाया में निर्भय रहना चाहिए।

स्त्री०—मैं आपकी इस कृपा का बहुत ही अनुग्रहीत (मश-

कूर) हूँ। मुझे अब आप ही का आशा भरोसा है। फिर भी मैं डरती हूँ कि कहीं होम करते हाथ न जले !!

कुँ० कर्म०—मैं नहीं समझा।

स्त्री०—जमाना बड़ा खोटा है। इस खोटे जमाने में स्त्री को अपनी इज्जत बचाने में पद २ पर आफत है। स्त्री चाहे कितनी ही पारसा क्यों न हो यदि वह सच्चे दिल से भाई बन्धु के समान ही पर-पुरुष से बात चीत करे वा मिले तो पापी दुनियां इसमें भी पाप की बू पाने लगती है। यदि उस निस्स-हाय अबला की कोई दयालु धर्मात्मा परोपकारी कुछ सहायता करे तो लोग कहने लगते हैं कि "दाल में कुछ काला है?" अर्थात् दोनों में सबंध है !! ऐसे खोटे जमाने में क्या कोई किसी की सहायता करे और क्या किसी से कुछ सहायता ले?

कुँ० कर्म०—सच्चाई शुरू में सन्देह से भरी ज़रूर होती है परन्तु अंत में सच्चाई सच्चाई ही साबित होती है। "सच्चे का बोल बाला झूँठे का मुँह काला"

स्त्री०—ठीक है लेकिन दुनियाँ तो अंडा उड़ा देती है। स्त्री चाहे जितनी सच्चाई और पारसाई से रहे वह दुनियाँ की आँखों में सच्ची पारसा न ठहरेगी। तिस में यदि पति रहित वा बेवा है और उसके सरपर कोई है नहीं तो फिर वह सीता के समान अग्नि परिक्षा दे कर भी अपने को पारसा नहीं साबित कर सकती। और तो क्या ऐसी निस्सहाय दशा में स्वयं कुटुम्बी ही उसकी सच्चाई और पारसाई में सन्देह करने लग जाते हैं। और ऐसे संदेहपूर्ण दशा में कहीं किसी सच्चे साधु, महात्मा, परोपकारी, धर्मात्मादि से मिलते जुलते बोलते बत-लाते या दुख सुख सुनाते देखी सुनी गई तो फिर उनका सन्देह सच्चाई में बदल जाता है। फिर तो ऐब लगाने में किसी प्रकार की हिचकिचाहट मनमें नहीं होती। जो आँखों से देखते हैं

उनकी अपेक्षा कानों से सुनने वाले बड़ा रौरा मचाते हैं और दुनियां को ऐसा दिखाते हैं मानों उनकी ही इसमें भारी हानि है। उन्हीं के मुख में सात खपड़ी का कालिख लगने वाला है या लग चुका!

स्त्री बिचारी का कहीं ठिकाना नहीं। उसके लिये यह कहावत ठीक ही चरितार्थ होती है कि:—

"कर तो डर, न कर तो भी डर"

मेरा यह कहना नहीं कि सारी औरतें पारसा होती हैं अथवा सभी मर्द धर्मात्मा होते हैं। बुरे भले सभी होते हैं लेकिन बुराई भलाई की छान बीन बिना किए ही लोग भले को बुरा और बुरे को भला कहने को तैयार हो जाते हैं। इन्हीं बातों से मैं डरती हूँ।

कुँ० कर्म०—हाँ तुम्हारा कहना बेजा नहीं है। क्योंकि देखते हैं कि बड़े २ लोग जो दिन भर में सैकड़ों पाप करते हैं—समाज में पाप करके भी-बड़े ही बने रहते हैं। सारा इलजाम छोटों के सिर है। वे करें तो भी बदनाम और न करें तो भी बदनाम। यही दशा स्त्रियों की है। फिर भी "सचाई को राहत है" यह कहावत झूठ नहीं है।

पाठक महोदय! इन्हें तो अपना २ मतलब गाँठने दीजिये और आइए देखें वे धूर्त कहां हैं जो स्त्री के पति को ढूँढ़ने निकले हैं।

ऊपर यह पढ़ चुके हैं कि सीताराम, भोजदत्त दाईं सड़क से और शंकर और रामनाथ बायीं सड़क से गए। दोनों दल एक दोराहे पर मिलने की बात भी तय कर गये। अब आगे का हाल सुनें।

ज्योंहीं ऊपर कहे दोनों दल दोराहे पर पहुँचे त्योंहीं एक शिकारी मुसहर हाथ में मांद खोदने का हथियार लिये उसी

दोराहे पर आया । इन लोगों को देखते ही उसने झुक कर सलाम किया ।

सीताराम ने दपट कर उससे पूछा, "क्यों बे ! तू किधर से आ रहा है ?"

मुस०—दाँत निकाल हाथ जोड़ कर—हें ! सरकार मैं सामने से आवत हौं ।

भोज०—अबे इधर तुझे कुछ सवार मिले हैं ?

मुस० घिघिया कर—हाँ सरकार ! वह सामने (ऊँगली से दिखाकर) गढ़ी में उतरे हैं ।

सीता०—अबे वे लोग गिनती में कितने हैं ?

मुस०—मैं तो सरकार चार देखेन हैं । एक और मरद भी है जेकर हाथ पैर कसा है ओहू वही माँ है ।

सीता०—चल वह गढ़ी बता तो ।

मुस०—चलौ सरकार ।

आगे २ मुसहर पीछे २ चारों धूर्त सवार दोराहे से दो कोस आगे निकल आये परन्तु उस गढ़ी पर न पहुँचे । सीताराम जब उस मुसहर से पूछते कि "अब कितनी दूर है रे" तभी वह ऊँगली दिखा कर कहता "हो लौकत हौ" "हो लौकत हौ" यही लौकत हो, ऊका सामने हौ, अब धाप भर और बा" यही कहता हुआ वह मुसहर उन्हें चार कोश ले आया ।

सीताराम ने दपट कर कहाः—अबे उल्लू ! यह मढ़ी है कि जादू घर ! हम जितना ही आगे बढ़े आ रहे हैं उतना ही वह पीछे हटी जा रही है । और तू–हो लौकत बा, हे लौकत बा, यही बकता है ?

भोजदत्त—उस ग़रीब पर व्यर्थ ही खफा होते हो । अरे भाई मैदान में खड़े होकर दूर की कोई वस्तु देखें तो उसकी दूरी अधिक होने पर भी कम मालूम होती है । पृथ्वी से सूर्य

१२ करोड़ मील की दूरीं पर है लेकिन जब हम उसे देखते हैं तो वह हमारे सिर पर मील दो मील से अधिक ऊँचा नहीं मालूम होता ! चन्द्रमा चौबीस लाख मील दूर है पर मालूम होता है कि हमारे घर के छत पर है !

अभी भी वह गढ़ी—जो पहिले छोटी और अब बहुत बड़ी दिखलाई पड़ रही है—यहाँ से दो कोस पर होगी।

सीता०—तब यह बेईमान क्यों कहता है कि "होका लौकत हो"

भोज०—ठीक तो कहता है। लौकत से मतलब दिखाई पड़ने का है सो वह दिखाई तो दोराहे से ही पड़ रही है। जब वह आँखों से दीख रही है तो उसका "वह लौकत बा" कहना बेजा नहीं है। चलो अब तो चलते ही हैं।

भोजदत्त के कथनानुसार दो कोस आने पर मढ़ी के पास पहुँचे। बाहर से यह मढ़ी नहीं वरन बड़ा भारी मठ मालूम हुआ। मठ की ऊँचाई पचास गज से कम न होगी। चारों ओर संगीन पत्थर की दीवार बीच में एक फौलादी फाटक देखकर शंकर ने कहा-यह मढ़ी है न मठ, यह तो गढ़ीं है। देखते नहीं हो कैसी संगीन बनी है जिसपर जर्मनी का वह गोला—जिसे उसने एन्टवर्प के किले पर मारा था—पिचक कर चूर हो जा सकता है! इसके भीतर चलो तो तनक समझ बूझकर चलो—

सीताराम ने कहा—बेहतर है कि पहले जासूसी कर ली जाय तब इसमें पैठा जाय।

भोज०—कहीं जासूसी ही करते कराते में न वे (डाँकू) निकल भागें? हाँ यह समझ लेना ज़रूरी है कि वे संख्या में (गिनती) कितने हैं। (मुसहर से) अरे तूने उन सबों को देखा है, वे कितने हैं?

मुस०—धीरे से-हाँ सरकार! चार हैं पाचवाँ एक कैदी है। सब यहीं माँ……

सीताराम ने कहा—शंकर! आगा पीछा न करो घुस चलो। चार न सही छ और छ न सही आठ चाहे जो हों क्या तुम्हें तलवार और अपनी कलाई पर भरोसा नहीं है? चलो बेकार देर हो रही है। वहाँ कुँअर को बैठा छोड़ आए हैं न जाने उन पर कैसी बीते।

रामनाथ०—उनकी चिंता न करें। संतसिंह साथ में है। यहाँ की चिन्ता ज़रूरी है। क्योंकि शाम होने चाहती है। जो करना कराना हो सो कर करा लें यह समय सोच विचार का नहीं है। कहीं ग़फ़लत में पाकर वे गढ़ी में से निकल कर हम पर ही हमला न कर बैठें।

भोज०—बस आगा पीछा छोड़ कर चलो। घोड़ों को इसी मुसहर को सौंपा।

सब अपने २ घोड़े से उतर पड़े। हरबा हथियार लेकर घोड़े मुसहर को सौंप कर उससे कहा—घोड़ों को लेकर यहां से दूर किसी पेड़ की छाया में छिपा कर रखो हमलोग अभी आते हैं।

यह कह सीताराम फाटक में घुसा। साथ ही शंकर, भोजदत्त और रामनाथ भी चले। सब अपनी २ तलवार म्यान से बाहर कर, बन्दूक को पीठ पर रखकर, एक हाथ में नंगी तलवार एक में भरा हुआ तमंचा लेकर उस सहन में पैठे। देखा तो बड़ा भारी आँगन है जिसके चारों ओर पक्की दालान है। आँगन घाँस और मूंजों से पटा है, परन्तु दालान साफ है। जैसा नाम सुनते थे कि मठ है सो ठीक निकला। मठ ही है भी। इस सहन और दालान को देखते हुए दक्खिन की दालान में आए। वहाँ एक दरवाजा देखकर उसमें पैठे। उधर देखा तो

वैसा ही सहन और दालान जैसा इधर था। इसमें भी कोई न मिला। तीसरे सहन में पहुँचे वहाँ भी वही सहन वही दालान!

तीसरे से निकल कर चौथे पाँचवें छठे में से होते हुए सातवें खंड में आए, देखा तो कहीं कोई डाँकू न डाँकू का चिन्ह! सातवें खंड के आगे फिर दरवाज़ा न मिला। मालूम हुआ कि यह मठ सात बड़े २ खंडों में विभक्त है। एक २ खंड में दो २ हजार साधुओं के रहने का स्थान है।

सीता०—मालूम होता है कि वे इसमें से निकल गए।

भोज०—निकल गए या आए ही नहीं इसे कौन कह सकता है?

शंकर०—चलो अब लौटो शाम हो गई।

राम०—आए तो ज़रूर होंगे क्योंकि मुसहर झूठ क्यों बोलेगा? इसमें आते उसने देखा होगा जाते नहीं।

शाम हो गई। चिड़ियों ने बसेरा लिया। चकई चकवा अलग हुए। उल्लू और चमगादुर चरने निकले। इसी समय चारों धूर्त मठ से बाहर निकलने को लौटे। छ खंड तक चले आए परन्तु सातवें खंड में आने पर देखा कि वह संगीन फाटक—जिसमें होकर भीतर पैठे थे—बन्द है!

"अँय! यह क्या?" कहकर सीताराम ने शंकर से पूछा।

शंकर०—कहीं यह शाम को बन्द न होता हो। क्योंकि शाम ही को बन्द हुआ है।

भोज०—सम्भव है। ऐसा ही हो। कोई नौकर होगा जो इसे खोलता मूंदता होगा। आओ इसके छत पर चढ़कर पुकारें।

सीता०—छतपर चढ़ने को सीढ़ी कहाँ है। फिर इसकी छत भी बीच में ऊँची दोनों किनारों पर नीची फूस के घर की सी बनी है। ढाल इतनी है कि उसपर पैर का जमना मुश्किल

है। चलो इस दालान में रात काटो सुबह देखें कि यह फाटक खुलता है या नहीं।

राम०—यहाँ न पानी है न दाना! खाँयें पीयेंगे क्या?

भोज०—छागल तो बगल में है न, उसका पानी पीयें।

राम०—और खायँ क्या?

भोज०—खाने पर लानत भेजो।

रात अँधेरी थी इस कारण थोड़ी ही देर में गहरा अँधेरा हो गया। चारो जन उसी फाटक की दालान में भूखे प्यासे बिना अन्न जल के सो रहे।

अब इन्हें तो सोनें दें और आयें वहाँ जहाँ कुँअर साहेब कुँअर कर्मसिंह सुशीला के साथ मौज की बातें कर रहे हैं।

अँधेरा होते ही सुशीला ने कहा—कुँअरजी! अँधेरा हो गया अब तक आपके साथी नहीं लौटे और न वह साथी लौटा जो फल लेने गया। अब तो उनके आने की बहुत कम उम्मीद मालूम होती है। क्योंकि रात हो गई हम लोगों का यहाँ इस पेड़ के नीचे बैठना अच्छा नहीं। क्योंकि रात में चोरों डाँकुओं का भय तो है ही बड़ा डर पशुओं का है।

कुँ० कर्म०—पशुओं का डर है न डाँकुओं का। यह देखो (पिस्तौल दिखाकर) छ नलिया भरी साथ में है। एक २ फैर में तीन २ को घायल कर डालें। फिर भी यहाँ पर अकेले एक औरत के साथ बैठना उचित नहीं! अस्तु यहाँ से चलना चाहिये।

सुशीला०—यहाँ से ५ कोस पर मेरी बड़ी बहिन रहती है, यदि हम वहाँ चले चलें तो रात बड़े मजे में कट जा सकती है।

कुँअर० कर्म०—मन में खुश हो—हाँ हाँ, यह अच्छा होगा। वहाँ चलो। एक घोड़े पर तुम चढ़ लो एक पर हम। दोनों

जन वहीं चले चलें। संतसिंह का तो पता नहीं। जान पड़ता है उसे किसी जंगली जानवर ने फाड़ डाला! ऐसा न हुआ होता तो वह कब का लौट आया होता। और वे चारों साथी तो किसी उलझन में उलझ जाने के कारण नहीं आए। या तो वे अभी तक उन डाँकुओं को ढूँढ़ते ही फिर रहे होंगे या उनसे कहीं मुठभेड़ हो गई होगी। जो हो अब उनका इंतिजार न करके यहाँ से चल देना चाहिये, इसी में मंगल है। यह कह उन्होंने घोड़े पर जीन कसा। संतसिंह वाले घोड़े पर भी जीन धर उसपर सुशीला को सवार कराया। अपने घोड़े पर आप सवार हुए। फिर दोनों जन मीठी २ बातें करते पच्छिम दिशा की पहाड़ी पगदंडी पर घोड़ा फेंकते चले गए। लम्बी लम्बी प्रेम भरी बातें करते हुये दोनों बहुत दूर निकल गए। आधी रात बीत जाने पर कुँ० कर्मसिंह ने बड़े आश्चर्य से पूछा, सुशीला! तुम तो कहती थीं कि पाँच ही कोस है मालूम नहीं तुम्हारा कोस कैसा है। रात आधी से ऊपर बीत चुकी अभी तक तुम्हारे बहिन का घर न आया?

सुशीला०—हँसकर—हमारे यहाँ का कोस पहाड़ी है। पहाड़ की सभी वस्तु करीं (कड़ी) होती हैं। चले चलिये, अब पहुँच जाते हैं।

सुशीला को जाना पच्छिम को था परन्तु वह नहीं मालूम किस कारण पूरब की ओर चली जा रही है। कर्मसिंह के पूछने पर उसने अपनी यात्रा पच्छिम की ही बतलाई और बोली कि हम पच्छिम की ही ओर चल रहे हैं।

रात के दो बजे होंगे जब ये दोनों एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जिसके चारों ओर ऊँचे २ पहाड़ खड़े थे। इसी समय येकायेक कुछ सवार न जाने किधर से निकल कर इन दोनों को पीछे से घोड़े ही पर जकड़ लिए। कुँअर कर्म के बहु-

ा उछलने कूदने और ज़ोर लगाने पर भी उन सबों ने
की मुश्कें कसलीं और उन्हें उसी घोड़े की काठी से जकड़
र दोनों को चारों ओर से घेरे हुए दक्खिन को लिये
ले गये।

—*:*:*—

आठवाँ परिच्छेद।

यह हम ऊपर लिख आये हैं कि सीताराम आदि उस मठ
रात को सो रहे। सवेरा होते ही वे सब उठे। देखा तो
टक बन्द ही है; खुला नहीं! पहर भर दिन चढ़ गया फिर
ा यह फाटक बन्द ही है!

सीताराम ने कहा—यार शंकर! अब तो कुछ दाल में
ला नज़र आ रहा है? शाम को तो यह अनुमान किया
गा था कि शायद शाम हो जाने के कारण कोई इस मठ
ा रक्षक फाटक बन्द कर गया होगा। पहर भर दिन चढ़
ाया अभी तक यह फाटक न खुला और न अब आगे
सके खुलने की कोई आशा है। इसलिये अब अनुमान होता
कि हम इसमें घिर गये। उस बनावटी स्त्री ने हमें धोखा
या। अब क्या करना चाहिये?

शंकर ने कहा—यह मठ मामूली मठ जान पड़ता है।
समें कोई यन्त्र मन्त्र तो है नहीं। इसमें से निकलना कुछ
ठिन नहीं। "अच्छा आओ तनिक इसके छओ खंडों की
ख भाल कर यह स्थिर करें कि है कोई राह इसमें से निक-
ने की या नहीं" यह कह वह उठा और साथियों को साथ
ले उन खंडों की सैर करने लगा।

बहुत कुछ छान बीन की, इधर उधर ऊपर नीचे चार ओर नज़र दौड़ाई पर कहीं कुछ नज़र नहीं आया। कुछ दे बाद शंकर ने कहाः—इसमें कहीं पर कुछ नहीं है अर्था यह मामूली मठ है। इसमें सूराख भी कहीं नहीं है जिस होकर बाहर की कुछ झलक मालूम कर सकें। अतएव इसक दीवार में छेद बनाकर उसी छेद के द्वारा इसके बाहर निकल जाय। सिवा इसके और कोई चारा नहीं नज़र आता।

राम०-यदि इसकी छतपर चढ़कर उधर कूद पड़ें तो कैसा

सीता०—छत पर नज़र तो टिकती ही नहीं है पाँव कैसे टिकेंगे? कोई इसकी छत पर चढ़ न पावे इस गरज से इसकी छत इतनी ढालुआँ बनाई है कि उसपर चिऊँटी भी चढ़ नहीं सकती।

रामनाथ०—दीवार में छेद बनाने से तो फाटक ही तोड़ डालना अच्छा होगा।

शंकर०—हाँ यह भी उपाय अच्छा है। अच्छा तो अब फाटक ही तोड़ डाला जाय। यह कह वे सब फाटक पर आये और अपनी २ झोलियों में से छोटी २ कुल्हाड़ी के फल निकाल उन्हें अपने २ दंडों में पहिना कर फाटक तोड़ने लगे।

उस फाटक के ऊपर बड़ी कुल्हाड़ी पड़ीं परन्तु वह फौलादी फाटक कहीं पर मसका तक नहीं। चोटें मारते २ सब थक गए, हथेलियों में झलके पड़ गए, दम फूलने लगा, लेकिन फाटक पर उनकी चोटों का कुछ भी असर न हुआ! "अब क्या करें" कह कर शंकर वहीं बैठ गया। सीताराम भी अपनी कुल्हाड़ी धरती पर पटक कर बैठ गया और हाँफते हाँफते कहने लगा—यह फाटक टूट नहीं सकता। यह ढले हुए लोहे का बना है इसी कारण इस पर चोट का कुछ असर नहीं होता!

भोजदत्त ने कहाः—भाई साहेब ! यह तरकीब काम न देगी हमारी बात मानें तो इसकी दींवार में छेद करें। बिना ऐसा किये इसमें से निकल न सकेंगे। यह मढ़ी नहीं गढ़ी है; किसी और धोखे में न रहना !

रामनाथ०—जब फाटक की यह दशा है तो दीवार की क्या होगी ! चलो तनिक उसकी भी तो आजमायश कर देखें।

सब लोग वहाँ से उठकर दालान में आये। शंकर और भोजदत्त दोनों दीवार तोड़ने लगे। वह दिवार भी लोहे से बढ़कर निकली। उसपर न कुदाल काम करती है न संगीन। दो चार चोट पड़ने पर केवल चूने का एक चिप्पड़ टूटता है ! "मसाला है कि लोहा ! ईंटों का यह हाल है कि वे मसालों में डूबी हुईं आपस में ऐसी घुल मिल गई हैं कि उनका एक दूसरे से अलग करना बड़ा कठिन है।

बड़ी मेहनत के बाद किसी प्रकार कुछ ईंटों को वे निकाल पाए। ईंटों के निकलते ही दीवार के भीतर एक इंच मोटी लोहे की चादर नज़र पड़ी।

भोजदत्त ने कहाः—भाई सीताराम ! यह तो अच्छा मठ मिला ! अरे यारो, इस मठ की दीवार में मोटे लोहे की चादर भरी है। जिस पर गोली गोला कुछ भी काम न देगा।

रामनाथ०—तो अब इस दीवार में छेद भी न हो सकेगा ?

भोजदत्त०—ईंटे तो निकाले नहीं निकलतीं छेद करना तो महा कठिन है। फिर इस दीवार के बीच में लोहे की मोटी चादर पड़ी है वह कैसे टूटेगी ?

शंकर ने अपनी झोली खोली। उसमें से उसने एक चूरन निकाला। उस चूरन को उसने उस खोदी हुई दीवार में भरा। सीताराम, भोजदत्त और रामनाथ इन तीनों को वहाँ से दूसरे खंड में हटाकर उसने चकमक से आग बनाया। उस आग को

उस ने उस जरासी बुकनी पर फेंककर आप बड़ी तेजी से वहाँ से भाग कर दूर जा खड़ा हुआ। कुछ ही सेकेंड में एक बड़े जोर का धड़ाका हुआ। उस धड़ाके की धमक से सारा मठ काँप उठा। ऐसा मालूम हुआमानों बड़े ज़ोरोंका भूचाल आया। धड़ाके के साथ वह दीवार कुछ दूर तक चिथड़े चिथड़े उड़ गई।

दालान की छत कहाँ उड़ गई उसका पता नहीं। चुटकी भर चूरन ने कमाल कर दिया! न जाने वह चूरन किस मसाले से तैयार किया गया था जिसमें इतना प्रभाव था जितना डेना-माइट बारूद में भी सुनने में नहीं आया।

सीताराम भोजदत्त और रामनाथ तीनों धूर्त धड़ाके के साथही दौड़े वहाँ आये जहाँ शंकर था। सीताराम ने कहा—भाई शंकर! क्या हुआ? अरे यह दीवार तो चूर २ हो गई! आओ चलो कह कर वह आगे हुआ उसके पीछे वे तीनों जन भी चले।

टूटी हुई दीवार की राह मठ के बाहर निकल कर चारो जन मैदान में आए। फाटक के सामने पहुँच कर उस मुसहर को तलाश किये। वह मुसहर उस स्थान पर न मिला जहाँ उसे छोड़ गये थे। घोड़ों का भी कहीं पता नहीं।

कुछ दूर इधर उधर देखकर फिर वे उसी फाटक पर आए और विचारने लगे कि अब क्या किया जाय। घोड़े भी वह लेकर चलता हुआ!

भोज०—अरे यार! वह उसहर मुसहर नहीं कोई चुनारी धूर्त था। उसके चकमें आकर हमने सभी कुछ गँवा दिया! मेरा तो अनुमान है कि वह प्रेतनाथ ही था।

शंकर०—प्रेत तो बड़ा मोटा ताजा मनुष्य है। उसका चेहरा बड़ा भयानक है। वह नहीं तो उन्हीं में का कोई दूसरा धूर्त अवश्य था। अच्छा तो अब हम यहाँ देर क्यों कर रहे

हैं। चलें देखें कुँअर साहेब वहाँ क्या कर रहे हैं। वे वहीं बैठे हमारी इन्तिज़ारी कर रहे हैं अथवा वे भी कहीं खिसके ?

इसके उपरान्त वे चारो धूर्त वहाँ से आगे बढ़े। दोराहे पर पहुँचते ही एक छैल छबीले बाबाजी सामने पड़े। उनके साथ दो चेले भी थे। उन चेलों की अवस्था भी अभी अट्ठारह बीस साल से अधिक न थी। यही अवस्था बाबाजी की भी होगी। इनको सन्मुख देख सीताराम ने उन्हें प्रणाम किया। और कहा—दाता! आपका आसन कहाँ है? आप आते कहाँ से हैं और इधर कहाँ को जा रहे हैं?

बाबा ने कहा:—बच्चा! हम जगन्नाथजी से आते हैं प्रयागजी को जा रहे हैं। इस पहाड़ी रास्ते से जाने का यह कारण है कि इस रास्ते में बुन्देल और बघेल खंड के राजाओं से भी साक्षात् करना था। कुछ दान दक्षिणा लेना था क्योंकि ये राजे अपने गुरूजी के चेले हैं। तुम्हारा पवित्र धाम तथा शुभ नाम क्या है बच्चा?

सीताराम०—बाबा हम कंतित रियासत के नोकर हैं किसी ज़रूरी काम से इधर आये थे अब वापिस जा रहे हैं। मेरा नाम सीताराम है।

बाबा—चलो बच्चा सीताराम! कुछ दूर तक हमारा आपका साथ रहेगा। चलो उस कूएँ पर चलें। वहाँ कुछ जल पान कर कुछ विश्राम करें। तनिक सूरज ढलपड़े तो आगे चलें।

सीतारामादि भी थके माँदे भूखे प्यासे थे इसलिये बाबा का प्रस्ताव उन्हें भी बड़ा उचित जान पड़ा। वे सब एक पक्के कुएँ की पक्की जगत पर आसन बिछाए। बाबा ने तूमड़ी और डोर निकाल कर सीताराम को दिया और कहा ले बच्चा! इससे पानी निकाल कर हाथ मुँह धो; मैं भी लघु तथा दीर्घ शंका करके आता हूँ। देखना मेरे दोनों चेले कुएँ में न जा

पड़ें क्योंकि इन्हें मृगी का रोग है। यह कह बाबाजी वहाँ से निपटने चल दिये।

तूमड़ी से पानी निकाल कर सीताराम आदि ने हाथ मुँह धोया और कहा–भाई, इस कूएँ का पानी बड़ा गन्दा है पीने लायक़ नहीं। इसमें न जाने कैसी दुर्गंध आ रही है! बाबाजी आ जायँ तो दूसरे कूएँ पर चलें।

भोज०—(धीमे स्वर में) भाई! यह बाबा भी कहीं बाबा ही न निकलें क्योंकि ऐसे वेश से हम कई बार ठगा चुके हैं। यह बहुत ही कमसिन और खूबसूरत भी है।

सीता०—नहीं २ चुनारी टुकड़ी का यह नहीं है क्योंकि इसके साथ दो चेले भी हैं। यह धूर्त तो नहीं मालूम पड़ता हाँ, ठग हो तो नहीं कह सकते।

भोज०—भाई साहेब! चुनारी टुकड़ी का हो वा चांडाल चौकड़ी का हमें इसकी तनिक भी चिंता नहीं केवल चिंता है तो इस भेश की है। क्योंकि ऐसे भेश वाले एक दो बार नहीं कई बार हमें ठग गये हैं। इस भेश में हम हिन्दुओं की अटल श्रद्धा है। यही कारण है कि छद्मवेशी दुष्ट इसी भेश की आड़ में धूर्तों पर भी अपना हाथ रख देते हैं! यह ऐसा श्रद्धालु भेश है कि इसमें किसी को किसी प्रकार का सन्देह होही नहीं सकता। बाल युवा वृद्ध सब इस भेश में समा सकते हैं। ठगों बटमारों, धूर्तों और हत्यारों को इसी भेश में छिपने का अभ्यास है। इन दुष्टों के कारण ही इस विशुद्ध उपास्य भेश में लोगों की अश्रद्धा हो गई है। इसके अलावा आलसियों और निकम्मों ने तो इसे अपनी मौरूसी जायदाद बना ली है। तब यह नहीं कि इसमें सच्चे साधु महात्माओं का अभाव है। अभाव भी नहीं किन्तु जो हैं भी वह न होने के ही बराबर हैं। ऐसों की संख्या ऊँग-

लियों पर गिनने योग्य हैं। इसीसे कहते हैं कि–ऐसे भेश में कहीं कोई धूर्त तो नहीं छिपा है ?

इतने ही में बाबाजी भी आ पहुँचे। हाथ मुख धोकर आसन पर बैठे। चेलों ने कहाः—गुरुजी! इस कूएँ का जल पीने योग्य नहीं है। इसके आगे (ऊँगली से दिखाकर) एक वह कूआँ है वहाँ चल कर जलपान करें।

सीताराम ने कहाः—स्वामी! अब चलें ही चलें। आगे कुछ दूर पर हमारे युवराज हमारी इंतिज़ारी में बैठे होंगे। वहाँ चलकर जलटल पान करेंगे। कहिये यह अच्छा होगा न? बाबाने कहा—बहुत अच्छा बच्चा, चलो वहीं चलें।

इसके उपरान्त वे वहाँ से आगे बढ़े, कुछ कम दो कोस चलने पर वही बरगद का पेड़ मिला जहाँ कुँअर साहेब को छोड़ गए थे। देखा तो यहाँ न वे कुँअर है और न वह स्त्री! "लीजिये, जो सोचा था वही हुआ" कहकर सीताराम ने माथा ठोंका।

भोजदत्त ने कहाः—हम तो पहिले ही कहते थे कि कुँअर जी फिर न कहीं भैरवी—चक्र में पड़ें।

शंकर ने हँसकर कहाः—हमारे कुँअर साहेब को तो "चाहे वर मरे वा कन्या अपने दक्षिणा से काम" उन्हें खूब सूरत औरत दिखाई पड़ जानी चाहिये फिर तो वे कैस की तरह राजपाट, माता पिता, इष्ट मित्र, बन्धु बाधओं को त्याग कर उसके पीछे पड़ जाने वाले हैं। भैरवी—चक्र की तरह फिर वह किसी चक्र में पड़े! भगवान जाने अबकी कैसी पड़े। जरूर वे उसी स्त्री के चक्र में पड़ कर फिर किसी तहखाने की हवा खाने चले गए।

सीतारामः—ऐसा भी ऐयाश कम देखने में आएगा जिसे

अपने......गरदन की खबर न हो! अच्छा वे तो सुन्दरी के साथ गए और वह सन्त ?

भोज०—सन्त भी महन्त बन कर चेली चेलों के साथ किसी मठ (तह) में भजन करता (रोता) होगा ! क्योंकि:—

सकिया भरतो दे एक साथ ये पैमाने दो।
देखलूँगा उन्हें आँखों में सरूर आने दो।।
मेरी आँखों से जरा आँखें तो मिल जाने दो।
खूब घुट्टेगी जब मिल बैठेंगे दीवाने दो।।

रामनाथ०—हँसकर-अरे भाई, तनिक सोच समझ लो तब अपना २ अनुमान लड़ाओ। सन्त ऐसा पुरुष नहीं है जो वह कुँअर के साथ घोटने लगे! बनारस में उसने कुँअर को कैसी फटकार बतायी थी, याद है ? वही था जो दालकी मंडवी के मोहाने से उन्हे लौटा लाया। सन्त उन दोनों से किसी प्रकार छूट गया है तभी तो उन दोनों की बन आई।

शंकर०—जो कुछ हो, गये तीनों। या तो वह स्त्री भैरवी न सही उसकी सौतीली बहिन ही रही होगी और उन्हे वैसे ही छकायेगी या छका रही होगी जैसे भैरवी ने छकाया था, अथवा वह कोई मायाविनी रही होगी; उन्हे राजकुमार जान कर अपने अड्डे पर उड़ा ले गई होगी।

भोज०—रंग ढंग से तो ऐसा मालूम होता है कि भैरवी की भाँति कोई धूर्ता (ऐयारा) ही थी। उसी की धूर्ताई से तो हम इस दर्जे पर पहुँचे हैं। उसी धूर्ता का कोई यार मुसहर का रूप धर कर हमें ठग गया और चार हजार के चार घोड़े भी मार ले गया !

बाबा जी इन चारों की आपस की बातें बड़े ध्यान से सुन रहे थे। जब इन लोगों की बातें ख़तम हुई तो बाबा जी बोले:-

बच्चा सीताराम! कौन कुँअर, कैसी सुन्दरी, क्या बात है; जरा मुझे भी तो बताओ?

भोजदत्त के आँख दबाकर कुछ इशारा करने पर सीताराम ने उत्तर दियाः—"कुछ नहीं स्वामिन्! हमारे युवराज की······

बाबा०—हाँ, तुम्हारे युवराज की क्या?

सीता०—······बातें हैं और कुछ नहीं।

बाबा०—नहीं २ बच्चा, साफ साफ कहो क्या बात है। अरे हम हैं साधु अभ्यागत। हमें गृहस्थों की बात चीत से क्या प्रयोजन? अपने राम तो पूर्णकाम आत्माराम ठहरे। अपने राम को इस सांसारिक (दुनियबी) झगड़ों से क्या काम! फिर भी हम गृहस्थों के गुरु हैं। गुरू वही जो ज्ञान का मार्ग बतावे। जीवन सार्थक होने के निमित्त उत्तमोत्तम (अच्छे से अच्छा) उपदेश दे। सांसारिक कष्टों से छूटने की युक्ति बतावे। अतएव, जगद्गुरु ब्राह्मण, ब्राह्मण गुरु सन्यासी, सन्यासी गुरु अविनासी के अनुसार हम तीनों लोक चौदहो भुवन के गुरु हैं। जो मार्ग हम बतावेंगे वह सुगम ही होगा। तुम मुझे चिता में चूर दीखते हो अस्तु, तुम अपनी चिंता का कारण मुझ से कहो। मैं यथाशक्ति तुम्हारी चिंता निवारण होने का उपाय तुम्हें बताऊँगा। वह सुन्दरी किसकी कौन थी, वह मुसहर कौन और कैसे घोड़े मार ले गया, उसने तुम्हारे साथ छल क्यों किया इत्यादि २ मुझे समझाओ।

सीताराम ने बाबाजी का उत्तर दिया और संक्षेप में सब क़िस्सा कह सुनाया। बाबा ने कहाः—अहो! संसार में बड़े २ धूर्त भरे पड़े हैं! इन दुष्टों को न तो मनुष्य का डर है न भगवान का! हरे २!! ऐसे २ छल छिद्र मनुष्यों में भरे पड़े हैं जिनका विश्वास करना कठिन है! क्या करें इस समय मुझे गुरु जी के दर्शन को जाना है नहीं तो मैं इस छल का रहस्य

तुम्हें दिखाता। फिर भी मैं तुम्हें अपना करतब उस समय दिखाऊँगा जब प्रयाग से लौटकर तुम से मिलूंगा।

भोज०—मनमें—क्षमा करना महाराज! अपना करतब अपने ही पास रखना। "बिल्ली बख्शे चूहा बाँड़ा ही रहेगा" (प्रकट) अच्छा तो अब यह बताइए कि किया क्या जाय? साँझ तो हो गई। कहीं ठहरने का ठिकाना करना चाहिये?

बाबा०—बस २ बच्चा! इसी बरगद के नीचे आसन लगाओ। देखो अभी मैं इन चेलों से लकड़ी चुनवा कर धूनी लगाता हूँ। धूनी को धधकती हुई देख जंगल के जीव पास नहीं फटकने के।

सीताराम०—हाँ, यही ठीक होगा। और कहीं ठौर ठिकाना तो नहीं दीखता है।

भोज०—बरगद के पेड़ तले बड़ी गरमी होगी? किसी अन्य शीतल वृक्ष की छाया में आसन लगाइये।

बाबा०—नहीं बच्चा! बरगद? बरगद बड़ा अनोखा वृक्ष है। सब वृक्षों का यह लकड़दादा है। पीपल को नाहक "वृक्षराज" माना है। वृक्षराज तो इसे ही कहना चाहिये! इसके समान न कोई वृक्ष बड़ा है और न घना ही। इसकी छाया भी अनोखी है। बटछाया के विषय में एक कवि कहता है:—

नारि नवोढ़ा कूप जल, औ बरगद की छाँयँ।
गरमी में शीतल करें, सरदी में गरमाँयँ॥

एक बरगद का पेड़ मैंने गुजरात में देखा था वह इतना फैला हुआ था कि उसकी छाया में एक हजार मनुष्य बिश्राम कर सकते थे। यह बरगद भी बड़ा सुहावना है आज इसी के नीचे बिश्राम करें।

बाबाजी की बात सबों ने पसन्द की। उसी बरगद के

नीचे अपना २ आसन लगाया। उन्हीं के पास बाबाजी ने अपनी धूनी भी जगाई।

नवाँ परिच्छेद।

आज शरद पूर्णिमा है। चन्द्रमा अपने पूर्णकला से समस्त आकाश और भूतल को आलोकित (रौशन) किये है। उस की निखरी हुई चाँदनी अत्यन्त शोभायमान और उसकी किरणें चाँदी की किरचें सी प्रतीत होती हैं। यद्यपि सूर्य और चन्द्रमा के आकार में भेद नहीं तथापि गुण दोनों के भिन्न २ हैं। पहिला अत्यन्त गर्म है तो दूसरा अत्यन्त शीतल! सूर्य में आग है चन्द्रमा में अमृत। सूर्य समस्त जीवधारियों का जीवन प्राण है और चन्द्रमा समस्त औषधियों का। यद्यपि गुण में दोनों एक दूसरे से भिन्न २ हैं तथापि सृष्टि के लिये दोनों ही उपयोगी हैं। एक बात में चन्द्रमा सूर्य से अच्छा माना जाता है, वह है सुन्दरता! इसकी सुन्दरता में सारे संसार के कवि लोटपोट हो गये और हो रहे हैं। होना भी उचित है। ऐसी सुन्दरता—जैसी चन्द्र में है—सृष्टि के किसी भी वस्तु में नहीं पाई जाती।

चाँदनी रात उसमें भी शरद चाँदनी का कहना ही क्या है। पंडित कहते हैं कि शरद पूर्णिमा की रात चन्द्रमा से अमृत वर्षा होती है। उनका कहना भी झूठ नहीं। सब पूर्णिमाओं से शरद पूर्णिमा की अमृतमयी चाँदनी अधिक सोहावनी और शीतल होती है। देखो न! प्रथम तो वर्षा का अन्त होते ही नील आकाश कैसा निर्मल मेघ रहित है, ऐसी नीली चाँदनी में हीरे की थाली सा टँका हुआ चन्द्रमा कितना चमकदार और भला मालूम होता है।

इस समय आधीरात बीती है, पक्षियों का पता तक नहीं कि वे इस समय किस पेड़ की किस डाली पर बैठे हैं। हाँ कभी २ उल्लुओं के घुरघुराने का शब्द कानों में अवश्य सुनाई पड़ रहा है। पशुओं की चिल्लाहट अवश्य ही डरावनी है और उनकी दौड़ धूप आँखों से दिखाई भी पड़ रही है। कोई तड़प रहा है कोई झड़प रहा है कोई किसी दूसरे जन्तु पर धावा बोले है। कोई किसी को फाड़ रहा है। कोई शिकार पर घात लगाए दुबका बैठा है। पशुओं के अतिरिक्त और कोई जीव इस निर्जन बन में नहीं हैं। फिर भी एक घने छायेदार पेड़ के नीचे आठ सात जन पड़े हैं। आइये पाठकजी! हम भी वहीं चल कर इन मनुष्यों की खोज खबर लें और बूझें कि ये कौन हैं और इस सूनसान जंगल में क्यों पड़े हैं।

जिन मनुष्यों को आप इस बरगद के नीचे पड़े देख रहे हैं ये वेही पुरुष हैं जिन्हें पहिले हम देख चुके हैं। पेड़ की जड़ों पर शिर धर कर जो चार जन बेखबर सो रहे हैं वे वही सीताराम, शंकर, भोजदत्त, और रामनाथ हैं। इन्हीं के निकट धूनी पर बैठे हुए तीनोंजन वही बाबा और उनके दोनों चेले हैं। गुरु चेलों में क्या गुप्त बातें हो रही हैं तनिक उसे आप भी सुन लेवें। इनकी बातें इतनी धीमी आवाज़ में हो रही हैं कि सिवा दो के तीसरा नहीं सुन सकता।

बाबा०—बस अब देर क्यों कर रहे हो, जल्दी करो।

एक चेला०—उन लोगों को भी आ जाने दें।

दूसरा०—वे आ गये इन्हीं झाड़ियों में कहीं छिपे हैं।

प० चे०—तो उन्हें आवाज़ दें।

बाबा०—आवाज़ नहीं सीटी दो।

एक चेले ने झोली में से सीटी निकाल कर हलकी सी

आवाज़ की। सीटी की आवाज़ सुनते ही पास की झाड़ियों में से चारजन झाड़ी से बाहर निकल बरगद के नीचे पहुँचे।

बाबा०—अब क्या देख रहे हो?

एक कुछ नहीं। देख यह रहा हूँ कि इन चारों में कुछ दम है कि नहीं।

बाबा०—इनकी चिन्ता छोड़ दो। अब ये बिना उठाए उठने के नहीं। चाहे बरसों बीत जाय!

एक०—क्या वह............

बाबा०—हाँ वही............

दूसरा०—तो ठीक है, अब जो चाहे करें और जैसे चाहें वैसे ले जायँ।

बाबा०—इन चारों की चार पोटली बाँधो और चारजन उन पोटलियों को पीठ पर उठा कर ले चलो!

ऐसा ही किया गया। चारों सोते हुए पुरुष गठरी में बाँधे गए। और चारो को चारजन पीठ पर धरे हुये पूरब दिशा की ओर चले! बाबाजी अपने चेलों के साथ उन चारों के पीछे २ चले।

कुछ दूर आने पर बाबा ने कहा:—किधर चलें?

एक ने उत्तर दिया अबकी ऐसी जगह तजबीज करें कि उसी में पड़े सड़ जावें। एक चेले ने राय दी कि दुर्गाखोह वाला तहखाना बहुत दिनों से बन्द पड़ा है। दूसरे चेले ने उत्तर दिया:—दुर्गाखोह वाला तहखाना ठीक नहीं, चोपन वाला तहखाना अच्छा होगा। वहाँ फाटक पर कड़ा पहरा लगादें फिर कुछ डर नहीं। निकल कर जायँगे कहाँ।

एक दूसरे गठरी वाले ने राय दी कि इन्हें तहखाने और तिलिस्मों में न डाल कर क़िले के जेहल में रक्खें तो बहुत

अच्छा हो। क्योंकि ये हैं धूर्त! ये तह और तिलिस्म को समझते क्या हैं। तहों और तिलिस्मों को तो ये चुटकी में उड़ाते हैं।

बाबाजी ने इसी की राय पसन्द की और कहाः—

अबकी बार इन्हे आँखों से अलग रखना अच्छा न होगा। ये कई बार धोखा दे चुके। अबकी बार इन्हे अच्छा सबक़ देकर बिदा किया जाय। ले चलो इन्हे क़िले में वहीं इन की खातिर तवाजह की जायेगी। क्योंकि अबकी बार दोनों सरगना धूर्त साथ में हैं।

इसी प्रकार का विचार प्रकट करते हुए वे लोग एक झरने पर पहुँचे जो पहाड़ी के सामने बह रहा था। सवेरा अभी हुआ तो नहीं था पर उसके होने में कुछ कसर भी नहीं थी। क्योंकि लोहा लगने ही वाला था। राह चलते २ सब थक गए थे। एक तो अमवाखोह से पहाड़ी तक का चलना दूसरे पीठ पर मनुष्यों का बोझ, फिर भला थकते क्यों नहीं। जागते से सोता हुआ, और जीते से मरा हुआ मनुष्य अपनी तौल से ड्योढ़ा दूना भारी हो जाता है। चारों धूर्त—जिनका ऊपर वर्णन हो चुका और जो गठरी में बँधे हैं—एक प्रकार से सोते ही हैं। बेहोश होना और गहरी नींद में सोना एक ही बात है। ऐसोंका बोझ जाग्रत अवस्था से दूना हो जाना कोई अचरज की बात नहीं है।

झरने के एक चट्टान पर गठरियों को धर कर बाबा आदि सातोंजन विश्राम करने लगे। इतने ही में दक्खिन की ओर से एक किसान हाँफता काँपता "चलियो दौड़ियो" चिल्लाता सामने दिखाई पड़ा। इन चारों धूर्तों के पास जो बेहोश गठरी में बँधे हैं; हरबा हथियार बन्दूक तलवार सब थीं। वे हरबे इन्हीं बाबा मंडली के कब्जे में थे। उन्हीं हथियारों को उठा उठा वे सातोंज़न "क्या है क्या है? कौन है? कहाँ है" कहते

उस सामने चिल्लाते आते हुए पुरुष के निकट—उसके पहुँचने से पहिले ही—पहुँच गए। देखा तो वह एक ग्रामीण किसान है जो बेतरह घबराया हुआ है। बाबा ने उससे पूछाः—"अरे क्या है भाई! तू इतना क्यों घबराया है"।

किसान न होने पर भी उसका भेश किसान है। अस्तु जब तक इसका असली पता नहीं मिलता तब तक हम इसे किसान ही लिखेंगे। उस किसान ने उत्तर दियाः—

स्वामी! यहाँ से धाप भर पर एक चीते ने मेरी बहू को घेर लिया है। और बहुत सम्भव है कि वह उसे फाड़ नोच डाले हो। (घिघिया कर) "जल्द मेरी मदद करें" यह कहता हुआ वह उसी ओर को भागा जिधर से आया था। उन सातों में के चारजन—जिनमें बाबाजी भी थे—बन्दूक लिये उसी किसान के पीछे दौड़े। आगे २ किसान—यह चिल्लाता हुआ—"अरे बापरे मेरी बहू गई। दौड़ियो २ बचाइयो—" भागा जाता था और पीछे २ ये चारों,—कहाँ है कहाँ है, किधर है कौन है, चिल्लाते भगे।

कुछ दूर—कम से कम एक कोस—निकल आने पर हाँफते हुए बाबा ने उस भागते हुए किसान से पूछाः—अरे भाई ठहरजा, तनिक सुन तो सही। कहाँ पर चीता है? किस पेड़ तले उस स्त्री को घरे है, कुछ बता तो सही।

भागते भागते ही उस किसान ने हाथ के इशारे से कहाः—"वह क्या है बाबा, जल्दी दौड़ो नहीं तो" मरने के बाद बैद वाली कहावत सच होने चाहती है (और तेजी से दौड़कर) अरे आओ स्वामी! जल्दी आओ।

उसके पीछे दौड़ते ही दौड़ते बाबा ने पूछाः—अरे बच्चा किसान! तू घबरा नहीं हम चारजन तो तेरी मदद पर तैयार हैं। बता वह स्थान कहाँ है?

दौड़ते ही दौड़ते किसान ने ऊँगली के इशारे से उत्तर दियाः—वह क्या है महाराज !

कुछ दूर और आगे बढ़ने पर वह किसान एक पाकर के पेड़ के नीचे खड़ा हो छाती पीट २ कर रोने और पछाड़ें खा खाकर कहने लगाः-हाय, मेरी स्त्री को दुष्ट चीता उठा ले गया!

बाबा और उनके साथियों ने इधर उधर नीचे ऊपर चारों ओर नज़र दौड़ायी परन्तु उन्हे कोई चिन्ह न दिखाई पड़ा। कुछ देर इधर उधर दृष्टि दौड़ा और अनुमान लड़ाकर बाबाजी ने उस किसान की कलाई थाम ली और दपट कर कहाः— क्योंरे दगाबाज़, मक्कार, झूँठा, बेईमान् ! सच बता तू कौन है नहीं तो अभी (म्यान से तलवार खींच कर) तेरा सिर भुट्टे की तरह उड़ा दूंगा।

किसान ने अपनी गरदन नीची करः—कहाः—स्वामिन् ! यदि आप के पवित्र कर की—जिस करसे आपने सिवा शुभ-कर्म के अशुभ-कर्म कोई किया ही नहीं-करबाल मेरे इस अप-वित्र गले पर पड़ जावे तो मैं इस कठोर सांसारिक दुःखों से छूट जांऊँ। मैं तो अब यही चाहता हूँ। आपही कहें अब मैं जी कर क्या करूंगा। जब मेरा आधा अंगही भंग हो गया तो मैं इस अधूरे अँग को लेकर क्या करूँ ? आधा तो गया ही आधा यह भी सही। फिर वह अँग तो दुष्ट जंगली पशु द्वारा निरर्थक गया और यह आधा तो आप जैसे महात्माओं के कर से जायगा जिससे यह अधम शरीर तर जायगा । मुझे तो अब जीना ही नहीं। क्योंकि गृहस्थ की गृहस्थी गृहस्थिनी ही से है। जब गृहणी ही नहीं तो गृही क्या ? गार्हस्थ्य-सुखों में से एक प्रधान सुख जाता रहा ! क्योंकिः—

सुमुखि सुन्दरि शुभ सुशीला निज पतिव्रत नारि हो।
पुत्र हो कोइ उच्च पद पर नम्र आज्ञाकारि हो ॥

निरुज काया भरी माया हृदय दायावान हो।
विनय शील विरक्त उत्तम भक्त भी भगवान हो॥
उद्यमी व्यवसायरत प्रेमी विचार तटस्थ हो।
पास भी फटके न चिन्ता तब प्रसन्न गृहस्थ हो॥

अस्तु, अब आप देर न करें फौरन मेरी गर्दन मारें। यह
ह वह वहीं घुटनों के बल बैठ गला झुका दिया।

बाबाजी ने हाथ की नंगी तलवार चेले को पकड़ा कर उस
किसान को खड़ा किया और उससे पूछाः—अरे यह तो बता
कौन है?

किसान०—साहेब मैं किसान हूँ।

बाबा०—तेरा घर कहाँ है?

किसान०—मोतियाताल पर।

बाबा०—यहाँ क्या करने आया?

किसान०—अपनी स्त्री के साथ ससुराल जा रहा था।

बाबा०—तेरी ससुराल कहाँ है?

किसान०—दुद्धी में।

बाबा०—सचमुच तेरी स्त्री को चीता उठा ले गया?

किसान०—चरण छू कर-मैं आपसे झूँठ कभी न कहूँगा।

बाबा०—अरे, चीता फाड़ नोच डालता है न कि भेड़िये
ी भाँति मुँख में दाबकर उठा ले जाता है। अगर तेरी स्त्री पर
ीता झपटता तो वह इस पेड़ के नीचे खूनखराबा कर डालता
कि उसे ले भागता? फिर बिना पंजे मारे दाँत गड़ाये वह
कैसे जाता? कहीं तो खून के छींटे पड़े होते! देख तो यहाँ
र कहीं खून की बूँद भी नहीं गिरी है और न कहीं चीते के
जों के निशान ही धूल में पड़े हैं?

किसान०—अपने हाथों अपना सिर पीट कर—हा! इसे

कहते हैं आफत ! स्त्री भी गई झूंठे भी बने !! गाँठ का गँवाकर गँवार कहलाना इसी को कहते हैं !

अच्छा बाबा ! आप महात्मा हैं आपको सभी शोभा देता है। आप जो कहें वह हमें मंजूर है।

बाबा०—बस २ अब बनों नहीं, मालूम हो गया। कलई खुल गई। "बीर २ ! इसे पकड़ तो" वीरनाम धारी चेले के पकड़ने से पहिले ही बाबा जी ने उसके गाल पर दो तमाचे मारे और कहा—बेईमान् ! बेकार हमें दौड़ाया। गुरुओं से धूर्ताई करने चला है। जानता नहीं की धूर्तों का गुरुघंटाल ध्यान अभी जीता है ? लो वीर ! इसकी मुश्कें बाँधकर वहीं··· ले चलो। यह है संतसिंह ! नाम बड़ा दर्शन थोड़ा। भला कहीं सिंह भी सन्त होते हैं ?

कलाई खुलते ही वह किसान् (संतसिंह) सन्नाटा मार गया और एक बार बाबाजी की ओर आँखें कर सिर नीचा कर लिया। बीर ने उसे रस्सी से जकड़ कर बाँध लिया। सब लोग उसी ओर को चले जिधर गठरी छोड़ कर भागे थे।

पाठक ! अब इन्हें तो झरने पर पहुँचने दें और आप उनकी सुन लेवें जो तीनजन झरने पर बैठे गठरियों की चौकसी करते रहे।

ज्योंहीं बाबा आदि उस किसान के पीछे दौड़े और वे झरने से कुछ दूर निकल गए त्योंहीं एक बनरखे ने आकर उन तीनों से कहाः—आप यहाँ बैठे हैं वहाँ चीते ने आपके साथियों को घायल कर डाला।

एक०—घबराकर—कहाँ पर ?

बनरखा०—जहाँ वह किसान उन्हें लिवा ले गया।

दूसरा०—चारो पाँचों घायल हो गये ?

बन०—जी हाँ, सबके सब घायल पड़े हैं। उन्होंने मुझसे

कहा है कि पहाड़ी के झरने पर चले जाव वहाँ हमारे आदमी
ठे हैं उन्हें खबर कर दो कि जल्दी आवें।

एक०—क्या तीनों को बुलाया है।

बन०—हाँ तीनों को, क्योंकि उन्हें उठाने वाला वहाँ कोई
हीं है।

दूसरा०—फिर यह गठरी ?

बन०—गठरी की रखवाली मैं करता हूँ, आप जाइए।

तीसरा०—अरे गठरी·········?

बन०—गठरी क्या आप अशरफियाँ धर दें साहेब ! किसी
ी मजाल नहीं जो इनसे हाथ लगा सके। फिर हम बनरखे
और चुनार राज्य से तलब पाते हैं। हमारा यही काम है।
ाप बेखटक जाइये और उन्हें उठा लाइए। तब तक मैं यहीं
ठा हूँ।

"विनाश काले विपरीत बुद्धिः।" सच ही कहा है। जब कुछ
रा होने वाला होता है तो बुद्धि भी बुरी हो जाती है। इन
ीनों की भी बुद्धि भ्रष्ट हो गई और वे बनरखे की बातों में
ाकर गठरियों को वहीं छोड़ बेतहासा उसी ओर को भागे
धर बाबाजी आदि गये थे।

उन तीनों के भागते ही बनरखे ने उन गठरियों को खोला
ौर कोई जड़ी उनकी नाक से लगाकर उन्हें चटपट सचेत
या। जब वे चारों सचेत हुए तो उसने उनसे कहाः—भाई
ब जँभाइयाँ न लो फौरन यहाँ से निकल चलो। इतना सुनते
वे चारों मिर्जापूर की ओर भागे। पीछे २ उनके वह बन-
खा भी भागा। जब वे बरकछा पर आये तो देखा कि वह
नरखा यूसुफ मियाँ हैं ! अब उनकी आपस में हँसी मजाक
ने लगी। नित्य नियम से निपट कर वे सलाह किये कि
ब सन्तसिंह कैसे छुड़ाया जाय।

शंकर ने कहा—बेशक, इस वक्त सन्त ने मर्दानगी दिखलाई

सीता०—इस ऐयारी में हुई बड़ी दिल्लगी।

भोज०—खासी दिल्लगी हुई। मैं जो कहता था कि इन बाबा भेशधारियों का विश्वास न करें क्योंकि इस भेश ने कई बार खोखा दिया है। उस समय मेरी किसी ने न सुनी।

शंकर०—भाई ऐय्यारी में ऐसा होता ही है। जैसा मौका देखते हैं वैसा रूप धरते हैं। बाबा और बीबी की क्या बात है। हाँ यह हम जरूर कहेंगे कि फँसे बुरे थे। कोई भी ऐसा न था जो हमें छुड़ाता।

यूसुफ (मोछों पर ताव देकर) मैं कैसा रहा? आखीर में मैंने ही तो छुड़ाया?

भोज०—हँस कर—बेशक २ आपकी ही इसमें बहादुरी है। अच्छा यह तो कहो आपको मालूम कैसे हुआ कि हम बंध गये हैं?

यूसुफ०—आपको मालूम नहीं?

भोज०—जी नहीं।

यूसुफ०—मैं जंगल का दौरा करता हुआ चुनार की ओर जा रहा था तो देखा कि एक मोटा ताजा धूर्त सन्तको कब्जे में कर पीठ पर गठरी लादे चला जा रहा है। इसके पहिले जब उसने संत की नाक में कोई जड़ी लगाई तभी मैं आड़ में होकर उसकी करतूत देखता रहा। ज्योंहीं उसने संत को बेहोश कर गठरी में बाँधा और उसे पीठ पर लाद कर ले चला त्योंहीं मैंने उसका पीछा किया। कुछ दूर जाने पर मैंने अपना रूप कोढ़ीका बनाया और लकड़ी के सहारे लँगड़ाता हुआ उसके सामने पहुँचा। मुझे देखकर उसने पूछा—क्या है? यहाँ क्या भीख धरी है? जाओ बस्ती में जाकर मांगो।

मैंने कहा—सरकार! मैं दो दिन का प्यासा हूँ। मेरे दोनों

ाथ गल गये हैं मैं कूएँ से पानी निकाल नहीं सकता बड़ी या होगी यदि मुझे थोड़ा पानी पिला देते।

यह सुनते ही उसने गठरी धरती पर धर दिया और झोली से लुटिया निकाल कर मुझ से बोलाः—कूआँ कहाँ है? ने उत्तर दियाः—सरकार मुझे तो न कूआँ मालूम न झरना। ह सुन वह कूएँ की तलाश में दूर निकल गया। जब वह कुछ ोझल में हुआ और दिखाई नहीं पड़ेने लगा तब मैंने उसकी ठरी को खोल कर संतको सचेत किया। उसके सचेत होते ही ः दोनों पच्छिम को न जाकर पूरब को भगे।

भोज०—यह तो बड़ी गलती की थी।

यूसुफ०—हाँ गलती तो ज़रूर की थी परन्तु यदि गलती किये होते तो आपको कैसे छुड़ाते? कभीं बुराई में भलाई ा हो जाती है और भलाई में बुराई भी। यहाँ गलती ही में म सध गया। निसन्देह मुझे पूरब अजयगढ़ की ओर ना चाहिये था परन्तु घबराहट में दिशा का ज्ञान भूल गया! र बजाय पूरब के पच्छिम की ओर भागा।

भोज०—भागे क्यों? तुम दो थे वह अकेला ही। क्या उस ले के लिये तुम दोनों काफी नहीं थे?

यूसुफ०—वह हम दोनों के बराबर ताकतवर (शक्तिमान) और यदि चाहता तो हम दोनों का वारान्यारा कर देता।

सीता०—अरे वह प्रेतनाथ रहा होगा।

यूसुफ०—प्रेतनाथ पिशाचनाथ तो मैं नहीं जानता, हाँ, मोटा ताजा मनुष्य ज़रूर था।

भोज०—अच्छा, फिर क्या हुआ?

यूसुफ०—ज्योंहीं हम पहाड़ी के झरने के थोड़ी दूर इधर ो देखा तो पाँच सात जन चार गठरी सिर पर धरे झरने

की ओर लपके चले जा रहे हैं। उनकी बातों से पता लगा कि वे कैदियों की पोटली लिये चुनार के क़िले को जा रहे हैं।

सन्तसिंह पुराना खुर्राट था वह ताड़ गया और उसने मुझसे कहा कि मैं धूर्तताई करके इनमें से कुछ को दूर निकाल ले जा रहा हूँ। मेरे दूर चले जाने पर तुम इन सबों को—जो यहाँ गठरी की निगरानी करते बैठे हैं—यहाँ से टरका कर कहीं दूर चलता कर देना और जब ये भी दूर निकल जावें तो इनकी गठरी खोल कर सब को ले भागना। संत तो उनमें से ४ को दूर निकाल ले गया। तीन को मैंने धोखा दिया। यदि हम भूल कर इधर न आ पड़ते तो आज आप लोग चुनार के क़िले में दीखते?

रामनाथ०—अब यह पता नहीं कि संत उन्हें धोखा देकर निकल भागा अथवा उनके क़ब्ज़े में पड़ गया?

यूसुफ़०—जहाँ तक मालूम होता है वह भाग नहीं पाया वरन उनके ही हाथ पड़ गया। यदि वह भागा होगा तो आज यहाँ आ जायेगा।

शंकर०—हाँ हाँ, आज दिनभर में यदि वह न आया तो जान लेना कि वह उनके फंदे में फँस गया। अधिकतर उसके फँस जाने का ही अन्देशा है। क्योंकि वह धूर्त बाबा और कोई नहीं वही ध्यानसिंह था और उसके दोनों चेले उसीके दोनों भाई धीर और वीरसिंह थे।

यूसुफ़०—तब वे चारों जो गठरी लिये थे—पहाड़, सुमेर, रणधीर और क्रूरसिंह होंगे?

शंकर०—अवश्य वे ही होंगे। जब पूरी चांडाल चौकड़ी जुटी थी तो फिर संत की खैर कहाँ, इसीसे तो कहते हैं कि सन्त गये!

रामनाथ०—अच्छा आज देख लिया जाय कि गये या हैं?

इसके उपरान्त यह कंतित की धूर्त मंडली सन्तसिंह की प्रतीक्षा के लिये शिवपूर के बँगले में पधारी और वहीं विश्राम करने लगी।

दसवाँ परिच्छेद।

—:***:—

पाठकजी! इनको अब इसी शिवपूर के बँगले में छोड़िये और आइए तनिक देखें कि युवराज कर्म किस दशा में कहाँ हैं।

ऊपर आप पढ़ चुके हैं कि कुँअर और वह सुन्दरी दोनों गिरफ्तार हो गईं। दोनों को पकड़ कर वे काले नकाबपोश वहीं पहुँचे जहाँ पहिले कुँअर को भैरवी ले गई थी! अर्थात् चोपन के तहखाने में!

जब कुँअर साहेब वहाँ पहुँचाए गए जहाँ पहिले उन्हें माया-विनें धर ले जा कर बन्द की थीं तो कुँअर के होश उड़ गए और उन्होंने बिचारा कि यह वही कमरा है जहाँ भोजन पान आप से आप चला आता था और कोई दिखाई नहीं पड़ता था। अब तो उन्हें अपनी वादाखिलाफी याद आई और मन में कहने लगे कि, वह योगिन जो उस दिन तहखाने के बाहर पहुँचाने के लिये मेरे साथ आई थी—मुझसे कही थी कि "यदि वादा-खिलाफी करोगे तो पछताओगे।"

जो उसने कहा था वही हुआ। अब इनके फन्दे से छूटना बड़ा कठिन है। अब तो उसे करना ही पड़ा जो उस योगीनी ने उस दिन कानमें कहा था! अच्छा पहिले यह तो देख लें कि ये करती क्या हैं। ये हैं; स्वछन्द, स्वतन्त्र और निरंकुश। इनकी अवस्था भी अभी अट्ठारह बीस और बाईस साल से अधिक

नहीं। अस्तु, यह अवस्था भी इन्हें दुखदायी है। फिर भला ये न पुरुषों की इच्छा करेंगी तो करेगा कौन ?

इसमें सन्देह नहीं कि यहाँ सब प्रकार का सुख भरा है। एक से एक रूपवती नवोढ़ा स्त्रियाँ, षटरस व्यञ्जन, सुसज्जित भवन, विहार योग्य बन, उपवन, बाग, बाटिकायें इत्यादि सभी कुछ हैं यदि नहीं हैं तो अपने वे मित्र जो अपने लिये खून बहाने को कटिबद्ध हैं। और नहीं है वह परमसुन्दरी शशि जिसके निमित्त ये सारे कष्ट सहन करने पड़े हैं। यद्यपि ये भी कोई राजकन्यायें हीं दीखती हैं। इनमें भी रूप है, रंग है, यौवन है, लावण्यता है, अवस्था भी इनकी रमणीय है, तथापि शशि शशी ही है। कहाँ मणि और कहाँ काँच !

इतने ही में पायलों की झनकार कान में पहुँची कुँअर कर्म चौकन्ने हो सम्हल कर बैठ गये। कुछ ही पल में वही सुन्दरी जो भैरवी के समय राह दिखाने बाहर आई थी और सब प्रकार कुँअर कर्म को नीचा ऊँचा समझा कर बिदा की थी—कुँअर के पास आई और कुँअर को देख हँसकर कहने लगीः—क्यों साहेब ! आपने वही किया जिसे मैंने उस दिन मना किया था ? इससे क्या फायदा उठाया ? आप भी बेइज्जत हुए और मुझे भी परेशान किया ?

कुँअर कर्म०—हँस कर—

इज्जत का घर का माल का जिसको खबर नहीं।
जो कुछ गुजर रहा है हो उसका असर नहीं॥
हो चूर मुहब्बत में सदा कैस की तरह।
गर साँप काट खाये तो आये लहर नहीं॥
हरदम उसी माशूक का उसको खयाल हो।
जूते भी पड़ें सौ तो न दिल पर मलाल हो॥
परवाह इसकी हो नहीं जिन्दा हो या मरे।

गरदन तराशते में वह ऊफ भी तो न करे॥
बरदास्त जिसे इतनी हो वह आशिकी करे।
इस इश्क के कूँचे में सम्हल कर कदम धरे॥
(लाल)

कहिये अब मुझे क्या हुक्म होता है?

स्त्री०—बैठे रहिये चुपचाप। हुक्म हाकिम आपही पहुँच जायँगे।

कुँ० कर्म०—(घबरा कर) खैर तो है?

स्त्री०—खैर सुपारी पान सभी कुछ है। मौज में बैठे रहें जो कुछ चीज़ की ज़रूरत हो कहें मैं उसे पहुँचाऊँ।

कुँ० कर्म०—अभी तो कुछ ज़रूरत नहीं है होगी तब कहेंगे। हाँ यह तो कहो अब मैं क्या करूँ?

स्त्री यह कहती हुई वहाँ से चल दी कि "जाती हूँ शाम को फिर मिलूँगी। उसी समय जो कुछ कहना सुनना होगा कहूँ सुनूंगी।"

स्त्री के चले जाने पर कुँअर कर्मसिंहजी ने मन में कहा तबकी बार धोका देकर चले गए, और वादा कर गए कि लौट कर तुमसे मिलेंगे। फिर उस वायदे का खयाल न रहा। उसी वादाखिलाफी का यह नतीजा है कि बेइज्ज़ती के साथ फिर उसी पिंजड़े में* बन्द हुए। वायदे पर पहुँचे होते तो और बात थी उस समय पहिले से भी अच्छी क़द्र होती। अब तो मैं इनकी आँखों से गिर गया। अब वह बात नहीं रही। देखिये अब ये कैसी पेश आती हैं?

इधर तो कुँअर कर्म इस प्रकार चिंता सागर में डूब उछल रहे थे उधर उन सुन्दरियों में कर्मसिंह की चर्चा होने लगी। उस प्रधान सुन्दरी ने—जो वास्तव में सुंदरता, रूप, वय

---

* जिसमें पहिले रह चुके थे

आदि मैं प्रधान थी—कहा प्रेमा! चारो तरफ का रास्ता तो बंद है न?

प्रेमा०—जी हाँ सब बन्द है।

प्र० सुं०—फाटक भी?

प्रेमा०—जी हाँ फाटक भी।

प्र० सुं०—हाँ देखना अबकी बार कहीं निकल न जाने पावें। और तुममें से किसी ने भी यदि उन्हें कुछ सहायता दी अथवा उन्हें इस तहखाने की राह बताई तो फिर जान लेना कि उसकी खैर नहीं।

प्रेमा०—हँस कर—हम लोगों को क्या गरज पड़ी है कि राह बतायें वा उसे कुछ मदद पहुँचायें? यदि आज्ञा हो तो हम उसके पास भी न जायें।

प्र० सुं०—नहीं २, यह मेरा मतलब नहीं है कि तुम उसके पास न जाओ वा उससे बोलो नहीं; मेरा कहना यह है कि उसे इसमें से निकल भागने में सहायक न बनो। अब समझीं?

प्रेमा०—जी हाँ, मैं समझ गई। मुझे सहायक वहायक बनने की जरूरत नहीं आप विश्वास रक्खें।

प्र० सुं०—हँस कर-प्रेमा! अब इस तहखाने में रहते २ जी ऊब सा गया है। यहाँ पड़े २ बरसों बीत गए। अब इच्छा है कि यह स्थान छोड़ कर किसी पहाड़ी पर रहें।

प्रेमा०—यह कैसे सम्भव है?

प्र० सुं०—क्यों इसमें क्या किसी का इजारा है?

प्रेमा०—है नहीं यों हीं। बाबाजी से कैसे पिंड छूटेगा?

प्र० सुं०—अंह, बाबा का तो वही हाल है:—"कब मरे बाबा और कब आए आँसू" साल में एक दिन उनकी समाधि खुलती है। ऐसे योगियों से कहीं भोग लिप्सा दूर होती है? उन सुंदरियों के भाग फूट गए जो ऐसे समाधिस्थ योगियों के

पाले पड़ीं ! सच तो यह है कि योगियों को भोग से क्या प्रयोजन ? योग और भोग दोनों में पृथ्वी आकाश का अंतर है। एक दूसरे से वैसे ही विरुद्ध हैं जैसे अग्नि और जल। फिर भी ये मुए योगी भोग के निमित्त एक न एक भोग साधन रखते हैं।

प्रेमा०—बात काट कर—ये वे त्यागी योगी नहीं हैं। ये तो सिद्धियों को अपनी मनोकामना सिद्ध करने ही के लिये प्राप्त करते हैं। उन्हीं सिद्धियों के बल पर मायावियों की भाँति नाना छल छिद्र रचते हैं। ये योगाभ्यास मुक्ति की इच्छा से नहीं प्रत्युत भोग की इच्छा से करते हैं।

इतने ही में एक सखी दौड़ी हुई आयी और कहने लगी स्वामिन् ! साँझ होगई, चलिये वहाँ सब सामान ठीक है। कुँअर साहेब भी व्याकुल हो रहे हैं। और कह रहे हैं कि तनक अपनी स्वामिनी का तो दर्शन करा दो।

प्रधान सुं०—तूने उनसे कुछ कहा तो नहीं ?

सहेली०—जी नहीं, मैं क्यों उनसे कुछ कहने लगी।

प्र० सुं०—हाँ, कुछ मत कहना और न अपना राज उन्हें बताना।

सहेली०—जी नहीं, मुझ से कभी ऐसी खता न होगी। हाँ तो अब चलना चाहिये।

चलो चलें कह कर उस प्रधान सुंदरी ने अपना वस्त्र आभूषण पहिना और सहेलियों के साथ हँसती खेलती अठ-खेलियाँ करती वहाँ आई जहाँ कुँअर कर्मसिंह कैद थे। कुँअर की सूरत देखते ही वह प्रधान सुंदरी ठहाका मार कर हँसी और प्रेमा से बोली-प्रेमा ? क्या ये वेही हैं जो उस दिन......?

प्रेमा ने बात काट कर उत्तर दिया—जी हाँ, "दालान में

भैरवी २ चिल्लाते थे !" ये वेही हैं। वायदे के कैसे सच्चे सो कहने की ज़रूरत नहीं।

कुँअर कर्मसिंह भैरवी का नाम सुनते ही गरदन नीचे कर मन में कहने लगे—ओहो, ये वेही हरजाइयें हैं जो उस रात दालान में से पकड़ ले गई थीं और इसी तहखाने में लाकर रखी थीं। और यह प्रेमा वही है जो राह बताने को भेजी गई थी। भगवान् इन चुरैलों से रक्षा करे। अब इन से पिंड छूटना मुश्किल है। प्रधान की ओर दृष्टि कर कहने लगे—प्रधान तो प्रधान ही है। ऐसी सुंदरी—जिसे देख देवता भी अपने आसन से च्युत हो जावें, योगी का अखंड ध्यान छूट जावे, विरक्तों की इंद्रियाँ विचलित हो उठें—इस भूतल में और भी कोई है कि नहीं सो वह रचयिता ही जाने।

धन्य रे विधाता! कैसी २ अनोखी मूर्तियां तू गढ़ता है! किसी २ में तो तू वह अनोखापन रख देता है कि लाख सर पटकने पर भी कवि उसकी उपमा नहीं पाते। अहा! आँखों में पंच बाण विराजमान है। इन कटीली—रसीली और चुटीली आँखों की चोट कौन बरदाश्त कर सकेगा?

कटै न कठिन कटारते; मरै न माहुर खाय।
नयन सैन शर लगतही, सहजहिं सो मरि जाय॥
को अस त्रिभुअन महँ सुभट,सुर नर मुनि ऋषि नाग।
मृगनयनी के नयन सर, जेहि के हिये न लाग॥

सच है कोई भी ऐसा न मिलेगा जिसके हृदय में नयनशर न लगा हो। इस मृगाक्षी के नयनों में विधाताने कुछ जादू भी भर दिया है इसी कारण इनमें इतना आकर्षण है कि प्राण खींचे लेते हैं।

कुँअर कर्म को नीची गरदन किये कुछ पल गुजर गए यह देख प्रेमा ने कहा:—कहिये साहेब! किस भैरवी के धुन में हैं।

ज़रा आँखें तो ऊपर करें देखें आपके सन्मुख कौन खड़ा है ?

इतने ही में प्रधान सुंदरी ने कुँअर का हाथ थाम उन्हें एक सजे हुए कमरे में ले आई और एक सजी हुई सेज पर बैठा कर आप भी बगल में बैठ गई।

कुँअर कर्म उस कमरे की सजावट देख दंग रह गए। सारीं दीवारें और छत मोमबत्ती की रौशनी में जगमगाती नज़र आईं। ऐसा मालूम पड़ा मानों दीवारों से जुगनूं चिपटे हैं। भाँति २ के रंग बिरंगे नगीनों से जड़ी हुई दीवारें मोमबत्ती की रौशनी में ऐसी जगमगा रहीं हैं मानों नीला, आकाश,लाल, पीले, हरे, सोनहले, रुपहले, दोरंगे, तिनरंगे, तारों से शोभायमान हो रहा है। ऐसे जगमगाते हुए कमरे में वह कामिनी ऐसी चमक दमक रही है मानो नक्षत्रों में चंद्रमा!

कमरे की सजावट में जिन २ सामानों की आवश्यकता होती है सब मौजूद है। किसी वस्तु का अभाव नहीं। भोग विलास की सारी सामग्री संग्रह की हुई यथा स्थान सजी धरी हैं। कहीं मेवे के थाल धरे हैं। कहीं पान की सोनहली गिलोरियां, सोनहली तश्तरियों में सजायी धरी हैं। कहीं सोनहले नक्काशीदार थाल में गंगाजमुनी इतरदान और जड़ाऊ गुलाबपाश धरे हैं। एक आबनूस की मेज पर चुनार की ठंढी सुराही में पहाड़ी झरने का छना हुआ जल भरा है। उसके मुख पर काशी का गंगाजमुनी सोनहला नक्काशीदार गिलास औंधाया हुआ है। एक जयपुर की बनी हुई संगमरमर की मेज मर अंगूरी शराब की बोतलें भी भरी धरी हैं उसी पर पाँच चार बिल्लौरी शीशे के चमचमाते हुए गिलास भी औंधाये धरे हैं। दीवारों पर देश देश के युवराजों की तसवीरें टंगी हैं। जिनमें एक तसवीर कुँअर कर्म की भी है। फर्श पर उम्दी मिर्जापुरी कालीने पड़ी हैं। जो विलायती मखमल को

भी मात किए हैं। पलँग के पास एक बड़ा उगालदान धरा है ऊपर कह आये हैं कि सेज फूलों से सजी हुई है। तब एक बार उसमें यह विशेष है कि मसहरी की छत कपड़े की नहीं बिल्लौरी आइने की है जिसमें रौशनी में भी साफ सूरत झलकती है।

ऐसे सुन्दर रत्न जटित कमरे में परम सुन्दरी नायिका को अपनी बगल में पाकर नवयुवक कुँअर कर्मसिंह मन ही मन फूल कर कुप्पा हो गये और वे मनमें ही कहने लगे—जिसे लोग बैकुण्ठ कहते हैं और जिसके पाने के लिए भक्तवर्ग संसार के सारे सुखों पर लात मार शिर तोड़ परिश्रम करते हैं वह-वैकुण्ठ क्या इससे भी रमणीय होगा? सुनते हैं कि स्वर्ग में रम्भा मेनका, उर्वसी आदि त्रैलोक्य सुन्दरी अप्सरायें हैं तो क्या वे इस सुन्दरी से अधिक सुन्दर होंगी? कभी नहीं। सुंदरियों को रचते समय ब्रह्मा को भी भय हुआ होगा कि कहीं संसार में सब सुंदरी ही न हो जाय इसी डर से वह अपनी शेष सौंदर्यता को इस भूतल में ला छिपाया है। अहा! इसके सामने रम्भा, मेनका, उर्वसी सभी फीकी हैं। यद्यपि मानवी स्त्रियों में शशिप्रभा सचमुच शशि की प्रभा ही है तथापि वह भी इसकी समता में कहाँ! अहा! मैं बड़ा ही भाग्यवान हूँ। जिसके पाने के लिये लोग तन मन धन सभी गँवा देते हैं वह मुझे अनायास ही प्राप्त है!!!

देत परम सुख मोद मन, सरसत रस मन मेलि।
निज इच्छा जौ आवहीं, कविता बनिता बेलि॥

निज इच्छा से आई हुई उपरोक्त तीनों (कविता-वनिता-लता) वस्तु बड़ी सुखदायक होतीं हैं। यह निज इच्छा ही से आई हुई हैं, अस्तु बड़ी सुखदाई होगी।

इतने ही में उस सुंदरी ने प्रेमा की ओर इशारा किया। प्रेमा ने मालती से कहा—मालती! देखो सरकार क्या कहती हैं।

सुंदरी ने मालती से कहा—जाओ विलासिनी से कहो ोजन ले आवे। मालती गई और विलासिनी के साथ भोजन ेकर वापिस आई। मंजरी, मृणालिनी, पद्मा और चम्पा ाँवर मोरछल पंखा आदि डोलाने लगीं। कुँअर और सुन्दरी ोनों एक थाल में भोजन करने लगे। इसी समय कुशला ने ंगूरी शराब के दो प्याले भर कर दोनों के सामने धरी। ुंदरी ने अपना प्याला अपने ही हाथों कुँअर के मुख से ागाया। कुँअर ने उसे प्रेमामृत समझ कर पीलिया। सुंदरी ने ापना प्याला पिया। दोनों पटरस भोजन पान कर पान खाए हेलियों ने दोनों पर इतर फुलेल गुलाब आदि छिड़का। इसके ाद सब सहेलियाँ कमरे के बाहर निकल कुछ खान पान की ौर कुछ लहमें के बाद फिर वे उसी कमरे में चली आईं।

प्रधान सुंदरी का इशारा पाते ही वे स्त्रियाँ अपना २ बाजा ो वहीं खूँटियाँ पर टँगा था—उतार लीं। किसी ने वीणा, िसी ने सितार, किसी ने सरोध, किसी ने सारंगी लिया। बला, मृदंग, ढोलक, मँजीरा, बाँसुरी, कटोरी, करतार, ादि लेकर सारी सहेलियाँ उस कमरे में पिल पड़ीं और पना २ साज मिला कर गाने लगीं।

सबसे पहिले प्रेमा गाने को खड़ी हुई और उसने यह पद ाया—

प्रणय पथ विकट खड़ग की धार ॥ टेक ॥
दुर्गम विषय दुरूह कुटिल गति कंटक कठिन करार।
पग धारत फारत अधवर ते डारत हृदय विदार ॥
सुख संयोग वियोग विषम दुख यहि जीवन व्यापार।
प्रेमपाश परि भ्रमत अहर्निशि भोगत दुख संसार ॥
समझ सोच श्रीलाल धरो पग है विकृत व्यवहार।

इसके उपरान्त अन्य सहेलियों ने भी गाया। गान समाप्त

कर सब सहेलिआँ अपने २ डेरे पर चली गईं। इधर कुँअर अं
सुन्दरीं की भी दशा दूसरी हुई। आँखों में बेढब सरूर छा
क्योंकि नशा मदिरा का है। इसकी झोंक बड़ी बेढब होती है
इसके बश में होते ही मनुष्य पशु से भी निकृष्ट (बदतर)
जाता है। भले बुरे का ज्ञान जाता रहता है। न अपना सूझत
है न पराय:। सारा अङ्ग और सारीं इन्द्रियाँ बश के बाहर
जाती हैं और वे मनमाना-आचरण करने लगती हैं। मदि
कुकर्म की ही ओर झुकाती है। अस्तु इसे कुकर्मी ही अधि
पसन्द करते हैं। विषयी जीवों की तो यह प्राण ही है। बिन
इसके उनकी विषय वासना में कमी पड़ जाती है। मजा कि
किरा हो जाता है। ब्रह्मानन्द प्राप्त ही नहीं होता। यह जानक
भी कि इसका परिणाम भयंकर है लोग इसे त्यागते नहीं
त्यागें कैसे, यह त्यागने भी दे। यह तो काटों की भाँति उलझ
लेती है।

लगा जिसने ओठों से इस मद को ली।
उसे इसने ततकाल काबू में की॥
रहा फिर न चूल्हे पर उसके तवा।
न वल बुद्धि पुंसत्त्व भी है हवा॥
न काया न माया न दाया रही।
न जाये न जायी न जाया रही॥
वे मुघड्ड बने दर दर फिरने लगे।
ग्रशित व्याधि होकर रिघरने लगे॥
प्रतिष्ठा औ निष्ठा सभी बैठे खो।
स्वकुल कान सनमान भी बैठे धो॥
लगे नाली लोरी में अब सूतने।
तो कूकुर भी मुख में लगे मूतने॥

बड़ी दुर्दशा अन्त में भोग कर।
तजा प्राण पापी को अपने वह नर।

यह सब सही है लेकिन करें क्या? मजा क्यों कर मिले। देखिये, कुँअर कर्म-जिन के कुल में किसी ने मदिरा को स्पर्श तक न किया और वे स्वयं भी इससे दूर ही रहे आज एक स्त्री के वशीभूत हो उसी मदिरा को पान कर लिए! थोड़ी ही देर में दोनों की वही दशा हुई जो प्रायः शराबियों की होती है। जिसे लिख कर हम कागज काला करना पसन्द नहीं करते। पहर रात बीते जब दोनों का नशा उखड़ा तो कुँअर ने उस सुन्दरी से पूछा—सुमुखी! मैं तुम्हारा नाम, ठाम, धाम, आदि जानना चाहता हूँ और जानना चाहता हूँ यह कि—तुम यहाँ इस घोर वन के इस कुटिल तहखाने के भीतर इस ठाट बाट के साथ कैसे किस लिये और कब से रहती हो?

सुन्दरी ने पहिले तो सुनी अनसुनी कर दी, परन्तु कुँअर के बार २ आग्रह करने पर उसने अपना नाम हेमाङ्गिनी बताया और उसी बात को दोहराया जिसे प्रेमा ने कुँअर को पहिली बार बताया था*। लेकिन उस योगी की चर्चा उसने न की क्यों नहीं की सो तो हम बता नहीं सकते। तब वह यह समझ कर योगी की चर्चा न की होगी कि दूसरे का नाम सुनते ही पुरुष को भी वही दुःख होता है जो स्त्रियों को। दूसरे का नाम न पुरुष सुन सकें न स्त्री ही। कहीं यह सुन कर दुखित क्रोधित संतापित और विचलित न हो जायँ यही विचार कर कुँअर कर्म ने भी पहिले पहिल शशि का नाम नहीं लिया था†।

कुँअर के यह पूछने पर कि तुम ब्याही हुई हो सुन्दरी ने जिसे अब हम हेमाङ्गिनी लिखेंगे—उत्तर दिया—हाँ मैं विवाही हूँ। परन्तु......

कुँ० कर्म०—हाँ परन्तु क्या?

हेमाङ्गिनी०—यह कि विवाह का केवल नाम ही भर पति सुख मैं जानती भी नहीं। क्योंकि द्विरागमन होते स्वसुर से खटपट हो गई। इसके बाद मैं वहाँ से चली अ

कुँ० कर्म०—(मन में) यह कठोर कुलटा जान पड़ तभो तो इसमें इतनी स्वच्छन्दता (आजादी) इतनी कता (निडरता) और इतनी वाचालता (बकवाद) झल है। जो हो, स्त्री अपनी सुंदरता में बेजोड़ है और यह हम विषय—वाउरों के लिए तो प्राण है। अब मैं शशि के नि सिर तोड़ाई न करके इसी से अपना तन मन लगाउ (प्रकट) अच्छा तो अब तुम्हारा क्या इरादा है और तुम चाहती हो?

हेमाङ्गिनी०—इरादा यही है कि अब शेष जीवन इसी में व्यतीत हो और चाहती केवल तुम्हें हूँ।

कुँ० कर्म०—मुस्कुरा कर—यह तो, तुम केवल बनाती हो। मेरे ही लिये तो तुम घर द्वार सास ससुर देवर आदि छोड़ी नहीं। अवश्यही इस त्याग का कोई कारण होगा। अपना गम्भीर रहस्य चाहे तुम न ब परन्तु वह साफ है। स्त्री जब तक किसी का सहारा न प तब तक अपना पाँव डेहरी के बाहर न धरेगी। मैं इसे म हूँ कि स्त्रियों की बरबादी के मूल कारण पुरुष हैं। तथापि कहे बिना भी नहीं रह सकता कि पुरुषों की बरबादी स्त्रियों ही के कारण होती है। मुझे ही देखो न! (शरा खुमारी में कुँअर साहेब को यह होश नहीं रहा कि मैं क्या रहा हूँ और इसका असर उस पर क्या होगा) स्त्रियों ह कारण तो मैं इस दशा को पहुँचा हूँ। राज पाट, माता पि

* देखिये भाग ३ पृष्ठ ८२ † देखिये भाग ३ पृष्ठ ५३

इष्टमित्र, सबको त्याग कर बन बन भटकता फिर रहा हूँ। स्त्री ही के पीछे तो पहिली बार आपके तहखाने में पहुँचा। स्त्री के पीछे कई बार कठोर कारागार भी भोग चुका। लाख रुपये पर पानी फिर गया फिर भी हाथ कुछ न लगा?

हेमाङ्गिनी०—स्त्री कौन वह भैरवी?

कुँ० कर्म०—भैरवी, भवानी, भूतनीं, तो न जाने कितनी मिल चुकीं।

हेमा०—फिर और कौन?

कुँ० कर्म०—वह है शशि।

हेमा०—कौन शशि?

कुँ० कर्म०—यह पूछ कर तुम क्या करोगी?

हेमा०—क्यों? इसमें हमारा क्या नुकसान है?

कुँ० कर्म०—वह है महाराजा महताबसिंह अजयगढ़ की बेटी।

हेमा०—उसका क्या किस्सा है?

कुँ० कर्म०—किस्स बड़ा लम्बा चौड़ा है। तब संक्षेप में यही है कि वह अभी कुमारी है। उसका विवाह होने वाला है हम चाहते हैं उसे बरना परन्तु वह मुझे नहीं चाहती।

हेमा०—बात काटकर—वह किसे चाहती?

कुँ० कर्म०— वह चाहती है चुनार के युवराज को।

हेमा०—चुनार के युवराज क्या आप से अधिक सुन्दर हैं?

कुँ० कर्म०—यहाँ सुंदरता का सवाल नहीं सवाल कोई दूसरा ही है।

हेमा०—वह क्या?

कुँ० कर्म०—वह है आपस की रगड़।

हेमा०—रगड़ कैसी?

कुँ०कर्म०-चुनार वाले चाहते हैं कि मैं वरूं और मैं चाहता

हूँ मैं वरूँ। इसीके लिये दोनों ओर से सिरतोड़ प्रयत्न हो रहे हैं। एक दूसरे को नीचा दिखाने की करोड़ों कोशिसें दिन रात जारी हैं। चार चतुर मेरी ओर से चार उन की ओर से छूटे हुये हैं। जिसका दाँव लग जाता है वही अपने प्रतिपक्षी को नीचा दिखाता है।

हेमा०—इससे फायदा?

कुँ० कर्म०—इससे यह फायदा सोचा गया है कि हम दोनों में से कोई एक थक कर बैठ जाय। ऊब कर अपना इरादा छोड़ दे, हार कर अपना विचार त्याग दे। जक उठा कर अपने इरादे से बाज आये। या एक दूसरे के वशीभूत हो। जिसमें विजयी अपना मनोरथ पूरा कर सके।

हेमा०—उस शशि में ऐसा क्या सुर्खाब का पर लगा है जिसके लिये आपस में कट मर रहे हैं?

कुँ० कर्म०—कुछ नहीं, तबीअत ही तो है।

दिल मिल जाना मुख्य बात है रूप कूरूप न आता है।
जिसकी जिससे लग जाती है वोही उसको भाता है॥

हेमांगिनी ने मन में कहा—यह कहिये न!

इसके किस्से में बड़े गौर का दुखड़ा निकला।
हीरा समझी थी जिसे काँच का टुकड़ा निकला॥

ओहो!

यह तो मुझसे भी बड़ा पापी और छिनला निकला।
दिल जलाने को मेरा हाय कहाँ आ निकला॥

ऐसे भँवरों से कलियों को क्या सुख जिसका मन ही स्थिर नहीं। अब तो दोही राह है और वह यह कि या तो इसकी यह आदत छुड़ा कर इसे ठीक रास्ते पर लाऊँ या इसे यहाँ से धता बताऊँ। तब यह धता बताने योग्य नहीं है वरन ठीक रास्ते ही पर ले आने योग्य है। क्योंकि यह अभी नौजवानी

को छूही रहा है। देखने में भी सुंदर है। राजपुत्र है। एक बड़े भारी रियासत का युवराज (शाहजादा) है। प्रेमी भी है और मुझ जैसी प्रेमा को एक ऐसे ही प्रेमी की आवश्यकता भी है। हाँ, तब इसकी वह आदत—जो कुसङ्गति के कारण पड़ गई है—छुड़ाने ही पर सुख मिलेगा और वह छूटेगी कुछ सख्ती से। प्रगट में उसने कहा, "युवराज ! अब आपका क्या विचार है ?"

कुँअर ने कहा—विचार वही है जो पहिले था। हाँ यह तो कहो कि आप किस विचार में हैं और क्या करना चाहती हैं ? यहाँ आप इकली हैं या और कोई है ? जिस प्रकार कुँअर ने शराब की खुमारी में अपना कच्चा चिट्ठा कह डाला हेमाङ्गिनी ने भी अपना कह सुनाया और कहा वह योगी इसी गुफा में तप कर रहा है। वर्ष में एक बार बसंत ऋतु में समाधि त्यागता और वर्षा के आरम्भ में फिर समाधिस्थ होजाता है।

कुँ० कर्म०–तो अभीतो उसकी समाधि छूटने में देर होगी।

हेमा०—हां, अभी तो उसने समाधि लगाई है।

कुँ०—तो तुम यहाँ से निकल क्यों नहीं चलतीं ?

हेमा०—कहाँ निकल कर जायें ?

कुँ० कर्म०—मेरे साथ मेरे राज्य में ?

हेमा०—(हँसकर) यह सुख कहाँ प्राप्त होगा।

कुँ० कर्म०—इससे भी बढ़कर सुख मिल सकता है।

हेमा०—झूठ बात है। ऐसा निर्जन स्थान, ऐसी रमणीय गुफा, ऐसा जड़ाऊ महल इन्द्र के पास भी है कि नहीं सो कौन बता सकता है। इसके बनवाने में करोड़ों के रत्न व्यय हो चुके। अब इसे त्याग कर कहाँ जाऊँ ? फिर मेरे साथ एक से एक बढ़कर रूपवती सहेलियाँ हैं उन्हें कैसे किसके पास कहाँ छोड़ जाऊँ ? मैं [illegible]

इस घनघोर जंगल में आई हूँ और अनोखा बिहार-भवन निर्मा
कराकर इसमें सुख पूर्वक रहती हूँ। यहाँ का सा विहार-सुख नंद
कानन में भी मयस्सर नहीं। तुम्हीं कहो तुम्हारा जी चाहत
है कि इसे छोड़ कर चलूं? फिर एक पुछल्ला योगी लग
हुआ है। वह कहीं चैन लेने देगा? यहाँ जो जी में आवे क
गुजरें यहाँ से बाहर पैर धरते ही उसके क्रोधानल में पड़न
पड़ेगा। जिसका फल यह होगा कि इहारविहार तो भाड़
गया उलटा कठोर कारागार का असह्य दुःख झेलना पड़ेगा
आप पर भी वह गज़ब ढाने से बाज न आयेगा। जान के ला
पड़ जायँगे। क्योंकि वह ऐसा वैसा पेटू भोगी नहीं पूरा पहुँच
हुआ योगी है। तीनों लोक की खबर रखता है और आ
प्रकार की सिद्धियाँ उसके वश में हैं।

कुँ० कर्म०—हाँ, इसी प्रकार एक और सुन्दरी हमें भैंसो
की पहाड़ी की तलेटी में मिली थी। उसे भी एक ऐसा
योगी वश में रखे है।

हेमा०—कुछ सोच कर-उसका नाम जानते हैं?

कुँ० कर्म०—नाम मंजरी है।

हेमा०—हँसकर-वह मेरी बहिन है। उसका भी किस्स
मेरा ही सा है। क्या उससे भी आपकी मुलाकात हो चुकी है

कुँअर कर्म ने उसका सारा किस्सा कह सुनाया और क
वह विचारी बड़ी सीधी साधी स्त्री है। उसने हमारे सा
बड़ा उपकार किया। उस दुष्ट योगी ने किसी अपराध पर उ
बड़ा मारा और मार कर पेड़ में टाँग दिया था। हमारे मि
ने उसकी बड़ी सेवा की और उसे चंगा किया। उससे
फिर मिलने का हम वायदा कर आए हैं।

हेमा०—हँसकर—तो आप इसी तरह सबसे वाय
करते होंगे?

कुँ० कर्म०—नहीं मैं अपना वायदा पूरा करूँगा। ज़रूर एकबार उससे मिलूंगा।

हेमा०—यहां से निकल पाओगे तब न मिलोगे।

कुँ० कर्म०—क्या यहाँ से निकलने में भी कठिनाई है?

हेमा०—तब क्या आप जानते हैं कि मैं स्वच्छन्द हूँ?

कुँ० कर्म०—मैं तो यही मानता हूँ।

हेमा०—आपकी भूल है। हाँ, यदि आप अपने वायदे पर चले आए होते तो और बात थी। अब तो आप हमारे क़ैदी हैं। हमारी इच्छा के विरुद्ध कुछ कर ही नहीं सकते।

कुँ० कर्मसिंह हेमांगिनी की मीठी पर गूढ़ बातों का कुछ उत्तर न देकर मन में कहने लगे—"बड़ी कठिन समस्या है इसकी पूर्ति करना बड़ी चतुरता का काम है। जो हो, या यही मुझे यहां उलझा रखेगी या मैं इसे ही यहाँ से ले भागूंगा। दो में से एक जरूरी होना है।"

इतने ही में सबेरा हो गया। दोनों उठकर अपने २ नित्य कर्म में लगे।

ग्यारहवाँ परिच्छेद।

पाठक! आइए अब आपको कंतिक की चांडाल चौकड़ी से मिलावें और देखें कि शिवपुर के बंगले में क्या छन रही है।

दूसरे दिन शिवपुर के बँगले में धूर्तों की भारी बैठक हुई। सीताराम, शंकर, भोजदत्त, रामनाथ, यूसुफ, करीम, जानकी और मानकी सभी जमा हुए और आपस में बहस मुबाहिसा कर निश्चय किये कि यूसुफ और करीम दोनों संतसिंह की खोज में निकलें और शंकर, सीताराम, भोजदत्त और रामनाथ कुँअर साहेब की तलाश करें। जानकी और मानकी अपना भेष बदल कर चुनार में रहें। यूसुफ और करीम को मदद की जरू-

रत पड़े तो उन्हें दोनों मदद देवें। क्योंकि संतसिंह चुनार क
क़िले ही में होगा। अब वे किसी को तहखानों में न रखेंगे
अस्तु चुनार के क़िले की कड़ी देख रेख रखी जाय।

इसी निश्चय के अनुसार जानकी मानकी यूसुफ औ
करीम भेष बदल कर चुनार को रवाना हुए। शंकर, सीत
राम, भोजदत्त, रामनाथ, ये चारो भेष बदल कर उसी ओर क
चले जिधर कुँअर कर्मसिंह छूट गये थे। रास्ते में इन लोगों
विचारा कि यदि वह स्त्री-जो कुँअर को उड़ा ले गई-भैरवी क
तरह कोई धूर्ता (ऐयारा) रही तब तो वे (कुँ० कर्म) चुना
के क़िले में पहुँचे और यदि वह योगिनों वा मायाविनों में
कोई थी, तो अवश्य वह किसी तहखाने में उड़ा ले गई।

भोजदत्त ने कहा—भाई मुझे तो ऐसा मालूम होता है
वह स्त्री कोई उन्हीं में की थी जिनकी मेहमानी कर चुके हैं।

शंकर०—अर्थात् मंजरी ?

भोज०—हां मेरा तो यही अनुमान है।

शंकर०—वह या उसकी सहेलियां ऐसा छलचन्द (धू
र्ताई) नहीं कर सकतीं। फिर वह हमारी पूरी शुभचिंति
(खैरखाह) है। कुँअर को भली भांति जानती है। उससे उन
मुलाकात भी हो चुकी है। वह क्यों ऐसी रचना रचने लगी

सीता०—उनपर तो मुझे भी शुभा नहीं है। हाँ यह
सकता है कि वह स्त्री उन योगिनों में की रही हो जिनके य
एक बार भैरवी के साथ मेहमानी खा आए थे !

रामनाथ०—अर्थात्; चोपन में ?

सीताराम०—हाँ हाँ चोपन के तहखाने में।

शंकर०—यह सम्भव (मुमकिन) है। क्योंकि उनसे कुँ
साहेब वायदा भी करके आये थे कि घर जा कर लोगों
मिलमिला कर वापिस चले आयेंगे।

सीताराम०—यह कैसे मालूम हुआ कि वे उन मायाविनों से ऐसो प्रतिज्ञा कर के आये हैं और उन्हीं की ज़बानी यह भी मालूम हुआ कि यदि समय पर वहां न गए तो वे जहां पावेंगी धर पकड़ कर ले जायँगी। अस्तु बहुत सम्भव है कि वे वहीं पहुँचे हों।

रामनाथ०—क्या यह सम्भव नहीं कि वह किसी भले घर की स्त्री रही हो-जैसा उसने कहा था-और वह भैरवी की भांति कुँअर की आँखों में गड़ गई हो। और उसे उड़ा कर कुँअर साहेब कहीं एकान्त में निकल गए हों।

सीता०—इसमें भी कोई सन्देह नहीं, ऐसा भी हो सकता है। कुँअर कर्म ही तो ठहरे।

भोजदत्त०—अच्छा चलो पहिले दक्खिन के पहाड़, खोह, दर्रे और तहखाने ढूंढ़ते खोजते चोपन की ओर निकलें। यदि इन स्थानों में उनका पता न लगे तो चुनार का क़िला घेरें।

सीताराम ने कहा—भाई! सबसे अच्छा हो कि चलो पहिले बाबा सिद्धनाथ से मिलें और उनसे उनका पता पूछ कर तब कहीं निकलें। यों मारे २ फिरने से यह अच्छा है। बिना पते के कहाँ कहाँ उन्हें ढूढेंगे और कबतक ढूँढ़ते रहेंगे?

यही राय सबों ने पसन्द की और वे सब काली खोहपर पहुँचे। बाबा सिद्धनाथ को सबों ने दंडवत किया। "क्या है बच्चा सीताराम! अच्छे तो हो न" कह कर बाबाने आशीर्वाद दिया। सीताराम ने कहा—बाबा, आज आठ रोज हुए कि कुँअर साहेब फिर गायब होगये हैं। पता नहीं कि वे किधर निकल गए। वे खुद कहीं निकल कर चले गए हैं अथवा किसी धूर्त के जाल में पड़ कर कहीं छिपाए गए हैं?

बाबा सिद्धनाथ अपने दोनों नेत्र बन्द कर कुछ देर कुछ विचारते रहे। उपरान्त नेत्र खोल कर पहिले तो वे हँसे पीछे

कहने लगे, बच्चा ! यह कुँअर तो बड़ा लम्पट निकला। राउ
जितेन्द्र मोहन ने इसे लाड़ में बिगाड़ डाला। राजकुमारों व
चाल ढाल इसे सिखाया ही नहीं गया और न राज्य दरबा
का ही कुछ ढंग ढब इसे आया। भला यह आगे चल क
इतना बड़ा राज्य क्योंकर सम्हाल सकेगा ? इसमें राजपुत्र
लक्षण नहीं और न इसे कुछ पढ़ाया लिखाया ही गया। न
मालूम जितेन्द्र किस आधार पर इसे चला रहा है। और उस
अपना भविष्य क्या सोच रक्खा है ?

सीता०—बाबा, राजा साहेब तो बहुत समझाते बुझा
रहते हैं लेकिन वे उनकी सुनते ही नहीं। उन्हें भी वे झट
और फटकार देते हैं।

बाबा०—सो तो उचित ही है। जब तक पौधा नरम
तभी तक उसे जैसे चाहो वैसे टेढ़ा सीधा करलो कड़ा हो
पर फिर उसमें वह बात न पाई जायगी। बालकों को प्रारम्
ही से ऐसे रास्ते पर चलाना चाहिये जिसमें वे आगे चल व
पथ-भ्रष्ट न हो जावें। उन्हें जाति अनुकूल कुलानुकूल समय
नुकूल अवस्थानुकूल शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिये। मात
पिता अथवा इन दोनों के अभाव से अन्य अभिभावकों व
यह कर्तव्य है कि वे बालकों की देख रेख उसी प्रकार र
जिस प्रकार माली अपने पौधों की देख रेख रखता है। य
वह ऐसा न करे तो यह पौधे का नहीं वरन्—उसी माली व
अपराध है।

पौधे में पानी अधिक है कि कम, उसकी जड़ में कोई की
तो नहीं लग रहे हैं, उसके आस पास घाँस फाँस कंटक आ
तो नहीं उगे हैं, कोई लता बेलि आदि तो उसे नहीं हा
पहुँचा रही हैं, वह सीधा है कि नहीं, इत्यादि २ बा
माली ही देखता है। यही बातें माता पिता को भी ध्यान रख

योग्य है। जितेन्द्र मोहन ने कर्म की देख रेख में बड़ी असावधानी रखी। हद से ज्यादा लाड़ रखा। जिसका फल यह हुआ कि अब वह वश के बाहर हो उच्छृङ्खल होगया। अब तो वह "धोबी का कुत्ता न घर का रहा न घाट का।"

ह ह ह! अब वह किसी कुलटा के फेर में पड़ कर ऐसे अगम स्थान में पड़ा है कि उसका उसमें से निकलना ही कठिन है। वह यहाँ से पूर्व-दक्खिन दिशा की ओर है। यदि आप लोग वहाँ जाना तो सम्हल कर जाना। क्योंकि वह कुलटा एक सिद्ध के वश में है जो बड़ा मायाबी है। वह स्वयँ मायाविनी की नानी है।

सिद्धजी को प्रणाम कर वे लोग चोपन की ओर प्रस्थान किये। राह में सीताराम ने कहा—भाई शंकर! जरा सजग होकर चलना कहीं राह में उन सबों से मुठभेड़ न हो जाय। क्योंकि उनके गुप्तचर आजकल बड़ी धूम मचाए हैं। विंध्याचल देवी के धाम में कल्ह मुझे चुनार के कई एक चर दीखे थे। हमारी यात्रा का पता लगाने ही के लिये नाना रूपधारी चर फिर रहे हैं। अस्तु मार्ग में हमें चौकन्ना होकर चलना चाहिये।

भोजदत्त ने कहा—मार्ग में जहाँ कोई मिले—चाहे वह किसी रूप और किसी अवस्था में क्यों न मिले—शीघ्र उसका विश्वास न किया जाय। पथिकों का दिया हुआ किसी प्रकार का भोज्य पदार्थ—पान, सुरती, तम्बाकू, चिलम, गाँजा भाँग आदि भी—न लिया जाय और यदि आदरार्थ किसी से ले भी लिया जाय तो उसे खाया न जाय। अपने निर्दिष्ट मार्ग को छोड़ कर किसी अपरिचित पथिक के साथ दूसरा मार्ग ग्रहण न किया जाय। जब तक अपने से कोई प्रश्न न करे उत्तर न दिया जाय। मन की बात चार के सामने न कही जाय।

रामनाथ०—हँसकर—वाह गुरूजी ! आपने तो चटसा
खोल दी । सारा उपदेश आज ही दे डालेंगे ? कुछ कल्ह
लिये भी रख छोड़िये !

इसी प्रकार दिल्लगी मज़ाक करते चारो धूर्त फ़कीरों
भेष बनाए अहरौरा की पहाड़ी पर पहुँचे । कम्बल की कफन
पहिरे लम्बा चिमटा जिसमें एक बड़ा लोहे का छल्ला (कड़ा
पड़ा हुआ था—हाथों में लिये अहरौरा की बाजार में आ
और एक साफ सुथरे पेड़ के नीचे आसन लगाए । शा
हो गई थी इसी कारण आज इसी बाजार में डेरा डालन
निश्चय हुआ । बाजार से कुछ खरीद कर भोजन पान कि
और उसी पेड़े के नीचे चारो सो रहे ।

आधीरात बीते महेसूसाहु घी वाले के घर में चोर पैठे
चोर कुछ माल ले गए कुछ ले रहे थे कि जगार होगई । चोर
का हल्ला सारे बाजार में मचा । अपने २ घरों से लोग निक
कर बाहर आये । किधर है, कौन है, कहाँ गया, क्या हुआ
यह गया, वह गया, करते वे लोग चारों ओर दौड़ने लगे । कु
लोग वहाँ भी आए जहाँ ऊपर लिखे चारो धूर्त फकीरों
भेश में भूमिपर पड़े बेखबर सो रहे थे । उन लोगों ने देखा
कुछ माल इन फकीरों के पास पड़ा है । चट वे चोर २ चिल्ल
कर उन चारों को पकड़ लिये और चारों ओर से उनपर मा
पड़ने लगी ।

"अरे बाबा हम चोर नहीं हैं, सुनो २ मारो नहीं" इत्यादि
कहते वे चारो धूर्त खड़े हो गये और उनसे बोले—बाबा
हम फकीर हैं चोर नही । यह माल कोई दुष्ट हमारे निकट डाल
कर भाग गया है । हम माल टाल क्या करते ?

बाजार वालों ने कहा—हाँ हाँ, हम जानते हैं कि तुम चोर
नहीं बड़े साहुकार हो । तुम्हारी शक्ल ही साहूकार की है

(एक चाँटा, रामनाथ को लगाकर कहा—फकीर बने हैं बेईमान माल चुरा कर फ़कीर बने पेड़ के नीचे सोते पड़े हैं।

उन सबों ने इन चारों को पकड़ कर जमादार के सुपुर्द किया। चौकी में ले जाकर जमादार ने बड़ी मार मारी और सबों का चालान चुनार को कर दिया। रात भर सब हवालात में रहे। दूसरे दिन न्यायालय में पेश किये गए। गवाही साखी गुजरने के बाद उनपर अपराध प्रमाणित हुआ। हाकिम ने एक २ वर्ष की सजा चारों को सुनाई। चारों धूर्त जेहल भेजे गए और वहाँ जेहल का कार्य करने लगे।

जिस दूत ने चोरों का माल उठाकर इन चारो फकीरों (धूर्तों) के पास धर दिया था वह चुनार पहुँचा और उन चारों की गिरफ्तारी की खबर ध्यानसिंह को दिया। ध्यानसिंह ने पूछा—तुम्हें चोरी का माल कैसे मिला ?

उस दूत ने उत्तर दियाः—ठाकुरसाहेब ! कल्ह मुझे मालूम हुआ कि कंतित के चारो धूर्त अहरौरा के बाजार में ठहरे हैं। मैंने लखुआ और सधवा को महेसूसाहु घी वाले के घर में चोरी करने को भेजा। वे दोनों महेसू के घर में घुसे और एक संदूक उठा कर इन चारों के पास धर कर चल दिये।

बाजार वाले इनके पास संदूक देख चारों को पकड़ लिये और उन्हे जमादार के सिपुर्द किये। सुनते हैं कि आज न्यायालय (अदालत) से चारों को एक २ वर्ष की सज़ा का हुक्म हुआ है।

ध्यानसिंह ने उस दूत को बड़ी फटकार बताई और कहा यह काम अच्छा नहीं किया। धूर्तों का दर्जा रियासतों में मंत्रियों से कम नहीं है। ऐयारी में फाँस कर मन चाहे जितनी उनकी साँसत कर लेवें और चाहे जैसी कठोर से कठोर

यन्त्रणा पहुँचावें परन्तु चोरी चमारी में फाँसना नीचों का काम है। मार भी उनपर पड़ी ही होगी ?

दूत०—जी हाँ, मार तो खूब पड़ी।

ध्यान०—छिः छिः बड़ा बुरा बर्ताव किया गया। तु किसने कहा था कि तुम ऐसा करो ?

दूत०—किसी ने नहीं, हमने अपने मन से ऐसा किया।

ध्यान०—खैर अब कान पकड़ो फिर कभी ऐसा क न करना।

दूत को समझा कर ध्यानसिंह कुँअर शमशेरबहादुरसिं के पास आए। उन्होंने उनसे सब क़िस्सा कहा। वे भी सु कर बड़े दुखी हुए और बोले कि जमादार को भेज कर फौर उन्हें किले की हवालात में ले आओ। एक उनका साथी उस है ही ये चारों भी उसी के साथ रखे जायँ।

ध्यानसिंह ने जमादार को भेजा और हुक्म दिया कि उ चारों क़ैदियों को क़िले की हवालात में रखो। जमादार सला करता हुआ जेहल को रवाना हुआ।

—:***:—

बारहवाँ परिच्छेद।

—:***:—

पाठक महाशय ! आइए अब आपको जेहल पर ले चलें जेहल में जाने से हिचकिचाइएगा नहीं। और न यही विचारि येगा कि जेहल में चोट्टे उठाएगीरे, बदमाश और डाकू ही जा हैं। भलेमानुस, हाकिम, हुक्काम; राजे, महाराजे, मन्त्र मुसाहिब, आला, अदना सभी जाते हैं। कृष्ण भगवान का त जन्म ही जेहल में हुआ। फिर माता का उदर भी तो जेह ही है। नौ मास की कठोर सजा काट कर जीव उदर रू जेहल से बाहर निकलता है। इसके अतिरिक्त हमलोग त

जेहल घर बस्ती बीराना ज़मीन आसमान सब बराबर समझते हैं और सभी ठौर बिना बुलाए आ जा सकते हैं अस्तु आइए देखिये वही चारों फकीर (चारों धूर्त-सीताराम-भोजदत्त, रामनाथ, शंकर) कठघरे में कुछ सलाह कर रहे हैं

शंकर०—सीताराम ! मैं इस कठघरे की तीलियाँ तोड़ता हूँ और तुम इसके बाहर निकल कर इहाते में से कुछ लोहे की कीलें और रस्सियाँ ढूँढ़ लाओ। अभी रात आधी है। सिपाही ऊँघ रहे हैं। यही मौक़ा है कि इसमें से निकल भागें। यह कह उसने लोहे की छड़ को इस ज़ोर से सामने को खींचा कि वह लड़की के चौखटे को चीरती हुई बाहर छटक पड़ी।

चारों धूर्त जंगले के बाहर निकले। लोहार खाने में घुस कर पाँच चार लोहे की कीलें उठा लाए। सीताराम रस्सी-खाने में पैठ कर दो मोटे रस्से उठा लाया। जेहल में लोहार खाने रस्सी आदि होते ही हैं अस्तुः, किसी के लिये अधिक भटकना न पड़ा सब पास ही मिल गया।

शंकर दीवार में लोहे की कील गाड़ता और उसी पर पाँव धरता हुआ दीवार के मुंडेरे पर चढ़ गया। वहाँ उसने एक मजबूत कील गाड़ी और उसी कील में रस्से का शिरा बाँध कर उसे जेहल की ओर लटका दिया और सीताराम से बोला—इसी रस्से को पकड़ कर ऊपर चले आओ। सीताराम उसी रस्से को पकड़ कर ऊपर चढ़ गया। उसके बाद भोज, भोज के बाद रामनाथ चढ़ा। शंकर ने उस रस्से को जेहल की सहन से खींच कर दीवार के दूसरी तरफ फेंक दिया और चारों उसी रस्से के सहारे दीवार के मुंडेरे पर से नीचे को उत र आए। रात अभी एक पहर बाकी थी चारो जन कैलाहट होते हुए फिर अहरौरा पहुँचे और एक आम की बारी में छिप कर दिन बिताए। एक पहर रात जाते ही शंकर और

सीताराम दोनों बाजार में गये और कुछ ज़रूरी सामान ख़री और कुछ गुप्त प्रबन्ध कर बारी में लौट आए।

आधी रात बीतते ही चारोंजन रापटगंज की ओर प्रस्था किए। भोर होते ही रापटगंज की बाजार में पहुँचे। एक हल वाई की दूकान पर उतरे। नहा धो जलपान कर आगे की रा लिए। दिन रात चल कर दूसरे दिन भोर के समय चोपन पहुँचे

चोपन के तहखाने का हाल कुँअर कर्मसिंह की जबानी सु चुके थे। किस स्थान पर वह तहखाना है यह भी जान चुके थे इस कारण उस तहखाने तक पहुँचने में कोई दिक़त न पड़ी

चोपन एक घना जंगल हैं जिसमें हिंसक जन्तुओं की कमी नहीं। बारह चौदह हाथ के खूँखार शेर यहाँ मिलते हैं। खैरव और चोपन यही दो भयानक जंगल है जिसमें प्रवेश करते भय मालूम होता है—इसी घने और भयानक बन के भीतर ऊपर कहा तहखाना है। पाठकों को इस तहखाने का सच्चा हाल अब आगे चलकर मालूम होगा।

ये चारो धूर्त तहखाने से दो तीन सौ क़दम के फासले पर एक घनी और दूर तक फैली हुई झाड़ी के भीतर अपना डेरा डाले। अहरौरा से खरीदा हुआ सौदा उसी की आड़ में छिपा कर चारों दक्खिन की ओर जल की खोज में निकले कुछ दूर जाने पर एक पहाड़ी नदी मिली। उसी नदी में स्नान कर कुछ जलपान किये और एक पत्थर की चिकनी शिला पर बैठ परपस्र विचार करने लगे।

शंकर ने कहा—यह स्थान बड़ा भयानक है। यहाँ मनुष्यों की गंध भी नहीं किससे पूछें और कैसे पता चले। यह कैसे मालूम हो कि इसी तहखाने में कुँअर साहेब हैं?

सीताराम बोला, भाई कुछ देर ठहरो देखो कोई आता जाता नज़र आए तो कुछ पता चले।

भोजदत्त ने कहा—भाई सीताराम ! तहखाने में उतर कर देखें आप ही पता चल जायगा।

सीताराम ने कहा—इस तहखाने में उतरना अपने को खतरे में डालना है। हाँ यह मालूम हो जाय कि यह तहखाना कैसा है, इसमें कौन रहता है, कुँअर भी इसमें ही हैं तो इसमें उतरें भी। उस समय यदि ख़तरा भी होगा तो उसे झेल लेंगे। परन्तु बिना समझे बूझे अचानक किसी अपरिचित स्थान में घुसना बुद्धिमानी नहीं है। ठहरो देखो आज कल्ह में कुछ न कुछ उपाय तो करेंहींगे। ऐसे काम बहुत सोच समझ कर किये जाते हैं। यह कह वे उसी स्थान पर लौट आए जहाँ सामान धर गये थे। इस स्थान से तहखाने का फाटक भली-भाँति दीखता था, परन्तु झाड़ी के भीतर बाहर वालों की दृष्टि नहीं पहुँचती थी।

सूरज डूबते ही तहखाने का फाटक खुला। एक बड़ा मोटा ताजा तोंदिला पुरुष फाटक के बाहर निकला। इसकी अवस्था पचास वर्ष से कम की न होगी। फिर भी यह बड़ा गठीला और मजबूत मालूम होता था। यह पुरुष बाहर निकल कर इधर उधर टहलने लगा। कुछ ही देर में पाँच सुन्दर स्त्रियाँ जो अवस्था में अट्ठारह बीस वर्ष से अधिक की न होंगी—परस्पर गलबहियाँ डाले फाटक के बाहर निकलीं।

यह देख सीताराम और शंकर दोनों चौकन्ने हो भोजदत्त और रामनाथ से बोले—तुम दोनों इसी झाड़ी में दुबके हुए फाटक की आमदरफ्त (आवागमन) पर कड़ी निगाह डाले ऐसे पड़े रहो कि उन सबों को तुम्हारी परछाईं भी न दीखे। इसी झुरमुट में से तुम दोनों यह देखते रहो कि फाटक के भीतर से कौन आता है और वह किधर को जाता है।

रामनाथ भोजदत्त को समझा बुझाकर शंकर और सीता-

राम उन पाँचों स्त्रियों के पीछे अपने को इस प्रकार छिपा हुए चले कि उन्हें इनकी आहट न लगी।

वे पाँचों स्त्रियाँ आपस में हँसी ठट्ठा करती फाटक से कु दूर निकल आईं और एक घनी बारी में पैठ कर ताली बजा ताली की आवाज़ पर उस बारी के बीच की धरती को चीर हुए दो लोहे के पल्ले ऊपर को उठ कर दोनों बाजुओं की ओ गिरे और एक काला कलूटा कोल उसके बाहर निकल उ पाँचों को सलाम किया और हाथ से नीचे उतरने का इशार किया।

उस कोल का इशारा पाते ही वे पाँचों स्त्रियाँ मुस्कुरात हुई उस दरार में पैठीं पीछे वह कोल भी उस गढ़े में उत दोनों लोहे के पल्ले दोनों हाथों उठाकर दरार को ढँकता हुअ भीतर गुम हो गया।

शंकर और सीताराम इस घटना को छिपे हुये देख रहे थे। उनके चले जाने पर दोनों उस दरार पर आए। देखा तो लोहे के चौखटे में दो मोटे २ लोहे के पल्ले जड़े हैं जिनकी कुंजी भीतर की ओर है। बाहर से दोनों पल्ले बिना कील कांटे और केवाड़ों के सफाचट हैं। यदि कोई चाहे कि उन पल्लों को बाहर से उठावें तो उठ नहीं सकते। क्योंकि बाहर से हाथ में पकड़ने को कोई कड़ा कड़ी वा धरान नहीं है।

सीताराम ने कहा—भाई शंकर! यह भी कोई तहखाना है। इसके भीतर वह कोल आठों पहर बना रहता है और जब वह इशारा पाता है तब इसे भीतर से खोलता हुआ बाहर निकल आता है। इसे यदि वश में कर सकें तो इसके भीतर का रहस्य मालूम हो।

शंकर ने कहा—हाँ यह तो ठीक है, परन्तु इसके वश में करने की क्या तरकीब है?

सीता०—बेहोश करके किसी झाड़ी में डाल देवें और इसी की शक्ल बना कर फाटक पर खड़े हों। इस विधि से इसके भीतर का रहस्य खुल जायगा।

शंकर०—रहस्य के जानने में न मालूम कितना समय लगे तब तक यह कहाँ अचेत रक्खा जा सकेगा। यहाँ कोई ऐसा स्थान भी नहीं जहाँ यह छिपा कर रखा जावे।

सीता०—तब क्या करें ?

शंकर०—कुछ नहीं। इस समय डेरे पर चले चलो कल्ह मैं एक तरकीब बताऊँगा।

यह सलाह कर दोनों अपनी झाड़ी में वापिस चले आए। रामनाथ और भोजदत्त दोनों को वैसे ही बैठे पाए जैसे उन्हें छोड़ गए थे। सीताराम ने भोजदत्त से पूछा, कहो भाई "नया समाचार" ?

भोजदत्त ने कहा—आपके जाने के बाद फिर कोई आया गया नहीं। वही मोटा आदमी कुछ देर तक इधर उधर टहलता रहा बाद को वह भी फाटक बन्द कर भीतर चला गया।

शंकर सीताराम भोजदत्त और रामनाथ चारो जन बहुत दबे पाँव चुपचाप उस फाटक पर आए। मोमबत्ती जला कर देखा तो इस फाटक का भी वही हाल है जो बारी वाले फाटक का है। अर्थात् यह भी भीतर से ही बन्द होता और खुलता है। बाहर इसके भी कुंडी कुंडा ताला कुंजी कुछ नहीं है।

शंकर ने चुपके से कहा—यह तरकीब अच्छी है। भीतर ही से खुले और भीतर ही से बन्द हो ऐसा तहखाना एक यही देखने को मिला है। लाख सर पटकने पर भी बाहर से इसे कोई खोल नहीं सकता और न बन्द ही कर सकता है। यह तहखाना नहीं क़िला है। इसे बाहर से दुश्मन खोल न लेवें इस कारण इसकी कुंडी भीतर रखी है और यदि कोई चाहे कि

किसी को इसके भीतर बन्द रक्खें तो यह हो नहीं सकता
बाहर से बन्द यह होने ही का नहीं।

सीताराम ने कहा—अच्छा तो चलो कुछ जलपान करें
अब जो कुछ होगा कल्ह देखा जायगा। हाँ, वे पाँचों स्त्रि
अभी वापिस नहीं आईं ?

शंकर०—वापिस रात में आयेंगी कि नहीं; अथवा आयें
ही नहीं, यह कौन बता सकता है। फिर यह भी संभव है कि
भीतर इस तह का रास्ता उसमें और उस तह का रास्ता इस
हो और वे उसी रास्ते जहाँ से आई थीं चली गई हों। यह तो
तभी मालूम होगा जब अपनी आँखों उन्हें देखेंगे। आओ चलें
अब जलपान कर विश्राम करें। कल्ह देखा जायगा यह कह वा
उन तीनों साथियों के साथ उसी झाड़ी में आया और वहाँ
चारों अपना २ विस्तरा लगा जलपान कर विश्राम करने लगे

अभी इन चारों की आँखें झपकी ही ले रही थीं कि भोज
दत्त को पूर्व दिशा में दीपक का उजेला दीखा और बह विस्तर
पर पड़े ही पड़े शंकर से बोला—शंकर भाई! देखो २ इस घनी
अँधेरी में दीपक की रौशनी सी वह क्या झलकती है ?

शंकर ने देख कर कहा—वहाँ कोई पहाड़ी का घर होगा
उसी के घर का दिया झलकता है।

रामनाथ ने कहा-जंगलों पहाड़ों बीहड़ों में रात के समय
इसी प्रकार के दृश्य दीखा करते हैं। इसमें लोग कुछ प्रेत
पिशाच का अनुमान किया करते हैं।

भोजदत्त०—अजी यह सब झूठे खयालात हैं। वास्तव में
यह दीपक बलता है और वह धीरे २ सामने को बढ़ा आ रहा है

सीताराम भी चौंककर उठ बैठा और उसे देख कर कहने
लगा-हाँ, दीपक का ही प्रकाश मालूम होता है। कोई व्यक्ति
उसे लिए इसी ओर को आ रहा है।

रामनाथ ने कहा--भाई साहेब ! यह न दीपक है न आग है और न यह किसी पहाड़ी के घर का चिराग है। यह है प्रेत क्रीड़ा। अँधेरी रात में प्रायः ऐसे कुतूहल देखने में आते हैं। देखो न वह कभी तेज कभी मन्द कभी झलकता ही नहीं है। कभी वह आगे बढ़ता दिखाई पड़ता है कभी पीछे। कभी दायें बायें भी चलता नज़र आता है। मैं सच कहता हूँ कि यह दिया उआ नहीं भूत है।

शंकर ने हँसकर उत्तर दिया—कभी भूत देखा भी है ?

रामनाथ०—(जोर देकर) देखा तो नहीं सुना है।

शंकर०--(हँसकर) बस तो अब चुप रहो। आखों की गवाही के आगे कानों की सफाई कुछ नहीं। कान आँखों की अपेक्षा झूठे होते हैं।

रामनाथ०--तब यह क्या बला है तुम्ही कहो न ? देखो अब तो वह बहुत निकट चला आ रहा है !

शंकर०—आने दो सामने आपही जौहर खुल जायगा।

रामनाथ—जब वह सामने पहुँच कर खोपड़ी पर सवार होगा तब आप...

शंकर०—हँसकर—तो क्या करें उसके डर से भागें ? और भागें भी तो किधर भागें ? तुम्हारे अनुमान के अनुसार यदि वह प्रेतही है तो क्या भाग कर उससे बच सकते हैं ? बिलकुल लड़कपन की बातें हैं।

इधर ये दोनों आपस में झगड़ ही रहे थे कि वह दीपक सौ गज की दूरी पर दिखलाई पड़ने लगा। अब वह साफ दीपक मालूम होने लगा और यह भी निश्चय हो गया कि उसे कोई लिये चला आ रहा है।

कुछ ही मिन्टों में वह दश गज के फासले पर आ पहुँचा। देखा तो एक चौबीस वर्ष की गोरी स्त्री एक

में कुछ फूलों का हार कुछ गुलदस्ते धरे लपकी चली आ रह
है। यह देख ये चारों धूर्त चौकन्ने हो उठ बैठे। वह स्त्री ज
इन चारों के पास पहुँची तो ठिठक कर खड़ी हो गई औ
बड़ी मीठी आवाज में—क्योंकि उसकी आवाज कुछ मीठी
थी—बोली:—"आप लोग कौन हैं"?

सीताराम ने उत्तर दिया—हम लोग पथिक हैं। राह भू
गए हैं इस कारण रात इसी झाड़ी में काट रहे हैं।

स्त्री०—कुछ सहम कर—आपने तो स्थान अच्छा न
चुना है। यहाँ रहने में प्राण जाने का भय है?

सीता०—सो कैसे?

स्त्री०—मैं कैसे बताऊँ?

सीता०—फिर भी तो कुछ कहें?

स्त्री०—क्या कहूँ मुझसे तो कुछ कहा ही नहीं जाता
अच्छा हो कि आप लोग—यहाँ से पूरब दो कोश पर
स्थान है जहाँ दो चार पहाड़ियों के घर भी हैं—वहाँ च
जायँ और वहीं रात काटें।

सीता०—यहाँ किस बात का भय है उसे तो आप बता

स्त्री०—मुझे इतना समय नहीं है कि मैं आप से क़िस
कहूँ। मुझे आज योंहीं देर हो गई है जिसके कारण डाँट प
कार खानी पड़ेगी। आप से जो मैं कहती हूँ उसे सुन लें
उसके अनुसार काम करें वरना बड़ी मुसीबत में पड़ जायें
आप लोग पथिक हैं, रास्ता भूले हुए हैं। आपको मालूम
कि यह स्थान किसका और कैसा है। इसी से आप नि
यहाँ डेरा डाले पड़े हैं। यह आपका सौभाग्य है जो मु
भेंट हो गई। यदि मैं आध घंटा और देर कर के आती
आपको मालूम हो जाता कि हम कहाँ ठहर गए! अभी
कुछ बिगड़ा नहीं है आप लोग यहाँ से चल दें और जो स्

मैंने आप को बतया है वहाँ जाकर निष्कंटक रात काटें। और जी चाहे तो वहाँ दो चार रात काट लेवें। यहाँ आप एक छन भी न ठहरें। यह स्थान हेमारानी का है जो बड़ी जबर्दस्त जल्लाद है। इसके इलाके भर में कौव्वा नहीं बैठने पाता। मनुष्यों की बू पाते ही वह उनके जानकी गाहक हो जाती है। न जाने कितने पथिक कितने शिकारी उसके कोप में खाक हो गये। उसके सवार अब आने ही वाले हैं। रात भर इधर उधर गश्त लगावेंगे और जो उनके सामने पड़ेंगे उसे वे वहीं तलवार की धार उतार कर पिंड छोड़ेंगे। उसका हुक्म है कि—मेरी सीमा में कोई पुरुष पाँव न धरे और जो धरे वह जीवित न लौट कर जाये"। इसी भय से मैं हमेशा रात को अकेली आती हूँ और अकेली ही लौट जाती हूँ। घर में पुरुष रहते भी साथ नहीं लाती।

सीता०—तो उनके यहाँ कोई पुरुष नौकर भी न होगा?

स्त्री०—जी नहीं, सिवा दो पुरुष के और कोई नहीं सब स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ हैं और वे स्त्रियाँ भी युवा और कुँआरी हैं!

सीता०—वे दो पुरुष कौन हैं?

स्त्री०—एक तो उनका सरदार है जो फाटक पर रहता है। और दूसरे को मैं नहीं जानती।

सीता०—आप कौन हैं और क्यों नित्य उसके पास—वह भी रात में—जाती हैं?

स्त्री०—मैं मालिन हूं। फूलमाला लेकर जाती हूं। इतनी रात में क्यों जाती हूं यह मैं इस समय नहीं बता सकती। क्योंकि इतना समय मुझे नहीं है कि मैं आप को समझाऊँ। बस, आप जाइए जहाँ मैं कहती हूँ वहीं रात काटिये।

सीता०—अच्छा इतना तो बता दो कि आपका घर वहीं जहाँ हमें टिकने को कह रही हैं?

"हाँ मेरा भी घर वहीं है" कहती हुई वह फाटक की ओर बढ़ी और न जाने क्या इशारा कि की वह फाटक तुरंत खुल गया। फाटक के खुलते ही वह स्त्री अन्दर फाटक के चली गई और डेहरी के भीतर पाँव धरते ही वह फाटक बन्द हो गया।

मालिन के जाते ही सीताराम को बाबा सिद्धनाथ का वचन याद आया और चारोजन तुरंत अपना २ बिस्तर उठा उसी स्थान को प्रस्थान किये जहाँ वह मालिन बता गई और एक आम की बारी में विस्तर लगाकर सो रहे।

—*:*:*—

तेरहवाँ परिच्छेद।

पाठक महाशय! इन चारों धूर्तों को जिनका वर्णन पिछले परिच्छेद में किया है। इसी बारी में छोड़ें और चलें तनि कुँअर कर्मसिंह का कुलेल देख आवें।

हेमाङ्गिनी और कुँअर कर्मसिंह की परस्पसर की बा हमारे पाठक सुनही चुके, दोनों के कच्चे चिट्ठे भी पढ़ लि और मालूम कर लिये कि दोनों ही पापी हैं। दोनों का नम्ब चढ़ा बढ़ा है। ऐसे पापियों के पापमय हृदय में सच्चे प्रेम व निवास कैसे हो सकता है। सच्चा प्रेम तो सच्चे हृदय मिलता है और जब तक सच्चा प्रेम न हो तब तक वह आन जिसके लिये प्रेमी मर मिटते हैं कुटलाओं अथवा लम्पटों उपजता नहीं अथवा उपज कर भी वह पनपता नहीं।

एक दूसरे की कहानी सुन कर मन ही मन दोनों ब कुढ़े परंतु प्रत्यक्ष में (जाहिरा में) प्रेमी ही बने रहे। दिन कुँअर साहेब तहखाने के नीचे एक कटघरे में बंद रहते अ

और हँसी दिल्लगी कर उनके मन को हरा ताजा बना आती थी। मृणालिनी और विलासिनी भी चुपके से पहुँचती और कुशल क्षेम पूछ कर चली जाती थीं।

सिवा प्रेमा के और किसी सहेली को कुँअर के निकट जाने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। और न किसी को उन तक जाने की आज्ञा थी। प्रेमा को भी यही हुक्म था कि दिन में चार बार—सुबह पान देने, दोपहर को भोजन देने, तीसरे पहर फिर जलपान देने, शाम को फिर भोजन देने—जाकर चली आओ उन के पास ठहरो नहीं। परन्तु प्रेमा जब जाती तब बिना आधा घण्टा ठहरे और कुछ हँसी मजाक किये वापिस नहीं आती थी।

प्रेमा की आँख बचाकर मृणालिनी और मृणालिनीकी आँख बचा कर विलासिनी भी मिल आया करती थी इससे कुँअर साहेब का दिल बहलाव हो जाता था। जब इसकी खबर हेमांगिनी को लगी तो उसने इन तीनों को बुलाकर बड़ा फटकारा, कुछ शारीरिक दण्ड भी दिया और हुक्म दिया कि—आज से कोई सहेली कुँअर के निकट न जाय केवल मंजरी बाहर से खाना देकर चली आया करे।

इस हुक्म ने कुँअर साहेब को बेचैन कर दिया। अब वे मन में कहने लगे कि इन दुष्टाओं ने मुझे कैद कर लिया है। न कहीं जाने का न बोलने का, दिन भर कैदी की भाँति इस कठघरे में पड़ा हूँ। यह कितने दिन निभेगा? मैं दश के बीच में बैठने वाला, दस स्त्रियों से हँसी मजाक में दिन बिताने वाला कैसे इस मनहूस कमरे में पड़ा रह सकता हूँ? इससे तो मेरी जिंदगी ही बरबाद हो जायगी। तन्दुरुस्ती खराब हो जायगी। अच्छी ऐयाशी की! मैं बाज़ आया ऐसी दोस्ती से। आज मैं उससे यह साफ कह दूँगा कि—रानी महारानी देश की नानी साहेबा!

मुझे माफ करें। मैं ऐसा बरदास्त न करूंगा। इसी प्रका
विलाप कलाप करते शाम हुई। भोजन पान से निपट कर बै
ही थे कि मंजरी ने कठघरे का ताला खोला और कुँअर साह
को ऊपर के कमरे में लिवा ले गई?

नाच गान हँसी मजाक खेल कूद आदि समाप्त होने प
सहेलियां अपने २ कमरे में पधारीं। कुँअर साहेब अपने क
में तशरीफ ले गए। हेमांगिनी ने कुँअर का मुख उदास दे
प्रश्न किया—कहिये, आज मोहर्रमी सूरत क्यों हो रही है?

कुँअर साहेब जले भुने थे ही खूब जली कटी सुनाई अ
कहा आपने मेरे साथ बड़ा बुरा सुलूक किया? आपने मु
अपना प्रेमी बनाया है कि क़ैदी?

हेमा०—(क्रोध से) क़ैदी?

कु० कर्म०—यह क्यों?

हेमा०—यह मेरी खुशी।

कु० कर्म०—वाह रे आपकी खुशी? क्या आपने मु
घसियारा समझा है?

हेमा०—चिढ़कर—जो मेरे यहाँ आते हैं वे मेरी आँखों
घसियारे ही जँचते हैं।

कुँ० कर्म०—(झुँझलाकर) तब आपकी आँखों में मनु
परखने की शक्ति नहीं है। आप जानती हैं कि मैं कौन
और क्या प्रभाव रखता हूँ?

हेमा०—झल्लाकर-आपको ऐयाशी की तमीज़ ही नहीं
आप जानते हैं, बड़े २ करोड़पतियों के बच्चे बाजारू रंडियों
जूते खाते उनके कोठों पर पड़े उनका पीकदान साफ कि
करते हैं। मैं तो फिर भी राजकन्या हूँ। और तुमसे अ
हैसियत रखती हूँ। "सच्चा आशक (प्रणयी) कौन? माशू
की (मानिनी की) जूती खावे तौन" यह भी मालूम है कि ना

कुँ० कर्म०—'अच्छा आप माफ करें। अधिक कुछ कहने का कष्ट न करें" यह कह कर वे अपना मुँह फेर पलँग पर लेट रहे।

हेमांगिनी को कुँअर का अन्तिम वाक्य बहुत बुरा मालूम हुआ और वह भी चिढ़ कर दूसरे कमरे में चली गई।

आज की रात प्रेम कलह में ही गई। भोर होते ही हेमांगिनी ने कुँअर को कठोर कारागार में डलवा दिया।

यद्यपि वहाँ खाने पीने का सब उत्तम प्रबंध था तथापि वह कठघरे से भी कठोर और एकांत में होने के कारण नितांत ही कष्टकर था। मंजरी भी दाना पानी पहुँचाती रही। अब वे रात दिन उसी कमरे में बंद रहने लगे। दिन में दो तीन बार मंजरी जाती थी जो कुछ जरूरत होती थी दे आती थी।

इसी प्रकार सप्ताहों बीत गए किन्तु समझौता न हुआ। अंत में प्रेमा समझौते पर उद्यत हुई। और यह समझौता हेमांगिनी के इशारे पर किया गया। प्रेमा को उसी ने भेजा और उससे कहा कि जाकर कुँअर को समझा बुझा कर ठीक करो। प्रेमा प्रथम कुँअर के पास गई और उनसे बोली, युवराज, आप अभी इन्हें (हेमांगिनी को) समझ नहीं पाए और साधारण स्त्री माने बैठे हैं, ऐसा मानना भूल है। अब आपसे क्या कहें। वे मेरी मालिकिन ठहरीं उनकी शान के खिलाफ मैं कुछ कह नहीं सकती। तब हाँ, यही कह सकती हूँ कि सम्हल कर चलिये और यह बिचार त्याग दीजिये कि मैं राजकुमार हूँ। इससे बढ़ कर कुटिल और कातिल औरत देखी न गई होगी। यदि आपको अपनी रियासत का घमंड है तो इसे अपने रूप का घमंड है। इसका कहना है कि मेरे रूप के मोल से सात बड़ी २ रियासतें खरीदी जा सकती हैं। न जाने कितने राजकुमारों की इसने जान ली। जो यहां आया उसकी शामत आई। एक रात से अधिक यदि कोई जीवित रहा तो वह आपही हैं। आप पर

कुछ उसका विशेष अनुराग है तभी तो वह आपको पकड़ मँगाई और इतनी कड़ी कहा सुनी पर भी आपके साथ कठोर वर्ताव न बर्तों। अर्थात् आपकी जान न ली! अस्तु आप अपना सौभाग्य जानिये। आपके साथ जैसा बर्ताव हुआ है वह सामान्य से भी सामान्य है।

जब तक आप यहां रहें तब तक उसके आज्ञाकारी (हुक्मी-बंदे) रहें इसी में कुशल है अन्यथा पछतायेंगे। मुझे आप से कुछ स्नेह है इसी लिये आपको सजग करती हूँ।

कुँअर ने कहा—प्रेमा! किसी प्रकार इससे पिंड छुड़ाओ मैं तुम्हारा यह अहेसान जन्म भर न भूलूंगा। बलिक जो कहो मैं करने को तैयार हूँ।

प्रेमा बोली—कुँअर जी! ऐसा नाम न लीजियेगा। कंतित के क़िले में से आप सहित आपकी पलँग उठा मँगायेगी। मैं बार २ कह रही हूँ कि इसे मामूली स्त्री न समझना। हम लोग जो इसके यहां पड़ी रड़ापा काट रही हैं इसका कारण यही है कि हम सब खूंखार पंजे में पड़ी हैं। जहां सिर हिलाई कि इसने मारा! यही दशा आपकी भी है। अस्तु, खूब सोच समझ कर कोई काम करना।

कुँ० कर्म०—तो बस अब मैं यह समझ लूं कि मेरा इसके पंजे से छूटना असम्भव (नामुमकिन) है?

प्रेमा०—असम्भव नहीं तो कठिन तो जरूर है।

कुँअर कर्म०—अच्छा कठिन ही सही तो क्या इस कठिन रोग की कोई दवा नहीं है?

प्रेमा—है क्यों नहीं, धीरज धरकर चुपचाप पड़े रहिये और जो वह कहे हाँ हाँ किये चलिये (हँसकर) मौज उड़ाए चलिये अंत में देखा जायगा। क्योंकि:—

अब तो चलने दौर दो क्या फिर यह मौक़ा आयगा।

बाद मुरदन जो भी हो उस वक्त देखा जायगा ॥
मुझे पीने दो जी भर कर ज़रा दो जाम प्यारी से।
मैं बाज़ आया मियां मज़हब की इस परहेज़गारी से। (लाल कहो कैसी कही! न कहोगे?

कुँ० कर्म—प्रेमा मुझे हँसी दिल्लगी भाती नहीं है और न तुम्हारा उपदेश ही भाता है। औरत के सामने मर्द होकर हम शिर नीचा करें यह मुझ से न होगा। स्त्री के बश में रहना मुझे पसंद नहीं, चाहे मेरा शिर उतर जाय?

प्रेमा०—हँसकर-तब आप प्रेमी नहीं हैं। क्योंकि प्रेम में इन सब बातों का ख्याल कहां?

रोम रोम में रम रहा, प्रेम जासु भरपूर।
तेहि सुधि काहू की नहीं, प्रेम नसे में चूर॥

"अब मैं जाती हूँ फिर मिलूंगी" कहती हुई प्रेमा वहाँ से चली गई।

चौदहवां परिच्छेद।

पाठक महोदय,! आइये शंकर और सीताराम की ओर और सुनिये उनकी भी कहानी।

यह ऊपर लिख आए हैं कि शंकर आदि झाड़ी से उठ कर मालिन के बताए हुए स्थान पर जाकर सो रहे।

सुबह अभी होने भी न पाई थी, केवल आकाश के एक कोने पर कुछ उजेले का रंग नज़र आता था इतने हीं में वही मालिन हाथ में थाल लिये दिखाई पड़ी। भोजदत्त ने शंकर, सीताराम आदि को जगा कर कहा—उठो देखो, रात वाली मालिन आरही है।

मालिन का नाम सुनते ही दोनों नींद से चौंक पड़े और आँखें मीच कर देखे तो सचमुच वही मालिन दिखाई दी।

सीताराम बिस्तर से उठ उसके पास दौड़ा और उसका रास्ता रोक कर खड़ा हो गया। मालिन ने कहा—कहिये, यहां क्यों पड़े रहे। यह सामने बाग है इसमें क्यों नहीं ठहरे ?

सीताराम ने कहा—यहीं ठहर गये। क्योंकि रात के दो बजे तो आए उस वक्त कौन बाग बगीचा ढूँढ़ता फिरता। नींद गहरी लगी, इसी बारी में सो गए।

मालिन बोली—अच्छा, आप मेरे साथ बाग में चले आवें मैं आपको स्थान बता देती हूँ वहां ठहरें। वहां सब बात का सुभीता है।

आगे २ मालिन पीछे २ चारों धूर्त उस बाग की ओर चले। वह बाग उस स्थान से दो फरलांग पर था। कुछ ही मिन्टों में बे उसके भीतर पहुँच गए। मालिन उन्हें एक दालान बता कर बोली, जब तक आपका जी चाहे इसमें विश्राम करें। यदि कोई पूछे तो कह देना कि हम परदेशी हैं कुछ देर विश्राम करके चले जायँगे।

सीताराम ने पूछा—तुम्हारा डेरा कहाँ है ?

मालिन ने उत्तर दिया—इस बाग के बाहर जो गाँव दीखता है उसी गाँव में मेरा घर है। यह बाग सरकारी मेरी ही निगरानी में है।

सीताराम ने कहा—तनक तुम यहाँ बैठ जाओ हम तुमसे दो चार बातें पूछना चाहते हैं।

मालिन बोली, आप यहीं इसी दालान में विश्राम करें मैं घर से होकर फूल चुनने आती हूँ तो बात करती हूँ। यह कह वह अपने घर को चली गई।

शंकर, सीताराम आदि उसी दालान में डेरा डाले। सबेरा हो गया था इस कारण सब लोग निपटने निपटाने और नित्य कर्म करने चले गए। बाग़ जंगली तो था परन्तु सुखकर था।

बीच में एक निर्मल जल से भरा हुआ पक्का तालाब भी बना था।

चारों धूर्त उसी तालाब पर आए। स्नान ध्यान पूजा बंदन आदि से निपट कर कुछ जलपान किये। और उसी तालाब के घाट पर बैठ कर बातें करने लगे।

थोड़ी ही देर में फूल का टोकरा हाथ में लिये वह मालिन बाग़ में आई और जहाँ चारों धूर्त बैठे थे वहीं आकर वह भी बैठ गई। मालिन अभी देखने में तेईस चौबीस वर्ष से ज्यादा उम्र की नहीं। रंग की भी गोरी है। स्वभाव तो इसका निहायत ही भला और बोली में मानों शक्कर घुला हुआ है। यद्यपि यह जाति की मालिन है तथापि लक्षण में किसी ऊँचे खानदान से कम नहीं है।

जाति ऊँचाई देतिना, गुणहि ऊँचाई देत।
तीती नीम गुणाकरी, सकल रोग हरि लेत॥

गुणों से ऊँच नीच की परख है। स्वभाव ऊँच नीच परखने की कसौटी है।

मालिन ने कहा—कहिये आप मुझसे क्या पूछा चाहते हैं।

सीताराम ने कहा—मैं तुम्हारा और तुम्हारे मालकिन का हाल बूझा चाहता हूँ?

मालिन बोली—मुसाफिरों! मालकिन का नाम मुख से न लो। हाँ हमारा हाल बूझ सकते हो। तुम मुसाफिर हो तुम्हें मालिक मालकिन से क्या प्रयोजन?

सीताराम ने कहा-मालिन, मुसाफिरों को सभी बातें प्रयोजनीय हैं। यात्रा में जो कुछ सामने पड़े उसे देखना और जो कुछ कानों सुनाई पड़े उसे सुनना आवश्यकीय है। देशाटन का फल ही यह है कि भाषा, आचार, बिचार और वहाँ के कौतुकों को देखे सुने समझे और उससे लाभ उठावें। हमारी यात्रा में भी रात का दृश्य एक कौतुक ही जान पड़ा है। अस्तु उसका

रहस्य जानना जरूरी है। यदि तुम्हारी कोई हानि न हो तो इस रहस्य को हमें सुनाकर हमारे चित्त से शंका दूर करो।

मालिन ने उत्तर दिया, मुसाफिरों! इस रहस्य में मत पड़ो और न इसके जानने की अभिलाषा प्रगट करो। इस रहस्य के सुनने सुनाने वाले दोनों ही मूर्ख हैं। क्योंकि न सुनने ही वाले की खैर है न सुनाने वाले की। तब ऐसी चरचा-जिसमें कहने सुनने वालों के लिए भलाई नहीं प्रत्युत घोर बुराई है-करने ही से क्या फल? इस चरचे को छोड़ो और जो कुछ आप कहें वह मैं करने को तैयार हूँ। सीधा पानी जुटा दूँ आप लोग भोजन करें। दालान में विश्राम करें।

सीताराम ने कहा—मालिन! जब तक मन का खटका न मिटेगा तब तक कुछ भायेगा नहीं। खटका बुरा होता है मनुष्य को चैन नहीं लेने देता। अस्तु यदि तुम हम मुसाफिरों का कुछ उपकार किया चाहती हो तो पहिले हमारे मन की चिंता को दूर करो।

मालिन ने कहा—मुसाफिर, मैं बार बार कहती हूँ कि इसके अलावा और जो चाहो पूछ लो मैं उसका उत्तर दूँगी लेकिन रातवाली बात मुझसे न पूछो। इसमें न तुम्हारा ही भला है न मेरा ही। तुम तो मुसाफिर हो जो पड़ेगी झेल लोगे और झेल ठेल कर अपनी राह लोगे। हमें यहीं रहना और यही कारबार करना है जो करती आ रही हूँ। मैं कैसे झेलूँगी जीविका ही का भय होता तब भी कोई चिंता न थी। यहाँ तो भय प्राणों का है और वह भी बड़ी ही दुर्दशा से! तब क्या वह तुम्हें उचित होगा कि मुझ गरीबनी को फाँसी लगवावें?

सीताराम०—यह हम कब चाहते हैं कि हमारे कारण तुम्हारे ऊपर कोई आफत आवे। यदि ऐसा हो भी तो पहिले हम अपना प्राण देकर तब तुम्हारा अपमान होने देंगे।

मालिन०—इससे लाभ हो क्या ?

सीता०—लाभ हो वा हानि संकल्प तो यही है। मेरे कारण तुम आफत क्यों झेलो ?

मालिन०—मुझे तो झेलना ही पड़ेगा। मैं तो अब भी झेल सकती हूँ। क्योंकि मैंने आपको बाग़ में टिका रखा है। यदि कोई सहेली आ पड़े और वह आपलोगों को देखकर वहां भुगतान भुगता दे तो फिर वह मेरी खबर लिए बिना नहीं रह सकती। मैं तो हर हालत में मुजरिम हूँ। मैंने तो रात ही में आपको खतरे से निकल कर दूर चले जाने को कहा यदि यह बात उसे मालूम हो जावे तो क्या मेरी खाल साबित बच सकती है ? हरगिज़ नहीं।

सीता०—यदि ऐसा हो तो हम यहाँ से चले जायें ?

मालिन०—यह हम कैसे कहें, अब तो आप आही गए हैं जो होगी देखी जायगी।

सीता०—यदि आप मेरी चिंता निवारण कर दें तो मैं तुरंत इस स्थान को त्याग कर चला जाऊँ।

मालिन०—आप अपने हठ से बाज़ आते नहीं दीखते। जान पड़ता है कि कुछ होनहार है तब तो आप में इतनी हठ उत्पन्न हुई है।

सीता०—खैर तुम अपना ही किस्सा कह जाओ। तुम कौन हो। यहाँ कैसे पड़ी हो। तुम्हारे और भी कोई नातेदार साथ हैं कि तुम इकली हो ?

मालिन०—मैं जाति की कोल हुँ, इसी चोपन की रहनेवाली हूँ। मेरे माता पिता दोनों मर गए। अब मैं अकेली हूँ। यह बाग़ उसी रानी का है जिसका रात में जिक्र था। मैं मालिन का काम करती हूँ इसी से अब मालिन कहलाती हूँ मैं नित्य इसी बाग़ से फूल तोड़ कर हार बनाती हूँ और उसे

रात में लेकर जाती हूँ। उसी हार को पहिरा कर उसे प्रसन्न करती हूँ। सारी रात वहीं रहती हूँ। भोर को यहाँ चली आती हूँ। यही हमारा रोज का काम है। इसी काम की मैं तलब पाती हूँ। कलह जब मैं गई तो देखा कि वह क्रोध में भरी चुटीली नागिन की भाँति साँस ले रही है। मैं डरी कि कहीं बाहर वाली बात—आप लोगों का सजग करना—तो यह नहीं सुन पाई। पीछे मैं उससे नम्रता से बोली परन्तु वह गुस्से में थी मेरी बातों का कुछ उत्तर न दी। तब से मैं बड़े असमंजस में पड़ी हूँ। न जाने वह क्यों इतनी ख़फा है? ऐसी तो वह कभी देखने में नहीं आई थी?

सीता०—किसी से पूछा नहीं?

मालिन०—रात में वहाँ कौन था जिससे पूछती, हाँ आज कुछ पता चल चायगा।

सीता०—तुम इस निर्जन बन में अकेली कैसे रहती हो?

मालिन०—मैं सामने के गाँव में रहती हूँ यहाँ नहीं। वहाँ मेरी बिरादरी के दो चार घर हैं।

सीता०—रात में अकेले यहाँ से दो कोस का सफर तो करती हो न?

मालिन०—मैं कोलिन हूँ। कोल भी पहाड़ी जाति होती है। इस जाति को भ्रम कुछ नहीं व्यापता। कोलों के छोटे २ बच्चे रात दिन बनों में खेला करते हैं।

सीता०—तुम्हारा विवाह हुआ कि नहीं?

मालिन०—विवाह करती तो सरकार में रहने पाती!

वहां का यह कड़ा नियम है कि जो वहाँ की नौकरी करे वह कुँआरी रहे। वहाँ जितनी स्त्रियाँ हैं सब कुँआरी हैं।

सीत०—और मालकिन?

मालिन०—मालकिन की मुझे खबर नहीं। तब सुनती हूँ कि वह विवाही हैं, पति को त्याग दी हैं।

सीता०—पति को क्यों त्यागा है ?

मालिन०—यह मुझे नहीं मालूम कि क्यों त्याग दीं।

सीता०—वहाँ कोई पुरुष नहीं है ?

मालिन०—एक दारोगा है जो डेवढ़ी पर रहता है। और तो पुरुष मेरे देखने में नहीं आया। क्योंकि मैं रात में जाती हूँ और रात ही में लौट आती हूँ। दिन में वहाँ जाने का हुक्म नहीं है। हाँ............।

सीता०—हाँ हाँ कहो कहो, हाँ क्या ?

मालिन०—सुनती हूँ कि एक योगी भी गुफा में है उसी योगी के साथ रानी का..................।

सीता०—हाँ, कुछ संबंध है ?

मालिन०—सुना यही जाता है। है कि नहीं सो राम जाने

सीता०—अच्छा और कुछ ?

मालिन०—एक पुरुष की और चरचा चबाई है ?

सीता०—वह क्या चरचा चबाई है ?

मालिन०—यही कि एक कोई राजकुमार है जो किस्मत का मारा आ फँसा है ?

सीता०—हाँ हाँ कहो साफ २ कहो डरो नहीं। हम ऐसे नीच नहीं हैं जो तुम पर आँच आने दें। अथवा तुम्हारी कही बातें किसी और को सुनावें। प्राण भले ही चला जाये पर तुम्हारी बात कोई न सुन पायेगा। तुम मेरा विस्वास करो और निर्भय बात करो।

मालि०—अच्छा तो अब आप जानें और आपका ईमान जाने मैं संक्षेप में कुछ सुनाये देती हूँ सुन लीजिये। मालकिन एक राजा की बेटी हैं। मनचली हैं इसी कारण सबको छोड़ छुड़ा

कर एक योगी के साथ निकल आई। इस घने बन में धरती के भीतर एक सुंदर जड़ाऊ मकान बनवाया और उसे चारो ओर से घेर कर उसी में रहने लगीं। योगी तो एक गुफा में बैठा अपना योग साधन करता है और ये राजकुमारी राजकुमारों की तलाश में रहती हैं। जहाँ कोई भूला भटका शिकार से थका हुआ राजकुमार इस स्थान में आया तहाँ उसकी सहेलियों ने उसे फाँसा। एक रात वह बड़े आदर मान से रखा गया दूसरी रात उसकी गरदन मारी गई। यही सिलसिला वर्षों से जारी है। जितने आए सब मारे गए। बच कर एक भी न निकला। ऐसे २ सुंदर स्वरूपवान् राजपुत्रों का इसने संहार किया है जिन्हें देख अप्सरायें मोहित होती थीं। इसके अतिरिक्त पुरुष की परछाहीं से इसे चिढ़ है। जैसे समुद्र की वह राक्षसी है जो मायाके द्वारा आकाश के पक्षिमों की परछाही जल में देख उन्हें घसीट कर मार डालती थी जिसके मारे अकाशगामी जीवों के नाकों दम था। उसी प्रकार इस राक्षसी के मारे इस बन में पुरुषों के प्राण संकट में रहते हैं। जहाँ किसी पुरुष की गंध पाई तहाँ उसने जमादार सेवक को पुकारा। वह सेवक नामक जमादार क्या है पूरा कसाई है। इशारा पाते ही काम तमाम कर डालता है। इसी कारण इस बन में विशेष कर उसके किले के ईर्द गिर्द किसी पुरुष की परछाहीं नहीं पड़ने पाती। और यही कारण था कि मैंने रात को आपको वहाँ से हटाया।

यह सब होने पर भी एक राजकुमार सप्ताहों से उसमें जीवित है और उसके साथ वह वर्ताव नहीं है जो दूसरों के साथ वह कर चुकी है। यह एक अचरज की बात देखने में आई। जहाँ कोई भी पुरुष जीवित नहीं बचा वहाँ एक अब तक जीवित है क्या यह कम अचरज की बात है?

सीता०—तुमने उस पुरुष को देखा है ?

मालिन०—हाँ देखा है; परन्तु रात में देखा है जिससे मैं यह नहीं बता सकती कि वह कैसा है और न उसका पता ठिकाना हीं जान पाई हूँ। हाँ, यह सुनी हूँ। कि वह राजकुमार है और किसी बड़े भारी रियासत का भारी राजा है। लेकिन वह "बड़े भारी रियासत का मालिक है" इस विचार से नहीं आदर पा रहा है रियासत वरासत को वह क्या समझती है। वह खुद सात बादशाहत का घमण्ड रखती है । उसके पास अकूत धन है। वह आदर किसी और ही कारण से पा रहा है जिसे सिवा कुमारो के और कोई नहीं बता सकता।

सीता०—वह सेवक जमादार कौन है ?

मालिन०—वही उसका गुरूघंटाल है। उसीके पेटमें सारी करामात है । वह बड़ा चतुर बड़ा मक्कार है। उसी के हाथ में उसके हृदय की कुंजी है। योगी भी उससे खुश भोगी भी उससे खुश, सहेलियाँ भी उससे मिली रहती हैं। मैं भी उसकी खुशामद में लगी रहती हूँ।

सीता०—नाम सेवक काम मालिक का ?

मालिन०—ऐसा ही है। वह सेवक नाम का है पर काम में मालिक है।

जब सीताराम ने देखा कि मालिन अब खूब घुल मिल गई अब उसके दिल में किसो प्रकार का भय भ्रम न रह गया तब उसने अपनी मंसा प्रकट की और अपने आने का कारण बतलाया और कहा–इसमें मुझे मदद दें।

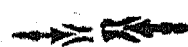
मालिन ने काँप कर बड़ी भर्राई हुई आवाज़ में कहा—बस बस इस बारे में मुझसे कुछ न कहें। मुझे माफ करें और आप जो सेवा कहें सो मैं करने को तैयार हूँ परंतु वहाँ किसी प्रकार की मदद मुझसे न माँगें। यदि आप मेरा भला चाहते हैं तो

मुझसे किसी प्रकार की याचना—विशेष कर कुमारी कुमार के बारे में न करें।

जब सीताराम ने बहुत समझाया और कसमें खा खा कर उसे विश्वास दिलाया और यह भी उसे आशा दिलाई कि यदि यहाँ से तुम छूट जाओगी तो तुम्हारे भरण पोषण (खाने कपड़े) का मैं जिम्मेदार हूँगा तब कहीं वह केवल इस बात पर राजी हुई कि केवल चिट्ठी कुँअर के हाथ में दे दूँगी।

शंकर ने सीताराम के कान में मुँह लगा कर बहुत धीरे से कहा—इस समय अधिक इसे न छेड़ो जितना यह करने को कह रही है उतना ही सही। पीछे देखा जायगा।

सीताराम को चुप देख वह मालिन बोलीः—अच्छा तो आप लोग भोजन पान करें और इसी दलान में विश्राम करें। मैं फूल चुन कर जाती हूँ कल्ह फिर मिलूँगी और जो कुछ वहाँ मालूम कर सकूँगी वह आप से भुगतान करूँगी। इसके उपरान्त जो आप देंगे उसे उन तक पहुँचा भी दूंगी। इसके उपरान्त जो आपके जी में आवे करना। मैं इस बाग़ के फाटक में ताला लगाये देती हूँ जिसमें कि कोई इसमें चला न आये। आप लोगों को सीधा पानी हाँड़ी कंडी धर दी हूँ आप बनायें खायें और इसी में मौज करें। यह कह वह हँसती हुई बाग के बाहर चली गई।



इसके आगे क्या हुआ यह जानने के लिये आगे का भाग देखें।

शशि-प्रभा

आठवाँ भाग।

पहिला परिच्छेद।

प्रेमा के समझौते पर हेमाँगिनी और कुँअर दोनों आज मिले तो सही परन्तु कुँअर का मन दुखी ही बना रहा। उनमें वह प्रसन्नता वह उमंग वह उत्साह न रहा जो प्रथम दिन प्रथम सम्मिलन में था। इसका कारण शायद् प्रेमा की चेतावनी थी।

प्रेमा की बातों से कुँअर का मन हेमांगिनी की ओर से फिर गया। अब वे उसे यमराज की बेटी समझ गए और उससे सदा चौकन्ने रहने लगे। यद्यपि दोनों में प्रत्यक्ष कोई भेद भाव नहीं दर्सता है। तथापि अन्तःकरण दोनों के साफ नहीं।

इतनी कठोर प्रेम-कलह होने पर भी हेमांगिनी का बर्ताव कुँअर कर्म के साथ वही रहा। दिन भर कठघरे में बन्द रहकर रात में वे छोड़े जाते थे। सहेलियों का आना जाना बिलकुल ही रोक दिया गया। दिन भर वे उसी काल कोठरी में अकेले पड़े अपनी किस्मत को रोया करते थे। कुँअर कर्मसिंह अब चिंतित रहने लगे। चिंता के कारण उनका गुलाब सा मुख पके पत्ते की भाँति पीला पड़ गया। भूख मर गई। शरीर दुर्बल हो गया। खान पान स्नान ध्यान सभी अनियमित हो गए। मनही मन वे यही सोचने लगे कि कैसे इस बला से छूटें। कहाँ तो वे अपने को महाभागी मान कर ऐसे फूले थे

कि मानों सारी दुनियाँ की नियामत उन्हीं के हाथ लगी। कहाँ अब वे पल २ पर मृत्यु का स्वप्न देखने लगे! अब उन्हे मालूम हुआ कि अच्छे फूलों में काँटे भी होते हैं।

कुँअर कर्मसिंह कठघरे में बैठे मनही मन कहने लगे:— हाय! मैंने यह क्या किया जो बैठे बिठाये बला मोल लेली! इस पापिनी नरघातिनी बाघिनी से कैसे प्राण बचे! भागने की भी कहीं राह नहीं जो भाग कर प्राण बचाऊँ! जितना दिन कटा जाता है प्राण के सौभाग्य हैं। ईश्वर न करे किसी दिन इस बाघिन का मन बिचले और यह अपने खूँखार पंजे चला बैठे।

वह सोना क्या जिससे हो सोना हराम।
वह दौलत क्या अपने जो आये न काम॥ (लाल)

ऐसा फूल किस काम का जिसके सूँघने से नाकड़ा हो! ऐसी स्त्री भी दुनियाँ में हैं यह मैं पहिले नहीं जानता था। यदि जानता होता तो कभी स्त्री का नाम तक न लेता। तब क्या सभी स्त्रियाँ ऐसी नरघातिनी होती हैं? नहीं २ कुलटा ही ऐसी होंगी। क्योंकि कुलटाओं में लज्जा प्रेम, दया, दर्द शील, आदि सद्गुणों का अभाव ही होता है। विरुद्ध इसके येही सद्गुण सच्चरित्राओं के रोम रोम में समाया रहता है।

भली कुरूपा यदपि वह, सच्चरित्र तिय होय।
अति सुन्दरि कुलटा बुरी जो यश डारै धोय॥

लेकिन देखते हैं कि संसार में सौंदर्यता ही कुलटापन का कारण होती है। जितनी अत्यन्त सुन्दरी होंगी उतनी हीं अत्यन्त कुलटा भी होंगीं। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि सभी सुन्दरियाँ कुलटा होती हैं! नहीं सौ में एक ऐसी भी मिलेंगी जिनके गुणों का बखान मनुष्य ही नहीं देवता भी करते होंगे। तब अधिकांश नम्बर कुलटाओं में उन्ही का पाया जाता

है जो अपने को सुंदरी समझती हैं। सारांश यह कि कुरूपा स्त्री इतनी पुंश्चली नहीं होतीं जितनी लाडिली सुंदरी होती हैं।

हहह; भला उपास्य चाहें अपनी अनिच्छा प्रकट करदें अर्थात् अपनी उपासना न चाहें पर उपासक अपनी उपासना क्यों छोड़ने लगे। सुन्दरी चाहे पतिव्रता ही क्यों न हो परंतु सुंदरता के उपासक तो तन मन बचन से उसे अपनी ओर आकर्षित कर कुलटा बनाने से बाज न आवेंगे। यही कारण है जो कुलटाओं में अधिकतर सुन्दरी हैं। और इन्हें कुलटा बनाने वाले रूपोपासक पुरुष हैं।

वेश्यायें एक भी ऐसी न मिलेंगी जो सुंदर न हों, सच पूछो तो सुंदरताही ने उन्हे वेश्या बना डाला है। क्योंकि पुरुष चाहे स्वरूपवान हों चाहे कुरूप वे स्वभाव से ही रूपोपासक हैं। इन्ही रूपोपासकों की बदौलत नीच ऊँच सभी घरों की रूप-वती स्त्रियां सहज ही पुंश्चली हो जाती हैं। उपासक न हों तो उपास्य को पूछे कौन ? यदि उपास्य में यह इच्छा होती कि कोई उपासक मेरी उपासना करे—तो उसकी वह इच्छा उपा-सक के अभाव में व्यर्थ हो जाती। हम बहुत चाहते हैं कि कोई धनी मिले लेकिन जब धनी है ही नहीं तो मिलेगा कहाँ से ?

सच पूछो तो उपासकों ही से ईश्वर की भावना है। यदि उपासक न रहें तो उपास्य-ईश्वर को कौन पूछे। इन उपासकों ही ने ईश्वर का आस्तित्व कायम रक्खा है।

यह (हेमांगिनी) भी अत्यंत सुंदरता ही के कारण कुलटा बनी और इसे कुलटा बनाने वाला वह बागमार्गी योगी है। जो जैसा होता है वह दूसरे को भी अपना सा बनाता है। जैसे भृंगी दूसरे कीड़ों को अपनी गूँज सुना २ कर उन्हे अपना सा बना लेती हैं; उसी प्रकार इस कुलटा ने भी दस घर की कन्याओं को बटोर कर उन्हे कुलटा बना डाला है! प्रेमा, पद्मा, मृणालिनी,

विलासिनी आदि कुलटाही तो हैं। यद्यपि सहेलियां किसी बड़े घर की कन्यायें हैं, रूपवती हैं, सुंदरी हैं और अभी कुँआरी भी हैं तथापि कठोर कुलटा के पास रहते २ ये सब भी कुलटा न हो जायेंगी इसे कौन कह सकता है?

युवा अवस्था अंध अवस्था है। इस अवस्था में अंतराक्ष बंद हो जाते हैं;इसी कारण उसे अपना आगा पीछा कुछ सूझता नहीं और वह संसार में पग २ पर ठोकरें खाता है। अंत में किसी ऐसे विषय-विपत्तिके गढ़े में गिरता है कि उसकी हँसली पँसली चूर २ हो जाती है। देखो अंत में मैं गिरा न? कैसे बिपत्ति के गढ़े में पड़ा कि इस में से अब निकलना कठिन हो गया है! यह युवा अवस्था के कारण ही तो हुआ? हत्तेरी अवस्था की!

अब मैं कान पकड़ता हूँ (दोनों हाथों से दोनों कान छू कर) फिर कभी ऐसी गलती न करूँगा और उसी सियार की प्रतिज्ञा कंठ किये लेता हूँ जो किसी आम की बारी में जाकर धरती पर पड़े हुए एक खोलले आमके छिलके को समूचा आम जान कर—मुँख में धर लिया। उस खोलले छिलके के भीतर बिच्छू छिपा बैठा था उसने उसके मुख में अपना डंक मार दिया। तब उस सियार ने उस आम के छिलके को उगल कर प्रतिज्ञा किया कि:—

कभी भूल कर बाग न जायँ।
बाग भी जायँ तो आम न खायँ॥
आम भी खायँ तो लोकलोकइया(१)।
अब नहिं खाँवें थोथाथइया (२)।

---

(१) लोकलोकइया=ऊपर हो ऊपर लोककर॥
(२) थोथाथइया=खोखला जिस में कुछ न हो॥

कुँअर साहेब इसी प्रकार अपने मन में प्रतिज्ञा करही रहे थे कि इसी समय अचानक प्रेमा वहाँ पहुँच गई और वह कुँअर का मुख उदास देख हँसकर बोली—कहिये साहेब! अब किस चिंता में हैं। अब तो मेल मिलाप भी हो गया अब किस बात की चिंता है?

कुँअर ने एक ठंढी सांस लेकर कहाः-प्रेमा! चिंता तो तब तक दूर न होगी जब तक चिंता का कारण दूर न होगा। इस चिंता का दूर करना न करना तुम्हारे ही अधीन है। तुम यदि चाहो तो पल में दूर करदो।

प्रेम०—हँसकर—यदि मैं आपकी चिंता दूर कर दूँ तो मुझे क्या देंगे?

कुँअर०—जो तुम कहो।

प्रेमा०—(हँसकर)—मैं क्या कहूँ, आप ही कहें क्या देंगे?

कुँअर०—जो मांगोगी वह देंगे?

प्रेमा०—जोमाँगूंगी वह देंगे?

कुँअर—हाँ देंगे?

प्रेमा०—देखो समझलो?

कुँअर—हाँ हाँ समझ लिया दिया, तुम कहो।

प्रेम०—ऐसा न हो कि पीछे पलट जाओ।

कुँअर—ऐसा हो नहीं सकत:—

बात देकर जो किसी को फिर पलट जाते हैं।
बात खो देते हैं नामर्द भी कहलाते हैं॥
क़द्र रहती नहीं इज्ज़त भी नहीं पाते हैं।
झेप जाते हैं जो लानत की चपत खाते हैं॥
बात देना तो उसे देकर निभाना चाहिये।
कह दिया मूँसे तो फिर करके दिखाना चाहिये॥ (लाल)

प्रेमा०—हाँ, यह ठीक है परन्तु जब आ पड़ती है तो सब भूल जाते हैं।

कुँअर—भूल जाते होंगे। हम लोग नहीं। भूलते। खुशी से माँगो। जो माँगोगी वह पाओगी।

प्रेमा—हाँ, माँगू ?

कुँअर०—हाँ माँगो।

प्रेमा०—तो बस मैं आपही को चाहती हूँ।

कुँअर—हँसकर=हम तो तुम्हारे हैं ही उस में किसका इजारा है ? और जो कुछ माँगो मैं तुम्हें दूं

प्रेमा०—जी नहीं, मुझे और कुछ न चाहिये।

कुँअर०—तो मैं तुम्हारा हो चुका:—

हो चुका इकरार दोनों का इशारा हो चुका।

तुम हमारी हो चुकीं और मैं तुम्हारा हो चुका॥ (लाल) बस कि और कुछ कहना है ?

प्रेमा०—बस अब कुछ कहना नहीं है लीजिये यह चीठी।

कुँअर०—(हाथ बढ़ा कर आश्चर्य के साथ) लाइये, किसकी चीठी है ?

प्रेमा०—(चीठी हाथ में देकर) खोलकर पढ़ लीजिये आप ही पता चल जायगा कि किसकी चीठी है।

आदमी पहचान लेते हैं क़याफ़ा देख कर।
ख़तका मज़मूँ भाँप लेते हैं लिफ़ाफ़ा देख कर॥

चीठी हाथ में लेकर कुँअर ने बड़ी उत्सुकता के साथ उसका लिफाफा खोला। चीठी का तह खोलते ही उनकी आँखों से आँसुओं की बूंदें टपकने लगी।

प्रेमा ने पूछा—कुशल तो है, आप तो चीठी देखते ही रोने लगे। अजी ज़रा उसे पढ़ तो लो देखो तो उसमें क्या लिखा है ?

कुअर ने उस चिट्ठी को पड़ा। उसमें यह लिखा थाः—

प्यारे कुँअर !

कहिये ! क्या समाचार है ? आपको ऐसा उचित था इसीलिए हम बार २ आपको सजग करते आते थे ! आखीर में फिर गोता खा गए न ? अस्तु हम आपका सारा समाचार सुन चुके। अब आप घबराइये नही। बहुत शीघ्र उपाय करते हैं। अपना सविस्तर समाचार पत्र वाहक के द्वारा भेज दें। यदि मौक़ा लिखने का न हो तो जबानी ही कहला भेजें। इति-

आपका—सीताराम

पत्र पढ़ कर कुँअर कर्मसिंह मनहीं मन बड़े प्रसन्न हुए और प्रेमा से बोले-प्रेमा ! यह पत्र कौन लाया है ?

प्रेमा ने उत्तर दियाः—कोई लाया हो इसे आप पूछ कर क्या करेंगे ? आप कहिये आपको कुछ कहना है ?

कुँअर०—हाँ, इसका उत्तर भेजना है।

प्रेमा०—तो क्या चाहिये कागज, कलम दावात ?

कुँअर०—हाँ,

प्रेमाने अपने अंचला के नीचे से एक टुकड़ा कागज और कलम दावात कुँअर के सामने रक्खा। कुँअर ने चीठी लिख कर प्रेमाको दिया। प्रेमा उस चीठी को अंचल में छिपा कर कुँअर से बोली—"लो अब मैं जाती हूँ कलह इसी समय फिर मिलूँगी। कल्ही फिर आपसे कुछ बात भी करूँगी।

क्योंकि मुझे यहाँ आए बड़ी देर हुई। अब मंजरी आती ही होगी" यह कह कर वह वहाँ से चली गई।

दूसरा परिच्छेद।

दूसरे दिन वह मालिन बाग में गई और एक चीठी सीताराम के हाथ में देकर बोलीः—लीजिये साहेब ! मैंने आपका

काम कर दिया अब मुझसे और कुछ न कहना। क्योंकि आप का काम करना और साँप के साथ खेलना बराबर है। अब मैं कुछ न करूँगी। बेचारी प्रेमा न होती तो मैं कुछ कर भी न पाती।

सीता०—प्रेमा कौन ?

प्रेमा एक बड़ी दयालु, बड़ी सीधी और बड़ी अच्छी सहेली है। उसी बेचारी ने चीठी लेजाकर जवाब ला दिया नहीं तो मैं वहाँ तक पहुँच भी न पाती।

सीताराम ने चीठी खोला और कुँअर का दुखड़ा बड़े दुःख से पढ़ा। उसमें कुँअर ने अपनी राम कहानी शुरू से आखीर तक की लिखी थी। जो उन पर बीता जो बीत रहा है और जो आगे बीतने वाला है सब बड़े दर्द के साथ लिखा था। अंत में लिखा था कि शीघ्र बचाइये नहीं जान जाने ही चाहती है।

चीठी का मजमून शंकर ने भी सुना। उसने कहा.—तो अब कुछ उपाय करना बड़ा ज़रूरी है, वरना खैर नहीं है। उसने मालिन से कहाः—मालिन! आज तेरा हार मैं गूंधूंगा। तू अच्छे २ फूल चुन ला। सुई डोरा मुझे दे, फिर देख तो मैं कैसा हार तैयार करता हूँ।

मालिन०—नहीं महाशय! आप माफ करें। कहीं हार बिगड़ गया तो फिर मेरी तकदीर बिगड़ गई!

शंकर०—नहीं २ मालिन न हार बिगड़ेगा न तुम्हारी तकदीर बिगड़ेगी। बल्कि तुम्हारी तकदीर खुल जायेगी। हमारा गूँधा हुआ हार देखते ही वह तुम्हारी सरकार फड़क उठेंगी और तुम्हें इनाम देंगी।

मालिन०—मुझे डर है कि कहीं आप लोग बैठे बिठाये मेरे सुख में बाधा न डाल दें। वही क़हावत चरितार्थ हो कि आप तो आर गए राह दिखाने वाले को भी लेते गए।

शंकर०—तुम इतना डरती क्यों हो ?

मालिन०—इसलिए कि मेरी जान आप लोगों की वजह से खतरे में है।

शंकर०—हम तुम्हारे ऊपर आँच न आने देंगे चाहे मेरी जान चली जाय।

मालिन०—अजी रहने दीजिये, कौन किसके लिए अपनी जान गँवाता है। यह सब कहने की बात है।

शंकर०—यह तुम्हारी समझ की बात है। जब तुम्हें किसी का विश्वास ही नहीं तो मैं क्या कहूँ। हम लोग अपनी बात रखना जानते हैं, प्राण नहीं!

शंकर के समझाने पर मालिन ने सुई डोरा और फूल का टोकरा उसे दे दिया। शंकर ने बड़ा सोहावना हार तैयार किया और एक अच्छा गुलदस्ता भी बनाया। अपनी झोली में से दो शीशी निकाल कर उसमें से एक का इतर हार पर और दूसरी का गुलदस्ते पर छिड़का और उसे मालिन को देकर कहा, लो इसे लेजाकर अपनी सरकार को दो और देखो वह इसका क्या इनाम तुम्हें देती हैं। परन्तु यह याद रखना कि जब वह हार देखेगी और इसकी खुशबू सूघेंगी तो तुमसे पूछेगी कि यह हार आज किसने गूंथा है। उसी वक्त यह कह देना कि—सरकार! दुष्की से मेरी बहिन आई है उसीने यह हार गूँथा है।

मालिन ने वह हार और गुलदस्ता उससे ले लिया और वह बाग़ का ताला लगाती हुई अपने घर चली गई। पहर भर रात गये तक क़िले में पहुँची और साबिक—दस्तूर हेमाङ्गिनी को वह हार पहिनाया और गुलदस्ता हाथों में पकड़ाया।

हार और गुलदस्ते की खुशबू से हेमांगिनी बड़ी प्रसन्न हुई और वह हँस कर मालिन से बोली, मालिन! आज का

लो! अपना २ [illegible] गुलदस्ता भी बड़ा खुशबूदार
देखने आ रही [illegible]
पाई तो बस [illegible] ाग़ के फूल हैं।
शंकर—[illegible] मेरे बाग़ के ?
वही गन्ध मिले [illegible] के बाग़ के।
देख लेने दो। [illegible] कभी इन फूलों को नहीं लाई!
मालिन को [illegible] पहिले कभी नहीं लाई थी।
के फूले हुए पे[illegible] हैं। ताजे समझ कर इन्हें आज
जब वह बाग़ में [illegible]
उसके हाथ में [illegible] इनमें तो अनोखी गंध है!
थी। उससे कह [illegible] आऊँगी और इन पौदों और
खुशबू है औरों [illegible] और गुलदस्ते को सूँघ कर)
मालिन ने [illegible] ड़ी अच्छी इनमें खुशबू है! मैं
शंकर बोला [illegible] ब तक ये फूल फूलते रहें–इन्हीं
मालिन०—[illegible]
है तब? [illegible] बहुत अच्छा सरकार!
शंकर०—उ[illegible] ह हार कितना अच्छा गूँधा
शंकर ने [illegible] ा। कलह तू अपनी बहिन को
उसे स्त्री का [illegible] ाही गूँधना सीखूंगी। इसकी
ऐसा कर दिया [illegible]
कहा, यह दूर [illegible] जरूर उसे सरकार में हाजिर
मेरी बहिन है। [illegible]
नहीं आ रही है [illegible] से बिदा हुई और उजियाला
शंकर की [illegible] छ देर बाद वह बाग़ में आई
कर कहने-लगी [illegible] :—अन्त में वही बात आई
आप लोग की सू[illegible] बूझ कर मेरी गरदन कटाई?
पुरुष का निदान [illegible] र न करें; पर नहीं माना। लो

अब सबकी शामत आई। आप तो किसी न किसी प्रकार निकल जायंगे कम्बख्ती हमारी है! अब कहो कैसी करें?

शंकर०—क्या बात है कुछ मुझे भी तो समझाओ?

मा०—बात क्या है, वह हार उसे बड़ा भाया।

शंकर०—अच्छा, फिर?

मा०—फिर उसने बाग़ देखने को कहा और यह कहा कि तू अपनी बहिन को साथ लेती आना मैं उससे गूँधना सीखूंगी।

शंकर०—तब तुमने क्या कहा?

मा०—मैं क्या कहती? सुन कर चुप हो गई!

शंकर ने कहा, जब तू कल्ह जाना तो उससे कह देना कि, सरकार! आज से पाँचवें दिन उसे लाऊँगी। क्योंकि मेरे वहाँ चले आने के बाद वह मासिक से हो गई। नहान के बाद आवेगी।

दूसरे दिन का हार मालिन ने ही गूंथा पर इतर उसपर शंकर ने छिड़का। मालिन उस हार को लेकर कोट में गई। आज भी उस हार में वही रंगत वही बू पाकर हेमांगिनी ने पूछाः—मालिन! आज का हार उसने नहीं गूंधा जिसने कल्ह गूंधा था? और उसे तू लाई नहीं?

मालिन ने उत्तर दिया—नहीं सरकार! वह मेरे जाने से पहिले ही मासिक से हो गई। शुद्ध होकर आवेगी। तभी तो हार आज मैंने ही गूंधा है। लेकिन फूल वेही हैं जो कल्ह गूंधे गए थे।

हेमा०—बेशक २ ये वेही सुगंधित फूल हैं (नाक से लगा कर) वाह, क्या मनभावनी सुगन्ध है! मालिन! कल्ही मैं इन फूलों को देखूंगी तू बाग में ही रहना, भला?

मा०—बहुत अच्छा सरकार! मैं वहाँ हाजिर रहूँगी।

बड़े तड़के मालिन बाग में पहुंची और शंकर से बोली,

लो ! अपना २ बधना बोरिया सम्हालो ! आज वह बाग़ के फूल देखने आ रही है। कहीं जो उसने इन फूलों में वह सुगन्ध न पाई तो बस जानिये कि मेरी कम्बख्ती आई।

शंकर—घबराती क्यों हो, आने दो उसे। इन फूलों में वही गन्ध मिलेगी। तनक चलो। बाग़ में के फूलों को तो मुझे देख लेने दो।

मालिन को लेकर शंकर बाग़ में आया और दो चार गुलाब के फूले हुए पेड़ों को देख कर कहने लगा—देखो मालिन! जब वह बाग़ में अवे तो तुम इन हीं गुलाबों के फूल तोड़ कर उसके हाथ में देना। इनमें वही बू बास आवेगी जो हारों में थी। उससे कहना—सरकार! इन्हीं सुगंधित गुलाबों में वह खुशबू है औरों में नहीं।

मालिन ने पूछा—और आप लोग कहां रहेंगे?

शंकर बोला, हम लोग बाग़ से दूर-चले जाते हैं।

मालिन०—और उसने कहीं कहा कि तेरी बहिन कहाँ है तब?

शंकर०—उसका भी मैं उपाय बताता हूँ।

शंकर ने रामनाथ को सिखा पढ़ाकर तैयार किया और उसे स्त्री का लिवास पहिना कर मुख को रोगन अदि से ऐसा कर दिया कि पुरुष का गुमान न हो। फिर मालिन से कहा, यह दूर बैठा रहेगा। जब वह पूछे तो कह देना कि यही मेरी बहिन है। छूने योग्य न होने के कारण सरकार के निकट नहीं आ रही है।

शंकर की चतुरता से मालिन बड़ी प्रसन्न हुई और वह हँस कर कहने-लगी। आप लोग तो बड़े फरफंदी मालूम होते हैं। आप लोग की सूरत भी भगवान ने निराली गढ़ी है जिसमें स्त्री पुरुष का निदान ही बड़ा कठिन है। अभी नौछटिये हो न, चाहे

जो बन सकते हो। अच्छा तो आप यह करें कि इन (रामनाथ) को बाग में छोड़ दें और आप लोग गाँव में जाकर छिप रहें जब वह यहाँ होकर चली जायगी तो फिर यहाँ चले आना।

शंकर सीताराम भोजदत्त तीनों वहाँ से हट कर दूर चले आए और एक झाड़ी के भीतर तीनों घात लगाये बैठे रहे।

शाम होते ही हेमांगिनी, प्रेमा को साथ लिये बाग में आई और वह मालिन के साथ बाग़की सैर करने लगी। फूलों की क्यारियों की सैर करती हुई जब वह गुलाब की क्यारी में पहुँची तो मालिन से पूछा, कि मालिन! वे खुशबूदार फूल कौन हैं?

मालिन ने कहा–सरकार! वे खुशबूदार फूल ये ही हैं जो सरकार के सामने हैं। यह कह उसने शंकर के बताए हुए फूलों में से एक फूल मय डंठ और कुछ पत्तियों के तोड़ कर हेमांगिनी के हाथ दिया। हेमाँगिनी ने उसे नाक से लगा कर कहा, आहा! ताजे फूलों में हार के फूलों की अपेक्षा चौगुनी महक है! बड़े अच्छे फूल हैं कह कर उसने कई बार नाक से लगाया ही था कि उसे चक्कर आ गया और पछाड़ खाकर रविश पर गिर खड़ी और आँखें बदल कर खर्राटे लेने लगी।

मालिन यह हाल देख बड़ी घबराई और वह प्रेमा से बोली प्रेमा २! यह क्या बात है।

प्रेमा ने कहाघबराइए नहीं चक्कर आ गया है। मैं अभी दवा लेकर आती हूँ। तू यही खड़ी शिर पर, पंखा डुलाती रह।

प्रेमा दौड़ी हुई कोट में आई। सेवका ने पूछा, क्या है जो दौड़ी आई कुशल तो है न?

प्रेमा ने कहा—हाँ कुशल है। उस······को बाग में बुलाया है। यह कहती हुई वह मंझरी के पास दौड़ी गई और कहा ताला खोल दो कुँअर को सरकार ने बाग में बुलाया है।

मंजरी ने कहा—क्या आज वही छनेगी क्या ?

प्रेमा बोला—यहमुझे नहीं मालूम जल्दी खोलो देर न हो नहीं वह झल्ला पड़ेगी।

मंजरी ने फाटक खोला कुँअर अपना लिबास पहिर कर प्रेमा के साथ चले। कुछ ही देर में दोनों बाग़ में पहुचे। हेमाँगिनी की दशा देख कुँअर समझ गए। कि कोई गुल ज़रूर खिला। इतने ही में शंकर सीताराम आदि भी वहीं पहुँच गए। शंकर ने प्रेमा और मालिन को गुप चुप कुछ मंत्र दिया और कुँअर से कहा, बस तैयार हो जाइए।

सीताराम ने शंकर की कान में कहा "इसे उठा ले चलें भोजदत्त ने भी यही राय दी परन्तु शंकर ने कहा, नहीं इसे इस सतय न ले चलो। बड़ा बखेड़ा बढ़ जायपा। हमारा पीछा होगा फिर हम किसी को भी न ले जा सकेंगे, राह में ही घिर जायँगे। क्योंकि मंजिल बड़ी है।

कुँअर ने कहा-प्रेमा को जरूर साथ में लेलो क्योंकि वह अब बच नहीं सकती और मैंने उसे बचन भी दिया है।

सीताराम बोला, हाँ यह सलाह अच्छी है, इस सलाह से मालिन की बचत भी निकल आयेगी और सारा अपराध प्रेम के शिर मढ़ा जायगा।

मालिन ने कहा, बाबा, मुझे मझधार में डाल रहे हो मैं क्या जवाब दूंगी ?

शंकर बोला, तुम कह देना कि यह सारी शरारत प्रेमा की है। उसी ने यह षड़यन्त्र रचा था। मैं कुछ नहीं जानती। यह लो सौ मोहर। हम फिर इसी पाग़ में ठहरेंगे। मेरे निकल जाने पर तुम इस जड़ी (जड़ी देकर) को इसकी नाक से लगा देना यह उठ बैठेगी।

प्रेमा और कुँअर कर्मसिंह को साथ में ले वे चारों धूर्त

बुद्धी की ओर भागे। प्रेमा थक न जाय इस ख्याल से उसे चादर की झोली में बैठाकर डोली बना लिये और उस डोली को चारों जन काँधे पर धर कर चले। रात का समय था जहाँ तक भागते बना भागे। सुवह होते ही वे दुद्धीसे भी आगे निकल गए। और दिन भर कठिन परिश्रम के बाद पहर रात बीते काशी में दाखिल हुए। रात हो जाने के कारण उस दिन काशी में विश्राम किये।



तीसरा परिच्छेद।

—o*o—

अब आइए पाठक! तनक हेमाङ्गिनी की भी कथा सुन लीजिये। शंकर आदि धूर्तों के दूर निकल जाने पर मालिन ने शंकर की दी हुई जड़ी को उसी की बताई हुई बिधि से—हेमांगिनी की नाक से लगाया जिसके असर से चार छींके आकर हेमांगिनी की अचेतता दूर हुई। वह अँगड़ाइयाँ और जँभाइयाँ लेती हुई उठ बैठी और आँखें खोलकर मालिन की ओर देखी। उसकी लाल लाल आँखें—जो अचेतता के कारण लाल ईंगुर सी हो रही थीं—देखते ही मालिन की नाड़ियों का रक्त सूख गया और वह मारे भँय के थर थर काँपती हुई हाथ जोड़ कठपुतली की भाँति सामने खड़ी रही। हेमांगिनी ने उससे पूछा, मालिन प्रेमा कहाँ है?

मालिन—सरकार के बेहोश होते ही वह दवा लेने कोट की ओर भागी गई है अभी तक लौट कर नहीं आई।

हेमां०—मुझे क्या होगया?

मा०—हुजूर! चक्कर आगया।

हेमा०—क्यों?

मा०—सरकार शरीर ही तो है इसमें कब क्या व्याधि क्या विकार खड़ा हो जाय इसे कोई जानता है ? यह शरीर रोगों का मंदिर है।

हेमां०—कहीं इन फूलों के कारण तो बेहोशी नहीं हुई ?

मा०—यह भी मैं नहीं कह सकती सरकार ! ऐसा भी होना सम्भव है। क्योंकि जब कभी कोई ज़हरीला साँप फूलों की क्यारियों में आ जाते हैं तो उन क्यारियों के फूल विषैले हो जाते हैं। मेरे गाँव में एक कोल का वरिवार; कोदो का भात खाकर कई दिन तक आयँबायँसायँ बकता बेहोश पड़ा रहा ! क्योंकि उस कोदो के खेत में कोई विषैला सर्प घुस गया था जिसके विष की लपट से सारे खेत का अन्न विषैला हो गया था। बहुत सम्भव है कि इन गुलाब की क्यारियों में भी कोई ज़हरीला सर्प घुसा हो और उसीके जहर से इन पौदों के फूल जहरीले हो गए हों !

हेमां०—अच्छा प्रेमा तो अभी आई नहीं रात हो गई, मुझे बड़ी कमजोरी मालूम होती है, मैं पैदल जा नहीं सकती, तू जाकर कोट से सवारी ले आ तो मैं चलूँ।

मालिन—सरकार ! मैं चली जाऊँगी तो सरकार अकेली पड़ जायगी। हुक्म हो तो अपने गाँव से डोली कहार ले आऊँ सरकार उसी पर सवार होकर चलें।

यह कह कर मालिन गई और डोली कहारों को लेकर तुरंत लौट आई। हेमांगिनी डोली पर सवार हो मालिन के साथ कोट में आई। फाटक पर पहुँचते ही सेवक (जमादार) का माथा ठनका और उसने बड़े आश्चर्य के साथ सवाल किया, अरे यह क्या ! हेमांगिनी ने डोली के भीतर से उत्तर दिया "दरबार में आओ तो कहें !"

सेवक बड़ा पुराना खुर्राट था वह ताड़ गया और मनमें कहने लगा कि कुछ तो हुआ जरूर। क्योंकि वह राजकुमार भी

बुलाया गया था और वह साथ लौट कर नहीं आया। ज़रूर उसने कुछ बुराई की। इतनी रात में दरबार में मुझे बुलाने का कारण क्या? चलो सुने तो क्या बात है। यह विचार कर वह जमादार फाटक बन्द कर दरबार में आया देखा तो सारी सहेलियाँ चकृत विस्मित तथा स्तम्भित हुई चित्रसी खड़ी हैं। चौकी के सामने मालिन खड़ी अपनी वही बात—जो उसने बाग़ में कही थी—दोहरा रही है।

सेवक को देखते ही हेमांगिनी ने कहा—जमादार! बड़ा भारी छल हो गया। प्रेमा ने-जिसे मैं बेहद प्यार करती थी—बड़ा धोखा दिया। वह हरामज़ादी सूअर की बच्ची उस राजकुमार को लेकर भाग गई। मुझे बेहोश देख उसने अपना मतलब गाँठ लिया। अब क्या करना चाहिये?

सेवक—प्रेमा जब लौट कर आई और उस युवक को साथ लेकर जाने लगी तभी मैं समझ गया कि यह नई बात है? और गईं भी तो प्रेमा ही को साथ क्यों ले गईं?

हेमां०—इसलिये कि मैं प्रेमा को बहुत चाहती थी।

सेवक—तो प्रेमा ने आपको भी चाह लिया! चलो छुट्टी हुई। अब क़िस्सा क्या रहा?

हेमां०—नहीं मैं इस चाह का मजा उसे चखाना चाहती हूँ। वह भी क्या समझेगी कि मैंने किसी के साथ (ऐसे के साथ जो अपनी बहिन से भी ज्यादा समझती थी) दग़ा किया।

सेवक—कुमारी जी! उसने दगा नहीं किया वरन् दाग़ दिया है। जिसमें आप अब भी सचेत हो जावें! इसमें उसी एक का हाथ नहीं है कई जन शामिल हैं। खैर, अब आप सम्हल जायँ; मैं फिर कभी आपसे मिलकर कहूँगा। यह मामला बड़ा पेंचदार है। मैं कुछ लोगों को उनका पीछा करने को भेजता

हूँ। इसके बाद जैसा होगा देखा जायगा। यह कहकर सेवक वहाँ से चला गया।

सेवक के चले जाने पर हेमांगिनी ने मंजरी से कहा, मंजरी! तुमने बिना मेरी आज्ञा के ताला कैसे खोला?

मंजरी०—ने कहा—कुमारी जी! प्रेमा ने जब कहा कि कुमारी की आज्ञा है युवराज को जाने दो तब मैंने ताला खोला और उन्हें जाने दिया।

हेमां०—(दाँत पीस ओठ चबाकर) प्रेमा! का तो मैं माँस कुत्तो से नुचवाकर चील्हों को खिलाऊँगी। पड़ तो जाय वह मेरे हाथ में। सबसे ज्यादा मस्ती प्रेमा ही पर सवार थी ऐसा था तो मुझी से कहती मैं उसे तरकीब बताती। मैं पहिले ही उन दोनों को समझ गई थी; इसीलिये मैंने आज्ञा दी थी कीं प्रेमा उस कैदी के पास जाया न करे। मेरी कम्बख्ती थी। जो उसे मैं साथ लेगई। (मालिन से) क्योंरी मालिन! तू साफ २ और सच २ कह क्या बात है। देख, सेवक जमादार जाँच करने को कह गया है यदि उसकी जाँच में ज़रा भी तेरा लगाव पाया गया तो फिर मैं तुझे जीती धरतीमें गड़वा दूँगी?

मालिन हाथ जोड़ साष्टाङ्ग दंडवत कर बोली, सरकार! आपको अख्तियार है। जो चाहे करें। मैं आपसे झूंठ नहीं बोलूंगी। जो बात सच थी वह मैंने कह दी। चाहे जमादार जाँच करें चाहे सरकार। यही बात मैं मरते दम तक कहती रहूँगी। (मनमें) अरे शंकर तेरा सत्यानाश हो! तू किस जवाल में मुझे डाल गया! इन रडुई रडुओं के फेर में पड़कर मेरी मिट्टी बरबाद हुई। अब न जाने क्या और कैसी जाँच हो और उसका फल कैसा निकले। हे भगवान्! मैं इससे निर्दोष हूँ। तुम मेरी रक्षा करना।

हेमांगिनी ने अपनी सहेलियों से कहा—देखो, प्रेमा का प्रेम तो देख लिया न ? अब कहो तुम सबों का क्या इरादा है ?

सब०—कुमारी जी ! प्रेमा की तरह सब नहीं हैं। पाँचों उँगलियाँ बराबर नहीं होतीं। किसी के मन का कोई नहीं जानता। फिर भी आपके साथ छल करके कोई सुखी नहीं रह सकता। प्रेमा का छल प्रेमा को सुख से न रहने देगा।

इसके उपरान्त हेमांगिनी अपने विश्रामगार में चली गई। सहेलियाँ भी अपने २ कमरों में गईं। मालिन अपने बाग को लौट गई।

आइए पाठक ! अब आपको काशीपुरी की झाँकी करायें और प्रेमा का समाचार सुनायें।

यह तो आप सुन ही चुके कि कुँअर कर्मसिंह आदि के साथ प्रेमा काशी पहुँच गई। अब आगे क्या हुआ उसे सुनें।

काशी की धर्मशाला में शंकर आदि धूर्तों ने रात काटी। भोर होते ही एक नौछटिया, गोरा लम्बे कद का पतला छरहरा पंडा—जिसकी अवस्था बीस वर्ष की थी—मस्तक में भस्म और लम्बा ईंगुर का टीका लगाये, गले में सोलह मुखी रुद्राक्ष का कंठा पहिरे, घुटने तक धोती का काछा बाँधे, कंधे पर दुपट्टा और दुपट्टे पर चारखाने का अँगोछा डाले, हाथ में नौगिरहका मिर्जापूरी लट्ठ लिये धरमशाले में पहुँचा। वह प्रत्येक मुसाफिरों से यह प्रश्न करता हुआ कि—आप कहाँ से आए हैं, कहाँ को जायँगे आपका पंडा कौन है, स्नान दर्शन आदि करना है कि नहीं, स्नान दर्शन करना हो तो "सिरतोड़ पंडा" का नाम न भूलना, क्योँ कि आप हमारे यजमान हैं इत्यादि ऊपर कही धूर्त मंडली के पास पहुँचा और शंकर आदि से भी यही प्रश्न किया।

शंकर ने कहा—भाई हम तो खुद पंडा है। यजमान ले कर

आए हैं। गंगा स्नान दर्शन सभी कुछ करेंगे। क्या आप ठठेरे ठठेरे बदला करेंगे ?

पंडे ने कहा—यजमान ! हमलोगों की आँखें गिद्ध की हैं। इन आँखों में कौन पंडा और कौन यात्री है छिपता नहीं। भगवान आपको बनाए रहें आप जैसे यजमानों से हमारी भी जीविका है। चलिये उठिये हम आपको स्नान ध्यान करायें।

इतने ही में उसी रूप, रंग, वेष, वय, के और भी दो चार पंडे एकत्र हो गए। उनमें परस्पर कुछ कहासुनी, सही जमोगा हुआ। अन्त में निश्चय हुआ कि ये निरघुन पंडा के यजमान हैं वेही इन्हें ले जायँ।

निरघुन पंडा के साथ चारो धूर्त कुँअर और प्रेमा सहित स्नान करने चले। प्रेमा कभी काशी आई नहीं थी; काशी की गलियों को देखते ही उसने कुँअर कर्म की ऊँगली थाम ली।

प्रेमा सौ में एक ही सुन्दरी स्त्री है, यद्यपि काशी में एक से एक सुंदरी स्त्रियां हैं तथापि प्रेमा की जोड़ की दो ही चार निकलेंगी। प्रेमा जिस गली से निकलती है दर्शकों का जमघट लग जाता है। दुकानदार दूकान पर बैठे २, गाहक दूकान पर खड़े २, राहगीर रास्ता चलते २ मकानदार मकानोंके खिड़की बारजों पर से प्रेमा का दर्शन करने लगे! और भाँति २ की भावनायें मन में उत्पन्न करने लगे। ऐसा कोई न दीखा जिसकी आँखें प्रेमा पर न पड़ी हों। बनारसी आँखें इस प्रकार प्रेमा पर पड़ीं जैसे छेड़ी हुई मधुमक्खियां !

राम २ करके ये लोग मणिकर्णिका नामक घाट पर पहुँचे। घाट पर भी वही हाल जो गली कूंचों का वर्णन कर आए हैं। राह से घाट घाट नहीं बल्कि कुछ बढ़ा चढ़ा है। एक गंगापुत्र ने माई बाबू कह कर सबों को अपने तख्त पर बिठाया। स्नान ध्यान से निपट कर तिलकछाप लगाकर सबों ने गंगापुत्र को

कुछ दान दक्षिणा दिया। वहाँ से चलकर सब लोग विश्वनाथ के मन्दिर में आए। देखा तो मन्दिर में इतनी भीड़ है कि पैठना मुश्किल। निरघुन पंडा आगे २ चला। पाँचों मर्द एक के पीछे एक होकर चले इन मर्दों के पीछे प्रेमा चली।

धक्कमधक्का खाते सिर हाथ ऊपर को उठाए सब धीरे २ आगे बढ़ने लगे। कुछ मिन्टों में ये लोग मंदिर के द्वार पर पहुँचे। भीड़ की धक्कापेली के कारण साथ का क्रम भंग हो गया। धक्के खाकर कोई उत्तर हुआ; कोई पच्छिम और कोई भीड़ की रेलापेली के साथ मन्दिर में पिल पड़ा। ऐसी भीड़ में कौन किसको सुध ले। सब को अपनी २ पड़ी।

किसी प्रकार भगवान भूतनाथ पर जल और बेल पत्री पटक कर दूसरे दरवाजे से शंकर बाहर निकला और वह सदर फाटक पर आकर साथियों की राह देखने लगा। शंकर के कुछ ही मिन्टों बाद सीताराम भी धोती अँगोछा सम्हालता बाहर आया। उसने शंकर से पूछा—क्या वे लोग अभी भीतर ही हैं? शंकर ने उत्तर दिया—हाँ, अभी वे लोग मंदिर में हीं हैं।

इतने ही में हाँफते हुए भोजदत्तजी भी निकले। उन्होंने कहा, भाई! दर्शन नहीं करना है दुर्गति कराना है। प्राण नहीं गए और सब गति हो गई!

इसके बाद लोटा अंगोछा गिरा कर रामनाथजी निकले। उन्होने कहा—भाई, ऐसी भीड़-जैसी विश्वनाथ के मंदिर में है, भारत के और किसी मंदिर में नहीं देखी सुनी गई। यहाँ तो उन्हीं का गुजर है जिनके शरीर में काफी बल हो और वे बल के सहारे ऐसी रेलापेली झेल सकते हों!

शंकर ने पूछा—कुँअर और प्रेमा अभी भीतर ही हैं?

रामनाथ ने उत्तर दिया—हाँ वे भीतर ही होंगे। मैंने उन्हे नहीं देखा। इतने ही में निरघुन पंडा का हाथ पकड़े हुए कुँअर

कर्मसिंह बरामद हुए। उनकी दशा ऐसी हो गई मानो छ महीने का बीमार चारपाई से उठा है!

प्रेमा को न देखकर शंकर ने पूछा—"प्रेमा कहाँ है?"

कुँअर—मैं नहीं जानता!

पंडा—मैंने तो जाना कि माई जी आप के ही साथ गईं होंगी।

राम०—मैंने तो उसे देखा भी नहीं!

सीता०—दिखाई वह मुझे भी नहीं पड़ी!

निरघुनने कहा, तो वह भीतर ही रह गईं। आप लोग इस माला वाले की दूकान पर खड़े रहें मैं मंदिर में जाकर उन्हे ढूँढ़े लाता हूँ।

निरघुन मंदिर में गया और उसे बहुत ढूँढा पर वह कहीं न मिली! ज्ञानवापी की ओर गया वहाँ भी वह न मिली। निर-घुन ने लौटकर कहा—बाबूजी! माई जी कहीं भूल कर दूसरे रास्ते निकल गईं? आइये आप लोग मेरे साथ। मैं उन्हें गली कूचों में देखूं।

सब लोग मंदिर, गली सड़क घाट धर्मशालायें आदि ढूँढ़-कर थक गये कहीं उसका पता न लगा। चारो ओर पंडे दौड़े यात्री दौड़े परकहीं न मिली! साँझ हो गई सब लोग भूखे प्यासे धर्मशाले में आये। दिन भर ढूँढ़ते २ थक गए थे कुछ खा पी कर बिश्राम किये।

कुँअर कर्मसिंह ने कहा—भाई, प्रेमा का मामला तो बड़ा दुःखदाई मालूम पड़ता है! बिचारी न जाने कहाँ भटकती फिरती होगी? अच्छा काशी आये! अजी कहीं हेमांगनी के दूत तो उसे नहीं पकड़ ले गए?

शंकर—नहीं २ इतनी जल्दी वे नहीं पता लगा सकते।

उन्हें क्या मालूम कि हम किस दिशा को ओर भागे और आज काशी में विश्वनाथ का दर्शन करने जाते हैं ?

कुँ० कर्म०—यह न कहो, ऐसी कस्साइन, ऐसी चालाक, ऐसी धूर्ता स्त्री तो मैंने अभी तक देखी नहीं। उसे क्या मालूम था कि हम भैंसोर के जंगल में किसी बरगद के नीचे अकेले इसी प्रेमा के साथ बैठे हैं ? आखिर उसके दूतों ने पता लगा ही लिया और हमें धर ही ले गए !

शंकर०—वह बन्दिश सप्ताहों से बाँधी गई होगी। प्रेमा पहिले भेजी गई। उसने ऐयारी करके आपको वहाँ ले गई। हम सब भी ऐयारी में फँस गए। क्या वैसी ऐयारी और भी कोई हुई है ? उसकी बंदिश महीनों पहिले से बाँधी गई होगी। साथ ही चुनार वाले भी खड़े हो गए। हम डबल ऐयारी में पड़ गए। आप पर उसका जादू चल गया। प्रेमा को उन्होंने नहीं हाँ; किसी काशी के गुंडोंने उड़ा लिया हो तो आश्चर्य नहीं।

कुँ० कर्म०—प्रेमा न मिली तो बड़ी भद्द हुई और यदि हेमाँगिनी ने ही पकड़ मँगाया हो तो वह बिचारी कुत्तों की मौत मरी !

सीताराम०—कलह और उसकी तलाश करलें तो कहें। क्योंकि बुद्धि में कोई बात आती नहीं है। सुनते हैं कि काशी में यात्रियों की युवा और बेवा स्त्रियाँ प्रायः उड़ जाती हैं और कहीं वह युवा स्त्री सुन्दर हुई तो फिर वे पर की उड़ाई जाती हैं। प्रेमा जैसी अत्यन्त सुंदरी युवा स्त्री यदि काशी में न उड़े तो आश्चर्य ही है।

शंकर०—तीर्थों में प्रायः यही शिकायत सुनने में आती है तब काशी में यह शिकायत विशेष है। बात यह है कि देश देशांतर के यात्री यहाँ आते हैं। उन यात्रियों से यहां के नागरिक बड़े २ लाभ उठाते हैं। विशेष कर व्यवसायी तो दूना तिगुना

मुनाफा मार लेते हैं। दूकानदार जो वस्तु नागरिकों के हाथ चार पैसे में बेंचता है उसीका वह यात्रियों से चार आना मार लेता है! विचारे यात्री को इतनी फुरसत कहाँ जो वह इसकी जाँच करे कि यह कितना बड़ा बेईमान दुकानदार है। विचारा यात्री इन अधर्मी दूकानदारों के हाथ चौड़े में—सरे बाजार—लुट जाता है। तब वह धन ही नहीं लुटाता धन के साथ २ "जन" भी लुटा बैठता है! क्योंकि जैसे धन के हरने वाले दूकानदार हैं वैसे ही जन के हरनेवाले गुंडे हैं। तीर्थों में जैसे दूकानदारों की भरमार होती है वैसे ही गुड़ों की भी। वह तीर्थ ही नहीं जहाँ ये दोनों न हों। तब इन दोनों की अधर्म की कौड़ी को चपत मार कर छीन लेने वाली वेश्यायें होती हैं। उनका अड्डा भी तीर्थों में हीं रहता है। तीर्थों के ये त्रिदोष यात्रियों को ग्रसे बिना नहीं रहते। इन तीनों का ग्रशा हुआ यात्री लाख चन्द्रोदय देने पर भी नहीं बचता!

कुँ० कर्म०—पंडों को क्यों छोड़ दिये?

शंकर०—इसलिये कि वे यात्रियों के गुरू घंटाल हैं।

सीता०—अरे भाई, यात्रियों की जान के सभी दुश्मन हैं। और सभी इनके कान ऐंठने को चुटकी गरम किये बैठे रहते हैं और भोले भाले परदेशी यात्रियों से एक २ की चार २ पुजाते हैं। घर से निकलते ही स्टेशन पर-सिपाही, कुली और टिकट बाबू ये त्रिदोश घेरते हैं। इनके बाद, पंडे सवारी वाले (इक्के बग्घी वाले) पुजेरी ये त्रिदोष व्यापते हैं। इनके बाद शंकर भाई के कहे हुए त्रिदोषका नम्बर आता है। इस हिसाब से नौ दोष होते हैं।

कुली सिपाही टिकटहा, पंडे ब्राह्मन कोष।
गुंडा वेश्या बानियाँ, यात्रिन के नौ दोष॥



यह प्रसंग समझे नहिं कोय।
नौ को भजे तो नौ का होय ॥

इस प्रकार की बात चीत करने २ नींद आ गई। सब निद्रा के वशीभूत हो कुछ देर के लिये दुख सुख सब भूल गए।

चौथा परिच्छेद।

—:***:—

दूसरे दिन बड़े तड़के निरघुन पंडा पहुँचा और उसने कहा—यजमान! मैंने चारों तरफ आदमी दौड़ाये हैं और शहर में भी अपने आदमी छोड़े हैं। अब मैं भी उसी की तालाश में जाता हूँ। आप लोग इसी धर्मशाले में रहें मैं ढूँढ़ खोज पता लगाकर अभी आता हूँ।

तीसरे पहर वह पंडा लौट कर आया और बोला—यजमान! जहाँ तक हो सका ढूँढ़ा परन्तु उसका कहीं पता निशान न पाया। अब मालुम होता है कि वह किसी बदमाश के हाथ पड़ गई!!!

शंकर०—तो बदमाशों को तो आप भली भाँति जानते होंगे?

निर०—हाँ जानते तो हम सबको हैं परन्तु जानकर कर क्या सकते हैं? जो ले गया होगा वह अपने घर में रखे होगा।

उसके घर के भीतर हम जा नहीं सकते और न किसी को भेज ही सकते हैं। फिर उसका पता क्यों कर लगे? हाँ पता लग सकता है; मगर कुछ दिन के बाद। ऐसी बातें छिपती नहीं। महीने दो महीने चाहे छिप जायँ पर अन्त में छिपने की नहीं। क्योंकि पाप है न?

शंकर०—कुछ दिन बाद पता कैसे चलेगा कौन पता देगा?

निर०—पता दो तरह से लगेगा। एक तो यह कि जिस

मोहल्ले में वह रक्खे होगा वहाँ की नाइनों, धोबिनों, चुरिहारिनों और कहारिनों से मिलने पर बहुत शीघ्र पता मिलेगा। दूसरे वेश्याओं के यहाँ।

शंकर०—वेश्याओं के यहाँ वह कैसे पहुँच सकती है?

निर०—गुंडे किसी सुन्दरी स्त्री को उड़ाकर पहिले उसे अपने घर में रखते है। जब वह देखते हैं कि खर्च नहीं सटता तो उसे मार पीट कर घर से निकाल देते हैं। तब वह विचारी या तो मारी २ फिरती है या किसी वेश्या की शरण में चली जाती है।

वेश्याओं के पति—परमेश्वर गुंडे ही हैं। ये गुंडे जो कुछ कमाते हैं वह अपनी सहकर्मिणी वेश्या को ही देते हैं। इनकी मुख्य कमाई पराई स्त्रियों कन्याओं को उड़ा ले जाना और उन्हें अपनी गृहणी वेश्या को सौंपना, उसी की पाप कमाई का पैसा आप भी खाना और उस वेश्या को भी खिलाना है।

कुछ गुंडे ऐसे भी हैं जो वेश्याओं के दलाल हैं। इनका एक काम यह भी है कि पर्व, मेला, ग्रहण आदि की भीड़ों में से सुन्दरी कन्याओं और युवतियों को हरना और उन्हे वेश्याओं के यहाँ पहुँचाना! इस प्रकार वेश्याओं के यहाँ खोई हुई स्त्रियाँ मिलाती हैं

शंकर०—तब तुम्हारी मनसा क्या है?

निर०—यदि आप यह रहस्य जानना चाहते हों तो कुछ दिन यहाँ ठहर जाँय।

कुँ० कर्म—कब तक ठहरें?

निर०—यही महीने पन्द्रह दिन। ज्यादा नहीं।

कुँ० कर्म—हम तो जरूर ठहरेंगे। क्योंकि हम उसकी पूरी खोज किये बिना काशी को छोड़ना नहीं चाहते। जिस विधि से जहाँ से जिस प्रकार हो उसका पता लगावें। बाहरी

काशी ! इस कलियुग में तू यह फल प्रदान कर रही है ! हजारों कोश की मंजिल मार कर, लाखों कष्ट और करोड़ों विपत्तियाँ झेलकर गरीब—यात्री तेरी पुरी में पधारा केवल तेरा नाम सुनकर कि तू मुक्ति की दाता है और तू उस विचारे की कन्या, बहू बेटी आदि को छीन लेती है ! क्या यही तेरा धर्म है ? तेरे नाथ भोलानाथ दो नहीं तीन आँखें रखते हैं उन्हें तेरा अधर्म क्यों दिखलाई नहीं देता ? वह तीसरा नेत्र केवल काम ही के लिये था तेरे लिये नहीं ? किसी ने सच कहा है—

नरक रोग महि जानि, खानि कुकर्म सुकर्महर।
जहँ बहु वेश्या रानि, सो काशी सेइय कस न ? ॥

भोज०—कुँअर साहेब ! अब तो आप बड़े ज्ञानी बन गए।

कुँ०—बने नहीं बनाए गए। हेमाँगिनी ने खूब ही बना डाला !

भोज—तभी आप भक्ति कांड का पाठ करने लग गये हैं।

कुँ०—जी हाँ,

षट भग ते भगवान भे, भगवानहिं ते भक्त,
लौलागी भगवान में जिसमें जग आशक्त ॥

हम तो भाई भगवान के भक्त हैं। फिर भक्ति-पाठ क्यों न करें।

भोज०—मिल गई गुरू।

कुँ०—हाँ भाई, मिली तो गुरू ज़रूर। उसने मुझे यह शिक्षा दी कि कुलटाओं से बच के रहो।

भोज०—अभी क्या है अभी तो और शिक्षा देगी।

कुँ०—अब क्या देगी सुसरी। जो देना रहा दे चुकी। अब तो हमी उसे सबक देने वाले हैं। तनिक घर तो पहुँचे।

दूसरे दिन फिर वह पंडा आया और शंकर से बोला—यजमान ! हमारे आदमियों ने अस्सी से बरुणा संगम तक छान

डाला। सारे खुफिये, अड्डे चकले आदि ढूँढ़ डाले। गौनहारिनों की गोलों में भी देख भाल किया कहीं उसका पता न चला। अब वेश्याओं के कोठे रह गए। आज रात में इनके कोठे बारजे भी देखेंगे।

कुँअर कर्मसिंह ने कहा—हम भी साथ चलेंगे।

भोज़० ने हँस कर कहा—हाँ इन्हें ज़रूर साथ ले जाइये क्योंकि बिना सदिया के देखे लाल पिजड़े में फँसते नहीं।

यह निश्चय हुआ कि पंडे के साथ सब लोग चलें। खा पीकर वे लोग तैयार हुए। पंडे के साथ दाल की मंडवी में घुसे। यह तै पाया कि दिन में हिन्दू वेश्याओं के कोठे पर और रात में मुसलमान वेश्याओं के कोठे पर चला जाय। दिन भर वे लोग हिन्दू वेश्याओं के कोठों की खाक छाने। प्रत्येक वेश्या के यहाँ चार आने पान में खर्चे। घंटे आध घण्टे खोपड़ी खाली किये। लेकिन वह प्रेमा किसी कोठे पर न मिली।

रात में वे लोग फिर दाल की मंडवी में घुसे। लतीफन, हबीबन करीमन, फहीमन, सहीमन, रहीमन, नजीबन, यतीमन आदि न जाने कितनी "मन" के कोठों पर गये, कहीं सुराग न लगा। आधीरात हो गई अभी दो चार कोठे और देखने हैं। इतने ही में निरघुन ने कहा—चलिये दो एक कोठे और देख भाल लें। सब लोग जईफन के कोठे पर पहुँचे। जईफन नाम ही की जईफन नहीं थी वास्तव में जईफ (बूढ़ी) थी। उसने इन लोगों की बड़ी आव भगत की। पान पत्ते आये। खाये पीये गये। जो वेश्या खिड़की पर बैठी थी उसे देखते ही शंकर दंग हो गया। उसकी साड़ी, उसके गहने, उसका सिंगार देखते ही उसकी बुद्धि ठिकाने न रही। वह एक दम अचरज के गहरे कूए में गिर पड़ा।

सीताराम आदि भी उस वेश्या को ऐसी अचरज भरी

आँखों से घूरने लगे जैसे बगला मछली को घूरता है। कुँअर कर्मसिंह को तो मानों कोई काला साँप सूँघ गया। उन्होंने अपनी आँखें नीची कर लीं। उन्हें बार बार निरघुन पंडे की बात बेचैन कर रही थी। वह वेश्या भी गरदन नीची किये आँसुओं की धारा बहाने लगी।

बात क्या है कुछ हमारे पाठकों की समझ में आई! समझ में न आई हो तो सुनियेः-नौची, जिसे आप सजी बजी खिड़की पर बैठी देखते हैं वही अभागिनी प्रेमा है!! देखा काशी के गुंडों की करतूत!

देखते २ एक स्त्री वेश्या के कोठे पर पहुँच गई! साथी उसके टापते ही रह गये! शंकर क्रोध से आग बबूला हो गया। उसने सीताराम को थाने पर भेजा और आप वहीं उसी जईफन से मीठी २ बातें करने लगा।

शंकर०—कहिये आप का मिज़ाज तो अच्छा है?

जईफन०—(हाथ से सलाम कर) जी हाँ, आप की मेहरबानी से। आप लोग का आना कहाँ से होता है?

शंकर—इसी शहर के रहने वाले हैं। गोले में घर है। आपकी नौची को देखकर चले आए हैं।

जईफन०—यह आप की मेहरबानी है। घर आपका है।

शंकर०—(प्रेमा की ओर इशारा कर) यह अभी नई आई जान पड़ती हैं?

जईफन०—मुस्कुरा कर और बड़ी नम्र होकर) जी हाँ, इसे आए अभी दो ही तीन दिन हुए हैं। अभी आज ही तो इसने खिड़की का शगुन किया है।

शंकर०—कहाँ से आई हैं?

जईफन०—यह मेरी मौसी की ननद की पोती है। गाँव पर से बुलाई हूँ।

शंकर०—कुछ गाना बजाना नाचना रिझाना भी······

जईफन०—जी नहीं, अभी तो दो ही दिन आए हुआ है अभी कैसे सीख जायेगी। कल्ह किसी उस्ताद को इसे सौपूंगी। क्या करूँ खुदा को मंजूर न था, मेरी सीखी सिखाई बड़ी खूब सूरत चिड़िया उड़ गई! उसे मरे आज एक वर्ष हो गया।

इतने ही में सिपाहियों को साथलिए सीताराम पहुँच गए। सिपाहियों ने जईफन को गिरफ्तार कर लिया। प्रेमा को (जिसका नाम जईफन ने "नसीबन" बताया था) साथ लेकर सब लोग थाने पर पहुँचे। रातभर जईफन हवालात में रही। दूसरे दिन न्यायालय में पहुँची। जईफन का बयान लिया गया। उसने कहा मैं नहीं जानती नक्कू इसे मेरे घर रख गया मैंने इससे वेश्यावृत्ति नहीं कराई और न यह किसी प्रकार भ्रष्ट हुई, अभी परसों तो यह आई है।

हाकिम०—नक्कू कौन है?

जईफन०—नक्कू नखास का नामी गुंडा है जो कई पानी सजा काट चुका है?

हाकिम०—हिंदू है कि मुसलमान?

जईफन०—बाप हिंदू माँ मुसलमान।

हाकिम ने नक्कू को पकड़ मंगाया! नक्कू एक मोटा ताजा गठीला पचहत्था जवान है जिसकी सूरत देखते डर मालूम होता है। दो सिपाही उसे पकड़े हुए न्यायालय में आए। नक्कू ऐंठता अंकड़ता हाकिम के सामने खड़ा हुआ। उसने अपना बयान यह दिया—

नाम नक्कू बाप का नाम छक्कू जात आधा हिन्दू आधा मुसलमान पेशा गुंडई रहने वाला नखासका हूँ। मुझे जईफन रंडी ने सौ रुपया देकर कहा कि मेरे पास कोई कमानेवाली नहीं है। मेरी गुजर बसर के लिये एक सुन्दर नई औरत कहीं

मिले तो ला दो। मैंने देखा कि यह स्त्री कचौड़ी गली में मारी२ फिर रही है। इससे पूछा तो मालूम हुआ कि इसके कोई नहीं है और यह चाहती है कि मुझे कोई रख कर खाना कपड़ा दे। मैंने इसे जईफन को सौंपा। यह राजी हो गई। मैं इस स्त्री को उसके कोठे पर छोड़ कर चला आया। मैंने इस अनाथ अबला का उपकार ही किया कुछ अपकार नहीं। मारी २ घूमती सो अच्छा कि एक ठिकाने ठाट के साथ बैठकर गोस्त चपाती उड़ायेगी अच्छा है। मैंने इसमें कुसूर क्या किया? भूली भटकी स्त्रियों को लोग बाड़ों में आश्रमों में और अनाथालयों में रखते ही हैं? फिर मैंने इसे अनाथ समझ कर जो नाथा (?) लय में रखा तो क्या बेजा किया साहेब?

इसके बाद प्रेमा का इजहार हुआ। प्रेमाने कहा मैं अपने साथियों के साथ मंदिर में गई। भीड़ की हेराफेरी में साथ के मर्द तो मंदिर के भीतर चले गए और मैं भीड़ के धक्के से बाहर फाटक पर गिर पड़ी। (उँगली से नक्कू को दिखा कर) इस पुरुष ने मेरी बाँह पकड़ कर मुझे उठाया और कहा--मैं तुम्हारा पंडा हूँ, बाबू लोग भीतर मंदिर में गए हैं आप ऐसी भीड़ में न जायें यहीं खड़ी रहें। यह कह कर इसने मुझे मंदिर में नहीं जाने दिया फाटक पर ही रोक रक्खा। साथ के पुरुषों को मंदिर में बड़ी देर लगी यह देख मैं घबराई और इससे पूछा, पंडाजी! साथियों को मंदिर में बड़ी देर लगी? इसने जवाब दिया--कहीं वे ग्यानवापी की ओर न चले गए हों। आओ मेरे साथ देखें वे लोग ज्ञानवापी में तो नहीं हैं।

यह कह कर यह मुझे उस तरफ लाया जिधर एक कूँआँ और उसके पास एक बड़ी मसजिद है। और कूँआ और मस-जिद के पास एक पत्थरका बड़ा नादिया है। वहाँ भी कुछ देर साथियों की राह देखी। जब साथ वाले कोई वहाँ न दीखे तब

मैं फिर घबराई और इससे कहा--तुम मुझे कहाँ लाकर खड़ा कर दिये यहाँ तो मेरे साथी दीखते ही नहीं हैं। इसने कहा, जान पड़ता है वे लोग डेरे पर चले गए। अच्छा मेरे साथ आओ देखें वे डेरे पर तो नहीं हैं। मैं इसके साथ डेरे की ओर चली। मुझे तो मालूम नहीं था कि मेरा डेरा कहाँ किस ओर किस गली में है। जिधर यह ले चला चुपचाप इसके पीछे २ चली गई। यह मुझे एक तंग गली की राह से इस बूढ़ी के घर ले आया। जब मैं कोठे पर चढ़ने लगी तो इससे पूछा-पंडाजी! मेरे डेरे में तो सीढ़ी कोठा कुछ था नहीं ये सीढ़ियाँ कहाँ से आईं! इसने कहा-आप चलें तो सही मैं बतलाता हूँ न। ज्यों-हीं मैं उस कोठे पर गई त्योंहीं मुझे वहाँ पर यह बुढ़िया बैठी मिली। इसने बड़े आदर से पास बिठाया। इस पुरुषने (ऊँगली से दिखा कर) इस बुढ़िया से कहा, बूढ़ी! यह बेचारी अपने साथियों से छूट गई है इसे अपने पास बिठा रखो। मैं इनके साथियों को ढूँढ़कर इसे ले जाऊँगा।

इसके बाद इसमें और बुढ़ियाँ में कुछ इशारे की बातें हुईं जिसे मैं नहीं समझ सकी और यह पुरुष इसी बुढ़िया के कोठे पर मुझे छोड़ कर चला गया। इसके जाने के बाद बुढ़िया ने एक बड़ा पीतल का डब्बा मेरे सामने धरा और कहा-इसमें के गहने तुम्हारे हैं, इसे पहिनो। एक ट्रंक रेशमी कपड़ों का देकर कहा, इसमें के कपड़े पहिनो। खाने को कहार से बाजार की पूड़ी मँगा दी। पानी अपनी हिन्दू मजदूरिन से मँगा कर दिया। दो दिन तो इसी प्रकार बीते। वह मुझे समझाती रही मैं उससे इनकार करती रही। तीसरे दिन यही पुरुष फिर वहाँ आया और इसने डाँट फटकार बताई और कहा-यदि आज बुढ़िया के कहे अनुसार सज सजाकर खिड़की पर न बैठीं तो

आज रात में आकर इसी छूरे से (छूरा दिखाकर) नाक और कान काट लूँगा और कोठे से नीचे ढकेल दूंगा।

इसके धमकाने से मैं डर गई और चुपचाप कपड़े गहने पहिन कर खिड़की पर बैठी ही थी कि मेरे साथी मुझे कोठे पर दीखे। साथियों को देखते ही मेरे जी में जी आया और मैं समझ गई कि अब मेरा उद्धार हुआ।

हाकिम ने फैसला सुनाया और—कहा बुढ़िया तू बूढ़ी है इस कारण मैं तुझे हलकी सजा—दस वर्ष का नीलापानी—देता हूँ। और नक्कू से कहा—नक्कू यदि मैं तुम्हें हलकी सजा देता हूँ तो गुंडों में तुम्हारी लम्बी नाक कट जायगी। शान में बट्टा आ जायगा। गुंडई के खिलाफ भी होगा। अस्तु तुम जन्म भर ऐसे स्थान में रहो जहाँ चारों ओर कालापानी घिरा हो। प्रेमा से कहा—तुम अपने साथियों के साथ जाओ।

प्रेमा को लेकर कुँअर कर्म की धूर्त मंडली फिर उसी धर्मशाले में आई और इस बात का बिचार करने लगी कि प्रेमा को कुछ प्रायश्चित्त करना चाहिये या नहीं। बड़ी बहस के बाद यह तय पाया कि काशी के पंडितों से बढ़ कर व्यवस्थापक संसार में नहीं हैं। यहां के पंडितों के पास चला जाय, जो वे व्यवस्था दें उसे मंजूर किया जाय।

सब लोग प्रेमा को साथ ले काशी के प्रकांड विद्वान् विद्यावारिध श्री धुरंधराचार्य शास्त्री के पास गये और उन्हें सारा वृतान्त सुनाकर पूछे कि—अब क्या करना उचित है?

शास्त्रीजी ने कहा—शास्त्रों में प्रायश्चित्त इसीलिये लिखा है कि यदि अज्ञानवश, भूलवश, अथवा बलात्कार किसी प्रकार का पाप लग जावे तो उसे प्रायश्चित्त से दूर कर देना। हाँ जान बूझ कर—सोच विचार कर—किये हुए पापों का प्रायश्चित्त हिंदू शास्त्रों में नहीं है।

तब यह स्त्री बलात्कार वेश्या के घर पहुँचाई गई। अस्तु यह प्रायश्चित्त के योग्य है। इसे ले जाओ गंगा स्नान कराओ। आज यह दिन भर निराजल व्रत रखे। विश्वनाथ अन्नपूर्णा, कालभैरव, दुर्गा आदि का दर्शन पूजन करे, दीनों को अन्न दान दे, रात भर जागरण करे, दूसरे दिन ब्राह्ममुहूर्त में दशाश्वमेध घाट पर स्नान करे वहीं हवन करे और ब्राह्मण के हाथ से पञ्चगव्य पान करके शुद्ध हो जाय।

रामनाथ—क्यों महाराज! कुछ लोग कहते हैं कि यह प्रायश्चित्त ढँकोसला है। ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ के लिये रचा है?

शास्त्री०—जो ऐसा कहते हैं वे मूर्ख हैं। प्रायश्चित्त ढकोसला नहीं बरन् धर्म-दण्ड है। क्या बिना दंड के भी कोई नियम टिका रह सकता है? यदि दंड का विधान न हो तो लोक निरंकुश हो मनमाना आचरण करने लग जायँ। भय दूर हो जाने पर अपराधों की भरमार हो जाय! प्रायश्चित्त भी एक प्रकार का सामाजिक दंड ही है और इसका होना जरूरी ही नहीं नितान्त जरूरी है। रहा यह कहना कि "ब्राह्मणों ने रचा है" सो सत्य ही है। ब्राह्मण ने तो यह सारा ब्रह्मांड रचा है सारी सृष्टि रची है सारा शास्त्र रचा है वह क्या है जिसे उन्होंने नहीं रचा?

सब लोग पंडित जी का चरण छू कर डेरे पर आए और शास्त्री जी की बताई व्यवस्था के अनुसार प्रेमा से प्रायश्चित्त कराया। इसके उपरान्त वे मिर्जापूर की ओर प्रस्थान किये।

—:***:—

पाचवाँ परिच्छेद।

ऊपर कह आए हैं कि शंकर सीताराम आदि मिर्जापूर को प्रस्थान किये। अब उसके आगे सुनें:—

इधर चुनार की बैठक में एक दूत ने जाकर खबर दिया कि कंतित के कुँअर और उनके साथियों के साथ एक बड़ी खूबसूरत स्त्री गंगा पार पक्की सड़क से घोड़े पर सवार विन्ध्याचल की ओर चली जा रही है। यह खबर सुनते ही धीर, वीर, रणधीर, क्रूर, पहाड़ और सुमेर-सिंह आदि अपना २ झोली दंडा लेकर दौड़े। प्रेतनाथजी अपना कूँड़ी सोटा बगल दबाकर कुँअर शमशेरबहादुरसिंह से बोले—लो अब बंदा भी जाता है। तनिक देखें तो वह कैसी सुन्दरी स्त्री कहाँ से उड़ाए लिये जा रहे हैं। यह कह वह भी वहाँ से चल दिये। गंगा पार उतर उतर ये लोग अपना २ जाल फैला कर शिकार की घात लगाए बैठे रहे।

कंतिक वालों के पहुँचने के पहिले ही चुनार वालों ने अपना मत निश्चित कर लिया। और अपना २ भेष ब्राह्मणों का बना कर कंठी माला हिलाते एक कूएँ की जगत पर बैठे। तिलक छाप कंठी माला और पटाम्बर से अच्छादित हो ये धूर्त अपने को एक बड़े दिग्गज पण्डित प्रकट किये और पूरे वैष्णवाचार्य बन बैठे।

कुछ ही देर में कंतित की टुकड़ी घोड़ों पर सवार हो धूप की मारी उसी कूएँ पर पहुँची और आम की बारी में एक घने पेड़ों के नीचे चारजामा बिछाकर पंथ की थकावट मिटाने लगी। घोड़े चरने को छोड़ दिये। शंकर ने रामनाथ से कहा—भाई प्यास बड़ी लगी है पानी लाओ तो काम चले। रामनाथ ने अपनी लोटिया डोर निकाली और वह उसी कूँए पर आया जिसपर ऊपर कही ब्राह्मण मण्डली बैठी जप पूजा कररही थी।

रामनाथ ने उन ब्राह्मणों को दण्डवत किया। ब्राह्मणों ने "चिरंजीवि भव" कह कर आशीर्वाद दिया। रामनाथ ने कूँए से पानी निकाल उसमें से कुछ आप पीया कुछ अपने साथियों

को पिलाया जल के पीते ही सबों की तबियत हरी हो गई। ठंढी २ बयार लगते ही आँखों में नींद आ गई।

पंथ से थक कर किसी सीतल वृक्ष की छाया में शीतल जलपान करके बैठ जाइए देखिए कैसा मन प्रसन्न हो जाता है। मन की प्रसन्नता मीठी नींद से प्रगट होती है अतएव मन के शीतल होते ही पंथ का थका हुआ पथिक मीठी नींद में निमग्न हो जाता है।

कंतित की टुकड़ी काशी से चल कर कछवाँ बाजार के बाहर सड़क के किनारे एक शीतल स्थान में पहुँचते ही मीठी नींद के बशीभूत हो गई। थके हुए घोड़े भी लोट पोट कर दूर चरने निकल गए। नींद ऐसी लगी कि नाक बोलने लगी।

इनकी यह दशा देख कूँए पर की ब्राह्मण मंडली—चुनार की धूर्त मंडली—परस्पर कुछ सलाह की और तुरंत उठ कर वहाँ आई जहाँ कंतित की मंडली कंतित के युवराज और भावी युवराज्ञी के साथ नींद का सुख ले रही थी।

पहाड़सिंह ने देखा कि नींद में सभी अचेत हैं स्त्री भी उन सबों से कुछ दूर चारजामे पर पड़ी खर्राटे ले रही है। पहाड़ सिंह ने न जाने क्या दूर ही से उस स्त्री की नाक में लगाया। जिससे वह और भी खर्राटा भरने लगी। धीर को इशारा किया धीरसिंह छओ घोड़े पकड़ लाये और उन पर ज़ीन कस छओं जन सवार हुए और उस स्त्री पर चादर डाल कर पहाड़सिंह ने अपनी काठी के सामने लाद लिया इसके बाद छओ धूर्त घोड़ा फेंकते पच्छिम को चल दिये।

उनके चले जाने के आध घण्टे बाद शंकर की नींद खुली और वह सीताराम भोजदत्त रामनाथ आदि को जगाकर बोला—"चलोगे कि यहीं सोते पड़े रहोगे। देखो तीसरा पहर हो आया अभी हमें मंजिल चलना है (रामनाथ से) रामनाथ

उठो मुँह हाथ धोओ। घोड़े कहाँ गए देखो तो? इतने ही मैं उसकी निगाह वहाँ पड़ी जहाँ प्रेमा लेटी थी, देखा तो वहाँ न प्रेमा है न उसका चारज़ामा। "लो प्रेमा फिर गई" कह कर शंकर ने आवाज़ दी।

शंकर की आवाज पर सब हड़बड़ा कर उठ बैठे। अंगड़ाइयाँ जँभाइयाँ लेते कुँअर कर्मसिंह भी उठ बैठे और बोले—"क्य प्रेमा........

शंकर०—हाँ प्रेमा, गई प्रेमा!

कुँ० कर्म० (आँखें फाड़ कर) क्या हुई?

शंकर—फिर गायब हुई!

कुँ कर्म०—(खड़े होकर) जल्दी घोड़े लाओ अभी ढूँढ़ने पर पता चल जायगा जल्दी करो। रामनाथ, रामनाथ! घोड़े घोड़े! जल्दी करो २।

रामनाथ गया इधर उधर दूर तक ढूँढ़ आया, घोड़ों का कहीं पता न चला। उसने लौटकर कहा—घोड़ों का कहीं पता नहीं और न उनकी काठी ही जहाँ धरी थी वहाँ दीखती है।

सीताराम—क्यों बेफायदे शिर मारते हो। अरे भाई घोड़े सहित प्रेमा गई!

भोजदत्त—और मैं जो कहता था कि इस राह न चलो पहाड़ी राह चलो! "ताड़ से छूटा तो खजूर में अँटका" काशी के गुंडों से छूटी तो धूर्तों के चक्र में पड़ी! अब उसका मिलना सहज नहीं है। भाग्य से वह काशी में मिल गई वरना उसका तो वहीं मिलना दुर्लभ था। और अब तो कठिन महा कठिन है अब चलो घर चलें इधर उधर करने में सिवा समय बरबाद करने के और कुछ धरा नहीं है। क्योंकि वे सब नौ दो ग्यारह हुए अब हमारे हाथ नहीं आने के।

सीताराम०—कूँएँ पर बैठे हुए ब्राह्मण ही धूर्त रहे और वेही हमें सोते देख उसे भागा ले गये।

शंकर०—यही सन्देह मुझे भी होता है। वे गिनती में पाँच छ हैं छओ घोड़े लेकर चंपत हुए। यह हमारी नादानी का फल है। "सोया सो खोया"।

भोज०—सो कैसे?

शंकर—सफर में इस प्रकार सोना अच्छा नहीं की चूतर की धोती तक चली जाय और अपने को खबर न हो। फिर यदि चार साथी हों तो तीन ही सोवें एक उन तीनों की रखवाली करता जागता रहे। साथ में साथी रहने के येही लाभ हैं कि पारी २ से सोवें और अपने २ समानों और बाल बच्चों की रखवाली करते रहें।

भोज०—यह किसे खबर थी कि यहाँ आँखें लग जायँगी और धूर्त धूर्तताई करेंगे?

सीता०—यही खबर तो रखनी चाहिये। मकान बना रहे हैं। हमें पहिले ही ध्यान रखना चाहिये कि इसमें कहीं पर सेंध न लग सके।

कर्मसिंह बिचारे तो कुछ कहते ही नहीं उनकी दशा तो हारे हुए जुआड़ियों की सी दीखती है। मन ही मन वे कहने लगे हाय! प्रेमा गई! अब शीघ्र उससे मुलाकात न होगी।

शंकर बोला—अरे यारो उठते हो कि कुछ और खोना चाहते हो। चलो आगे बढ़ो देखो क्या रंग ढंग नज़र आता है। यह कह वह आगे बढ़ा। उसके पीछे और लोग भी चले। कुछ दूर चलने पर एक बूढ़ा नजर आया। शंकर ने पूछा—क्यों बूढ़े इधर कुछ सवार दिखाई पड़े हैं?

बूढ़ा अपनी गरदन हिलाता हाथ कँपाता हुआ बोला:—हाँ हाँ अभी गंगा के किनारे पहुँचे होंगे।

शंकर—कितनी देर हुई ?

बूढ़ा०—अभी मिन्टों की देर हुई होगी। सामने देखो दीखते हैं कि नहीं ?

शंकर—दिखाई तो नहीं पड़ रहे हैं।

बूढ़े ने कहा—गए तो अभी हैं देखो ! नाव पर सवार हो रहे होंगे। चलो मैं तुम्हें दिखाऊँ यह कह कर वह उन सबों के साथ घाट पर आया। घाट किनारे एक घटहा (चौड़ी नाव) पर एक माझी बैठा था। बूढ़े ने उससे पूछाः—"अरे माझी, इधर कुछ सवार आये थे ?"

माझी०—हाँ, आए तो थे।

बूढ़ा०—किधर को गए ?

माझी०—उस पार उतर गये।

बूढ़ा०—कितने सवार थे ?

माझी०—छ सवार छ घोड़े।

शंकर०—कोई स्त्री भी थी ?

माझी०—हाँ साहेब ! एक स्त्री भी साथ थी परन्तु वह कुछ बीमार सी मालूम होती थी।

सीता०—बीमार कैसी ?

माझी०—उसे तीन चार जन उठा कर नाव में सवार कराये और उसी प्रकार उतार कर घोड़े पर सवार कराये। इससे मुझे मालूम हुआ कि वह कुछ बीमार है।

शंकर०—(मनमें) ठीक है, उसे बेहोश करके वे ले गये (सीताराम की कान में मुँह लगाकर) यह चुनार वालों ही का काम है। प्रेमा को बेहोश करके वेही लेगये। (प्रकट) उन्हें पार उतरे कितनी देर हुई ?

माझी०—वह क्या साहेब, अभी उस पार एक पेड़ के नीचे बैठे हैं।

शंकर०—उस पार टेढ़िया घाट पर ?

माँझी०—जी हाँ।

शंकर०—अच्छा हम सबों को जल्दी पार पहुँचाओ देर न करो।

माँझी०—देखो हम तो इस समय अकेले हैं। दूसरा साथी भोजन करने गया है। नाव बड़ी है गंगा में भी ज़ोरों की बाढ़ है कैसे ले चलें ?

बूढ़ा०—अबे बात न बना लेजा इन बिचारों को। आजकल बाढ़ के समय एक ही माँझी काफी है।

माँझी०—हाँ यह सही है, मगर नाव बेड़ा है बाबा, हँसी खेल तो नहीं है।

शंकर—चल भाई, हमलोग भी कुछ खेना जानते हैं। गंगा के तट पर रह कर तैरना, नाव खेना नहीं जानते ?

माँझी०—चलिये फिर चलिये आइए देर क्यों कर रहे हैं ?

सब लोग नाव पर सवार हुए। माँझी ने नाव खोला। नाव किनारे से कुछ दूर हट कर धार में पड़ी। बाढ़ के कारण धार—वह भी बड़े २ भँवरों की धार—में पड़ी। माँझी किलवारी पकड़े था और डाँड़ भी लगाता जाता था। इतिफाक से दोनों डाँड़ उसके हाथ से छूट कर गंगा में जा पड़े और वे धार में बह निकले।

नाव पर दोही डाँड़ थे यह देख माँझी नाव पर से जल में कूद पड़ा। आगे २ डाँड़ चक्कर खाते बह चले उनके पीछे २ माँझी भी भँवरों और तरंगों का चक्कर खाता हुआ बहा। इधर नाव भी घिरनी खाती हुई इस जोरों से वही की सवारों के होश उड़ गए! नाव पर न डाँड़ न बाँस और न कोई दूसरा ही साधन उपस्थित था! किलवारी (पतवार) के सहारे शंकर ने चाहा कि नाव को सीधी करें

किन्तु पानी के जोर से या पुरानी लकड़ी की वजह से वह पतवार भी दो टुकड़े होकर गंगा में गिर पड़ी।

अब क्या करें? नाव तो अब हाथ से बे हाथ हो गई और अब वह चक्कर खाती हुई इस तेजी से बही जा रही है कि रेल की डाँक गाड़ी भी उसके सामने मात है। माझी अब नहीं दिखाई पड़ रहा है। न जाने वह डूब गया अथवा बचकर तट पर जा लगा। कुँअर कर्म की घबराहट ने शंकर सीताराम आदि की रही सही हिम्मत भी तोड़ डाली।

शंकर ने कहा—कुँअर साहेब! घबराने से काम न चलेगा। मन को मजबूत किये बैठे रहिये। अंत में यह नाव आपही आप किसी स्थान पर किनारे लगेगी। जिस स्थान पर धारा किनारे पर बहती होगी वहीं पर यह नाव अब लगेगी। हम तो आपके लिये ही इस समय इस नाव पर ठहरे हैं वरना हम चारो जन जल में कूद कर पार लग जाते।

इस समय बड़ी भारी विपत्ति है। ऐसी ही विपत्ति में धीरज से काम लेना चाहिये। हिम्मत से बड़ी २ आफतें आतीं और निकल जाती हैं। यदि आफत के समय हिम्मत छूट जाय तो चाहे वह आफत कुछ भी न हो तो भी उससे बड़ी भारी हानि हो जाती है। हिम्मत से अकेला मनुष्य सिंह को मार गिराता है और यदि उसी मनुष्य की हिम्मत छूट जाय तो उससे सियार भी नहीं मरने का!

देख कर सन्मुख विपत्ति जो धैर्य निज त्यागे नहीं।
यदि सिंह भी सनमुख पड़े तो प्राण ले भागे नहीं॥
उस पुरुष की सारी बलायें सहज ही भग जायँगी।
फिर क्या रही वह क्या हुई कुछ समझमें नहिं आयँगी॥
जो कुछ पड़े सहलो उसे हिम्मत न छोड़ो डट रहो।
दुख औ सुख दोनों बराबर जो पड़े सब कुछ सहो॥

फिर देख लो आँखों से ईश्वर मदद पर तैयार है।
बे डाँड़ बे माझी की नौका धार पर से पार है॥

इतने ही में वह नौका चुनार के क़िले के आगे निकल गई। छोटे मिर्जापूर जिसे नारायणपूर कहते हैं पहुँच कर किसी रेती या चट्टान से टकरा कर फट गई। सीताराम भोजदत्त, रामनाथ, और शंकर तो धार में बह निकले किन्तु कुँअर कर्मसिंह उसी नाव के एक टुकड़े पर बैठे रह गए! भँवरों और तरंगों के भय से वे जल में नहीं कूदे।

ऐयाशों के मुख ही चिकने होते हैं। साहस उनसे कोसों दूर भाग जाती है। इसी कारण मरदानगी का सवाल पेश होते ही वे बगलें झाँकने लगते हैं। क्योंकि हृदय उनका इतना दुर्बल हो जाता हैं कि वे किसी साहस के काम में कुछ भी भाग नहीं ले सकते। यद्यपि कुँअर कर्मसिंह तैरना जानते थे तथापि वे साहस न कर सके और उसी तख्ते ही पर बहते हुए काशी के भी बाहर निकल गये। कोई उन्हें न पकड़ा। पकड़े कौन? चढ़ी हुई नदी के दोनों किनारे कोसों दूर पड़ जाते हैं जिससे किसी भी किनारे पर से मध्य धार की वस्तु इतनी छोटी नज़र आती है कि किनारे पर खड़े हुए लोगों की समझ में ही नहीं आती कि वह क्या वस्तु बही जा रही है। प्रायः उमड़ी हुई नदियों में छान छप्पर कूड़ा करकट जीव जन्तु जो किनारे पड़े उन्हें धार में खींच कर नदियाँ बहा ले जाती हैं। कौन किसकी परवाह करे और देखे कि क्या बहा जाता है। नाव बेड़ों का आवागमन भी ऐसे समय में रुक जाता है। यही कारण है जो कुँअर कर्मसिंह बीच धार में एक नाव के टुकड़े पर बैठे बहे चले गए किसी ने उन्हें न देखा और न बचाया और न उनकी आवाज़ ही को जल की तरंगों ने किनारे तक पहुँचने दिया।

शंकर आदि तो तैर कर दशास्वमेध घाट पर निकले। थक जाने के कारण वे कर्मसिंह के लिये कोई उद्योग न कर सके। कुछ दम मार लेने के बाद उन्हें कुँ० कर्मसिंह की याद आई। इतने समय में गंगा की तेज धार ने कुँ० कर्मसिंह को न जाने कहाँ से कहाँ ले जाकर पटका, कुछ पता नहीं।

अब पाठक जरा कंतिका समाचार भी सुन लें। वही बूढ़ा—जिसने कुँअर कर्मसिंह आदि को नाव पर चढ़ाया था—कंतित पहुँच कर दरबार में यह हल्ला मचाया कि कुँअर साहेब अपने साथियों सहित गंगा में डूब गए! मेरे सामने उनकी नाव चक्कर खाकर बीच धारा में डूब गई।

इस समाचार ने सारे राज्य में मातम पैदा कर दिया। राजा रानी मूर्छित हो धरती पर गिर पड़े। सिपाही प्यादे सूबेदार हवलदार आदि दरिया की ओर दौड़े। लाश का पता लगाने को नावें छोड़ी गईं। कुछ लोग गंगा के किनारे २ पैदल चले। कुछ लोग चुनार काशी आदि स्थानों में ढूँढ़ने निकले। मंत्री, मुसाहिब राजा जितेन्द्र मोहनसिंह को समझाने बुझाने में व्यस्त रहे।

दो दिन तक राजा रानी दोनों ने अन्न जल नहीं किया। रानी की दशा इतनी शोचनीय हो गई कि तीसरे दिन रानी ने अपना प्राण त्याग दिया। रानी की मृत्यु से राजा की भी दशा बिगड़ी। एक तो पुत्र शोक दूसरे पत्नी वियोग दोनों विषम और असह्य दुःखों से चौथे दिन राजा जितेन्द्र मोहन-सिंह भी इस असार संसार से चल दिये।

छोटे पुत्र धर्मसिंह ने माता पिता दोनों की दग्धक्रिया की। छठें दि न रामनाथ कंतित के क़िले में पहुँचा। वहाँ की कथा सुन कर वह भी सिर धुनने लगा और कहने लगा हाय २! बड़ा अनर्थ हुआ! उस बूढ़े ने उधर भी आफत ढाया और इधर

भी आफत ढाया! कुँअर धर्मसिंह से उस बूढ़े की हुलिया पूछी। कुँअर धर्मसिंह ने उसकी हुलिया बताई। हुलिया सुन कर रामनाथ कहने लगा—अरे भाई! वह वही बूढ़ा था जिसने हम सबों को धोखा देकर नाव पर चढ़ाया और माझी को सिखा पढ़ा कर हमें जोखिम में डाला। भला आप लोगों ने उसकी बात का विश्वास कैसे कर लिया?

कुँ० धर्म०—जब उसने यह कहा कि "मैं उन लोगों का डूबना अपनी आँखों देखे आ रहा हूँ" तो उसका विश्वास कैसे न करते?

राम०—वाह भाई! यदि कोई कहे कि कौव्वा तुम्हारा कान ले गया तो बस कान २ करते उस कौव्वा के पीछे भगें? अपना कान न देखें कि अपने पास है वा नहीं। फिर यह कौन सी नीति है कि किसी अपरिचित के कहे का चटपट विश्वास कर लें?

कुँ० धर्म०—होनी प्रबल है। वह जब जैसी चाहे तब तैसी करा देवे।

राम०—हाँ होनी ही ने तो यह सब कराया। हम जैसे चतुर धूर्त जब उस बूढ़े खुर्राट के चकमें में आ गए तब आप लोगों का आ जाना कौन सा अचरज है।

कुँ० धर्म०—वह बूढ़ा कौन था क्या तुम उसे जानते हो?

राम०—जानते ही होते तो इस दर्जे को पहुँचते?

चुनार का कोई धूर्त रहा होगा। सिवा वहाँ के धूर्तों के और कौन हमारा बैरी है?

कुँ० धर्म—(आँखों से आँसू गिराकर) भाई साहेब की कुछ खबर है?

राम०—भाई साहेब आप के डूबे हैं न डूब सकते हैं। वह एक नाव के तख्ते पर सवार हैं। उन्हें खोजने पकड़ने शंकर

और कुछ सरकारी सिपाही जो उन्हीं की खोज में काशी तक गये थे और जिनकी जबानी कंतित का समाचार सुनकर मैं यहाँ दौड़ाया गया हूँ—दौड़े हैं। सम्भव है कि वे आज कल्ह में आ जावें।

कुँ० धर्म०—हाय! माता पिता दोनों का उनके वियोग में प्राण गया! ऐसी सुशीला और प्यारी माता अब (आँखों से अश्रुधारा बहाकर) कहाँ मिलेगी? किसे अब "माँ" कहकर पुकारेंगे? कौन अब "बेटा कैसे हो" कहकर मेरा मुख चूमेंगी? कौन अब लाड़ से बेटा कर्म बेटा धर्म बेटी कमलाक्षी को पुकारेगा और उन्हें गोद में बिठाकर अपने मीठे २ ओंठों से हमारे कपोलों को चूमेंगा। हाय! मेरी प्यारी माता! अब तेरी वह सुखदाई आँखें जो हमारे शरीर को अमृत सींचकर शीतल करती थीं—दृष्टि न पड़ेगी! अब वह सुखदाई गोद बैठने को नसीब न होगी। वह अमृत वाणी सुनने में न आयेगी जिसे सुनाकर तू हमें सजीव रखती थी। हा माता! तेरी वह मोहिनी मूर्ति अब इन आँखों न देख पायँगे। हा! माता एक बार तो तू अपना दर्शन और देकर मेरे सन्तप्त चित्त को शान्त कर। हा! पिता! जन्मदाता! हम कुछ भी आप के काम न आए! कोई भी सेवा हम से न बनी। हमें मझधार में छोड़कर आप कहाँ चल दिये। भाई साहेब को तो आ जाने दिये होते इतनी जल्दी क्या पड़ी थी? क्या इस राज्य से आप अब ऊब गए थे? इस सन्तान से आप इतना दुखिया गये कि बिना कुछ कहे ही चल दिये। सुरपुर का राज्य सूना था जो आप वहाँ बुलाये गए! हा! भगवान् इस कठोर विपत्ति में सिवा तुम्हारे कौन सहायक है?

रामनाथ ने बहुत समझाया और कहा—कुँअर साहेब! किसी के माता पिता सर्वदा नहीं जीते रहते हैं। इस नश्वर

संसार में मरण जीवन बराबर ही लगा है। एक आता है एक जाता है। तब जो जाता है वह फिर दिखाई नहीं पड़ता यही एक शोक का मूल कारण है। क्योंकि:—

ऐसे २ सूरवीर जनमें धरा पै आय,
कालहूते नेकु जिन, मन में डरे नहीं।
ऐसे २ योगी यती, तपसी विरागी भये॥
अटल स्वधर्म तेजे, टारेहू टरे नही।
सुकवि श्रीलाल लाल, लक्ष्मी के ललाम लाखों,
कौन वसुधा में कर्म कुकरम करे नहीं॥
फूलि फलि झरे नहीं, रितायकै भरे नहीं,
भरि कै ढरे नहीं जे जनमि मरे नहीं।

दोहा—जो आया सोही गया, सरबस यहीं निचोड़।
बुरे भले सबही गए, जस अपजस दुइ छोड़॥

बस, अब सन्ताप व्यर्थ है आप माता पिता का कर्म पूर्ण करें। मैं भी कुँअर की तलाश में जाता हूँ और उन्हें ढूँढ़ खोज कर लाता हूँ।

कुँअर धर्म ने कहा—भाई! भाई साहेब के आने तक मैं इसी प्रकार रहूँगा। कर्म धर्म सब वेही आकर करेंगे। क्योंकि वे जेठे हैं उन्हीं को अधिकार है। मैं तो उनकी अनुपस्थिति के कारण यह भार अपने सर लिया है। मुझ से न कर्म ही सधेगा और न यह विशाल राज्य ही! मैं तो माता पिता दोनों का नाम स्मरण कर पतित पावनी भागीरथी के तट पर अपना शेष जीवन बिताऊँगा।

रामनाथ ने फिर कुछ सदुपदेश देकर समझाया और कहा—हाँ आप का यह कहना कि जेष्ठ भ्राता ही अधिकारी है ठीक और उचित है। फिर भी उनकी गैर हाजिरी में आप सब कुछ

कर सकते हैं। मैं उन्हें कहां न कहीं से ढूढ़ें लाता हूँ? यह कह कर वह वहां से विदा हुआ।

—***—

छठवाँ परिच्छेद।

—:****:—

पाठकों को यह जानने की बड़ी उत्कंठा होगी कि पिछले परिच्छेद में प्रेमा को ले भागने वाले ब्राह्मण तो पहाड़, सुमेर धीर,वीर और क्रूरसिंह आदि थे पर वह बूढ़ा कौन था–जिसने कुँअर कर्मसिंह आदि की नाव पर सवार करा कर उन्हें घोर संकट में डाला और झूठी अफ़वाह उड़ा कर कंतित का सर्वनाश करा दिया।

अच्छा तो पहिले हम उस बूढ़े का परिचय करा कर तब आपको आगे का किस्सा सुनावें जिसमें आपकी बेकली दूर हो।

पाठक महोदय, वह बूढ़ा और कोई नहीं आपका परिचित्त वही प्रेतनाथ था। उसीकी धूर्तता से कुँअर और उनके साथी घोर संकट में पड़े और कंतित के राजा अपनी जान से गए।

हम पहिले ही कह चुके हैं कि प्रेतनाथ मनुष्य नहीं शैतान का चाचा है, इसके सभी कर्म भयानक हैं। ऊपर हम लिख आए कि धीर, वीर, सुमेर, पहाड़सिंह आदि जिस समय यह सुने कि कुँ० कर्म आदि एक सुन्दर स्त्री लिये कछवा की सड़क से जा रहे हैं तो वह अपना २ डेरा दंडा लेदर उनका पीछा करने दौड़े—उसी समय प्रेतनाथ भी कुँअर से बिदा हो उन्हीं के पीछे पहुँचा और जब पहाड़सिंह आदि प्रेमा को लेकर चल दिये तब इसने अपनी ऐयारी दिखाई। इसकी ऐयारी का फल पाठक पढ़ ही चुके। अब उसके आगे सुनेः—

कंतित के दरबार में यह कह कर कि—कुँ० कर्म अपनी

मंडली के साथ नाव फट जाने के कारण गंगा में डूब गये—प्रेतनाथ वहाँ से रफूचक्कर हुआ और वह चुनार पहुँच कर अपना और उनका किस्सा कुँ० शमशेर बहादुरसिंह से कही रहा था कि पहाड़सिंह आदि उस स्त्री को लेकर पहुँच गए। स्त्री को देखते ही कुँअर शमशेर बहादुरसिंह दंग रह गए।

प्रेमा कुँअर शमशेर बहादुरसिंह को देखते ही लजाकर गरदन नीची कर ली और मन ही मन कहने लगी विधाता कुम्हार के यहाँ भी खिलौनों के अद्‌भुत २ साँचे हैं जिन्हें वह अपने विश्व आँवें में पकाता और उन पर सुन्दरता का रंग चढ़ाकर संसार के बाजार में बेचता और गाहकों को मुग्ध कर लेता है। अभी तक मैं यही जानती थी कि सुन्दरता स्त्रियों ही के बाट में पड़ीं है किन्तु देखती हूँ कि मेरा विचार ग़लत है। इसके (सौंदर्यता के) हिस्सेदार स्त्री पुरुष दोनों ही हैं। उस रचयिता की इस अद्‌भुत और अनुपम रचना का बखान वही कर सकता है जिसमें उसके बखान की सामर्थ्य हो। धन्य रे कुम्भकार! धन्य तेरी रचना !! आज तेरे अद्‌भुत कौशल और अनोखी कारीगरी का नमूना देख कर आखें तृप्त हो गईं।

उधर कुँ० शमशेर बहादुरसिंह भी स्त्री की (प्रेमा की) उपमा ढूँढ़ने लगे और मन ही मन कहने लगे कि बिधाता की इस चतुराई को जाने कौन कि वह क्यों स्त्रियों में इतनी सुंदरता का समावेश करता है? पुरुष चाहे कितने ही सुन्दर क्यों न हों फिर भी वे कवियों की आँखों में नहीं जँचते। कविगण पुरुषों के गुण स्वभावादि की चाहे जितनी प्रशंसा कर डाले परन्तु सुंदरता की प्रशंसा में वे हिचकिचाने ही लगते हैं। किंतु वे ही एक साधारण सुंदरी की सौंदर्यता का बखान करते करते स्वयं भी थक जाते हैं और अपने पाठकों को भी थका डालते हैं। और यदि अत्यन्त सुंदरियों की प्रशंसा करने लगे

तो चांद, सूरज, तारागण आदि भी उनकी प्रशंसा में फीके पड़ जाते हैं; देवी देवताओं की तो कोई बात ही नहीं। इसका कारण केवल यही अनुमान किया जाता है कि स्त्रियों की सुंदरता में जो नमक है वह पुरुषों की सुन्दरता में कम क्या है ही नहीं। केवल गौर वर्ण, गोल मुख, बड़ी २ आँखें होने से ही कोई सुन्दर नहीं होता। पश्चिमीय गौरांगनाओं में सब कुछ होने पर भी वह नमक नहीं और न वह भाव ही है जो पूर्वीय विशेष कर भारतीय गौरांगनाओं में पाया जाता है। फिर स्त्रियों में कुछ स्वाभाविक लावण्यता है। हाँ वह किसी में कुछ कम है, और किसी में कुछ ज्यादा।

स्त्रियाँ मोहिनी होती हैं। इनमें कुछ आकर्षणता है जिसके प्रभाव से वे पुरुषों को सहज हो वशीभूत कर लेती हैं। इसी कारण चतुर-धीमान्-पुरुष इनसे दूर ही रहते हैं। इस स्त्री(प्रेमा) में भी कवियों के लिये यथेष्ट सामग्री है। यह कुँअर कर्म के हाथ कैसे कहां से पड़ी इसे बूझना चाहिये।

कुँअर ने स्त्री से बूझा—सुन्दरी! तुम अपना समाचार तो सुनाओ। तुम कुछ मन में भय न करो क्योंकि यहां तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा और न कोई तुम्हारी ओर ताकने का साहस ही कर सकता है। किसी की मजाल नहीं जो तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी करने का साहस करे। जो तुम कहोगी जो तुम चाहोगी जहाँ जाने जिससे मिलने की इच्छा प्रकट करोगी सब मैं पूरी करा दूँगा। अस्तु तुम जी खोलकर अपनी राम कहानी—आदि से अन्त तक–मुझे सुनाओ और इस दुष्ट (कुँ० कर्मसिंह) के हाथ कैसे पड़ीं इसे भी समझाओ।

प्रेमा पहिले तो बड़ी संकोच में पड़ी और कुँअर के प्रश्नों का उत्तर न देकर वह अपना शिर नीचा कर तिनके चुनने और नखों से धरती खोदने लगी। परन्तु कुँअर के बहुत समझाने

बुझाने और ढाँढ़स बँधाने पर वह अपनी राम कहानी यों वर्णन की:—

मैं क्षत्रिय बालिका हूँ। मेरे पिता का नाम सामान्त सिंह है। मैं रहने वाली सिंघरौली की हूँ। मेरा पिता कानपूर के राजा कामसिंह का प्रधान सचिव है। मेरा विवाह अभी नहीं हुआ है। जब मैं छ बरस की रही तभी मेरी माता मर गई मेरे ही कारण पिताने दूसरा विवाह नहीं किया। क्योंकि उनका विचार था कि विवाह करने पर दूसरी स्त्री पहली स्त्री के बच्चे के साथ अच्छा बर्ताव नहीं करती। इसी भय से उसने दूसरा विवाह नहीं किया। मेरे ही लालन पालन में उन्होंने अपना जीवन व्यतीत कर दिया।

जब मैं सयानी हुई तो राजा कामसिंह के महलों में उनकी राजा कामसिंह की बहू हेमांगिनी के साथ रहने लगी। जब हेमांगिनी एक जोगी के साथ निकल भागी तो उसने चलते समय मुझे और मेरेही समान वय और अवस्था की अन्य सहेलियों को भी साथ लेली। तबसे मैं उसीके साथ चोपनके जंगल में पड़ी रही। इसके उपरांत उसने कुँअर कर्मसिंह का किस्सा जैसे वे भैरवी के साथ गए और वादा करके चले आए, उसके बाद फिर पकड़े गए और हेमांगिनी के मेहमान रहे, उनके साथियों का बह जाना, अपनी सहायता से उन्हें क़ैद से छुड़ाना फिर काशी के गुंडों के हाथ पड़ना, वहाँ वेश्या के यहाँ से मुक्त होना, इसके उपरांत धीर वीर आदि के हाथों पड़ना आदि— कह सुनायी और बोली अब मैं कहाँ जाऊँ किसके पास जाऊँ? पिता को मुख दिखाने योग्य नहीं, क्योंकि उनकी आज्ञा के बिना ही मैं वहाँ से चली आयी हूँ, हेमांगिनी के पास जा नहीं सकती क्योंकि उसे भी छल कर आई हूँ। अब यदि वह पावेगी तो मुझे जीती न छोड़ेगी। फिर वह मेरे फिराक में अपने आदमी अवश्य

ही छोड़े होगी। जहाँ कहीं मेरी बू उन्होंने पाई वहीं मैं गिरफ्तार हुई। अस्तु; अब मैं किसी सुरिक्षत स्थान में ही कुछ दिन जीवन व्यतीत कर सकती हूँ। अन्यथा मेरा प्राण घोर संकट में पड़ा है और जीवन की इती श्री ही जानिये।

कुँअर शमशेर बहादुरसिंह ने कहा—सुंदरी ! तुम कुछ चिंता न करो। मैं तुम्हें बचन देता हूँ कि तुम्हारा कोई बाल बांका न कर सकेगा। हेमांगिनी का मैं तुम्हारे चरणों में शीश रखवा कर छोड़ूंगा।......

प्रेमा ने बात काट कर कहा—कुँअरजी हेमांगिनी बड़ी गर्ववती बड़ी रूपवती और धनवती स्त्री है, उसका प्रणयी योगी प्रभाव शाली है। जहाँ सूर्य की किरणों का गम नहीं वहाँ वह विचरण करने वाला है। आकाश, पताल, म्रत्यलोक में वह सूक्ष्मरूप धर कर निर्भय विचरता है और जिसे चाहे उसे जैसा चाहे वैसा नाच नचा दे सकता है। उस योगी का हेमांगिनी को बड़ा गर्व है। इसी कारण वह किसी को कुछ समझती नहीं। धन भी उसके पास अकूत हैं, मन भी उसका स्वच्छन्द है, यौवन भी उसका अपूर्व है। भवन भी उसका निराला है। उसे किसी वस्तु की इच्छा नहीं केवल उसे पुरुष........कहते २ रुक गई कुँअर ने हँस कर कहा—हाँ सो तो स्वाभाविक है इसमें आश्चर्य ही क्या ? फिर भी मैं उस हेमांगिनी का गर्व चूर करने का प्रयत्न करूँगा और उस योगी का योगबल भी आजमाऊँगा तनिक मुझे कर्मसिंह से तो निपट लेने दो।

प्रेमा०—कुँ० कर्मसिंह से कैसा निपटना है ?

कुँ० शमशेर०—है कुछ परस्पर का रगड़ा जो रगड खाते २ अब अन्त को आ गया है।

प्रेमा०—उसी अजयगढ़ की राजकुमारी का तो नहीं ?

कुँ० शम०—यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

प्रेमा०—उन्हीं कुँ० कर्म से।

कुँ०—(आश्चर्य से) अच्छा, इसकी सेखी भी वे वहाँ मार आए हैं ?

प्रेमा०—जी हाँ, हेमांगिनी से बात चीत होती थी उसी समय मैं भी वहीं रही तब मैंने जाना कि क़िस्सा क्या है ?

कुँ०—कर्म हाँ हाँ जरूर कहा होगा। वह ऐसाही लंपट है। यह तो न कहा होगा कि उसके पीछे हमारी क्या क्या फजीहत हुई?

प्रेमा०—हाँ, वे इसे भी कहते थे।

कुँअर शमशेर बहादुरसिंह ने सारा क़िस्सा कहा और प्रेमा से कहा कि तुम अब मेरे चुनारके क़िलेमें निर्भय पड़ी रहो। सौदामिनीको बुलाकर मैं तुम्हें उसके साथ अजयगढ़ को भेज दूँगा। तुम शशि के साथ रहना। वहाँ तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा।

प्रेमा ने कहा—कुँअर जी ! अब मुझे अपनी शरण से अलग न कीजिये। मैं शशि की दासी होकर आपकी और शशि की सेवा करती इसी चुनार के क़िले में जीवन लीला समाप्त करूँगी। क्योंकि अब मेरे तीन बैरी हो गए। पिता हेमांगिनी और कुँअर कर्मसिंह। एक ही बैरी जीवन के लाले डाल देता है तीन तो तीन जन्म तक चैन न लेने देंगे। अस्तु अब मैं कहीं न जाऊँगी।

कुँअर शमशेर बहादुरसिंह ने सुखमा को बुलाया और उससे कहा इसे ले जाकर अपने साथ क़िले में रखो। इसे किसी प्रकार का कष्ट न हो इसका पूरा ध्यान रखना।

प्रेमा सुखमा के साथ क़िले में गई। कुँअर शमशेर बहादुरसिंह ने प्रेतनाथ से कहा—भाई तुम बड़े प्रेत हो ? तुमने एक रियासत का मटिया मेट कर डाला ! अब तो कर्म और भी स्वतन्त्र हो जायँगे। अब वे जो कुछ कर डालें सो थोड़ा है। रियासत चौपट हुई इसमें संदेह नहीं और इसका पाप तुम्हें पड़ेगा।

प्रेत—मुझे क्यों पाप पड़ेगा ?

कुँ० शम०—इस लिये कि तुमने झूठा अफवाह फैला कर राजा रानी दोनों के प्राण लिये !

प्रेत०—मैंने झूठ क्या कहा ? नाव बही गई; यह सही है और वह फट भी गई इसकी भी खबर मुझे मिल गई। नारायण पूर के जासूसों की जबानी यह भी मालूम हुआ कि नावके तख्ते पर कुंअर कर्म बहे चले गए। फिर इसमें झूठ क्या कहा।

कुं०—तुम तो कहे कि कर्मसिंह डूब गए।

प्रेत०—डूब गए, बह गए एकही बात है। मरने दो यह तो होता ही रहता है। अब आप अपना काम देखें। अब तो वे बहे और भगवान जाने कि कहीं लगे या सीधे गंगा सागर ही में पहुँच गए। अब तो जब वे कहीं से मरते गिरते आवेंगे तब देखा जायगा। चलता हूँ फिर कंतित और देखता हूँ कि वहाँका क्या हाल है। अब दोनों भाइयों में फूट डाल कर उन्हें छकाऊँगा।

प्रेतनाथ इधर गए उधर पहाड़सिंह आदि में गपशप होने लगी।

पहाड़सिंह ने कहा—प्रेमा को तो ले आये परन्तु कहीं प्रेमा भी भैरवी का रूप धारण न करे ! क्योंकि स्वतन्त्र स्त्रियों का कुछ विश्वास नहीं। स्त्री घर से निकली और उसका विश्वास गया। जो माता, पिता, भ्राता, सास, स्वसुर, देवर, जेठ आदि कुटुम्बियों को त्यागते नहीं हिचकी और पुरुष वा पर स्त्री के साथ निकल कर कुलटा बनी उसका विश्वास क्या ? जो अपने ही की सगी न हुई वह दूसरों की कब हो सकती है ? स्त्रियों का यों हीं विश्वास करना उचित नहीं; तिसमें कुलटाओं का विश्वास करना तो महा मूर्खता है।

कुँअर शमशेर बहादुरसिंह ने कहा—मैं इसे नहीं मानने का। पाँचों उगलियाँ बराबर नहीं होतीं। सभी स्त्रियाँ विश्वास

घातिनी ही होती हैं सभी कुल्टायें अविश्वसासिनी ही होती हैं ऐसा कहना ही अनुचित है। मैंने बजारू वेश्याओं को देखा है कि वे जिसकी हो रहीं हो रहीं। लाख स्वरूपवान धनवान प्रभुतावानों ने उन्हें चाहा किन्तु वे अपने सिद्धान्त से हिलीं नहीं।

आँखों में ले लिया जिसे खोलीं पलक नहीं।
पर पुरुष की परछाई को ताकीं तलक नहीं॥ (लाल)

जब वेश्याओं में भी इतनी दृढ़ता पाई जाती है। तो गृहस्थ्य स्त्रियों का क्या पूछना है।

पहाड़०—भला कितनी स्त्रियाँ ऐसी मिलेंगी।

कुँ० शम०—बहुत कम, विशेष कर वेश्याओं में तो लाखों में एक और गृहस्थ स्त्रियों में फी सदी पंचानवे मिलेंगी।

पहाड़०—संसार में?

कुँ० शम०—जी नहीं केवल भारतवर्ष में। जहाँ कि स्त्रियाँ किसी काल में सती ही होती रहीं; कुलटा नहीं। जहाँ की स्त्रियों का पतिव्रत-धर्म प्रशंसनीय था, मनुष्य ही नहीं देवता भी जिनके पतिव्रत धर्म की सराहना करते थे। ऐसा प्रशंसनीय दाम्पत्यप्रेम संसार के किसी जाति धर्म और समाज में न था न है और न होने ही की सम्भावना है। पति क्या है; उसका स्त्री से क्या सम्बन्ध है, तथा स्त्री क्या है; उसका पुरुष से क्या सम्बन्ध है, यह इसी भारतवर्ष के स्त्री पुरुष जानते थे और अब भी किसी अंशों में जानते ही हैं। समय के फेर से धर्म में बड़ा परिवर्तन होगया है। इसी कारण पति-पत्नी व्रत-धर्म भी कुछ शिथिल जरूर होगया है; किन्तु वह लुप्त नहीं हुआ है। अब भी अन्य देशों की अपेक्षा—जहाँ दाम्पत्य—धर्म को कोई जानता ही नहीं—भारतवर्ष इस विषय में प्रधान है और इसे इसका गर्व भी है।

पहाड़सिंह—(हँसकर) रहा होगा किसी समय, पर अब तो आप यह नहीं बता सकते कि किसी नगर ग्राम और घर में दाम्पत्यकलह नहीं है और व्यभिचार की छूत उनमें नहीं फैली है।

कुँ० शम०—भाई ! निष्कलंक तो चन्द्रमा भी नहीं है। उसमें भी दाग हैं। लेकिन इन तुच्छ दागों से उसकी सौंदर्यता नष्ट नहीं हुई है। भले बुरे लोग पहिले भी थे, अब भी हैं और आगे भी रहेंगे; किन्तु इससे भारतवर्ष का पवित्र गौरव नष्ट नहीं हो सकता। हम मानते हैं कि इस समय व्यभिचार की वेलि पहिले की अपेक्षा अधिक फैल गई है और यह सम्भव है कि आगे चल कर वह और भी अधिक फैले ! फिर भी हम यही कहेंगे कि इस पाप के मूल कारण पापी पुरुष और वर्तमान युग के सुधारक हैं। पापी पुरुषों की पाप बासनायें दिन २ बढ़ती ही जाती हैं इसी कारण संसार में पाप भी बढ़ता जाता है। सुधारक इन्हें सुधारने की कौन कहे उल्टा उन्हें और निरंकुश किये डाल रहे हैं। मनुष्यों की स्वर्गीय अधिकारों में हस्तक्षेप कर उन्हें स्वछन्द स्वतन्त्र और अधर्मी बना रहे हैं।

प्रेमा को यदि आप अथवा कर्मसिंह न उड़ा लाते तो वह आपके अथवा कर्म के पास पर लगा कर तो उड़ न आती। इधर तो कर्म उसे उड़ाकर अपनी छतरी पर बैठा ही रहे थे कि उधर आपने फंदा मारा ! और उसे फाँस कर अपने दरबे में ले आए ! आगे चल कर फिर कोई दाना छितरा कर उसे उड़ा लेवे तो आप भी मुँह ताकते रह जावें और वह तीसरे के फंदे में फँस जाय ! ऐसी दशा में तुम्हीं कहो इसमें कुसूर किसका है ?

पहाड़--प्रेमा को लाकर हमने चंचला का केवल बदला लिया है।

कुँ० शम०—ठीक है, बदला ही सही; परन्तु इसमें प्रेमा का कोई दोष नहीं ?

इसी समय अजयगढ़ दरबार से एक पंडित आया। उसने कुँअर को एक चीठी देकर कहा—कुँअर साहेब ! एक चीठी दरबार की लाया हूँ किसी को साथ कर दीजिये तो दरबार में जाऊँ और इस चीठी का भुगतान करूँ।

कुँअर ने सुमेरसिंह के साथ उस पंडित को दरबार में भेजा और आप अपनी चीठी खोलकर पढ़ने लगे। उसमें यह लिखा था:—

कुँअर जी ! ऐसे निर्मोही हो गए कि सुध तक न लिये ! आपको किसी की कुछ खबर है कि कौन किस दशा में कैसे है ? कब गये आप, क्या कह कर गये हैं कुछ अपने बचन का भी ध्यान है ? इतनी निठुरता तो आप में नहीं रही ! अब भी उसे स्मरण कीजिये जो आप पर तन मन प्राण न्योछावर किये बैठी है। उसके कष्ट निवारण करने में इतनी ढील ढाल क्यों ? आज दरबार का पुरजा जा रहा है आशा है कि उत्तर संतोष-जनक मिलेगा। आप भी तैयार हो जाइए। अब देर करने का काम नहीं है !

आपकी—

सौदामिनी।

इधर पत्र भी न समाप्त कर पाए थे कि दरबार का बुलावा आ गया। कुँअर जी दरबार में पधारे। पंडित की चीठी कुँअर साहेब को दी गई। कुँअर शमशेरबहादुरसिंह चीठी पढ़ने लगे। उसमें यह लिखा था:—

महामान्यवर महाराजा विजयबहादुरसिंह की सेवा में महताब सिंह का कोटिशः प्रणाम !

निवेदन है कि आपके जेष्ठ कुमार चिरंजीव युवराज

शमशेर बहादुर को सर्वगुण सम्पन्न तथा सत्पात्र वर विचार कर हम अपनी एकमात्र दुहिता शशिप्रभा को दान में देना निश्चय किया है और आपसे सब प्रकार सम्बंध रहते हुए भी उस सम्बन्ध बन्धन को और दृढ़ करने का संकल्प किया है। आशा है कि आप मेरे इस सत्संकल्प को पूर्ण करने में सहायक होंगे। जिसमें यह मेरा पुनीत व्रत भंग न हो इसकी आप चेष्टा करेंगे।

यद्यपि हम आपके योग्य नहीं हैं तथापि अयोग्य ही को योग्य बनाना आप जैसे सत्पुरुषों का धर्म है। गिरे को ही सहायता की आवश्यकता होती है, अतएव आप अपने सुविचार से मुझे शीघ्र अवगत करें।

माघ का महीना बड़ा पुनीत महीना है। इसी पुनीत मास में यह कृत्य पूर्ण होजाना चाहिए। क्योंकि शुभ कर्मों के करने में जितनी ही शीघ्रता होसके उतनी ही अच्छी है। आशा है आप मेरी विनीत एवं उचित प्रार्थना पर ध्यान देकर शीघ्र ही अपनी शुभ स्वीकृति प्रदान कर मेरा मनोरथ पूर्ण करेंगे।

चीठी पढ़ कर कुँअर शमशेर बहादुरसिंह चुप होरहे। महाराज विजयबहादुरसिंह ने आये हुए ब्राह्मण को पत्र का उत्तर लिख कर दिया। और उसे ससम्मान् विदा किया। वह ब्राह्मण आशीर्वादों की झड़ी लगाता हुआ दरबार से बिदा हुआ। कुँअर साहेब उठकर झरने पर चले गए। दरबार समाप्त कर महाराजा विजयबहादुर भी महलों में पधारे और अजयगढ़ की चीठी रानी मनोरमा को पढ़ सुनाए। रानी सुनते ही परम प्रसन्न हुई और वह हँसकर कहने लगी—अच्छा है यदि यह सम्बन्ध होजाय तो अच्छा ही है। सुनते हैं वह परम सुन्दरी है और बड़ी गुणागरी है। दोनों का जोड़ा अनूठा है। कर डालिये; इसमें हानि ही क्या है। सम्बन्धी भी



सब प्रकार योग्य और उच्च कुल के हैं। कन्या भी बेजोड़ सुंदरी है अब और चाहिये क्या। यह वही कन्या है न जिसके कारण एक बड़ा भारी कांड होगया था ?

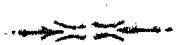
महाराज०—हाँ वही है। इसीके पीछे कंतित वालों से मेरा भी मनमुटाव होगया। युद्ध भी छिड़ा। कन्या कुछ दिन किसी अज्ञात स्थान में छिपाई गई। शमशेर और उसके साथियों के कठोर प्रयत्न से फिर वह अजयगढ़ पहुँचाई गई।

रानी०—तब तो बनी बनाई बात है; इसमें कौन बाधा डाल सकता है। फिर आपने उनकी प्रार्थना स्वीकार की या नहीं ?

राजा०—हाँ, स्वीकार तो करली है। अब जन्मपत्र आदि मिला लिया जावे तो हाँ या नहीं का उत्तर दें। यह कहते हुऐ वे बाहर चले गए।

—*:*:*—

सातवाँ परिच्छेद।



पाठक महोदय ! अब कुछ कर्मसिंह की कथा भी सुनें।

कुँ० कर्मसिंहिं बिचारे नाव के तख्ते पर बहे चले गए। किसीने उनकी पुकार न सुनी। काशी, गाजीपूर, बकसर, बलिया, आरा, छपरा, सोनपूर, हाजीपूर वगैरः २ शहर सब निकल गए। कहीं किनारे पर लगने की बारी न आई। पटने पहुँचते ही एक तिजारती नाव से उनकी मुलाकात हुई उस नाव के माझियों ने उन्हें अपनी नाव पर उठा कर उन्हें सत्तू पिसान जो कुछ उनके पास था दिया। कई दिन के भूखे रहने के कारण उनकी दशा बड़ी क्षीण होगई थी। सत्तू खाते ही कुछ होश आया और उनके शरीर में कुछ बल भी

उत्पन्न हुआ। माझियों ने उनका क़िस्सा उन्हीं की जबानी सुना। जब यह मालूम हुआ कि ये कंतित के शाहज़ादे हैं तो ईनाम पाने की लालसा से वे लोग उनकी बड़ी सेवा सुश्रुषा करने लगे।

माझियों ने कुँअर कर्मसिंह से कहा—कुँअरजी! आप मेरी नाव पर सुख से चले चलें हम नाव पर का माल हावड़ा में उतार कर आपको कंतित पहुँचा देंगे। दूसरी नाव कानपूर की है। हम लोग कानपूर से चना चावल लाद कर हावड़ा ले जा रहे हैं। वहाँ माल उतार कर फिर वापिस जायँगे। अब आप इसी नाव पर हमारे साथ हावड़ा चले चलें। वहाँ से लौटती समय हम आपको कंतित उतारते हुए कानपूर को चले जायँगे।

कुँ० कर्म०—कितने दिन में नाव हावड़ा पहुँचेगी वहाँ से कब छूटेगी और कितने दिन में कंतित लौटेगी?

माँझी०—आने जाने में दस दिन लगेंगे।

कुँ कर्म०—और यदि हम पैदल जायँ तो?

माँझी०—महीनों लगेंगे। फिर आप सुकुमार मनुष्य पैदल चल भी तो न सकेंगे।

कुँ० कर्म०—यह कौन शहर है जो किनारेपर दीख रहा है?

माँझी०—पटना।

कुँ० कर्म०—यहाँ कोई सवारी न मिलेगी?

माँझी०—मिलेगी क्यों नहीं परन्तु सवारी में भी एक दो दिन में थोड़े ही पहुँच सकेंगे यहाँ से मिर्जापूर साठ सत्तर कोश से कम नहीं है घोड़े पर जायँगे तो भी ८। ६ दिन में पहुँचेंगे।

कुँ० कर्म०—अरे भाई घोड़ा मिलेगा कैसे? पास में तो फूटी कौड़ी भी नहीं है। उधार कोई क्यों देने लगा। जान न

पहिचान। परदेसी राहगीर का विश्वास ही कोई कैसे करेगा?

माँझी०—इसीसे तो कहते हैं कि आप इसी नाव पर चले चलें। हम आप के खाने पीने का सब प्रबन्ध कर देंगे। शहर में जाकर फल फूल चीनी घी आदि ले आते हैं इसी पर पकाते खाते गंगा की सैर करते चले चलें।

कुँ० कर्म०—(हँसकर) मैं ने तो गंगा की इतनी सैर की कि जितनी बाप दादों ने न की होगी। अभी सैर करना बाक़ी ही है? मुझे अब नाव के नाम से भय मालूम होता है।

माझियों ने कहा—कुँअर साहेब! भय है तो सभी ठौर है और नहीं है तो कहीं भी नहीं है। यदि नावों में ऐसा ही भय हो तो कोई काहे को इस पर यात्रा करे और क्यों इस पर व्यापार होने लगा? नाव पर ही देश का व्यापार निर्भर है। व्यापारियों का माल कानपूर बराबर लाते ले जाते हैं। इत्तफाक की बात है जो आपकी नाव फट गई वह भी माझी की मूर्खता से। डाँड़ बह गया बह जाने देता, किलवारी (पतवार) तो उसके हाथ में थी न? उसके सहारे वह नाव को किनारे लगा सकता था परन्तु वह वैसा न कर के आप भी खतरे में पड़ा और आप लोगों को भी खतरे में डाला!

कुँ० कर्म०—अरे भाई उसकी पतवार भी सड़ी थी। हमारे आदमियों ने जब चाहा कि पतवार से काम लें तो वह पतवार भी काम में आते ही दो टुकड़े हो गंगा में बह गई!

माँझी०—तब वह नाव ही सड़ी थी। बड़े लोग कह गए हैं:—

नाव जरजरी बूढ़ तिय, अरु मूरख को साथ।
तीनों ते संसर्ग करि, रोवै नर धर माथ॥

अन्त में यही निश्चय हुआ कि नावसे ही चला जाय। माँझियों ने नाव का लंगर उठाया। धार की तेजी में नौका

तीर की तरह दौड़ी। दो ही दिन में वह हावड़ा पहुँच गई। कुँ० कर्मसिंह कलकत्ते का नामही सुनते रहे; देखा नहीं था। उन्होंने माझियों से कहा—तुम लोग माल उतारो मैं कलकत्ते की बाजार देख और कालीजी का दर्शन करके आता हूँ। यह कह वे शहर की ओर गए। माझी नाव का माल उतारने लगे।

साँझ हो गई कुँअर कर्मसिंह लौटे नहीं। माझियों को बड़ी चिंता हुई। कुँअर कहाँ रह गए, क्या हुए, अभी तक नहीं आये, यही कहते वे माँझी उनकी बाट जोहने लगे। रात बीत गई, सवेरा होगया अब भी वे लौट कर नहीं आए। दूसरे दिन वे नाव पर माल लादे और दिन रात उनकी राह देखे जब वे उसदिन भी नहीं लौटे तो माझियों ने बिचारा कि या तो वे राह भूल गये भटक कर कहीं के कहीं जा पड़े और अब वे इधर उधर मारे २ फिरते होंगे अथवा कोई साथी उन्हें मिल गया जिसके साथ निकल गए। या फिर बंगला है। यहाँ का जादू मुल्कों में सरनाम है। रूपवान राजकुमार हैं ही, पड़ गए होंगे किसी बंगाले के जादू में! सिवा इन तीन बातों के और तो कोई कारण नज़र नहीं आता। एक ही रुपया वे माँग ले गए। इतने से ऐसे बड़े नगर में क्या होता है। एक दिन का भी तो खर्च नहीं है। वास्तव में बात यह है कि जब विपत्ति आती है तो अकेली नहीं आती; दो चार को साथ लगाये लिये आती है। अभी उन विपत्तियों से उनका पिंड नहीं छूटा है तभी तो वे फिर किसी जाल में फँसे।

तीन दिन कुँअर कर्म का रास्ता देख माँझियों ने नाव का लंगर उठाया। पालके सहारे उनकी नौका नवें दिन कंतित के क़िले के नीचे लंगर डाली। नाव का एक माँझी जिसका नाम रामू था नाव से उतर क़िले में गया। उसने कुँअर धर्मसिंह को खबर दिया कि हम कुँअर साहेब का कुछ समाचार लाए हैं।

कुँअर धर्मसिंह ने माँझी को सामने बुलाकर समाचार बूझा। माँझी ने सारा समाचार कह सुनाया और बोला कि—कलकत्ते में तलाश कराइए वहीं कहीं वे मिलेंगे। मैं भी माल लादकर दस दिनमें कलकत्ता जाऊँगा तो उनकी तलाश करूँगा। कुँअर धर्मसिंह ने माझी को इनाम दिला कर बिदा किया। कुछ लोगों को कलकत्ते की ओर कुँअर की खोज में भेजा।

अब आइये तनक देखें कि—हमारे बैजू बावरे कुँअर कर्मसिंह कहाँ हैं? माँझियों से यह कह कर कि "मैं नगर देख और कालीजी का दर्शन करके अभी आता हूँ" कुँअर कर्मसिंह कलकत्ते की बाजार में पहुँचे। जिस समय का हम हाल लिख रहे हैं उस समय कलकत्ता "कालीकोटा" के नाम से प्रसिद्ध था और भारत की प्राचीन नगरियों की तरह एक बाजार मात्र था। फिर भी बंगालियों की वहाँ खासी भरमार थी।

बाज़ार में पहुँचते ही रशिक कुँअर सरोज मुखियों के मुख सरोज का मधुर-पराग-रस भ्रमर की भाँति पान कर छक उठे। बंगाले का ठाट भारत में निराला है। किसी भी प्रान्त से उसकी तुलना नहीं। न वैसे वासस्थान, न वैसे स्त्री पुरुष, किसी प्रान्त में पाए जाते हैं जैसे बंगदेश में हैं।

बंग देश की जैसी स्त्रियाँ हैं वैसे पुरुष नहीं। बंग की स्त्रियों के विषय में कवि कहता है:—

कारे कारे केस छहरारे भँवरारे मनो,
चूमत नितम्ब जनु जूथप भुअंगिनी।
सुन्दर सरोज तन मदन मयंक मुखी,
दंत चमकीले दृग देखत कुरंगिनी।
पीन कुच कञ्ज अति खीन कटि गोल लोल,
कवि सिरिलाल बाल भोरि भाव भंगिनी।

किन्नरी नरी परीधौं कागजी कबूतरी सी,

सर्वरीसी ऊजरी प्रसिद्ध जग बंगिनी।

कहावत भी प्रसिद्ध है:—

"छाजा बाजा केस यह बंगाला देश"

कुँअर कर्म बाजार की शोभा देखते हुए काली घाट पर आकर विश्राम किये। काली के मंदिर में जाकर कराल वदना कालिका का दर्शन किये। और उसी स्थान पर बैठकर विश्राम करने लगे।

सायंकाल की आरती होने लगी। आरती के समय नाना वर्ण वेश और रूप रंग के स्त्री पुरुषों का समूह मंदिर में एकत्र हुआ। जिनमें स्त्रियों ही की विशेषता थी स्त्रियों में बाल युवा वृद्ध सभी थीं। आरती के समय सभी काली का मंगल पाठ पढ़ते दिखाई पड़े। आरती हो चुकने पर पंडा ने प्रसादी बाँटी। कुँअर कर्मसिंह को भी उसने प्रसादी दी। दर्शक मंडली 'मंगल कोरो माँ मंगल कोरो माँ" कहती मंदिर के बाहर चली। कुँअर भी घाट पर आए। प्रसादी भक्षण कर जल पान किये। इतने में घड़ियाली ने आठ का घंटा बजाया।

घाट पर बैठे ही बैठे कुँअर विचारने लगे कि रात हो गई राह देखी नहीं है। नौका तक पहुँचना कठिन है। उधर वे माँझी हमारी बाट जोहते होंगे और कहते होंगे कि वह न जाने कहाँ चला गया, क्या हुआ इत्यादि। हमारे ऊपर वे अपना अविश्वास भी प्रगट करते हों तो अचरज नहीं। क्योंकि हमें आए तेरह चौदह घंटे हो गए। अब क्या करें? जिस घाट पर नाव बँधी है वह स्थान यहाँ से कोसों दूर है। यदि इस समय साहस करके चले भी चलें तो वहाँ पहुँच नहीं सकते। अच्छा यही होगा कि रात इसी काली के मंदिर में काटें। भोर होते ही

नौका पर चलेंगे। यह निश्चय कर वे काली के मंदिर में आए और वहीं अपना दुपट्टा बिछाकर लेट रहे।

भूखे मनुष्य को शीघ्र नींद भी नहीं आती। आधी रात हो गई अभी तक कुँअर की पलकें नहीं लगीं। ज्योंही कुछ झपकी आने लगी त्योंही छमाछम छड़ों की आवाज़ कान में आई।

रशिकों के कान में पग—किंकिनि—पायल नूपुर आदि स्त्रियों के आभूषण—अपनी ध्वनि से अमृत ही टपका देते हैं। कुँअर के कान में भी छड़ों के शब्द ने अमृत डाल दिये। कुँअर भौचक हो उठ बैठे और जिस ओर से छड़ों का शब्द आ रहा था उसी ओर को विस्मित आँखों से देखने लगे।

कुछ ही पलों में एक अत्यन्त रूपवती षोड़सी युवती पर उन की दृष्टि पड़ी जो नखसिख सुंदरी होने पर भी स्वर्णाभरणों (सोने के गहनों) से आपाद मस्तक (सिर पैर से) अच्छादित थी। वह मृगनयनी चम्पकवरणी कामिनी बड़ी महीन रेशमी साड़ी पहिरे एक हाथ में पूजा की सामग्रियों से भरी हुई थाल जिसमें बलता हुआ घृत दीपक और दूसरे में गंगा-यमुनी झारी लिये मस्त गजराज की चाल चलती हुई कुँअर के निकट आई और वह उन पर अपना नयन-विक्षेप करती हुई मंदिर के भीतर चली गई।

कामियों के हृदय में कामिनियों के नयन वाण विध जाने चाहिये फिर तो वे वैसे ही तड़फड़ाने लगते हैं जैसे काँटे में विधा हुआ मीन फिर किसी करवट उन्हें चैन ही नहीं। यही दशा हमारे कामदास कुँअर कर्मसिंह की हो गई। वे रह २ के अकुला उठते थे और चाहते थे कि मंदिर में चले चलें। फिर मन में यह विचार कर कि—कहीं कोई राजकन्या अथवा सम्भ्रांत महिला न हो जो मेरे वहाँ जाने पर आपत्ति करे और मुझ पर बेभाव की पड़ने लगे! बिना सोचे समझे किसी पराई

स्त्री के निकट जाना उससे कुछ कहना सुनना अथवा उसे देखना अपना अपमान करना है,—चुप हो रहे। फिर भी मन में कहने लगे:—वह युवती इतनी रात गये अकेली मंदिर में क्यों आई? क्या इसके कोई नहीं है? जरूर ही होंगे। इसके बसन, आभूषण, वेश आदि से यही अनुमान होता है कि यह किसी उच्च कुल की भद्र महिला है। लेकिन नहीं, भद्र महिला भला क्यों इतनी रात में ऐसी सजधज के साथ अकेली काली पूजा करने घर से बाहर निकलेगी? जरूर यह कोई स्वछन्द है तभी तो इस में लज्जा का नाम नहीं। यह भी हो सकता है कि यह कोई सम्भ्रांत कुल की ही महिला हो घर की अत्यंत लाड़िली होने के कारण किसी से इसका मन अटक गया हो और उससे मिलने का यही एक बहाना निकाला हो। घर वालों से यह कह कर आती हो कि मुझे ज्योतिषी ने अर्धरात में अकेली काली पूजा करने को कहा है इत्यादि। जो हो, है कुछ दाल में काला ज़रूर! इस अवस्था की स्त्री का इतनी स्वछन्दता से ऐसी अखण्ड अँधेरी रात में घर से बाहर निकल कर विचरना ही संदेह उत्पन्न करा देता है और यह सिद्ध कर रहा है कि यह साध्वी नहीं है। फिर क्या है? स्वैरिणी है? कुलटा है? वेश्या है? बिना समझे बूझे किसी पर किसी प्रकार का कलंक लगाना भी पाप है! हत्या है! क्योंकि प्रायः सुनने में आता है कि रात्रि में देवी देवताओं की पूजा करने स्वर्गीय देवाङ्गनायें आती हैं सम्भव है कि यह कोई देवाङ्गना ही हो! क्योंकि इसकी मूर्ति बड़ी दिव्य, भव्य और अलौकिक है। अच्छा अब तो वह मंदिर के बाहर कढे तो मालूम हो कि क्या बात है?

उस स्त्री को घंटों मंदिर में पूजा करते बीत गया। उसने देवी की षोड़सोपचार पूजा की। इसके पश्चात् वह मंदिर से बाहर कढ़ी और उसी प्रकार कुँअर की ओर भ्रूनिक्षेप करती

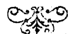
हुई घाट की ओर चली। कुँअर भी उसी के पीछे छिपे २ घाट पर पहुँचे। वह स्त्री घाट पर पहुँच कर गंगा का जल स्पर्श की और एक सुंदर नाव पर—जो किनारे बँधी हुई थी—और जिन पर दो युवा स्त्रियाँ डाँड़ लिये तैयार बैठी थीं—चढ़ कर बीणा हाथ में ली। दोनों स्त्रियों ने डाड़ मारना शुरू किया जिससे वह नाव धार में पहुँची और सागर की ओर वह निकली। बीणा का मधुर झंकार करती और विहाग गाती हुई वह सुंदरी घाट से आगे बढ़ी।

ज्यों २ उनकी नौका आगे बढ़ती जाती थी त्यों २ उसका स्वर सूक्ष्म होता जाता था। यहाँ तक कि नौका के कुछ दूर निकल जाने पर पद का अंतिम चरण स्पष्ट न सुनाई पड़ा। इतने ही में उसकी नौका भी अदृश्य हो गई। साथ ही वह मधुर कंठ ध्वनि भी फिर न सुनाई पड़ी।

अब तो कुँअर के मन की बेकली सीमा छोड़ कर बढ़ी और उन्होंने वह शेष रात्री उसी घाट पर बैठे काटी। प्रातःकाल शौचादि से निपट, स्नान कर काली के मंदिर में आए। देवी का दर्शन कर पुजेरी के चरण स्पर्श किये। पुजेरी ने आशीर्वाद दिया उनका नाम धाम पूछा। कुँअर ने अपनी सारी मुसीबत कह सुनायी। पुजेरी बड़ा दयालु था उसने कुँअर की अच्छी अभ्यर्थना (खातिरदारी) की और कहा आप चिंता न करें। भोजन भोग लेकर सुखपूर्वक यहीं रहिये उधर के कोई यात्री आवेंगे तो उसके साथ अपनी रियासत को चले जाना। सफर खर्च आदि का हम सब प्रबन्ध करा देंगे।

कुँअर ने पूजेरी को प्रणाम कर कहा—यह आपकी कृपा है। इसका बदला चुकाने की मुझ में सामर्थ्य नहीं। फिर भी मैं यथाशक्ति आपकी सेवा आजन्म करूँगा।

कालीका भोग लगते ही कुँअर को भी प्रसादी मिली।



प्रसादी पान कर कुँअर मंदिर के पुजेरी के पास गए और उनसे कुछ बार्तालाप करते २ रातवाली बात छेड़े। और पूछा कि उस युवती की क्या कथा है ?

पुजेरी ने कहा—कुँअर साहेब ! न जाने कहाँ २ के स्त्री पुरुष दिन रात माँ काली की पूजा करने आते हैं ! ऊँच, नीच, धनी, गरीब, बुरे, भले, सभी के लिये यह द्वार खुला रहता है। मुझे नहीं मालूम कि आधी रात को कौन आता है और पिछली रात को कौन जाता है। देव मंदिर का द्वार रात दिन खुला रहता है। फिर पुजेरी को इसका क्या अधिकार है कि वह उपासकों की उपासना में विघ्न डाले ? उपासक चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष, ऊँच हो चाहे नीच, धनी हो चाहे दरिद्र, उसे प्रत्येक देवी देवताओं की उपासना का अधिकार है। हिन्दुओं के इस अधिकार में हस्तक्षेप करने वाला कौन ? क्या देवी देवता किसी के बाप की मौरूसी मिलकियत हैं जो जिसे जब चाहें दर्शन पूजन करने दें और न चाहें न करने दें ? इस स्वर्गीय अधिकार में हम पूजेरी बाधक क्यों बनें ? भेंट पूजा का भी हमें कोई अधिकार नहीं, यह भी भक्त की इच्छा पर निर्भर है। उसे श्रद्धा होगी तो देहीगा न होगी न देगा। जो देगा वही दर्शन पुजन करने पावेगा जो न देगा वह धक्के खायगा—यह कहां का न्याय है ? इसी कारण हमने मंदिर का द्वार रात दिन खोल रक्खा है। आओ बाबा ! जिसका जी चाहे आओ राजा आओ, रंक आओ, गृहस्थ आओ, स्त्री आओ, पुरुष आओ, सदाचारी आओ, सती आओ, कुलटा आओ, पंडित आओ, चमार आओ, विषई आओ, वेश्या आओ। सब आओ। सब माँ का दर्शन करो। माँ सब की माँ है उसकी सभी संतान हैं। सभी को उसकी (माँ की) गोद में बैठने का अधिकार है।

पुजेरी की बात सुन कुँअर साहेब चुप हो रहे और प्रणाम

कर अपनी दालान में आए और इसी चिंता में निमग्न हुए कि देखें वह स्त्री आज रात भी आती है या नहीं। यदि आज रात में वह फिर आवे और पूजन कर जाने लगे तो उसका पीछा करना चाहिये। बिना पीछा किये रहस्य का पता न चलेगा।

कामियों का दिन भारी होता है। राम राम करके कुँअर का दिन कटा रात आई। कुँअर साहेब आज सज बज कर बैठे उसी युवती की प्रतीक्षा करने लगे। आधी रात होते ही वह युवती उसी ठाट बाट उसी वेश भूषा से फिर मंदिर की ओर आई। आज उसके वेश में केवल यही परिवर्तन है कि कल्ह जो रेशमी साड़ी पहिने थी वह हरी थी आजकी लाल बेलदार है। युवती कुँअर के निकट पहुँच कर उनकी ओर दृष्टि भर देखकर और मुँह फेर कर मंदिर में चली गई।

कुँअर वहीं बैठे उसकी प्रतीक्षा करते रहे। घंटे भर बाद वह मंदिर से निकली और कुँअर को देखते ही देखते अपना पैर आगे बढ़ाई। उसे घाट की ओर जाते देख कुँअर भी उसके पीछे चुप चाप पैर की आहट बचाते हुए–चले। ज्योंही वह नाव पर बैठी और युवतियोंने डाँड़ सम्हाला त्योंही कुँअर पतवार थाम कर नाव के पीछे उसी पतवार से चिपट कर बैठ गए।

नाव धार में आई। धार पर नाव छोड़ कर एक युवती पतवार पकड़ कर बैठी दूसरी उसके सामने डाँड़ हाथ में लिये बैठी। उस सुंदरी ने बीणा झनकारा। और यह पद गाती हुई उसी ओर को चली जिधर कल्ह गई थीः—

पिया ते कीजो दो दो बात।
काग लेत सँदेस जाइयो जौ उतहीं तुम जात॥ पियाते० टेक॥
विरह अगिनि दिन सकल पछारत मदन मरोरत रात॥ पिया॥
उभय उरोज उमगि उर ऊपर कंचुकि में न समात॥ पिया०॥
पाके पात परे पोरे बिनु पिय पंकज से गात॥ पिया०॥

सहा न जात हहा दुख दासन आवहु होत प्रभात ॥ पिया० ॥
अब श्रीलाल बिना हिय लागे दाहक हिय न जुड़ात ॥

कुँअर०—कर्म ने मन ही मन कहाः—अहा! यह तो कोई वियोगिनी जान पड़ती है, तभी तो इतनी दर्दीली रागिनी में अपना मनोरथ प्रकट कर रही है।

बीणा धर कर सुंदरी ने संग की सखी से कहाः—सखी! समय की सभी बातें अच्छी होती हैं। समय की रागिनी कैसी सुहावनी होती है। समय का फल कितना सरस मधुर और स्वादिष्ट होता है। समय के फूलों में कैसी मनोहर शोभा होती है। समय को छोड़ देता है वह मूर्ख है। देखो मेरा भी समय क्या है ऐसे सुखदायक समय को सार्थक करने वाला कोई दीखता ही नहीं।

सखी०—दीखता क्यों नहीं। आप स्वीकार ही नहीं करती।

कुँ० कर्म—(मन में) अहा! खूब कहा।

सुंदरी०—मन के योग्य कोई मिले तब तो स्वीकार करूं।

कुँ० कर्म०—(स्वागत) यह बात है!

सखी०—(हँसकर) मिले भी और मिलते हैं लेकिन आपका मन तो स्थिर है ही नहीं। वह तो किसी से नहीं मिलता।

कुँ०—कर्म (स्वगत) बहुत ठीक कहा, पहिले अपना मन तो थिराओ?

सखी०—आज यदि माता पिता भ्राता होते तो आप कुँआरी बैठी रहतीं, कबकी किसी के गले मढ़ी गई होतीं।

कुँअर०—कर्म (स्वगत) और अब क्या बिगड़ा है। खुद मुख्तार तो हो जो चाहो करो।

सुन्दरी०—विवाह तो मैं जभी करूंगी जब मेरे मन मोआफिक पुरुष मुझे मिलेगा?

सखी०—वह कैसा?

सुन्दरी—वह ऐसा हो कि हमारी इच्छानुकूल रहे।

सखी—अर्थात् ?

सुन्दरी—अर्थात्, वह मेरा दास बनकर रहे मैं उसकी दासी नहीं।

कुँअर कर्म०—(स्वगत) यही तो टेढ़ी खीर है। यही तो हेमांगिनी भी चाहती थी।

सखी०—ऐसा पुरुष कोई विरले ही मिलेगा। जो अत्यन्त कामी होगा वह चाहे तुम्हारा दासत्व स्वीकार करले और तो करने का नहीं। पुरुष सभी स्त्रियों पर अपना नियंत्रण रखना चाहते हैं।

कुँ० कर्म—(स्वगत) मुझ सा कामी कहाँ मिलेगा मैं तो तैयार ही हूँ।

सुन्दरी०—(हँसकर) तो विवाह करके मैं बंधन में नहीं पड़ना चाहती और न पुरुषों की जूतियाँ खाना चाहती हूँ। बच्चों की मेशीन बनने का मुझे शौक नहीं। मैं बाज आई विवाहिता कहाने से।

कुँ० कर्म—(स्वगत) अररररर ! यह क्या कह रही है ? विवाह नहीं करेगी तो क्या करेगी ?

सखी०—आपके लिये तो ऐसे २ गुलाब के फूल तैयार हैं कि जिन पर आप्सरायें लट्टू हैं। आप चाहें तो वे अभी इसी वक्त आप का पाणिग्रहण कर लें।

कुँ० कर्म०—(स्वगत) हाँ हाँ, हम कैसे तैयार बैठे हैं। क्या मौके की कही है। जी चाहता है कि प्रगट हो जाऊँ।

सुन्दरी०—मैं ऐसे पाणिग्रहण कराने से बाज आई। दासियों की तरह उसकी सेवा करूं। भोजन बना कर उसे खिलाऊँ। पैर दाबूं। बात सहने सुनने करने को हाथ बाँधे खड़ी रहूँ। शिशु प्रसव की मेशीन बनूँ। तब न पाणिग्रहण

कराऊँ ? यही काम जो मेरे करने का है मैं चाहती हूँ उससे कराना जो मेरा पाणिग्रहण करे !

दूसरी सखी०–हँसकर–शिशु–मेशीन भी उसे ही बनाओगी ?

कुँ० कर्म०—(स्वगत) यह कैसे होगा बाबा ! सब कुछ तो होना सम्भव भी है पर शिशु-प्रसव कैसे होगा ?

सुन्दरी०—(हँसकर) हम तो बना लेंगी पहिले कोई स्वीकार तो करे।

कुँ० कर्म०—(स्वगत) ना ना यह नहीं हो सकता। ऐसा है तो पहिले ही से नमस्कार ! कौन अपना फजीहत करावेगा ?

सखी०—आप कहें तो सब कुछ कर सकता है फिर आप करती क्यों नहीं ?

सुन्दरी०—करूँगी जरा ठहर कर करूंगी।

सखी०—ठहरना सोचना बिचारना क्या है। संसार फुलवारी है इसमें भाँति (जाति २) के नाना रंग के (वर्ण के) फूल (पुरुष) खिल रहे हैं जो मन भाया तोड़ लिया इसमें माली (कुटुम्बियों) से पूछने की क्या ज़रूरत ! फिर आपके पास तो वह मंत्र है······

कुँ० कर्म (स्वगत) वह कौन सा मंत्र है रे बाबा !!!

सखी०—कि चाहे जिस फूल को जिस दशा में जितने दिन चाहो उतने दिन रख लो !

कुँ० कर्म—(स्वगत आश्चर्य से) वह कौन दशा है बीबी ! जरा समझाकर कहो ? अभी बेटी बाप के ही घर है !!

सखी०—तोड़ो कोई गुलाब का फूल।

कुँ० कर्म—(स्वगत) "वकस बिलाई मैं बाँड़ा भला" रोटी तोड़ो, फूल को बरबाद न करो।

सखी०—जादू किस दिन काम आएगा ?

कुँ० कर्म–(स्वगत) "बस हो गई नमाज़ मुसल्ला उठाइये"

भागो अभी नहीं तो—जो बचपन में सुना करते थे "बंगाला जादू" वह सामने है ! बस अब जान की खैर नहीं है। इनकी निगाह तुम पर पड़ी कि तुम कुत्ते गधे बने। हेमांगिनी से तो बच कर निकल भी आए पर इसके पंजे से छूटना ज़रा टेढ़ी खीर है। बाप रे बाप रे ! यह तो जादू गरनी जान पड़ती है !!! या ईश्वर अब क्या करें। यदि पतवार पर से कूदते हैं तो यह जान जाती है और चले चलते हैं तो जान लेती है। गई आबरू गई अब नहीं बचती।

सुन्दरी०—जादू टोने सब काम करेंगे। तुम्हें क्या खबर है कि मैं क्या कर रही हूँ। यह आधी रात का काली घाट का दौरा यों हीं लगा रही हूँ। काली पूजा यों ही हो रही है ? कुछ तो साधन है।

कुँ० कर्म०—(स्वगत) ज़रूर ज़रूर कुछ तो ज़रूर ही है।

सखी०—वह क्या साधन है ?

सुन्दरी०—मन्त्र गुप्त ही रखने में उसका गौरव है और वह गुप्त ही सिद्ध भी हुआ करता है। मंत्र प्रगट करते ही वह शक्ति क्षीण होकर व्यर्थ हो जाता है। तब उसका फल आप ही प्रकट होगा।

इतने ही में नौका कानपुर गाँव के निकट पहुँची सखी ने पतवार फेरा। पतवार का हथ्था घुमाते समय पतवार उसे पहले की अपेक्षा भारी मालूम पड़ा। उसने पतवार की ओर झांक और देखा तो उसे सफेद २ कोई जीव सा नज़र आया। वह चिल्ला कर पतवार छोड़ भागी और बोली—"पतवार पर कोई जीव चढ़ा है ?"

सुन्दरी ने उझक कर देखा तो उसे पुरुष दीखा उसने न जाने क्या करके उसे ऊपर को खींच लिया और उसकी कलाई थाम कर सखी से कहा—मोमबत्ती तो जलाओ !

सखी ने मोमबत्ती जलाई। उसकी रोशनी में देखा कि एक निहायत खूबसूरत अट्ठारह उन्नीस वर्ष का उभड़ता हुआ गभरू जवान अच्छे खासे कपड़े पहिन काम को मात कर रहा है। सुन्दरी ने दपट कर कहा तुम कौन हो? कैसे पतवार पर चढ़े!

कुँअर ने बड़े विनीत भाव से दुखी शब्दों में कहा–सुन्दरी! हैं तो हम कंतित रियासत के युवराज (पिता माता मर गए इसकी इन्हें खबर ही नहीं, नहीं तो "महाराजा कहते") परन्तु भाग्य का मारा हूँ। मेरी नाव फट गई मैं एक तख्ते पर बहा जाता था। आपकी नाव जब मेरे निकट आई तो मैं चुप चाप तख्ते पर उछल कर पतवार से लिपट गया और यहाँ तक उसी दशा में चला आया हूँ।

सुन्दरी०—(झुंझला कर) झूठ बोलते हो। अगर तुम तख्ते पर से उछलते तो जल की आवाज़ तो आती।

कुँ० कर्म०—आप उस समय बीणा की झंकार में–"पियाते कीजो दो दो बात" गारही थीं। अंतिम अन्तरा दोहराते समय मैंने पतवार को पकड़ा था। आप गाने की धुन में न सुनी होंगी।

सुन्दरी०—क्या तुम कलह और आज काली के मंदिर में नहीं बैठे थे?

कुँ० कर्म०—जी नहीं, मैं तो धार में बहा आ रहा हूँ! देख लीजिये मेरे कपड़े गीले हैं।

सुन्दरी०—आश्चर्य है।

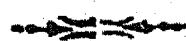
कुँ० कर्म०—आश्चर्य कुछ नहीं कोई मेरे ही समान दूसरा रहा होगा जिसे आप मंदिर में देखी हैं। इसी कारण आप मुझ पर सन्देह करती हैं।

सुन्दरी०—जो हो, तुमने हमें जता कर पतवार क्यों नहीं पकड़े और जब पकड़े तो छिपे क्यों रहे, प्रगट क्यों न हुए? तुम चोर हो।

कुँअर कर्म०—भय के मारे छिप रहे और किसी कारण से नहीं !

सुन्दरी ने सखी से कहा—सखी ! इसने हमारी सारी मन की गुप्त बातें सुनली अब इसे छोड़ना उचित न होगा। ले चलो इसे। यह कह उन सखियों को कुँ० कर्मसिंह के दोनों हाथ थमा आगे बढ़ी। कुँअर ने बहुत कहा बहुत बिनती प्रार्थना की पर उसने एक न माना और उन्हें घसीट कर एक बड़े विशाल फाटक पर लाई। सुंदरी ने ताली बजाई। ताली की आवाज़ के साथ ही वह विशाल फाटक "फट २" दो शब्द करके चौपट खुल गया। फाटक के भीतर पैर धरते ही वह फाटक फिर उसी "प्रकार" फट फट दो शब्द करके बंद हो गया।

भीतर जाकर एक सुहावने नज़र बाग में से होती हुई वह एक सजे हुए महल के पास पहुँची। कुँ० कर्म को तो उसने एक लोहे के पीजड़े में डाल कर ताला भर दिया और आप सखियों के साथ महल के भीतर चली गई।



अठवाँ परिच्छेद ।

काशी के दशाश्वमेध घाट पर पहुँच कर सीताराम शंकर, भोजदत्त और रामनाथ चारों ने दम मारा। क्योंकि धार से निकल कर तट पर आने के लिये उन्हें जितना परिश्रम करना पड़ा उतना नारायणपूर से काशी तक आने में नहीं। इस कारण वे थक गए। घाट पर जल के बाहर निकल कर चारों धूर्तों ने अपने २ कपड़े निचोड़े। और उन्हें भीगे ही पहर कर गंगा की ओर दृष्टि किये। उनकी दृष्टि में कुँअर न दीख पड़े तब उन्होंने विचार किया कि कुँअर

आगे निकल गए। अस्तु, वे रामनाथ को कंतित की ओर भेज कर आप तीनों जन गंगा का बायाँ किनारा पकड़े उनके पीछे दौड़े परन्तु जल की चाल से मनुष्य की पैदल चाल की बराबरी कैसी ? ये बेचारे काशी की सीमा भी नहीं छोड़ पाए कि कुँअर कर्मसिंह गाज़ीपूर पहुँच गए।

फिर भी तीनों धूर्त हिम्मत नहीं छोड़े और वे गंगा के बाँये किनारे २ जितने शहर बाजार बस्ती गाँव आदि मिले उनमें उनकी (कुँअर की) खोज टोह समाचार आदि बूझते हुए कई दिन में कलकत्ते आए। हावड़ा के पुलपर उन्हीं मल्लाहों से कुँअर का कलकत्ते तक आने का समाचार मिला लेकिन कलकत्ते से फिर वे कहाँ गए इसका समाचार नहीं मिला।

उन माझियों की जबानी यह भी मालूम हुआ कि वे यहाँ से यह कह कर गए कि तनक कलकत्ते की बाजार देख आऊँ और काली जी का दर्शन कर आऊँ तो आऊँ। लेकिन वे जो गए तो गए फिर लौट कर नहीं आये हम लोगों ने तीन दिन तक उनका रास्ता देखा लेकिन जब वे नहीं आए तब हम नाव को खोले और कानपूर को जाते समय कंतित उतर कर कुँअर का समाचार दरबार में भी कह आए।

कंतित में यह भी मालूम हुआ कि किसी धूर्त ने वहाँ यह अफवाह उड़ा दिया कि—"कुँअर अपने साथियों के साथ नाव सहित गंगा में डूब गए" इस झूठे समाचार ने राजा रानी दोनों के प्राण ले लिए। दोनों पुत्र शोक से तीन दिन के भीतर अपने प्राण त्याग दिए। राज सूना पड़ा है। छोटे कुँअर सब कुछ त्याग कर बड़े दुखी और उदास बैठे हैं। आप लोग कुँअर को ढूँढ़कर फौरन वहाँ जाइए।

शंकर और सीताराम आदि राज्य का समाचार सुनकर उतने दुखी नहीं हुए जितने दुखी वे कुँअर के समाचार से हुए

शंकर ने कहा—भाई सीताराम ! जान पड़ता है अब समय ने पलटा खाया ! राज्य पर जवाल आया। कुँअर की जान माल का सवाल आया ! अब वे भारत की प्रसिद्ध भूमि बंग में फँसे। यहाँ उनका पता चलना कठिन है। चलो प्रयत्न तो करना ही पड़ेगा। यह कह वे तीनों बाजार में आए। गली, कूँचा, कोठा, बाजार सभी स्थानों में छान बीन की कहीं पर सुराग न लगा अन्त में वे कालीघाट पर आए और मन्दिर में जाकर काली का दर्शन किये। एक छन विश्राम कर पुजारी से मिले और उनसे पूछा—"पुजेरी जी ! यहाँ कोई इस हुलिया का (हुलिया बता कर) पुरुष तो नहीं आया था" ?

पुजेरी०—(कुछ विचार कर) हाँ एक युवा इसी हुलिए का दो दिन मंदिर में ठहरा तो था, फिर नहीं मालुम कि वह कहाँ चला गया।

शंकर०—अकेला ही था कि कोई और भी साथी थे ?

पुजेरी०—नहीं अकेला ही था। पूछने पर उसने अपने को कंतित का युवराज बताया।

शंकर०—(मनमें) ठीक है पता चल गया (प्रकट) हाँ तो जिसे हम ढूँढ़ने निकले हैं वह वही पुरुष था जिसे आप बता रहे हैं।

पुजेरी०—वह तो कहता था कि नाव फट जाने के कारण हम गंगा में बहे जाते थे एक माँझी ने दयावश हमें जल से निकाल कर नाव में ले लिया और यहाँ लाकर छोड़ दिया ?

शंकर०—हाँ वह सही कहता था। ऐसा ही हुआ। अब आप कुछ कह सकते हैं कि वह कहाँ गया ?

पुजेरी०—नहीं भाई ! मुझसे कह कर नहीं गया। मैंने तो उसे यहाँ तक कहा था कि तुम कहीं न जाओ यहीं मन्दिर में पड़े भोग प्रसादी पाओ। जब तुम्हारे देश-राज्य या भूमि का

कोई यात्री आएगा तो हम तुम्हें उसके साथ भेज देंगे। दो दिन तो वह टिका रहा फिर नहीं मालुम कि वह किधर को चला गया ?

शंकर०—कुछ आपसे वह कहता था ?

पुजेरी०—कहता कुछ नहीं था। हाँ, उसने एक दिन यह पूछा था कि-आधी रात को जो एक युवा स्त्री काली पूजा करने आती है वह कौन और कहाँ की है। क्यों वह आधीरात ही को पूजन करने आती है ? मैंने उससे यही कहा था कि बाबा ! यह देव मंदिर है। इसमें दिन रात लोग आया जाया ही करते हैं। कौन कहाँ का क्यों आया इसका जाँच करना पुजेरी का काम नहीं।

शंकर०—(कुछ मन ही मन विचार कर) तो क्या सचमुच कोई स्त्री आधी रात को पूजन करनेके लिये मंदिर में आती है ?

पुजेरी०—आती होगी, किसी का अनुष्ठान आधी रात का पूजन ही होगा। हमें नहीं मालूम।

पुजेरी का चेला०—हाँ हाँ, कानपुर की रानी महीनों से आती है और वह आधी रात में ही पूजन करके चली जाती है। एक स्वर्ण मुद्रा पूजन चढ़ा भी जाती है। जो मुझे प्रातः काल नित्य मिला करती है।

शंकर०—कामपुर या कानपुर ?

चेला०—कान पोछ पुर नहीं कामपुर। यह एक रियासत है गंगाके बाँयें किनारे पर यहाँ से बीस पच्चीस माइल दक्खिन पच्छिम के कोन में है।

शंकर सीताराम और भोजदत्त तीनों वहाँ से उठ कर दालान में आए। शंकर ने कहा—भाई सीताराम ! कुँअर का पता यहाँ तक तो चल गया और यह भी मालूम हो गया कि वे काली जी के मंदिर में दो दिन तक टिके रहे। अब अनुमान

होता है कि जो स्त्री आधी रात में पूजन करने आती है जिसकी बाबत वे पुजेरी से कुछ पूछताछ किये थे--उसी के पीछे वे गए। आज रात में उस स्त्री को देखें कि वह कौन और कैसी है तब कुछ कहें। मेरी आत्मा तो यही कह रही है कि हो न हो कुँअरसाहेब उसीके फेर में हों।

रात होते ही ये तीनों छिप कर मंदिर की जासूसी करने लगे। आधी रात होते ही वह स्त्री उसी ठाट बाट, उसी साज़ो सामान से मंदिर में पधारी और नियमानुसार पूजन कर जब जाने लगी तो इन तीनों ने पीछा किया और दबे पाँव घाट पर आए। स्त्री उसी नाव पर बैठ वीणा झंकारती पच्छिम की ओर नाव लिये चली गई।

शंकर सीताराम भोजदत्त तीनों उसी घाट पर बैठे मधुर वीणा की झंकार और लालित्य पद गान सुनते रहे। जब उसकी नौका दूर निकल गई और बीणा निनाद कुछ मंद होने लगा तब शंकर ने कहा—यह स्त्री कोई उच्च कुल की अवश्य है किन्तु स्वच्छन्द है। अभी यह अवस्था में भी कम अर्थात् षोड़शी है, इससे अनुमान होता है कि कुँआरी है। तब इसमें संदेह नहीं की बड़ी चलता पुरजा है। ज़रूर कुँअर इसीके प्रेम जाल में पड़े! और हेमांगिनी की भाँति इसके भी प्रेम पाश में बँधे!!

अस्तु, कल्ह कामपुर चलना चाहिये और देखना चाहिये कि यह अनुमान कहाँ तक सच है। यदि वहाँ कुँअर का पता न भी चला तो इस स्त्री का रहस्य तो मालूम हो जायगा।

शेष रात तीनों ने उसी घाट पर बिताया। प्रातः काल शौच आदि से निपट कर तीनों जन कामपुर को चले। तीसरे पहर तीनों कामपुर पहुँचे। देखा तो गाँव में ताड़ों की झोपड़ियों के सिवा और कुछ नहीं है। उन झोपड़ियों में के स्त्री

पुरुष मानों किसी भड़भूजे की भाड़ में से निकले हैं। किसी भी स्त्री पुरुष के तन पर समूचा वस्त्र नहीं। सभी दरिद्रावस्था में जीवन बिता रहे हैं। उन स्त्री पुरुषों का शरीर सिवा हाँड़ी सा पेट के शेष कंकाल मात्र ही है। ऐसा जान पड़ता है मानों गाँव का गाँव रोगी है। यद्यपि झोपड़ियाँ डेढ़ दो सौ से कम न होंगी और उनमें हजार डेढ़ हजार मनुष्यों का निवास भी है तथापि उनकी दशा जंगलियों से भी गई बीती है। मछली मारना चावल की खेती करना यही उनकी मुख्य जीविका है। मछली भात और साग पात यही उनका मुख्य खाद्य है। छालों का वस्त्र ही उनकी पोशाक है। एक ही समय का भोजन है। तब यदि यह कहें कि इनका जीवन शूकर—जीवन से भी हीनतर है तो कोई अनुचित न होगा।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर गंगा के किनारे एक बड़ा संगीन गढ़ दिखाई पड़ा। पूछने पर मालूम हुआ कि यह गढ़ रानी कामपूर का है। परन्तु जिसने यह बताया उसीने यह भी कहा की आप लोग मौत के मारे यहाँ कैसे आ पड़े ? खूबसूरत नौजवानों के लिये यह स्थान नहीं है। उन्हीं के शिकार के लिये तो यह विशाल किला तैयार किया गया है। यह कहता हुआ वह पुरुष चला गया।

शंकर ने साथियों से कहा—यह तो यहाँ की प्रसिद्ध बात है। जादू ही यहाँ का अमोघ अस्त्र है। स्त्रियाँ ही यहाँ की शूर वीर योद्धा हैं। अँह, हमसे क्या ले लेंगी यह कहता हुआ शंकर अपने साथियों के साथ गाँव में आया और वहीं एक गृहस्थ के घर के पास डेरा डाला और इस बात की तलाश में लगा कि किले के भीतर जाने आने वालियों में से कोई स्त्री मिले तो उससे यह पूछें की कुँअर कर्म किले में हैं वा नहीं ?

तीसरे पहर शंकर को एक दासी मिली जो किले में से

निकल कर अपने घर को जा रही थी। बातों ही बात में शंकर ने उससे पूछा—कहो क़िले में (हुलिया बता कर) कोई इस हुलिया का पुरुष तो नहीं है ?

दासी ने एक बार शंकर को शिर से पैर तक घूर कर देखा पीछे उसने कहा—आप कौन हैं ?

शंकर—मैं एक कलकत्ते का साधारण व्यापारी हूँ। जिसे मैं पूछ रहा हूँ वह मेरा भाई है। घर से बहक कर चला आया है। सुना है कि आपको सरकार ने......

दासी बात काट कर बोली:—मैं सरकार दरबार की बात नहीं जानती बाबा ! आप जाकर ढूढ़ें खोजें। मुझसे कुछ न पूछें। मैं मजदूरिन हूँ अपनी मजदूरी की अपने घर का रास्ता ली। मैं क्या जानूँ क़ौन आया और कौन गया। यह कहती हुई वह वहाँ से तीव्र गति से चली गई।

थोड़ी ही देर में एक और स्त्री दीख पड़ी जो किसी काम से कहीं जा रही थी। शंकर ने उससे पूछा—तुम कौन हो गढ़ के भीतर तुम क्या काम करती हो ?

स्त्री ने शंकर की ओर घूर कर देखा और कहा—तुम कौन हो और क्यों यहाँ आए हो ?

शंकर ने उत्तर दिया—मैं व्यापारी हूँ। माल लाया हूँ। चाहता हूँ कि कुछ माल आप के सरकार को भी दिखाऊं। सौदा हो जाय तो दो चार चीज़ उनके भी हाथ बेंचूं।

स्त्री ने झल्ला कर और भौंहें मरोड़ कर कहा—तो बेंचो जा कर मुझसे क्या पूछते हो ?

शंकर तुम से यह पूछते हैं कि—कैसे जाँय किस से मिलें क्या कहें सौदा भी कुछ होगा वा नहीं ? इत्यादि।

स्त्री०—मैं कुछ नहीं जानती फाटक पर जाकर पूछो।

शंकर०—फाटक पर कोई पहरा वहरा भी है ?

स्त्री०—भाई मैं कुछ नहीं बता सकती क्यों मुझसे सर मार रहे हो? जाओ किसी दूसरे से पूछो। यह कहती हुई वह भी हवा हो गई।

शंकर ने मन में कहा—यहाँ की स्त्रियाँ तो पर में पानी भी नहीं लगने देतीं समाचार कैसे मिले। अच्छा चलो गाँव में चलकर किसी को मिलावें तो काम चले। यह विचार कर वह गाँव में आया और इधर उधर घूमघाम कर एक ऐसे पुरुष से मिला जिसकी स्त्री की पहुँच भीतर सरकार तक थी। था तो वह भी दरिद्र परन्तु उसकी स्त्री भंडार खाने की दारोगा थी। भोजन का सारा प्रबंध उसी के हाथ में था। वहाँ से उसे भोजन भर को मिल जाता है। शंकर उस भंडारिन के पति से हेल मेल बढ़ा कर उसे कुछ लालच भी दिया और कहा यदि हमें सही २ समाचार मँगा दोगे तो मैं तुम्हें और भी द्रव्य दूंगा।

गरीब को जितना पैसा प्यारा है उतना और कुछ नहीं। पैसे की लालच में उस पुरुष ने शंकर से अभिप्राय बूझा।

शंकर ने कहा—हम व्यापारी हैं। हमारा भाई घर से ख़फ़ा होकर चला आया है। सुना है कि वह इसी क़िले में है। हम केवल इतना ही जानना चाहते हैं कि वह इस क़िले में है कि नहीं और है तो किस अवस्था में है?

पुरुष ने कहा—यह तो बहुत सहल बात है। इसे मैं आज ही आपको बता दूँगा, परन्तु मैं आप से एक बात कहे देता हूँ कि आप जब तक इस गाँव में रहें तब तक प्रगट न रहें। छिपे छिपे ही अपना काम करें। क्योंकि रानी दुष्ट है। उसमें दया का नाम नहीं है। स्त्री पुरुषों के जीवन का मूल्य उसकी समझ में कुछ है ही नहीं। अस्तु, खूब सतर्क रह कर खोज करें। मैं आपको एक सुरक्षित स्थान में ले चलता हूँ। आप वहाँ रह कर यहाँ का परिज्ञान करें। यह कह वह शंकर सीता-

राम भोजदत्त आदि को साथ में ले गाँव के दक्खिन एक बारी में आया। वहाँ एक कच्चा पोखरा और एक कूवाँ भी था—और कहा—यहाँ आप निर्भय जितने दिन चाहें उतने दिन पड़े रहें। यहाँ शीघ्र किसी को कुछ सन्देह न होगा। मैं जाता हूँ आपकी बात स्त्री से कहूँगा। उसी के द्वारा जो बात मालूम होगी वह आप से आकर कहूँगा। यह कह वह पुरुष बिदा हुआ।

घर आकर उस पुरुष ने अपनी स्त्री से कहा—स्त्री सुनते ही उस पर झल्ला पड़ी और बोली—क्या तुम्हारी कमबख्ती आ गई है क्या? सेर भर अन्न जो मिलता है उसमें भी बाधा डालना चाहते हो? यदि उसके कान में इस चर्चे की ध्वनि गई तो फिर कुशल न जानना। इसलिये तुम ऐसे बखेड़ों में न पड़ो, दूर ही से नमस्कार करो।

पुरुष ने वह बात कही जो शंकर ने कही थी अर्थात् द्रव्य (धन) की सहायता। स्त्री ने उत्तर दिया—ठीक है, लेकिन अधिक लालच भी अंत में बुरा होता है। मैं ऐसी सलाह नहीं पसंद करती जिससे दीन दुनियाँ दोनों से जायँ।

पुरुष ने कहा—वह कोई भयानक काम तो है नहीं केवल इतना जाँचना है कि क़िले के भीतर कोई इस हुलिये का—(जैसी हुलिया शंकर बता गया) पुरुष है कि नहीं और है तो किस दशा में कहाँ है?

स्त्री ने कहा मुझे सब मालूम है परन्तु डर के मारे कहने को जी नहीं चाहता कारण कि बात मुख से बाहर हुई कि वह फैली। पुरुष की हुलिया जैसी बताते हैं वैसे ही हुलिया का एक पुरुष नाव की पतवार पर—जब कि वह काली पूजा करके घर लौट रही थी—पकड़ा गया है और वह महल के पास एक लोहे के पींजड़े में बंद रक्खा गया है। लेकिन भीतर ही भीतर कुछ और ही गुलगुले पक रहे हैं।

पुरुष०—वह क्या ?

स्त्री०—है कुछ।

पुरुष०—आखिर क्या है ?

स्त्री०—पुरुष बड़ा सुन्दर और किसी देश के राजा का लड़का है। अब वह चाहती है उसीसे सम्बन्ध करना। काना फूँसी हो रही है। दो चार दिन में आप ही भंडाफोड़ हो जायगा। मैंने उसे देखा है। है वह बड़ा तेजवान पुरुष। उसे भोजन देने को मैंही जाती हूँ। आज भी गई थी लेकिन आज मैंने उसे बड़ा उदास पाया। खबरदार! देखना कहीं यह बात फूटने न पावे नहीं हम कहीं के भी न होंगे। जो लोग उसकी खोज करने आए हैं उनसे भी सम्हल कर बात चीत करना। वे परदेशी हैं। अपना मतलब करके अपनी राह लेंगे। हमें यहीं रहना और इसी की (रानी की) ताबेदारी करना है। जो कुछ होगा वह हमीं पर बीतेगी।

सायंकाल को वह पुरुष शंकर के पास आया और स्त्री से सुना हुआ समाचार शंकर को सुनाया और कहा—भाई साहेब! आपने तो कहा कि मेरा भाई है, हम कलकत्ते के व्यापारी हैं इत्यादि परन्तु वे तो किसी पूर्वीय देश के युवराज हैं? शंकर ने कहा—ठीक है हम उनके मित्र हैं। मित्र भाई के समान ही होता है। यदि मैंने अपना भाई कहा तो क्या बेजा कहा। अच्छा अब यह तो कहो कि किसी प्रकार हम उनसे मिल भी सकते हैं ?

पुरुष०—असम्भव है। मिलने जुलने का तो नाम न लेना।

शंकर०—अच्छा हमारी चीठी ही पहुँचा देवें।

पुरुष०—इसे मैं स्त्री से समझ कर कहूँगा।

शंकर०—परन्तु आज ही इसका उत्तर मुझे मिलना चाहिये।

पुरुष०—हाँ घड़ी दो घड़ी में आऊँगा तो कहूँगा।

वह पुरुष गया और थोड़ी ही देर में वापिस आया और कहा—नहीं भाई, चीठी चपाती की भी गुंजाइश नहीं है। हाँ कुछ जबानी समाचार गुपचुप कह सुन सकते हैं।

शंकर बोला—"तो यह कहवादें कि वे घबरायें नहीं हम आ गए हैं।"

पुरुष ने कहा—हाँ, मौका पाकर इतना कहला दे सकेंगे। पुरुष चला गया। शंकर ने सीताराम से कहा—यह काम देर में होगा। क्योंकि जो मिलता है वह पर में पानी नहीं लगने देता। खैर, इतना तो हुआ कि उनका समाचार मिल गया। ढूँढ़ खोज से जान बची। अब कुछ न कुछ उपाय कर लेंगे। मेरी राय में तो यह आता है कि क़िले में फाँद कर उन्हें निकाल लावें। क्योंकि और कोई राह नज़र नहीं आती है।

सीताराम बोला—भाई! इसका क़िला मामूली क़िला नहीं है, जादू का है। कहीं हम जादू में पड़े तो फिर छूट चुके। देखते नहीं हैं इसका फाटक अपने ही से खुलता और बन्द होता है। उस पर न चौकी है न पहरा और न उसमें कोई यन्त्र ही है। मंत्र बल से वह खुलता और बन्द होता होगा। जब फाटक की यह दशा है तो उसके भीतर क्या हाल होगा?

भोजदत्त ने कहा—मुझे तो इस कुँअर पर इतना तरस आता है कि कुछ कहा नहीं जाता। देखो न! यह कहाँ का मारा कहाँ आ मरा! कहाँ मिर्जापूर कहाँ बंगाला!!

शंकर बोला—अब तो जो होना था वह हो गया। शोक, मोह, क्रोध का यह समय नहीं है प्रयत्न करना चाहिये। यह कह कर वह उठा और किसी गुप्त साधन में तत्पर हुआ। सीताराम और भोजदत्त भी कुछ आवश्यक कार्य करने लगे।

दोपहर रात बीतते ही शंकर, सीताराम, भोजदत्त तीनों अपना २ झोली दंडा लिये क़िले के पच्छिम आए। शंकर कमंद

फेंक कर क़िले के ऊपर चढ़ गया और उसी कमंद के सहारे क़िले के भीतरी इहाते में उतरा। इहाता बड़ा लम्बा चौड़ा और बाग़, बाटिकाओं से भरा था। शंकर उस पुरुष से सुन चुका था "कि महल की दीवार से सटा हुआ एक लोहे का पिंजड़ा है उसी में कुँअर कर्म क़ैद हैं।"

धीरे २ शंकर महल की दीवार के पास आया। उसके वहाँ पहुँचते ही एक सीटी की आवाज़ के साथ एक काला भुजंग पुरुष प्रकट हो शंकर को अचानक पीछे से पकड़ लिया शंकर ने बड़ा जोर लगाया और चाहा कि उसका हाथ झटक कर निकलभागें लेकिन वह ऐसा कर नहीं पाया। उस पुरुष का हाथ लोहेसे भी कड़ा और मज़बूत था। उसे छुड़ाना आसान नहीं था। उस पुरुष ने शंकर को एक पृथक् जंगले में जो उसी के पास था जिसमें कुँअर साहेब क़ैद थे—रखा।

देर होते ही सीताराम का माथा ठनका। उसने भोजदत्त से कहा, भाई शंकर को गए देर हुई। मालूम होता है वे पकड़ गए। क्योंकि यदि पकड़े न गए होते तो अब तक वे कुँअर को निकाल कर जाने कहाँ के कहाँ निकले होते? क्या करूँ अब मैं जाऊँ?

भोजदत्त०—हाँ जाना ज़रूर चाहिये। बिना गये पता न चलेगा। दोही बात है। या तो तुम भी वहाँ फँसे या मौका पाकर दोनों को निकाल लाए।

सीता०—यदि घंटे आध घंटे में वापिस न आऊँ तो तुम समझ लेना कि मैं भी फँसा। जब यह समझ में आ जाय कि मैं भी फँस गया तो तुम कोशिश आने की या हमें छोड़ाने की न करना। सवेरे तुम यहाँ से चल कर किसी लौटती नाव पर सवार होकर कंतित चले जाना और युसुफ, करीम, जानकी और मानकी चारों को किसी नाव पर बैठा कर लिये

चले आना। जब तुम पाँच हो जाना तब फिर हमें छुड़ाने की कोशिश करना। जानकी सब कर लेगी उसे जरूर लाना। यदि ऐसी नहीं करते और मेरे बाद तुम भी फँसते हो तो फिर छूटना भी मुश्किल है। कौन छ सात सौ माइल की खबर पावेगा जो छुड़ाने आवेगा। यह कह सीताराम उसी कमंद के सहारे क़िले की दीवार पर चढ़ा और उसी कमंद के सहारे वह नीचे उतरा उसके नीचे उतरते ही सीटी की आवाज़ हुई। साथ ही किसी ने पीछे से आकर सीताराम को भी गिरफ़्तार कर लिया और जिसमें शंकर क़ैद था उसी में उसे भी बन्द कर दिया।

घंटे दो घंटे भोजदत्त ने रास्ता देखा जब सीताराम न लौटा तब उसने समझ लिया कि यह भी गए। अस्तु सीताराम के कहे अनुसार वह कानपूर की एक वापिसी नाव पर सवार हो कन्तित को रवाना हुआ।

नवाँ परिच्छेद।

काली पूजा करके लौटती समय गान टान होने के उपरांत सखी और सुन्दरी में फिर वही बात छिड़ी। सखी ने कहा— अब आप अपना चंचल मन स्थिर करके किसी एक की हो रहें, सुख-जीवन-सुख तभी प्राप्त कर सकोगी अन्यथा नहीं। चंचल भ्रमर को पुष्प का वह आनन्द प्राप्त नहीं जो उसके कीड़ों को प्राप्त है। क्योंकि वे उसमें उस समय तक चिपटे रहते हैं जब तक वह फूल विद्यमान है। अतएव अब मानलें और शीघ्र इसका निपटारा कर डालें।

सुन्दरी०—यह सच है, लेकिन मैं डरती हूँ कि कहीं वैसा ही हाल मेरा भी न हो जैसा बेला का हुआ?

सखी०—बेला कौन, उसकी क्या कथा है?

सुन्दरी—वही बेला, विपिन विहारी की बेटी?

सखी०—मैं उसे नहीं जानती, हाँ उसका क्या क़िस्सा है?

सुंदरी बोली—बेला एक सुंदर पढ़ी लिखी पिता माता की बड़ी दुलारी बेटी थी। उसने पुस्तकों में पढ़ा था कि जैसे त्यागी पुरुषों के लिये स्त्रियाँ पाँव की जँजीर होती हैं वैसे ही विरागी स्त्रियों के लिये पुरुष भी। अस्तु उसने यही निश्चय किया कि मैं विवाह न करूँगी। बीस वर्ष की अवस्था तक वह कुमारी ही रही किन्तु माता पिता की इच्छा देख २१ वें वर्ष में उसे विवाह करना ही पड़ा। कुछ ही काल में उसे ज्ञात हो गया कि मैंने बुरा किया। उसका पति बड़ा अवारा निकला। पढ़ना लिखना छोड़ कर वह बंबई भाग गया। बेला पर सास और ननदों का शासन शुरू हुआ। जितना दुःख उन सबों से देते बना दिया और जहाँ तक उस बेचारी से सहते बना सहा। अंत में उसने मरना ही निश्चय किया, पिता से कहा। पिता ने भी वही उपदेश किया कि स्त्री-जीवन सहने ही के लिये है। जो पड़े उसे शांति से सहना ही स्त्रियों का मुख्य कर्तव्य है। अतएव सहन करती हुई पड़ी रहो।

पति की वह दशा माता पिता का यह उपदेश, सास, देवर जेठ और ननदों के बुरे बर्ताव कहाँ तक सहे जायें। सहनशीलता की भी तो कोई सीमा है? ऊबते २ जब उसके नाकों दम आ गया तो एक दिन उसने आत्मघात कर इस कठोर गार्हस्थ्य-दुखों से छुटकारा पाया मरने के बाद उसके सिरहाने से एक पुरज़ा मिला जिसमें लिखा था कि—"जिसे अपना जीवन सुखमय बनाना हो वह—चाहे स्त्री हो वा पुरुष—बन्धन में—किसी प्रकार के बन्धन में—न पड़े।"

यह मैंने समाचार पत्रों में पढ़ा। इसे पढ़ते ही मेरा भी मत

यही निश्चित हुआ कि—बेशक, "पराधीन सुख सपनेहु नाहीं" पराधीनता से बढ़ कर दुख है ही नहीं।

सखी०—सब स्त्रियाँ तुम्हारी सी वा बेला ही सी त्यागी हो जायँ तो सृष्टि का कार्य कैसे चले?

सुंदरी०—हँसकर यही तो मैं भी कहती हूँ। स्त्रियाँ सृष्टि की मेशीन हैं। मैं यह मेशीन न बनूँगी।

सखी०—नहीं २ यह बिचार छोड़ दो और जो मैं कहती हूँ उस पर ध्यान दो।

सुंदरी०—वह क्या?

सखी०—जिसे आपने कैद किया है वह उस बन्धन से मुक्त करके प्रेम-बंधन से बांध दिया जाय। क्योंकि वह इसी योग्य है। अपराधी वह जरूर है। उसके अपराध का दण्ड बन्धन ही है। तब वह सूत की डोरी से नहीं प्रेम की डोरी के कसने योग्य है। वह सुंदर सुशील नववयष्क अधिकारी राजपुत्र है। सभी गुण उसमें हैं। फिर वह वैसाही प्रेमी भी मालूम होता है जैसा आप चाहती हैं। अब देर करने की आवश्यकता नहीं। चट मँगनी पट व्याह करी डालिये।

सुंदरी०—वह किसी रियासत का युवराज तो है लेकिन अवारा मालूम होता है! जैसे वह नाव के पतवार पर चढ़ आया वैसे ही किसी प्रेम की पतवार पर चढ़ कर वह इतनी दूर बंगाला में पहुँच गया नहीं तो क्या अकेला इतनी दूर बिना संग साथ बिना माल असबाब कोई रियासत का युवराज आवेगा। तभी तो कहते हैं कि—"युवराज होने पर भी अवारा है।" ऐसे अवारों का क्या ठिकाना! आज वह मुझे देख कर मुझ पर मर रहा है कलह किसी और को मुझसे भी उत्तम देख कर उस पर लट्टू हो जायगा। ऐसी दशा में ऐसे लम्पट

से लाभ क्या होगा ? सिवा जरने कुढ़ने और संतापित होने के और क्या सुख मिलेगा ?

सखी०—इसका सारा आवारापन आपके साथ निकल जायगा। इसे इस दशा में जिसमें अब है (अर्थात् मनुष्य) रहने ही न देना। ऐसी दशा में रखना कि घर के बाहर जा न सके। जब यह इस प्रकार फंदे में पड़ेगा तो सब भूल जायगा।

इतने ही में डोंगी घाट पर पहुँची। किनारे पर नाव लगा कर सुंदरी और उसकी दोनों सखी नाव से उत्तर कर महल में आईं। कुछ जलपान कर के अपनी २ सेज पर पहुँची।

सबेरा होते ही छोटक सरदार आया और कहा–सरकार ! आपके चले जाने के बाद दो मनुष्य क़िले की दीवार फाँद कर भीतर आए और दोनों ही गिरफ़्तार हुए हैं। पूछने पर न वे अपना नाम बताते हैं न गाँव का पता देते हैं। यह कहते हैं कि हम धोखे में यहाँ चले आए, माफ किया जाय ! देखने में दोनों अभी उदंत हैं, स्वरूपवान हैं, सजीले हैं, रोबीले हैं, खरादे और छीले हैं। दोनों को शेर के पींजड़े में बन्द कर दिया है।

सुन्दरी ने कहा—अच्छा, उन्हें कचहरी में ले आओ।

स्त्री को देखते ही शंकर के होश उड़ गए उसने उसे एक भयंकर स्त्री माना। उसने धीरे से सीताराम के कान में कहा–अरे यार ! यह तो काम रूप कामाक्षा की स्त्री है। इससे पुरुषों का निस्तार होना कठिन नहीं असम्भव है। बड़ी बेढब गलती हुई। देखो न ! इसके रग २ में जादू है। आँखों में जादू की बारूद भरी है, देखते ही दिल दहलाये दे रही है।

छोटक ने कहा—सरकार ! येही दोनों पुरुष हैं जो कल्ह रात कमंद फेंक कर क़िले के भीतर चले आए। मैंने इन दोनों को गिरफ़्तार किया।

सुन्दरी०—तुम दोनों जन कौन हो यहाँ कैसे किसके हुक्म से आए ?

शंकर०—हम दोनों जन मिर्जापूर के रहने वाले हैं। हमें पता मिला है कि हमारे स्वामी इसी क़िले के भीतर हैं। हमने बहुत चाहा कि किसी दरंवान से कह कर उनसे मिलने की इजाजत लें पर यहाँ मुझे फाटक बंद मिला। दो दिन से हम इसी फिराक में यहां घूमते रहे कि कोई मिले तो उससे पूछें और भीतर जाने की इजाजत लेवें। जब कोई भी न दीखा जो मेरी प्रार्थना सुनता तो स्वामी प्रेम से विकल होकर हमने यही उपाय उनसे मिलने का निश्चय किया।

सुन्दरी०—(क्रोध से) वह तुम्हारा स्वामी कौन है ?

शंकर०—मेरा स्वामी श्रीमान् महाराजा कुँअर कर्मसिंह बहादुर !

सुन्दरी०—(दपट कर) वह कहाँ है।

शंकर०—यही तो मैं नहीं जानता।

सुन्दरी०—फिर कैसे यहाँ उसे ढूँढ़ने आए ?

शंकर०—यह मुझसे कहा गया कि वे इसी क़िले में नज़र बंद हैं।

सुन्दरी०—यह किसने कहा ?

शंकर०—मेरी आत्मा ने।

सुन्दरी०—तुम्हारी आत्मा इतनी बलवान है कि वह गुप्त बातों को भी जान लेती है ?

शंकर०—ज़रूर।

सुंदरी०—तो बताओ तो मेरे मन में इस समय क्या है ?

शंकर०—(कुछ सोचकर) आपके मन में मुझ पर दया और मेरे स्वामी से सम्बन्ध है ?

सुंदरी (चौंक कर) विनोदिनी २ अरे ये सचमुच पागल हैं क्या ? अरे देख ! यह क्या बक रहे हैं ?

बिनोदिनी०—(शंकरसे) तुम पागल तो नहीं हो ?

शंकर०—ज़रूर, पागल हैं पागल न होते तो इस पागल खाने में कैसे आते ?

बिनो०—मालूम होता है तुम्हारी शामत तुम्हें यहाँ लाई है ?

शंकर०—हो सकता है। यदि यह न होता तो इस बला में क्यों गिरफ़्तार होते ?

सुन्दरी०—(क्रोध कर) तुम बड़े ढीठ और ज़बानदराज़ मालूम होते हो। यह मेरा स्थान पागलखाना है ?

शँकर०—तो जनाब मैं क्या पागल हूँ ? अपने स्वामी से मिलना क्या पागलपन है ? अपने स्वामी के लिये अपनी जान खतरे में डालना क्या पागलपन है ? स्वामी सेवक का क्या सम्बन्ध है:—

स्वामी दयालु कृपालु रहै अरु सेवक मौन करै सेवकाई।
पोषक तोषक स्वामि सुसेवक स्वामिहि ते जो रहै लवलाई।
स्वामि सुखी तो सुखी वह सेवक स्वामि दुखी तो रहै दुखदाई
स्वामी के काज शरीर समर्पि कै औसर आवत देय गँवाई।

सुन्दरी०—बस, २ ज्यादा न बको। तुम बिना समझे बूझे किसी पर कलंक लगाते हो पागल नहीं तो क्या हो ? अच्छा, हम तुम्हें इजाजत देते हैं कि तुम सारा क़िला भीतर बाहर ऊपर नीचे चारो तरफ ढूँढ़ कर अपने स्वामी को मेरे पास लाओ यदि तुम उन्हें ढूंढ़ न ला सके तो हम समझेंगी कि तुम झूठे तुम्हारी आत्मा झूठी है। और मैं तुम्हें शूली पर चढ़वा दूँगी। अच्छा जाओ, ले जाओ छोटक ! इन्हें सारा क़िला दिखलाओ इसके बाद मेरे पास हाजिर करो।

शंकर और सीताराम को लेकर छोटक गया और सारा

क़िला रत्ती २ दिखा लाया। कहीं कुँअर का पता नहीं कल्ह उन्हें जिस पिंजड़े में देखा था वह पिंजड़ा भी खाली पड़ा है। शंकर ने पूछा कोई तहखाने हैं? छोटक ने कहा हाँ तहखाने भी चलकर देख लें।

छोटक सब तहखानों में उतार ले गया जो बड़े लम्बे चौड़े साफ सुथरे बने थे। प्रत्येक तहखानों में दूर तक गया कहीं भी कर्म का पता न चला तब वे दोनों फिर उस सुन्दरी के पास उपस्थित किये गए। सुंदरी ने पूछा-कहो तुम्हारे स्वामी मिले?

शंकर ने कहा—जी नहीं!

सुंदरी०—फिर अब क्या कहते हो?

शंकर०—कुछ नहीं, यही कहते हैं कि हमारा स्वामी कहीं इसी क़िले में है।

सुन्दरी (आश्चर्य से) अभी भी तुम्हें यही विश्वास है?

शंकर०—जी हाँ, मैं अपने विश्वास का पक्का हूँ।

सुन्दरी०—तो क्या मैंने उसे किसी डिबिये में बन्द कर रक्खा है?

शंकर०—आप ऐसा भी करने में समर्थ हैं?

यह सुनते ही उसका चेहरा तमतमा उठा और वह लाल २ आँखें निकाल दपट कर बोली—लेजाओ छोटक इन पागलों को बन्द करो। जब तक ये कठोर कारागार न भोग लेंगे तब तक इनकी अक्ल ठिकाने न होगी।

छोटक उन दोनों को फिर उसी पिंजड़े में बन्द किया और उनके खाने पीने का बन्दोबस्त करके वह अपने काम पर चला गया।

शंकर ने सीताराम से कहा-सीताराम! देखा तुमने बंगाले का हाल! कैसी जादूगरी है। देखते २ कुँअर साहेब हवा हो गए और उसने हमको उल्लू बना दिया! इससे छल बल

कौशल से ही उद्धार होगा और किसी उपाय से नहीं। भोजदत्त के आने तक हमें सब्र करना चाहिये। वे भी आजावें तो मैं इसे मजा दिखाऊँ।

इसी समय उनके कानों में आवाज़ आई—"अरे भाई मुझे बचाओ मैं बड़े दुःख में हूँ।"

शंकर इधर उधर चारो ओर नज़र दौड़ा कर देखा कहीं कोई नहीं सीताराम से बोला–अँय यह आवाज किसकी है ?

इतने ही में फिर वही आवाज़ दोहराई हुई कानों में पड़ी। शंकर ने कहा—कौन है भाई किसकी आवाज़ है ? कैसा दुःख है ? कुछ कहो भी तो !

आवाज़०—अरे भाई इतने ही देर में भूल गये। मैं वही अभागा कर्म० हूँ।

शंकर०—(हकबका कर) अहो कुँअर ! क्या समाचार है? कहाँ किस दशा में हैं ?

कुँ० कर्म—भाई कुछ पूछो नहीं, मैं अपने को न प्रगट कर सकता हूँ न यह बता सकता हूँ कि मैं कहाँ किस दशा में हूँ। क्योंकि मुझमें इतना ज्ञान नहीं रह गया है जो मैं आपके प्रश्नों का उत्तर दूँ।

शंकर०—(शोक कर) फिर आप कुछ भी बता सकते हैं कि मैं क्या करूँ ?

कुँ० कर्म०—बस मेरा उद्धार करो।

शंकर०—वह कैसे ?

कुँ० कर्म०—चाहे जैसे हो।

शंकर०—अच्छा धीरज धरो उपाय करते हैं।

कुँ० कर्म०—भाई········

कुँअर कर्म के मुख से "भाई" इतना ही निकल पाया था कि उनकी आवाज़ फिर न सुनाई पड़ी।



आवाज के बन्द होते ही सीताराम ने कहा—जान पड़ता है उनकी आवाज किसी ने सुन लिया और उन्हें किसी दूसरे स्थान में हटा दिया।

शंकर ने कहा—हो सकता है। क्योंकि वे उनके वश में हैं चाहे जो करें। हम भी उनके वश में हैं हमारी भी वह दुर्गति कर सकती हैं। अच्छा हम तो भोजदत्त आदि की भी राह न देख कर आज इसमें से भागेंगे। मैंने उस समय जब वह पुरुष मुझे क़िला दिखाने ले गया था इस क़िले का कुछ हाल समझ लिया है। स्त्री को समझ ही चुके अब यहाँ रह कर क्या करेंगे। यहाँ रह कर कुँअर को मुक्त करना कठिन है बाहर निकल कर ही उनकी मुक्ति होगी। अस्तु हमें इन पिंजड़ों को तोड़ कर कमन्द के सहारे इसके बाहर निकल चलना चाहिये।

सीता०—और कहीं कुँअर की जान पर नौबत आ जाय तब?

शंकर—ऐसी स्त्रियाँ जान नहीं लेतीं केवल अपने स्वार्थ के लिए ही नाना छल छिद्र और माया रचती हैं।

इसी समय आवाज़ आई, आपलोग मुझे छोड़कर हरगिज़ न भागें वरना मेरी कम्बख्ती मुझे जीता न छोड़ेगी आप के रहने ही में मंगल है और मेरे छूटने की भी आशा है आज वह मुझसे विवाह करने को कहती है। इसीके लिए मैं वहाँ बुलाया गया था। मैंने स्वीकार कर लिया है क्योंकि अस्वीकार करने में मैंने किसी की भलाई नहीं देखी।

शंकर ने उत्तर दिया, यह आपने बड़ा अच्छा किया। जो वह कहे उसे हाँ छोड़ नहीं न करना। और जैसे वह प्रसन्न हो उसे प्रसन्न रखना। भोजदत्त गये हैं जानकी मानकी को लेने वे आ जावें तो कोई उपाय करें।

वह दिन तो इसी प्रकार की कहा सुनी में बीत गया। रात के समय कुँअर कर्मसिंह को दरबार में बुलाकर विनोदिनी ने

सुन्दरी की इच्छा प्रकट की और गंधर्व रीति से दोनों का विवाह कृत्य कराया। कुँअर की अँगूठी सुन्दरी ने ली सुन्दरी की अँगूठी कुँअर ने ली दोनों एक दूसरे का हाथ थाम प्रेम-पूर्वक सोहाग भवन में पधारे।

आज कुँअर का पाप पूर्ण हुआ और उसका प्रायश्चित भी हो गया अब उनके मन में आनन्द ने डेरा किया। और वे अपने को धन्य मानने लगे।

सच है:—

बिना दुःख के सुख नहीं, सुख ही दुख की खान।
दुख ते जो चाहत बचत, सुख ही तजत सुजान॥

सोहाग रात आनन्द पूर्वक बीती। प्रातःकाल स्नान भोजन पान आदि से निपटकर दोनों विश्रामागार में गए। कुँअर के मन में यह बात रह २ कर हिलोड़ने लगी कि, किसी प्रकार इसका पूर्व इतिहास जानना चाहिये। वास्तव में यह कौन है और किस अभिप्राय से इतने दिन कुंआरी रही इत्यादि जानना जरूरी है। लेकिन वे विचारे पूछते सकुचते हैं। उनकी हिम्मत नहीं पड़ती है कि उससे कुछ प्रश्न करें। फिर भी उन्होंने कड़ा कलेजा करके पूछा—सुंदरी! तुम अपना समाचार कुछ नहीं सुनाई?

सुंदरी०—मेरा समाचार सुनकर क्या करेंगे? मेरा समाचार बड़ा कौतूहल पूर्ण है जिसे सुनकर आप भी आश्चर्य में आ जायँगे।

कुँअर०—तब तो मैं उसे निश्चय सुनूँगा।

सुंदरी ने कहा—मेरे पिता का नाम वीणाधर मेरी माता का नाम शारदासुन्दरी और मेरा नाम कुमुद किशोरी है। लेकिन प्रेमवश मुझे लोग कुमुदा ही कहा करते हैं। मेरा पिता [illegible]

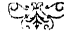
परगने का बड़ा जबर्दस्त ताल्लुकेदार है उसकी एक मात्र सन्तान मैं ही हूँ।

कुँ० कर्म०—ने पूछाः—क्या आपके पिता भी जीवित हैं?

सुन्दरी, जिसे अब हम कुमुदा ही लिखेंगे-उत्तर दिया—हाँ, पिता माता सभी जीवित हैं। आगे बोली—मैं अपनी माता की बड़ी प्यारी दुलारी बेटी हूँ। माता मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय मानती है और सब कुछ हो जाने पर भी उसका मुझमें प्रेम ज्योंका त्यों बना है उसमें तिल मात्र की भी कमी नहीं है। यदि आज अभी सुने कि मेरे शिर में दर्द है तो वह पागल की भाँति दौड़ती हुई मेरे पास पहुँचे। यद्यपि पिता की कठोर आज्ञा है कि मेरी माता मुझसे मिलने न पावे तथापि वह कभी गंगा-स्नान के बहाने कभी काली पूजा के बहाने लुक छिपकर मुझे देख जाती है। सारांश यह कि-मेरे घर से निकल आने पर भी माता का स्नेह वही है जो घर पर था।

आरम्भ में—अर्थात् दश वर्ष की अवस्था तक—पिता भी मुझे माता से कम प्यार नहीं करते थे। उन्होंने मेरी शिक्षा दीक्षा का पूरा प्रबन्ध किया। एक सुयोग्य अध्यापक कामिनी-कान्त भट्टाचार्य को नियुक्त कर मुझे बंगला, हिन्दी, संस्कृत आदि भाषाओं की शिक्षा दिलायी। स्वयं मुझे सदाचार का सदुपदेश सुनाते रहे और समय २ पर अपने साथ हरिकीर्तन सुनाने भी ले जाते थे! इसके अतिरिक्त सभा समाजों नाटक मेलों पर्वों और देवमंदिरों में भी अपने साथ रखते थे। इससे मेरे मन पर सांसारिक जीवन का अच्छा प्रभाव पड़ा।

दश वर्ष की अवस्था बंगाल में युवा अवस्था मानी जाती है। इसी कारण यहाँ छ सात वा आठ वर्ष की अवस्था ही में बालिकाओं के विवाह का नियम है। परंतु मेरा पिता सुधारक समाज का सदस्य था इस कारण मेरा विवह बारह वर्ष की



अवस्था में करना निश्चय किया। किन्तु सभा समाजों में ज्ञानी पुरुषों से मिलना जुलना आदि ,बन्द कर दिया। अर्थात् मेरे और ईश्वरीय जगत के बीच एक पर्दा डाल दिया और मुझे स्वर्गीय जगत के दिव्य चमत्कारी के दर्शन से वंचित कर दिया पिता का यह व्यवहार मुझे नहीं रुचा। रुचता कैसे ? पहिले तो जगत का अलौकिक दर्शन अपने साथ २ कराते डोले और जब उसका मुझे कुछ ज्ञान होने लगा तो मुझे उससे वंचित कर दिये।

बंगाल में बारह वर्ष की अवस्था ही में सन्तानोत्पत्ति होती है। इससे पूर्व ही कन्यायें वर योग्य हो जाती हैं। अतएव यहाँ की कन्याओं को अधिक से अधिक दश वर्ष में विवाह देना उचित है। अन्य प्रान्तों का सुधार बंगाल में लागू नहीं हो सकता। किन्तु पिता हठी थे। उन्होंने यही निश्चय किया कि सुधारक समाज के प्रस्तावानुसार मैं अपनी कन्या का विवाह बारह वर्ष पूर्ण होने पर करूँगा।

पिता का यह हठ भी मेरी अवस्था के प्रतिकूल हुआ। बड़े कठोर दुःख रहते हुए भी मैंने प्रतिज्ञा की कि मैं विवाह न करूँगी। और करूँगी भी तो सामाजिक जाल में न पड़ूंगी।

बारहवें वर्ष पिताने विवाह स्थिर किया। मैंने विवाह से इनकार किया। माता पिता दोनों बहुत समझाए लेकिन मैं अपने सिद्धान्त पर दृढ़ रही। पिताने शाम, दाम, दंड, भेद, चारों उपायों से काम लिया किन्तु उसके सब उपाय निष्फल रहे। माता ने भी पाड़पड़ोस, रिश्ते नाते की स्त्रियों को एकत्र कर बहुतेरा समझाया। सभी रीति नीति आचार व्यवहार दिखायी पर मैं अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रही। मेरी इस प्रतिज्ञा से माता घोर दुखी हुई। पिता भी अत्यन्त क्रोधित हुआ। किन्तु मैंने इसकी कुछ परवा न की। और पिता की आज्ञा

उल्लङ्घन कर मैं घर से निकल सखी सहेलियों में जाने आने लगी। तीर्थ, यात्रा, देव दर्शन, आदि भी बिना उसकी अनुमति लिये ही करने लगी। मैं पुरुषों से भी वैसे ही मिलने लगी जैसे स्त्रियों से। सारांश यह कि मैंने माता को घोर दुःख दिया और पिताका क्रोध बेतरह उभाड़ा जिससे ऊबकर उसने मुझे घर से निकल जाने की आज्ञा दी। और कहा—मेरे इलाके ही से नहीं बरन मेरे प्रान्त से निकल जावे और कभी अपना मुख मुझे न दिखावे। मैंने भी कहा—एवमस्तु। मुझे तो स्वयम् सांसारिक व्यवहार नापसन्द थे। दैवेच्छा से मेरी इच्छा के अनुकूल ही पिता का आदेश मिला। मैं घर से अकेली निकल कर कलकत्ते आई। आते समय मेरी माता पैरों में लिपट गई और उसने गिड़गिड़ा कर कहा—बेटी कहीं न जाओ इसी सुन्दरपुर गाँव में कोई स्थान चुन कर रहो। मैं तेरे पिता को समझा बुझा कर शान्त कर लूंगी" लेकिन मैं न मानी और वहाँ से चल दी।

कुछ दिन कलकत्ते में रहकर मैंने अपनी शिक्षा और भी बढ़ाई। भोजन पान इत्यादि के निमित्त माता प्रतिमास पिता की चोरी से कुछ भेज देती रही उसी से मैं अपनी गुजर करती रही। मेरी अवस्था सोलह से ऊपर होते ही अनेक भिखमंगों ने द्वार घेरा। बड़े २ कड़ोरपतियों के बच्चे भीख माँगने को खड़े हुए। लेकिन मैं अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार सब को धता बताई। फिर भी मंगनों ने पिंड न छोड़ा और घर वे घेरे ही रहे।

अन्त में एक राजकुमार को—जो अपने घर का अकेला था—परन्तु सम्पत्तिवान था—अङ्गीकार किया। भगवान को प्रतिज्ञा तोड़ते बुरा लगा होगा तभी तो वह सम्बन्ध होने से पूर्व ही उस युवकको स्वर्ग में बुला लिया। मरते

समय उसने मुझे बुलाकर कहा—हमारा तुम्हारा संयोग बदा न था इसी कारण संयोग होने के पहिले ही मैं चलता हूँ। क्षमा करना! मेरे कोई वारिश नहीं है और न कोई मेरी सम्पत्ति का अधिकारी है। अस्तु, मेरी सारी सम्पत्ति की तुम्हीं अधिकारिनी बनो। मैं सहर्ष अपनी सम्पत्ति तुम्हें प्रदान करता हूँ।

उस युवा के कहने के अनुसार मैं उसकी सारी सम्पत्ति की अधिकारिन बन बैठी। और इसी स्थान में इन्हीं सहेलियों को लेकर आनन्द पूर्वक कालक्षेप करती हूँ। अब मेरी प्रतिज्ञा तोड़ने में आप समर्थ हुए हैं। अब मैं आप से साफ शब्दों में कहे देती हूँ कि यदि आप मेरी आज्ञाओं का पालन न किये मेरी इच्छानुकूल न चले तो पछतायेंगे। मेरा कुछ न बिगड़ेगा। मैं इस विवाह बंधनको मानने वाली नहीं और न पतिपत्नी का भाव ही कुछ समझती हूँ। मेरे आधुनिक विचार में विवाह एक मेल है। मेल बना रहा तो बना रहा न बना रहा न सही।

मेरे मुर्शद ने सिखाया मुझे है बात यही।
तुम नहीं और नहीं और नहीं और सही॥ (लाल)

बस, यदि आप मेरे अनुकूल और मैं आप के अनुकूल हूँ तो हमारा आप का निभ गया और दोनों में से एक भी प्रतिकूल हुआ तो प्रेम गया। फिर तो दोनों को अख्तियार है कि अपना २ मार्ग देखें।

अब रहा विवाह होने पर फिर विवाह न करना, मैं इसके विरुद्ध हूँ। पुरुष को सब दशा में विवाह करने का अधिकार है तो स्त्रियों को क्यों नहीं? यह कैसा नियम है?

कुँअर ने मन में कहा—सो तो मैं पतवार पर बैठे ही जान लिया था कि तुम किस दर्जे की स्त्री हो। जो हो अब तो मतु

चाहे कुलटा हो स्वैरिणी हो वेश्या हो मेरे पाले पड़ीं। चाहे ब्राह्मविवाह हो चाहे गंधर्व विवाह। विवाह तो विवाह ही है इससे कौन इनकार करने का। अस्तु जैसे तुम्हारे विचार हैं उससे भी बढ़ कर मेरे विचार हैं:—

तू कुलटा कामी हमहूँ, तू वेश्या हम भंड।

यहाँ किसे सुनाती है। यहाँ न जाने कितनी कुँआरी से विवाह बंधन हुआ और छूटा! हाँ पर तेरी सी स्त्री मुझे जीवन में दूसरी नहीं मिली। भगवान ने जैसे हेमा से बचाया वैसे ही वह इस कुमुदा से बचावे। अब की बचकर निकल जावें तो फिर कभी बंगाले की ओर मुख न करें। हाय! मैं यही सुना करता था कि कामरूप कमच्छा की स्त्रियाँ बड़ी कामुकी जादूगरनी होती हैं। जान बूझकर मैं इस ओर आया और इस स्वच्छन्दिनी के जाल में पड़ा। प्रकट में कहा—प्यारी! मुझे तुम्हारी सब बातें मंजूर हैं। जैसे कहोगी मैं वैसे ही करूँगा। तब एक बात कहूँगा उसे तुम्हें भी मानना पड़ेगा।

कुमुदा०—वह क्या?

कुँअर०—वह यह कि मेरे दोनों मित्रों को-जिन्हें कैद कर रक्खी हो—छोड़ दो।

कुमुदा०—हाँ; यदि यह वादा करें कि वे यहाँ से तुरन्त चले जायँगे।

कुँअर०—मुझे उनसे मिलने की अनुमति दें तो मैं उन्हें समझा बुझाकर लौटा दूँ।

कुमुदा०—हाँ, आप उनसे मिलकर कहें कि वे यहाँ से फौरन चले जायँ।

कुमुदा ने छोटक से कहा—इन्हें इनके मित्रों से मिला कर दोनों को बाहर निकाल दो। छोटक गगा और शंकर सीताराम को ले आया। शंकर सीताराम और कुँअर में कुछ गुप्त बातें

हुईं। बात चीत करके शंकर और सीताराम बड़े फाटक से बाहर निकले और कलकत्ते को रवाना हुए।

रास्ते में भोजदत्त, यूसुफ, करीम, जानकी, और मानकी मिलीं शंकर उन सबों को भी कलकत्ते लौटा ले गया। और वहाँ कुछ अस्त्र शस्त्र गोली बारूद खरीद कर धूर्तता के भी सामान खरीदा। धूर्तता की झोलियों को सामानों से भर कर और २ सामग्री जो उन्हें आवश्यक थी खरीद की। छओजन एक धर्मशाले में जा कर टिके।

शंकर ने यहाँ की और यूसुफ ने वहाँ की बातें सुनाईं। जानकी मानकी ने अजयगढ़का क़िस्सा कहा। और कहा—उधर दिन बेला सब ठीक हो गया। वररक्षा भी हो गया। अब तिलक की तैयारी हो रही है।

शंकर ने आह मार कर कहा—क्या करें अपनी सेना का तो नायक ही औंधा है। बे पेंदी का लोटा है। कहीं चोपन की चमारिनों में फँसता है तो कहीं बँगाले की जादूगरनियों में। जहाँ फँसना चाहिये वहाँ तो फँसता नहीं फँसता है इधर उधर! नायक की नादानी ही से सेना निरुत्साह निरुद्योग और निकम्मी हुई जा रही है। देखो न! कहाँ का मारा कहाँ आ मरा! यह है जादूगरनी, जब तक यह मारी न जायगी तब तक कुँअर का उसके सिकंजे से छूटना कठिन है।

इसके बाद उसने उनके विवाह की और उस विवाह की खुशी में अपने छूटने की बात कही। और कहा—कलह उधर ही चलो और जैसे हो वैसे कुँअर को उसके पंजे से निकालो।

इसी प्रकार की बात चीत कर वे सब उसी धर्मशाला में सो रहे।

—:***:—

दसवाँ परिच्छेद ।

पाठक !

कुमुदा ने कुँअर को जो अपना इतिहास सुनाया उसमें उसने अपने गुप्त पापों को गुप्त रख कर यह साबित किया कि वह एक पढ़ी लिखी स्वतन्त्र प्रकृति की स्त्री है। कुँअर ने—जो इसी प्रसंग में रात दिन सने डोल रहे हैं—उसका मर्म समझ लिया क्योंकिः—

" खग जाने खग ही कर भाषा "

इस लोकोक्ति के अनुसार कुलटाओं का हाल दुराचारी ही खूब जानते हैं। यह सब जान कर भी अपने २ स्वार्थों से दोनों बाज़ नहीं आते।

अब तो कुँअर की और कुमुदा की खूब घुटने लगी। शंकर ने कुँअर से उनके माता पिता का मरण नहीं कहा। इस कारण उन्हें माता पिता भ्राता किसी की भी सुध नहीं। तब एक बात है कि कुँअर जिसमें कुमुदा के आचरणों से अवगत न हों इस खयाल से कुमुदा दिन में कुँअर को ऐसा बना रखती थी कि उन्हें खुद मालूम नहीं कि हम कहाँ कैसे और किस दशा में हैं। केवल रात में वे अपने ज्ञान शरीर से ठीक रहते थे। कुँअर ने बहुत चाहा कि दिन की दशा दरियाफ्त करें लेकिन वे कर न सके। रात्रि में ही उन्हें अपना अनुभव होता रहा।

एक दिन कुमुदा और विनोदिनी बैठी विनोद की बातें कर रही थीं कि संजीवनी ने आकर कहा—सरकार! दो गंधिन कन्नौज की आई हैं और बड़ा बढ़िया २ इतर फुलेल लाई हैं। चाहती हैं कि सरकार को कुछ दिखावें। आज्ञा हो तो उन्हें ले आऊँ।

कुमुदा ने कहा—स्त्रियाँ गंधिन हैं यह एक नई बात है !

विनोदिनी बोली—स्त्रियों में स्त्रियों ही का व्यापार होता है । स्त्रियाँ स्त्रियों में सहज ही आ जा सकती हैं । चूड़ी वालियों की तरह इतरवाली भी बन गईं ।

कुमुदा ने कहा—अच्छा बुलाओ ।

संजीवनी गई और उन दोनों को साथ ले आई ।

गंधिन की चटक मटक देखकर कुमुदा हँसी और गंधिन से बोली—तुम लोगों का घर कहाँ है ?

१ गंधिन०—सरकार ! मेरा घर कन्नौज है । इतर बेचने निकली हूँ आज इसी रास्ते कलकत्ते जा रही थीं कहा कि सरकार को भी अपने देश का इतर दिखाते चलें ।

कुमुदा०—(हँस कर) देखें तुम्हारे देश का इतर कैसा होता है ?

गंधिन ने बक्स खोला । उसमें से कई शीशियाँ निकालीं । प्रत्येक शीशी में से एक २ फाहा बना कर कुमुदा को दी । कुमुदा, यह अच्छा है यह नहीं अच्छा है कह कर इतर का गुण दोष कहती रही ।

जब गंधिन अपनी सब शीशियों का इतर कुमुदा को सुंघा चुकी तो उसने एक नई शीशी दूसरी गंधिन के बक्स में से लेकर कुमुदा विनोदिनी और संजीवनी को दी और कहा—यह असल रूह गुलाब है इसे ज़रा अच्छी तरह सूंघें । इसकी जोड़ का रूह गुलाब भारतवर्ष में न मिलेगा ।

कुमुदा ने हँस कर विनोदिनी से कहा—जाओ उन्हें (कुँ० कर्म को) बुला लाओ वे भी ज़रा गंधिन की गंध लेलेवें ।

विनोदिनी गई और कुँ० कर्म को बुला लाई । गंधिन ने कहा, मैं आपको एक और चीज़ सुँघाती हूँ । तनक देखें कि मैं क्या इतर लाई हूँ ।

कुँअर, कुमुदा, विनोदिनी, और संजीवनी ने अपना २ इतर अपनी २ नाक से लगाया। कुँअर ने कहा–वाह खशतो निहायत उम्दा और निहायत खुशबूदार है।

कुमुदा विनोदिनी और संजीवनी तीनों अपने २ इतर के फाहे नाक से लगाते ही झूम २ कर धरती पर गिर पड़ीं। कोई मुँह के बल कोई बाजू के बल कोई पीठ के बल अचेत हो धरती पर खर्राटे लेने लगीं। कुँअर यह दशा देख समझ गए और मनमें विचार किये कि ये दोनों जानकी और मानकी ही हैं। इन्हीं दोनों की यह धूर्तता है।

इधर तो यह हो ही रहा था उधर फाटक पर तलवारें चलने लगीं! छोटक अपने साथियों के साथ पैंतरे बदल २ कर लड़ रहा है। सीताराम, भोजदत्त, शंकर, यूसुफ और करीम भी वार पर वार करते बड़ी दिलेरी से लोहा ले रहे हैं।

तलवारों की छपाछप आवाज़ कान में पड़ते ही कुँअर कर्म सिंह भी कुमुदा के कमरे में से तलवार और बरछी लेकर फाटक पर पहुँचे और वे भी अपना हाथ साफ करने लगे। एक घंटे जम कर तलवार चलीं। दोनों तरफ लोहू लोहान हो गया। अंत में शंकर की तलवार ने छोटक का काम तमाम कर डाला और उसका सिर धड़ से अलग हो धरती पर छटपटाने लगा। यह दशा देख छोटक के साथियों के पाँव उखड़े और वे भागने चाहे किन्तु कुँ० कर्म, यूसुफ और करीम ने एक को भी भागने का रास्ता न दिया। सबों को घेर कर मार डाला!

रक्षकों का काम तमाम करके वे सब क़िले में घुसे। कुमुदा की सारी संपत्ति, रत्न, धन, आभूषण आदि लूट लिये और सब उसी की नाव पर लाद कर सलाह किये कि अब इन स्त्रियों का क्या किया जाय। ये योंही छोड़ दी जायँ अथवा इन्हें इसी

दशा में नाव पर लादकर ले चला जाय। या इन तीनों को भी इस संसार से बिदाकर के चलें।

कुँवर कर्म की इच्छा यह हुई की इन तीनों को इसी दशा में नाव पर लाद कर ले चला जाय। क्योंकि इससे मैं विवाह कर चुका हूँ। विवाहिता स्त्री का निरपराध त्याग भी पाप ही है।

सीताराम ने कहा—महाशय! विवाही कुँआरी का विचार छोड़ दें! जहाँ यह सचेत हुई तहाँ चोटीली नागिन की भाँति खौंखिया कर काट ने दौड़ेगी। और एक को भी मनुष्यचोला में न रहने देगी। यह है आसाम की स्त्री!

भोजदत्त ने कहा—स्त्री का वध करना पुरुसत्त्व के विरुद्ध है। अतएव इसे इसी दशा में यहीं छोड़ कर चले चलें। आठ दश घंटे बाद ये स्वयं सचेत हो जायेंगी। इन्हें सचेत करने की भी ज़रूरत नहीं।

जानकी और मानकी ने भी भोजदत्त की राय पसन्द की और कहा, स्त्री का वध करना मर्दानगी के विरुद्ध है। शेर कभी हथिनी पर वार नहीं करता। जब करता है तो हाथी पर करता है। इसी प्रकार मृगया करने वाले (शिकारी) भी मृगी को त्याग देते हैं, मृगा ही का वध करते हैं।

कुँअर कर्मसिंह ने कहा–आप लोगों की सम्मति मान लेना ऐसी सुन्दर षोड़सी स्त्री रत्नको हाथ से खोना है। रियासत में पहुँचने पर इसका पूर्वीय भाव आपही बदल जायगा। स्त्री को सब प्रकार का सुख चाहिये फिर तो वह माता पिता तक को भूल जाती है और कितना ही कठोर स्वभाव की क्यों न हो पानी २ हो जा सकती है। अतएव यह छोड़ी न जाय बल्कि सहेलियों सहित ले चली जाय।

शंकर ने कहा—कुँअर साहेब स्त्री पर लट्टू हैं परन्तु स्त्री के गुण दोषों पर विचार नहीं करते हैं। अजी जनाब! यह

स्त्री नहीं है साँपिन है साँपिन ! इसके काटने पर लहर भी आने की नहीं ! इसे उठ बैठने दें फिर इसका खेल बंगाला देखें ! यह यहाँ से अपना खेल शुरू करती हुई कंतित तक खेलती चली जायगी। हेमांगिनी यदि भूखी बाघिन कही जाय तो यह चोटोली नागिन कही जाने योग्य है। अतएव–बध करना भी उचित नहीं और साथ में लेजाना भी उचित नहीं। इसे इसी दशामें यहीं छोड़ कर चल देवें। जब तक यह सचेत होकर उठेगी तब तक हम लोग कलकत्ते से भी आगे निकल जायँगे। नाव अच्छी है इसे पाल पर उड़ा कर शीघ्र यहाँ से चल देवें।

मानकी ने एक फाहा और उन तीनों की नाक से लगाकर कहा चलिये अब ये कलह भोर को उठेंगी।

कुँअर की इच्छा रहते भी शंकर आदि उसको (कुमुदाको) वहीं छोड़ कर नाव पर सवार हुए। पवन पुरवाई बड़ी तेजी में थी। अस्तु, नाव के कलकत्ते आने में घंटे डेढ़ घंटे ही बीते। कलकत्ते पहुँच कर ये लोग कुछ भोजन का सामान खरीदे और वहाँ से पाल के सहारे नाव उड़ाते हुए आगे बढ़े।

कुमुदा—विनोदिनी और संजीवनी तीनों रात भर बेहोश पड़ी रहीं। भोर होते ही उनकी बेहोशी दूर हुई और वे अँगड़ाइयाँ लेती हुई उठ बैठीं। कुमुदा ने विनोदिनी को पुकार कर कहा–विनोदिनी २ ! क्या हाल है ?

विनोदिनी ने आँखें मलकर कुमुदा की ओर देखा और कहा–माथा घूम रहा है जी मचला रहा है ऐसा मालूम होता है मानों कोई नशा खाया है।

कुमुदा ने कहा—वही हाल इधर भी है। जान पड़ता है कुछ ठग विद्या खेली गई। उन गंधिनों ने कोई ऐसी विषैली वस्तु सुंघा दीं जिससे हमारा यह हाल हुआ। उठो, देखो तो वह युंराज कहाँ है ? छोटक को तो बुलाओ। सिर के बिखरे

बालों को सम्हालती और सरकी हुई साड़ी को कमरसे कसती हुई विनोदिनी फाटक पर आई। फाटक का रंग देखते ही उस के रंग बद रंग हो गए। वह भर आँखों लाशों को बिना देखे ही दौड़ी हुई कुमुदा के निकट गई और बड़ी घबड़ाहट के साथ अधूरे शब्दों में बोली—"बड़ा गजब हो गया डाकुओं ने छोटक सहित सब रक्षकों को मार डाला!"

"आँय! आतो सही" कह कर कुमुदा महल में आई देखा तो सारी सम्पत्ति लुट गई। रत्नों के आभूषणों के वस्त्रों के बक्स एक भी नहीं हैं। सब डाकुओं ने लूट लिए! वह कुँअर भी नहीं है। वह भी भागा!!!

कुमुदा ने कहा—विनोदिनी! झटपट जाकर रतनपाड़ा के सिपाहियों को खबर करो और उन्हें हुक्म दो कि वे एक तेज़ धूमपोत कलकत्ते से किराये पर लेकर उनका पीछा करें। मैं भी तयार होती हूँ।

विनोदिनी गई और सिपाहियों को हुक्म दे आई। सिपाही नायब हवलदार आदि सब तैयार होकर कलकत्ते की ओर भागे। हावड़ा से एक तेज धूमपोत किराये पर लेकर पटने की ओर धावा किये।

दिन के चार बजे शंकर ने देखा कि एक धूमपोत गंगा की तरंग को चीरता हुआ बड़ी तेजी से हमारी ओर चला आ रहा है। उसने सीताराम से कहा—सीताराम! देखो, यहाँ से बीस पच्चीस माइल पर गंगा की धार में जो धूआँ उड़ता दीखता है वह धूमपोत जान पड़ता है और वह बड़ी तेजी से हमारी ओर बढ़ता चला आ रहा है।

सीताराम ने कहा—हाँ, बेशक वह धूमपोत ही है। अब तो वह साफ नज़र आ रहा है। कहीं हमारा ही पीछा करने को न आ रहा हो?

शंकर ने कहा—यही तो मेरा भी अनुमान है। कुमुदा सचेत होकर इन्हें हमारे पीछे धावा करने को भेजी हो तो अचरज क्या है। अच्छा नाव दाहिने किनारे लगाओ।

नाव का पाल मोड़कर नाव को दाहिने किनारे पर-जिधर बड़ा झाड़ी झंखाड़ था—लगाया। सब लोग नाव से उतर २ उन्हीं झाड़ियों में छिप कर बैठ गए।

आध घंटे के भीतर वह धूमपोत वहीं पहुँच गया जहाँ वह नाव बंधी थी। नाव को सामान से लदी देख हवलदार ने कहा—यही तो सरकारी नाव है जिस पर सरकार चाँदनी रात में गंगा में पवन-सेवन करती हैं। जमादार बोला, हाँ यही नाव है। इस पर जो सामान है वह भी सरकारी है। डाँकुओं ने हमारा धूमपोत देख लिया इसी से वे सामान सहित नाव को छोड़ भागे।

हवल्दार—नाव यहीं रहने दो और आओ हम लोग उन्हें ढूँढ़ें। सम्भव है कि वे कहीं इन्हीं झाड़ियों में छिपे हों।

जमादार०—इधर हम लोग उन्हें ढूंढ़ने चलें और उधर वे फिर कहीं से निकल कर नाव पर का सारा माल लेकर चंपत हों। हम उन्हें भी न पावें और हाथ में आया हुआ माल भी गंवा बैठें। माल सरकारी मय नाव के हमें मिल ही गयी इसे अपने धूमपोत से बाँध कर वापिस ले चलो और वहाँ सरकार से यह कह कर कि—हमारे धावे से डर कर डाँकू हमारे पहुँचने से पहिले ही नाव को मय सामान सरकारी के छोड़ कर रफ्फू चक्कर हो गए। सारा माल हमारे हाथ लग गया—इनाम लो।

कुछ सिपाहियों ने भी जमादार की बात का समर्थन किया और कहा कि—वे न जाने कहाँ के मारे कहाँ पहुँचे होंगे यहाँ बैठ कर क्या करेंगे? वे अब गिरफ्तार होने वाले नहीं। नाव

खोल कर धूमपोत के पीछे बाँधें और वापिस चलें। क्योंकि अब अँधेरा भी हो गया ऐसे समय झाड़ों के भीतर घुसना भी खतर नाक है।

यही सलाह ठीक जँची। नाव खोल कर धूमपोत के पीछे बाँधी गई और धूमपोत को कलकत्ते की ओर दौड़ाया। भक २ धूआँ उड़ाता हुआ धूमपोत गंगा की धार में तीर की तरह दौड़ा।

शंकर उस स्थान से एक माइल आगे धूमपोत की बाट जोहता आड़ में जा बैठा। ज्योंही वह धूमपोत आगे बढ़ा त्यों ही वह गंगा में कूद पड़ा और धार के साथ बड़ी तेजी से तैर कर नाव का पतवार पकड़ लिया।

सिपाही सब आनन्द में डूबे हुए धूमपोत के भीतर आराम कर रहे थे। शंकर मौका अच्छा देखकर पतवार के सहारे नाव पर चढ़ा और तेज चाकू की धार से नाव का रस्सा काट दिया। नाव स्टीमर से अलग हो गई।

शंकर उस नाव को खेकर किनारे लाया और किनारे ही किनारे नाव वहाँ लाया जहाँ साथियों को छोड़ गया था। सीटी की आवाज़ देते ही उसके साथी झाड़ियों में से निकल कर गंगा के किनारे आए। शंकर ने कहा—अब गंगा की राह नाव में चलना अच्छा नहीं बेहतर है कि पैदल की राह किसी सवारी पर माल लाद कर चलें।

सीताराम ने कहा—इस समय रात है। बिना सबेरा हुए सवारी शिकारी कुछ मिलेगी नहीं। तब रात भर यहीं पड़ा रहना भी खतरनाक है। सम्भव है कि वे स्टीमर में नाव न देख कर फिर लौटें और फिर वे नाव पकड़ लें अच्छा यही होगा कि नाव खोल दें। सुबह तक नाव चली चलने दें। भोर होते ही खुश्की का प्रबन्ध करें। इस उपाय से नाव भी इस स्थान से दूर निकल जायगी और जितना समय यहाँ बितावेंगे

उतने समय में आठ दश माइल आगे बढ़ जायँगे। यदि मार्ग में उनसे फिर मुठभेंड़ हो गई तो मुकाबिला करेंगे।

सीताराम की ही राय सबों ने स्वीकार की और नाव खोल दी गई। पूर्वी हवा तूफानी चल रही थी उसके झोंके में नाव की चाल धूमपोत से भी अधिक बढ़ गई। सबेरा होते २ नाव बाँकीपूर पहुँच गई। वहाँ एक सवारी गाड़ी किराये पर करके उसी पर सारा सामान लाद कर वे लोग पक्की सड़क से आगे बढ़े। हाँ यह कहना हम भूलही गए कि नाव को एक सौ रुपये पर एक केवट के हाथ बेंच गए। पाँच सौ की नाव सौ में पाकर वह केवट भी अपने भाग की सराहना करने लगा।

बड़े तड़के वह धूमपोत हवड़ा पहुँचा। सिपाही अपने बिस्तर से उठ कपड़े पहिन पोत से नीचे उतर कर देखते हैं तो धूमपोत के पीछे नाव नहीं !

"नाव कहीं राह में पीछे छूट गई" कह कर उन्होंने फिर धूमपोत को पीछे लौटाया और उसे उसी स्थान तक दौड़ा लाये जहाँ पहिले नाव बंधी थी। रास्ते में कहीं उस नाव का पता न लगा और न पूर्व स्थान पर उसका चिन्ह पाया।

माँझी ने कहा—जमादार ! नाव छूट नहीं गई बल्कि वह काट दी गई है। देखें न ! धूमपोत के पिछाड़ी कटा हुआ रस्सा लटक रहा है !

हवलदार ने कहा—तो आगे बढ़ो जरूर यह उन्हीं डाकुओं का काम है। हम लोगों को गफलत में पाकर वे ही लोग नाव काट ले गये !

धूमपोत आगे बढ़ा दोपहर होते २ वह बाँकीपूर आया। घाट पर नाव देख कर हवलदार ने कहा—नाव हमारी यह बँधी है लेकिन इस पर सामान नहीं। इतने ही में वह मल्लाह जिसने उसे खरीदा था—आया और वह बोला—"साहेब ! यह

नाव मेरी है। मैंने इसे खरीदा है। पूछ लीजिये इन माझियों से।

दूसरे नावों के माझियों ने भी कहा—हाँ साहेब! इसने सौ रुपये पर इसे खरीद किया है।

हवलदार ने कहा—भाई नाव हमारे सरकार की है। डाँकू इसे चुरा लाये। इसपर सामान लदा था वह सामान क्या हुआ?

माँझी बोला—जिन्होंने हमारे हाथ नाव बेंचा सामान भी वेही अपने साथ ले गये।

हवल्दार०—वे सामान लेकर किधर गए?

माझी०—यह मुझे नहीं मालूम कि वे किधर को गए।

हव०--वह उतना सामान ले कैसे गए?

माँझी०--सवारी पर ले गये और कैसे ले गए।

हव०--सवारी क्या थी?

माँझी०--घोड़े की थी।

हव०--किस दिशा को किस रास्ते वे गये यह तुम्हें नहीं मालूम?

माझी०—जी नहीं, यह मुझे नहीं मालूम।

जमादार०—अजी हवल्दार! यह सब इसी माँझी की शरारत है। इसी ने नाव काटा है। माल भी इसी ने उड़ाया है।

बस इसे ही गिरफ्तार करके हाकिम के पास ले चलें। माँझी जल डाँकू होते ही हैं। जल में डाका इन्हीं की जानकारी में पड़ता है।

हवल्दार ने माँझी को गिरफ्तार कर लिया और उसे सिपाही के हवाले किया। हाकिम के पास जाकर माँझी ने सारा माजरा बयान किया। गवाह भी दिये। हाकिम ने फैसले में कहा यह सच है कि तुमने सौ रुपये देकर नाव खरीदा मगर नाव चोरी की है। कानून कहता है कि चोरी का माल लेने वाला भी मुजरिम है अस्तु मैं कानून से लाचार होकर

तुम्हें सजा देता हूँ और माल मालिक को वापिस दिलाता हूँ।

माझी विचारा सजा पा गया। हवल्दार की नाव वापिस मिली। खाली नाव लेकर बिचारे हवलदार ने उसे धूमपोत से बाँधी और अपने घर का रास्ता लिया।

दूसरे दिन हवल्दार नाव लेकर कामपूर पहुँचा और सारा क़िस्सा कुमदा से कहा। कुमुदा हवल्दार पर बेतरह बिगड़ी और कहा—तुम नालायक हो। तुम्हारे सिपाही सब निकम्मे हैं। निकल जाओ हमारे यहाँ से फिर हमें मुँह न दिखलाना।

बिचारे हवल्दार जमादार और सिपाही अपनी २ किस्मत को रोते झींकते क़िले के बाहर चले आये और बिना अपना महीना लिये ही अपने २ घर वापिस चले गए।

कुमुदा ने विनोदिनी से कहा–विनोदिनी ! यह तो सर्वनाश हो गया ! एक पाई भी पास न रह गई। वस्त्र आभूषण आदि भी झाड़ पोंछ कर वे ले गए, अब गुजर क्यों कर होगा ?

विनोदिनी ने कहा--हाँ संकट तो भारी उत्पन्न हुआ, बेशक डाँकू बेईमान सब झाड़ बहार ले गए। फिर भी मैं आप को उपाय बताती हूँ। आप अपना रतनपूर का इलाका शशि-भूषण के यहाँ बंधक धर कर कुछ रुपये ले लेवें इसके बाद आप मुझे कंतित जाने दें। ईश्वर चाहेगा तो मैं इसका बदला लेकर लौटूंगी। हाँ मुझे कमला को साथ ले जाना होगा और कन्टक को भी साथ रखना ज़रूरी है। मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि मैं सारा माल ब्याज सहित उनसे वापिस लाकर तब आपको मुख दिखाऊँगी।

विनोदिनी की बातों से कुमुदा को कुछ धीरज आया। उसने १० हजार रुपये पर अपना रतनपूर का इलाका बंधक रखा। उन रुपयों में से उसने कुछ विनोदनी को दिया।

विनोदिनी ने उन रुपयों में से कुछ का जरूरी सामान लिया

और कुछ निजी खर्च को रख छोड़े। फिर विनोदिनी कमला के पास आई और उससे कुमुदा की सारी विपत्ति कही।

कमला ने कहा—कुमुदा तो अपने को बड़ा लगाती थी। बड़ी चतुर बड़ी चालाक बड़ी पढ़ी लिखी समझदार बनती थी वह कैसे गोता खा गई ?

विनोदिनी बोली:—

प्रथम चतुर चूकत नहीं, चूकत मुँह की खात।
जब पलटत पासा समय, बुद्धि धरी रहि जात॥

क्योंकि—"समय के फेरते सुमेर होत माटी को।"

इस समय भाग्य पट पड़ गया है। तभी तो हाथ से सोना छिन गया!

कमला०—हँसकर-कुमुदा ने अच्छा यार किया जो नंगी करके भागा। कहाँ तो कहती थी कि मैं किसी के आधीन न रहूँगी कहाँ आधीनता ऐसी की की सर्वस्व खो बैठी ?

विनोदिनी०—बहिन! यह हँसने का समय नहीं वरन् कुछ सहायता का समय है।

कमला०—वह कहाँ का किस देश का रहने वाला है ?

विनोदिनी०—मिर्जापुर नगर के पास विन्ध्याचल देवी के धाम से मिला हुआ कंतित नाम का कोई विशाल राज्य है उसी राज्य का वह युवराज है।

कमला०—इतने बड़े राज्य का युवराज और उसकी यह हरकत !! बड़ा लम्पट मालूम होता है ?

विनोदिनी०—उसके साथ उसके दो तीन मित्र हैं जो बड़े प्रसिद्ध धूर्त हैं उन्हीं धूर्तों की यह धूर्तता है।

कमला०—बंगाल में धूर्तता वह भी स्त्री के साथ ताज्जुब है। अच्छा तो मैं हाजिर हूँ। मुझसे जो हो सकेगा मैं करूँगी पच्छिमीय देशों में कभी गई तो नहीं परन्तु कुमुदा के लिये

चलूंगी, जरूर चलूंगी। अच्छा हो कि कन्टक को भी साथ में ले लो?

विनोदिनी—हाँ कन्टक चलेगा। उसे मैं ठीक कर आई हूँ।

कमला०—तब तुम और कन्टक तो काफी हो, मुझे ले जाकर क्या करोगी?

विनोदिनी०—जी नहीं, मैं अभी तुम्हारे सामने क्या हूँ तुम चाहो तो यहीं बैठे २ कान पकड़कर मय मालके उन्हें यहां बुलालो।

कमला०—हँस कर अच्छा मैं चलूंगी। कुमुदा से मेरी नमस्ते कहना और कहना मैं तैयार हूँ।

कमला से विदा हो विनोदिनी कुमुदा के पास आई और अपने सफर का सामान दुरुस्त करने लगी।

उधर कुँअर कर्मसिंह आदि काशी पहुँचे। गाड़ीवान को किराया देकर उसे बिदा किया। एक धनी का मकान किराये पर लेकर उसी में डेरा किये।

बनारस में पहुँचते ही कुँअर कर्मसिंह को प्रेमा की याद आई किन्तु साथियों के भय से उसका नाम प्रकट न लिये स्नान ध्यान पूजन दर्शन से छुट्टी पाकर जलपान किये और कुछ विश्राम कर लेने के बाद सब लोग नगर भ्रमण को निकले जानकी मानकी दोनों डेरे पर रहीं।

चौक में पहुँच कर कुँअर ने कहा—भाई अब कोई सवारी तैयार करो और चलो चलें अब घर को। न जाने क्यों मेरा मन कहीं लगता नहीं है। घबरा २ उठता है।

शंकर समझ गया। उसने कहा नाव से चलने में सुभीता है कोई नाव की जाय।

सीताराम ने कहा—नाव चुनार होकर जायगी। चुनार वाले राह तकते बैठे होंगे। उनसे बिना मुठभेड़ हुए न रहेगी अस्तु सड़क ही से चलना अच्छा है।

गाड़ी किराये की करके उस पर सारा सामान लाद कर सब लोग पक्की सड़क से कंतित को रवाना हुए। गंगापूर पहुँचते २ शाम हो गई। रात अँधेरी जान कर सब लोग एक बारी में डेरा डाले।

गाड़ीवान ने गाड़ी उसी बारी में खड़ी की। घोड़ों को चरने के लिये छोड़ दिया और आप कुछ पका खा कर गाड़ी के पास ही बिस्तर बिछा कर सो रहा।

ये लोग भी पका खा कुछ गपशप लड़ा कर सो रहे। सफर में नींद बड़ी गहरी लगती है। विशेष कर जब लम्बी सफर तय किये आ रहे हों। ये लोग कलकत्ते से सफर ही में हैं। कहीं गाड़ी, कहीं नाव, कहीं पैदल, चलते २ सबों का माथा भन्ना उठा था यकायक जो मैदान की ठंढी हवा में पड़े तो बे सुध सो गए। गाड़ीवान भी ऐसा बेखबर सोया कि करवट भी न लिया।

इधर ये लोग बेखबर सो रहे थे कि पाँच सात जन काला लवादा पहिने गंगा के किनारे से आए और चुपचाप गाड़ी का सारा माल विशेष कर बकसों को उठा कर वहाँ से चलते बने और गंगा के किनारे पहुंच एक नाव पर–जो किनारे बँधी थी–सवार हो नाव को बीच धारा में डाल कर नौ दो ग्यारह हुए!

चार बजे भोर को गाड़ीवान उठा। देखा तो गाड़ी पर सन्दूकें नहीं! उसने हल्ला मचाया। सब लोग जग पड़े। कोई इधर दौड़ा कोई उधर दौड़ा। कहीं कुछ नहीं। लौट कर सब आपस में ही लड़ने लगे।

शंकर ने कहा—बस, एक शंकर ही सारे कामों का जिम्मेदार है शेष सब तो भाड़े के टट्टू हैं। जो करे वह शंकर ही करे। इन भले आदमियों को लज्जा नहीं आती कि हम मर

मिट कर इतनी लम्बी सफर में सब माल बेदाग़ निकाल लाये और थे घर के किनारे पहुँच कर गँवा बैठे।

सीताराम ने कहा—भाई बिगड़ते किस पर हो? जैसी तुम्हें नींद चांपी वैसे ही हमें भी। यही था तो पहरा लगा दिये होते। मेरी इसमें क्या ख़ता है? युसूफ मियाँ पैजामें से बाहर हो गए और कहा—लो अपना टाट जामा मैं बाज़ आया ऐसी नौकरी से? "माल मारें गाजीमियाँ नाम हो मुजावर का"।

मियाँ करीम तो अपना बधना बिस्तर उठा कर चलने ही पर अमादा हो गए। भोजदत्त ने उन्हें पकड़ कर बिठाया और कहा–वाह भाई! आप लोग तो बड़े समझदार मालूम होते हैं? भला यह मौक़ा है परस्पर लड़ने का? और साथ छोड़ कर भागने का? शंकर का कहना उचित है। क्योंकि उसने अपनी जान लड़ा कर इतनी भारी रक़म यहाँ तक ले आया और वह जरा सी ग़लती में हाथ से निकल गई। इसमें सन्देह नहीं कि सब मिला कर लाखों की सम्पत्ति थी उसे इस बारी की ठंढी नींद ने ले ली।

फिर जब वह चली ही गई तो अब बनना बिगड़ना वृथा है। बनने बिगड़ने लड़ने झगड़ने और चिल्लाने और रोने से तो अब वह मिलेगी नहीं। वह तो अब गई। गई गई, जाने दो। यदि वह अपने अंश की होगी तो फिर मिलेगी। फिर गई हुई का पछतावा ही क्या? अब अपना काम देखो उठो चलो राजधानी को चलें वहाँ क्या होता जाता है उसको देखें।

गाड़ीवान से कहा—बाबा गाड़ी तो जोत तू भी घोड़ा बेंच कर सोने वाला निकला। पास ही पड़ा रहा माल उठ गया मिनका तक नहीं।

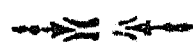
गाड़ीवान ने कहा—हाँ साहेब! बड़े २ तलवार बहादुर

तो सुख से सोवें हम गरीब का सोना भी बुरा है। सच है छोटे ही के सिर सारी आफत है।

गाड़ीवान ने घोड़े जोते। सब लोग मुहर्रमी सूरत बनाए गंगा तट पर पहुँचे। नाव पर सवार हो क़िले में पहुँचे। क़िले में पहुँचते ही कुहराम मच गया। धर्मसिंह दौड़ कर भाई के गले से चिपट गए और खूब फूट २ कर रोए। महल में पहुँचते ही कमलाक्षी ने भाई का पैर पकड़ कर ऐसा करुणाजनक रुदन किया कि पत्थर के कलेजे भी टुकड़े २ हो गए।

कुँअर कर्मसिंह को तो काला नाग सूंघ गया। उनके मुख से एक बोल न निकला और न आँखों से एक बूंद आँसू निकले वे पत्थर हो गए। और मुख ढाँक कर एक कमरे में पड़े रहे। मित्र मंडली भी अपने २ घर चली गई।

कुँअर कर्मसिंह तीन दिन तक उसी कमरे में पड़े रहे। वे न किसी से मुख से बोले और न कुछ कहे। चुपचाप मुख ढाँके पड़े रहे।



दसवाँ परिच्छेद।

तीसरे दिन शाम को मंत्री, मुसाहिब, अमीर, उमराव, इकट्ठे हो कुँअर के पास गए और बहुत कुछ समझा बुझा कर उन्हें बाहर लाए। स्नान करा और कपड़े बदलवा कर दरबार में लाए और सिंहासन पर बैठाने की तैयारी किये।

चारों ओर न्योता भेज दिया गया। सब राजे महराजे सेठ साहूकार ताल्लुकेदार ज़मीनदार एकत्रित हुए। महाराजा महताबसिंह और विजय बहादुरसिंह भी निमंत्रण पाकर आए।

केवल कुँअर शमशेर बहादुरसिंह और उनके मित्र नहीं आए। अजयगढ़ के कुँअर प्रेमसिंह भी पिता के साथ पधारे। बड़ी धूमधाम से कुँअर कर्मसिंह गद्दी पर बैठे। रैयतों ने, अमीरों ने मन्त्रियों ने, नज़र गुज़ारी। सबकी नज़र नियाज़ लेकर यथा-उचित इनाम एकराम खिल्लतें बख़शीशें दी गईं। सेना ने सलामी उतारी। तोपों ने एक सौ एक बाढ़ें दागीं। बिधि पूर्वक तिलक न्योछावर आदि कृत्य पूरे हुए।

शाम को महफिल हुई। राजे महाराजे सब सोने चांदी की कुरसी पर विराजमान हुए। तवायफों का डेरा महफिल में पहुँचा सब से पहिले बी० नबीजान ने यह मुबारकबादी गाईः—

मेरे महराज का सेहरा, मुबारक हो मुबारक हो।
ये कलँगी ताज़ का सेहरा, मुबारक हो मुबारक हो॥
ये गद्दी फूलती फलती, रहे आबाद महसर तक।
ये नूरेनाज़ का सेहरा, मुबारक हो मुबारक हो॥
रियासत यह रहे कायम, तरक्की हो हर एक मद में।
यह तीरंदाज का सेहरा, मुबारक हो मुबारक हो॥
रियाया खुश रहें अमला, रहें आराम से अय लाल।
न मुरझे आज का सेहरा मुबारक हो मुबारक हो॥

सबसे आखीर में सुशीला बाई का यह गान हुआः—

प्यारी प्रजा के प्यारे, जुग २ जिओ अमर हो।
हे हिन्द के सितारे, जुग जुग जिओ अमर हो॥
गद्दी अचल अटल हो, सिर छत्र भी प्रबल हो।
शुभ न्याय नीति धारे, जुग २ जिओ अमर हो॥
निज धर्म कर्म रत हो, जो हो कठोर ब्रत हो।
भारत-भवन उजारे, जुग २ जिओ अमर हो॥
शिष्टों का कष्ट टारो, दुष्टों को दलि पछारो।
श्री लाल मुकुटवारे, जुग जुग जिओ अमर हो॥

गवैयों को वस्त्र आभूषण देकर बिदा किया। मेहमानों की दावत की। कई दिन खूब जसन मनाया गया। अंत में राजे महाराजे सब बिदा हुए। मित्रों को भी अच्छे २ उपहार दिये गए। शंकर, सीताराम, भोजदत्त, रामनाथ, यूसुफ और करीम को बढ़ियाँ २ पोशाकें कंठे, कड़े, सिकड़ी और दुशाले दिये। सारांश यह कि कर्मसिंह ने जी खोल इनाम बखशीस आदि बाँटे। सारे राज कर्मचारी एक स्वर से पुकारने लगेः-"महाराज कर्मसिंह बहादुर की जय हो" अब कुँअर कर्मसिंह 'कुँअर' नहीं रहे अब वे राजा कहाने लगे। राज काज की देख भाल कुँअर धर्मसिंह ही करते रहे राजा कर्मसिंह ने अपना सारा भार उन्हीं को सौंप दिया।

राजा होते ही राजा कर्मसिंह के विवाह के लिये नित्य दो चार पत्र दो चार नाऊ नेगी, दो चार ब्राह्मण आने जाने लगे किन्तु वे विवाह से इनकार ही करते रहे। भाई धर्मसिंह ने भी समझाया परन्तु वे नहीं माने।

शंकर सीताराम भोजदत्तादि ने जब बहुत दबाव डाला तो वे बोले कि मैं यदि विवाह करूँगा तो शशि से करूँगा नहीं तो करूँगा ही नहीं।

शंकर ने कहा—हाँ शशि से भी विवाह कर लेना; इस समय तो किसी कन्या का पाणिग्रहण कर लो। राजा के यहाँ तो सैकड़ों रानियाँ महलों में रहती हैं। उन्हें विवाह मना तो नहीं है।

शशि में अभी बहुत देर है तब तक गद्दी अधूरी रखना उचित नहीं। रुद्रगढ़ के राजा की बेटी परम सुन्दरी है उससे आप विवाह कर लें।

राजा कर्मसिंह ने कहा—गद्दी भले ही अधूरी पड़ी रहे मैं विवाह न करूँगा। किसी प्रकार शशिप्रभा को विवाहो, इसके

पीछे बड़ी मुसीबतें उठानी पड़ीं बड़ी फजीहत हुई; धर्म, धन, माता पिता, सभी खो बैठे। अब भी यदि वह न मिले तो यह राज्य यह सिंहासन किस काम का ? ऐसा तोड़ जोड़ लगाओ कि वह मुझसे विवाह करने के लिये राजी होजाय। राजा महताबसिंह को और कुँअर प्रेमसिंह को ऐसी पट्टी पढ़ाओ कि वे मुझी से विवाह करें। राजा महताबसिंह को सब प्रकार की लालच दो जिसमें वे अपनी बेटी हमें विवाह देवें। और यदि सीधी तरह समझाने, बुझाने, फुसलाने, मनाने पर भी, राजी न हों तो जोर जबर्दस्ती से वह हर कर ली जाय। लेना जरूर चाहिये चाहे जो हो।

पाठक! राजा कर्मसिंह राज्य पाने पर भी अपनी लड़कपन की धुन न भूले। शशि अब भी उनकी आँखों में बसी है। और वे उसके पाने के लिये पहिले से भी अधिक लालायित हैं। सूरदास जी कह गये हैं—

जाकी जैसी टेंव परोरी।
सो तो टरै जीव के पाछे जो २ धरन धरोरी।
जैसे चोर तजै नहिं चोरी कोटिक जतन करोरी॥

शेर की बान है फाड़ खाना वह चाहे कितना ही हिलाया मिलाया पोसा क्यों न जाय फिर भी वह अपनी जंगली बान से बाज नहीं आ सकता।

राजा कर्मसिंह के कथनानुसार शंकर और सीताराम भेष बदल कर अजयगढ़ दरबार में गए और राजा महताबसिंह से एकान्त में बात किए। दोनों धूर्त ब्राह्मण बन कर गए थे। अस्तु राजा ने दोनों का यथोचित सत्कार किया। शंकर ने राजा महताबसिंह से कहा—राजन्! कन्या देने में इन बातों का ध्यान अवश्य रखना उचित है:—

कुल मर्यादा योग्यता, सुन्दरता गुण मान।

सुखी निरोगी बुध धनी, कीजै सुता प्रदान ॥

इतने गुण विचार कर कन्या का दान देना शास्त्र की आज्ञा है। जितने गुण हमने कहें हैं वे सब राजा कर्मसिंह में विद्यमान हैं। कुल के सूर्यवंशी हैं, मर्यादा के ऊँचे हैं। योग्यता भी किसी से कम नहीं है। सुन्दरता में अद्वितीय हैं हीं। इतने विशाल राज के अधिपति होकर भी सुखी न समझे जायँ तो आश्चर्य ही है। शरीर की गठन से निरोगता स्पष्ट है। धन में क्या पूछना है। करोड़ों रुपया खजाने में गँजा है। तहखानों में भरा है। विरुद्ध इसके चुनार वालों को देखिये। वे बिनाफरवंश के ओछी जाति के क्षत्री हैं, राज्य छोटा होने से मर्यादा भी सामान्य ही हैं, योग्यता कैसी है सो आप जानते ही हैं। सुन्दरता लेकर क्या करें जब उनमें कोई श्रेष्ठ गुण विद्यमान नहीं। सम्पत्ति से मनुष्य सुखी होता है। जब संपत्ति ही थोड़ी है तो सुख भी स्वल्प ही जानना।

ऐसी दशा में आपको सुविचार के साथ मत स्थिर करना उचित है। कन्या और गौ इन्हें सुपात्र को देना चाहिये। क्यों कि ये मूक प्राणी हैं। जहाँ भेजेंगे चली जायँगी। जिस खूँटे में बाँधेंगे बँधी पड़ी रहेंगी। अस्तु, आप कन्या को अपने कुल मर्यादा के अनुरूप राजा कर्म को ही दीजिये।

राजा महताबसिंह ने कहा—ब्राह्मणो! आप का विचार श्रेष्ठ सम्मति शुभ उपदेश बहुत ही उत्तम और आदरणीय है। लेकिन मैं क्या करूँ अब तो मैंने तन मन बचन से उन्हीं को वरण कर लिया। अपना संकल्प अब मैं कैसे त्यागूँ। अतएव आप हमें क्षमा करें।

शंकर ने जब देखा कि राजा महताबसिंह अपने बचन से हिलने वाले नहीं तो वह आशिर्वाद देकर वहाँ से विदा हो कुँअर प्रेमसिंह के पास आया और उन्हें भी बहुत कुछ पट्टी

पढ़ाया। कुँअर प्रेमसिंह उन्हें विश्वस दिलाया और कहा कि मैं यथाशक्ति कोशिश करूँगा।

धूर्तों के बिदा हो जाने पर कुँअर प्रेमसिंह पिता के पास आए और उनसे कहा—पिताजी ! शशि का विवाह राजा कंतित से ही करना उचित है। चुनार वालों से सम्बन्ध करने में बड़ी नाम हँसाई होगी।

राजा०—(हँसकर) नाम हँसाई किस लिये होगी ?

कुँ० प्रेम०—क्योंकि वे जाति में हेठे हैं।

राजा०—(हँसकर) क्या वे क्षत्रिय नहीं हैं ?

कुँ० प्रेम०—क्षत्रिय होने से क्या होता है। श्रेष्ठ तो नहीं हैं ?

राजा०—और श्रेष्ठ ही होने से क्या होता है जबकि उसका सदाचार अच्छा नहीं ? गंगा जल में विष मिल जाने पर भी वह पाने के योग्य होगा ?

कुँ० प्रेम०—सोना मल में भी पड़ा रहने पर सोना ही रहता है।

राजा०—फिर भी वह बिना जल से शुद्ध किये शुद्ध नहीं होता। बेटा ! जाति की उत्तमता और अधमता आचरण पर निर्भर है। अच्छे आचरणों से स्वजाति में वह उच्च कोटि का माना जाता है और बुरे आचरणों से निम्न (नीच) कोटि में गिना जाता है। उत्तम मध्यम ये विशेषण आचरणों से प्राप्त होते हैं जाति से नहीं। अमुक क्षत्रिय जाति में ऊँचा है अर्थात् उसके कुलका और उसका भी सदाचार उच्च कोटि का रहा या है। इसी प्रकार अमुक क्षत्रिय जाति में हेठा नीचा है अर्थात् उसका सदाचार नीच कोटि का है यही ऊँची नीची जाति की परिभाषा है। जाति तो एक ही होती है। क्षत्रिय कहने से सब क्षत्रियों का बोध होता है। सभी ऋषियों के सन्तान हैं। सभी के पूर्वज एक हैं। अतएव इनमें संज्ञा भेद है

वर्ण भेद नहीं। वर्णों में जैसे हम क्षत्रिय वैसे चूनार वाले भी। हमारा गर्ग गोत्र है तो उनका भरद्वाज। सब गर्ग, भरद्वाज, विश्वामित्र, पारासर, कश्यप आदि ऋषियों के ही सन्तान हैं दूसरों के नहीं। तब नीच ऊँच का प्रपञ्च कैसा ?

कुँ० प्रेम—यह ठीक है किन्तु परंपरा से चली आई है तो बात उसे त्यागना भी तो अनुचित है। जिनका उच्च कुल है वे उच्च और जिनका नीच कुल है वे नीच हैं। अस्तु हम चुनारवालों से सम्बन्ध न करेंगे।

राजा०—प्रेम ! तुम क्या लड़कपन की बातें करते हो तुम्हें मालुम नहीं की हम चुनार वालों के कितने ऋणी (कर्जदार) हैं। हमारी मुसीबत में वे लोग किस तरह से काम आए हैं। शशि के कारण चुनार के कुँअर और उनके सहयोगियों ने क्या २ मुसीबतें नहीं झेलीं। उन्हीं की पुर्षार्थ (मर्दानगी) से शशि फिर मेरे अँधेरे घर में अपना प्रकाश फैलाई है ?

कुँ० प्रेम०—जो कुछ हो:—

नीच के उपकार पर हम खो न देंगे उच्चता।
आप के कहने से हम स्वीकार करलें तुच्छता ?
आप तो बूढ़े हुए मति भ्रष्ट कर डाली जरा।
रह समझ इतनी गई नहिं क्या भला और क्या बुरा॥
हम कहाँ और वे कहाँ है भेद भू आकाश का।
क्यों वृथा को बो रहे हैं बीज सत्यानाश का॥
हम से अच्छे हम से चोखे उच्च राजा कर्म हैं।
परमसाधु उदार उनके भी सहोदर धर्म हैं॥
राज्य उनका है समुन्नत देश में सरनाम हैं।
त्यागता उनको वही जिनके विधाता बाम हैं॥
यद्यपि मैं छोटा हूँ तद्यपि मान मेरी लीजिये।
त्याग कर अविवेक अब सम्बन्ध उनसे कीजिये॥

राजा०—यह तो अब इस जीवन में होने का नहीं:—

कह दिया सो कह दिया पुरुषों की एकी बात है।
बचन-ब्रत रवि-वंशका त्रैलोक्य में प्रख्यात है॥
रवि टले शशि टले नक्षत्र हों नहिं रात में।
हम न टलने के फरक आने न देंगे बात में॥

यह सुन कुँअर प्रेमसिंह उठकर चल दिये।

उधर शंकर ने सारा समाचार राजा कर्म को सुनाया और कहा—बूढ़ा तो नहीं पर कुँअर मेरी बातों में आ गए और उन्होंने वादा भी किया कि हम यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे।

सीताराम ने कहा—इससे कुछ होना जाना नहीं। पिता के आगे पुत्र क्या चीज़ है। उसे अधिकार ही क्या है। बूढ़ा अपने संकल्प से हिलता नज़र नहीं आता।

राजा कर्म०—तो फिर क्या किया जाय? सिवा हरण करने के और तो उपाय नहीं।

सीताराम०—हरण करने में युद्ध होगा। बिना युद्ध के हरण हो ही नहीं सकता।

शंकर०—युद्ध तो चाहे चढ़कर हरो, चाहे धूर्तता से हरो हर हालत में होगा।

रा० कर्म०—तो क्या चिन्ता है, हो, अब तो तलवार ही पर फैसला भी है।

भोज०—आज टीका चुनार को भेजा गया है।

राजा कर्म०—तुम्हें कैसे मालुम?

भोज०—मैंने उसे जाते देखा है? नाऊ और ब्राह्मण लिए जाते थे। मैंने पूछा क्या लिये जाते हो तो वे बोले आजमगढ़ का टीका चुनार को लिये जा रहे हैं।

रा० कर्म०—तो तुमने उसे लूट क्यों नहीं लिया?

भोज०—(हंसकर) टीका लूट कर क्या करते? लूट स्त्री की

होती है कि टीका तिलक की ? हम उसे लूट लेते तो वे और दूसरा भेज देते तीसरा भेज देते।

रा० कर्म--तो अब क्या सोच विचार कर रहे हो। तैयार करो। कठोरसिंह सेनापति से कहो वह तैयार हों। युद्ध मंत्री अघोरसिंह से कहो कि वे चतुरंगिनी सेना की तैयारी करायें। आपलोग भी तैयार हो जाइए। गद्दी पर बैठने की पहली विजय यही है।

इतने ही में चोबदार ने आकर प्रार्थना की--सरकार! अजयगढ़ से एक हरकारा आया है चीठी लाया है।

राजा कर्मसिंह ने कहा--उसे सामने ले आओ।

हरकारा आया उसने बड़े अदब के साथ चीठी दी। राजा कर्मसिंह ने चीठी खोलकर पढ़ा। उसमें यह लिखा था प्रियबंधु!

पिता ने मेरी बात न मानी और टीका चुनार को भेजदिया आषाढ़ सुदी पञ्चमी विवाह की तिथि नियत हुई है आप सेना सहित तीज को यहाँ आ जावें। हमसे जो हो सकेगा आपकी अभ्यर्थना करेंगे।

आपका—

प्रेम।

चीठी पढ़कर कुँअर ने सबको सुनाया और कहा—अब सोचो समझो नहीं तैयार होओ। सेनापति और सेनामंत्री को बुला कर कहो कि सारी चतुरंगिनी सेना एकम को परेड पर तैयार रहे। भाई धर्मसिंह से कहा—तुम किले की रखवाली पर रहना सम्भव है किले को खुला देख कर उसी पर पहिले धावा करें।

कुँअर धर्मसिंह ने हाथ जोड़कर विनय की कि—भाई साहेब! युद्ध में न पड़िये। युद्ध विनाश का घर है। इससे

आज तक कोई पनपा नहीं। जाने दीजिये शशि को आप रुद्र-पुर की बेटी से विवाह कर लीजिये।

रा० कर्म०—तू बड़ा कायर मालूम होता है! क्षत्रिय भी बनियों की तरह विवाह करते देखे गये हैं? देखा नहीं तो सुना तो है न कि क्षत्रियों का विवाह तलवार ही से होता है। क्षत्रियों का वह कौनसा विवाह है जिसमें दश पाँच हजार वीरों की बलि नहीं चढ़ी है। इस जाति का पराक्रम तो विवाह में ही देखा जाता है।

विचारे धर्मसिंह चुप हो रहे। कर्म ने उन्हें गुप्त बातें बताईं और सजग कर स्वयं अपने मित्र मंडली में पहुँचे। मित्रों में भी कुछ गुप्त सलाहें हुईं यह आगे चलकर खुलेंगी। तब मार-काट दाँव पेंच इन्हीं के सम्बन्ध में कुछ बातें हुई होंगी।

तीज की बात सुन सीताराम ने कहा—पंचमी को विवाह है। तीज को चलना चाहते हैं मेरी राय नहीं है कि हम वहाँ दो दिन पहिले से चल कर डेरा डालें?

राजा० कर्म०—क्यों क्या डर है?

सीता०—डर जो है सो तो हई है मूर्खता नड़ी भारी है।

रा० कर्म०—यह कैसे?

सीता०—हम तो चुनाई चतुरंगिनी सेना लेकर उधर चलें और शत्रु जो अपनी बरात लेकर हमारे दरबाजे ही होकर अजयगढ़ जायेगा—हमारे क़िले पर आक्रमण कर बैठे तो फिर हम क्या करेंगे। क़िले में छोड़ी हुई निकम्मी सेना की टुकड़ी—

रा० कर्म०—तो क्या वे इसी सड़क से जायँगे?

सीता०—और नहीं तो किधर से जायँगे?

शंकर०—दो ही तो अजयगढ़ के रास्ते हैं। पहाड़ के नीचे पक्की सड़क से अथवा पहाड़ पर पगदंडी से तब बारात तो पक्की सड़क से ही जा सकती है। पहाड़ पर पग दंड़ी से जाने

में बड़ी कठनिाई का सामना करना पड़ेगा। क्योंकि हाथी रथ इत्यादि पहाड़ पर नहीं जा सकते। ये पक्की सड़क से ही जा सकेंगे।

रा० कर्म०—हाँ जो सड़क से बारात निकली तो वह हमारे क़िले के सामने होकर जायगी। यह हमें क्योंकर बरदास्त होगी। हम उनसे यहीं मोरचा लेंगे जाने हीं क्यों देंगे। क़िले की तोपों की मार से बारात की बखिया बखेर डालेंगे।

शंकर०—मेरी राय में भी आगे न चला जाय यदि चला ही जाय तो यह प्रबंध किया जाय कि आधी सेना क़िले में आधी साथ रखी जाय जब बारात निकल जावे तो क़िले की सेना बारात के पीछे २ अजयगढ़ पहुँच कर अपनी सेना में मिल जावे। इस प्रबंध से दोनों स्थानों की रक्षा हो सकती है।

कर्म०—नहीं २ सारी सेना क़िले में तैयार रहे। और वह बारात सामने आते ही भूखे बाघ की तरह उस पर टूट पड़े। हमारे क़िले के सामने आने का उन्हें क्या अधिकार है?

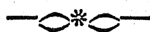
राजा कर्म की ही बात रही। सेना क़िले में तैयार रखने का हुक्म हुआ। कुँअर प्रेम को चीट्ठी भेज दी गई कि हम तीज को नहीं पंचमी को आवेंगे। क़िले की बड़ी मजबूत मोर्चेबन्दी की गई। दीवारों और बुर्जों पर बड़ी २ तोपें चढ़ा दी गईं। क़िले की खाई गंगा का मोहाना खोल कर भर दी गई।

सेना और सेनापति बारात की प्रतीक्षा (इन्तिजार) करने बैठे। धूर्त-मंडली भी अपनी धूर्तता की झोली कंधे से लटकाए इधर उधर जासूसी करने लगी, अजयगढ़ और चुनार में जासूसों की भरमार हो गई; पल २ की खबरें कंतित पहुँचने लगीं।

शंकर को बुला कर राजा कर्मसिंह ने एक और षड़यन्त्र रचा। उन्होंने रुद्रपुर, विष्णुपुर कुवेरगढ़, इन्द्रनगर और ब्रह्म-गढ़ के कुमारों को चीठी लिखी। जिसका आशय यह था कि

"शशि एक अनूठी स्त्री रत्न है वह पञ्चमी को बनाफरों के हाथ पड़ने वाली है। हम लोगों के रहते ऐसी देवाङ्गना को बनाफर ले जायँ यह बड़ी लज्जाकी बात है। आओ हम सब मिल कर ऐसा प्रयत्न करें कि वह उनके हाथ पड़ने न पावे। हम लोगों में से जिसके हाथ वह पड़ जाय वही ले लेवे। आपस में झगड़ा न होने पाये। अतएव आप लोग सेना सहित चौथ को अजयगढ़ पहुँच जाँय हम भी जल्द वहाँ आ मिलेंगे।

कहना नहीं होगा कि राजा कर्म का चक्र उन कुमारों पर चल गया। वे अपनी २ सेना साज दल बल सहित अजयगढ़ की तैयारी किये।



ग्यारहवाँ परिच्छेद।



ऊपर कहा पिता पुत्र सम्वाद किसी ने रनिवास में पहुँचा दिया अब क्या था वहाँ भी तू तू मैं मैं होने लग गई रानी ने कहा–उस कर्म चांडाल को, जिसने मेरी शशि को कठोर कष्ट पहुँचाया–मैं अपनी लाड़िली को कभी न दूँगी। जिसने मेरी बच्ची को उबारा मैं उसी को दूँगी। उस प्रेम को न जाने क्या हो गया। कहीं वह बौरा तो नहीं गया? जान पड़ता है उस पर उसने कुछ जादू चला दिया है तभी तो वह पापी हत्यारे का पक्ष कर रहा है?

शशि यह सब सुनती रही। किसी से कुछ नहीं बोली। कुछ देर बाद वह उठी और अपने कमरे में जाकर एक चीठी लिखी जिसका मजमून यह है:—

प्राण प्यारे!

यह तो आप को मालूम ही है कि मैंने क्या प्रतिज्ञा की है। अर्थात् बरूँगी तो आपको बरूँगी अन्यथा कुमारी ही रहूँगी। यह प्रतिज्ञा बहुत सोच विचार कर की है और इसे काल ही तोड़ना चाहे तो तोड़ सकता है मनुष्य नहीं। फिर भी मनुष्य अपनी शक्ति की परीक्षा करने से नहीं चूकता। चाहे वह सफल हो वा नहीं। करता अवश्य है। ऐसा ही एक मूर्ख अपनी शक्ति की परीक्षा करने पर तुला है। एक ओर सत्यबल एक ओर पशुबल खड़े ताल ठोंक रहे हैं। शीघ्र ही दोनों का मुकाबिला होने वाला है।

कंतित का कुँअर—अब राजा—कर्मसिंह कुत्ते की तरह बहुत दिनों से ताक लगाए बैठा है और अब वह प्रेम भाई की सहायता पाकर सेना के साथ अजयगढ़ आने ही चाहता है। दुष्टों का काम ही उत्पात मचाना है। अवश्य ही वे कुछ न कुछ उत्पात मचावेंगे। अस्तु आप तुरन्त आइए और पहिले ही से ऐसा प्रबन्ध कीजिये जिसमें उस पापी का मुख मुझे देखने को न मिले। यदि आपने देर की और उस बावले ने मेरी ओर हाथ बढ़ाया तो मैं आपसे सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि फिर आप मुझे जीवित न पावेंगे। मैं उसी क्षण आत्म-हत्या कर लूँगी। बस विशेष क्या लिखूँ इतने ही में सब समझ लीजिये।

आपकी दासी
शशि।

इस चीठी को लिफाफे में बन्द कर सौदामिनी को दी। सौदामिनी ने कहा—इस समय मेरा जाना अच्छा न होगा। कोई ऐसा मनुष्य भेजा जाय जिसे कंतित वाले पहिचानते न हों। मैं इस पत्र को उन तक पहुँचा देऊँगी। यह कह वह उठी और एक देहाती के हाथ वह चीठी चुनार को भेजी।

वह देहाती उस चिट्ठी को लेकर चुनार गया और झरने पर पहुँच कर उसे कुँअर को दिया।

कुँअर शमशेर बहादुरसिंह ने उस चिट्ठी को आश्चर्य के साथ पढ़ा और उसे चुपचाप जेब में रख कर देहाती को बिदा किया चीठी का मर्म किसी ने न जाना।

इतने ही में ध्यानसिंह, वीरसिंह, धीरसिंह, रणधीरसिंह, क्रूरसिंह, सुमेरसिंह, पहाड़सिंह और प्रेतनाथ आठो जन आठ संदूक लिये झरने पर पहुँचे और कुँअर को सलाम कर आठो सन्दूक उनके सामने धर दिये।

कुँअर०—ये क्या है इनके भीतर क्या है?

ध्यान०—(आठो सन्दूक खोलकर) देखिये क्या है!

कुँअर०—(आश्चर्य से) ये रकम कहाँ से हाथ लगीं।

ध्यान०—प्रेतनाथ के पुरुषार्थ से।

कुँ०—सच्च?

ध्यान०—और सच नहीं तो क्या झूठ?

कुँअर०—वह कैसे?

ध्यानसिंह ने उस रात वाली जिस रात गंगापूर की बारी में शंकर आदि ठहरे थे और गाड़ी पर का लदा हुआ माल रात में गायब होगया—कहानी कह सुनाई और कहा यह काम मेरी इच्छा से नहीं बल्कि प्रेत की इच्छा से हुआ है। सच्च पूछो तो जिस विधि से यह माल लिया गया वह सरीहन डकैती है।

कुँ० शम०—डँकैती तो है ही। उन विचारों के तो शरीर का रक्त सूख गया होगा।

प्रेत०—वे भी तो डाँका डाल कर कहीं से ला रहे थे। यह क्या उनके बाप की कमाई थी जो नाड़ी का रक्त सूख जायगा?

ध्यान०—हाँ, सुना है कि वे भी किसी आसामिन स्त्री व
माल लूट लाए हैं। उस बिचारी को तबाह कर आए हैं।

कुँ० शम०—अबला का माल है तो इसे अलग ही रखें
यह फलदायक न होगा। स्त्री धन बड़ा दुखदाई होता है
सम्भव है कि वह ढूंढ़ती हुई आवे ?

ध्यान०—आने दीजिये, उसका माल उसके हवाले कर देंगे

कुँअर शम०—हाँ यही उचित है। इसमें वह तो कृत
होहीगी, भगवान भी प्रसन्न होंगे। तब यह डँकैती नहीं वर
स्त्री उपकार हो जायगा।

प्रेत०—हाँ हाँ यही होगा। हमें धनवन की जरूरत नहीं
न हमारे लड़के बाले हैं। अकेला माल ढकेला ! मैंने त
मजाक किया।

ध्यान०—आपको कुछ खबर भी है ?

प्रेत०—किस बात की ?

ध्यान०—अपने लड़के बालों की ?

प्रेत०—मेरे न लड़का न मेरे है बाला। मैं दुनियाँ में एक
पुरुष हूँ निराला।

ध्यान०—(हँसकर) और वह सौदामिनी किसके घ
जायगी ?

प्रेत०—(क्रोध कर) देखो यार, ऐसा मजाक मुझसे न
करो। हाँ, अपनी ऐसी की तैसी में गई सौदामिनी······

कुँ० शम०—(हँसकर) अजी उस बेचारी को क्यों गाल
दे रहे हैं अच्छा आने दीजिये उसे देखो मैं कहता हूँ न !

इसके उपरान्त कुँअर शमशेर बहादुरसिंह ने शशि क
चीठी का कुछ अंश ध्यानसिंह को सुनाकर कहा, महाराज से
मिलकर आप उनसे सब कच्चा चिट्ठा कहें और सारी सेन
को तैयार होने का हुक्म दें। सेनापति विकरालसिंह बड़

मुस्तैदी से चुनी हुई सेना सजावें। चलो मैं भी दरबार में आता हूँ।

प्रेतनाथ आदि से कहा—इन संदूकों को खजाने में बन्द करा दो। यदि इनका मालिक आवे तो उसे सौंप दिया जायगा। नहीं तो दान कर देना। और चटपट अपना कूंडी सोंटा उठाकर जासूसों के साथ कंतित और अजयगढ़ के बीच ऐसी जासूसी करें कि बैरी कोई चाल न चलने पावे। और उसका रत्ती २ समाचार हमें पहुँचाते रहें। जब देखें कि कुछ गड़बड़ी नज़र आ रही है तो फौरन हमसे मिलें और हमारे साथ जो मौका देखें वह करें।

धीर, रणधीर, वीर और क्रूरसिंह तुम चारो जन सब सामानों और हथियारों से लैस घोड़े पर सवार हो मेरे साथ चलना। पहाड़ और सुमेरसिंह महाराज के साथ रहें और उनकी निगरानी करें। यह कहते हुए वे दरबार को चले गए।

बारहवाँ परिच्छेद।

राजा विजय बहादुरसिंह के दरबार में पहुँच कर ध्यान-सिंह ने राजा से सब कच्चा चिट्ठा कहा और बोले—कल्ह चौथ है कल्ही यहाँ से कूंच करना चाहिये। कुछ बारात पहाड़ के रास्ते और कुछ गैपुरा के पास गंगा का घाट उतर कर चले और दोनों अजयगढ़ से एक कोस की दूरी पर मिल जावें। फिर वहीं से सजबज कर अजयगढ़ के भीतर प्रवेश करें!

महाराजा विजयबहादुर के पूछने पर कहा कि सड़क के रास्ते चलने में कंतित का क़िला सड़क पर पड़ेगा। हमें क़िले के सामने होकर जाना पड़ेगा। कंतित वाले क़िले की मोर्चा-बन्दी किये हमारी इंतिज़ारी में बैठे हैं, यह हमें ज़ासूसों से

मालूम हो चुका है। पक्की सड़क से चलने में कंतित में लोहा लेना पड़ेगा। अस्तु हमें राह बदल देना ही इस समय उचित मालूम होता है।

महाराज विजय बहादुरसिंह ने कहा—लड़के की राय अच्छी मालूम होती है। क्यों जी मंत्री जी! आपकी क्या राय है?

मंत्री०—रास्ते ही में मुठभेड़ होने पर लड़ाई गहरी हो जायगी इससे शक्ति कुछ क्षीण अवश्य हो जायगी और आगे चल कर यदि रण हुआ तो हम बहुत ही निर्बल पड़ जायँगे। लड़का ध्यानसिंह ठीक कहता है कि सेना दो रास्ते से रवाना हो। एक टुकड़ी पहाड़ के रास्ते एक गंगा पार होकर और दोनों अजयगढ़ से दो माइल इधर ही मिलकर अजयगढ़ में दाखिल हों। लौटती समय जैसा मौका देखेंगे वैसा करेंगे।

ठीक है कह कर महाराज ने सेना और बारात को तैयार होने का हुक्म दिया। बाजे गाजे सहित बारात पहाड़ की राह एक जबर्दस्त सेना की टुकड़ी से घिरी हुई चली। हाथी घोड़े रथ तोपखाने रसद सामान आदि एक सैना की टुकड़ी महाराज की संरक्षता में गंगापार की सड़क से रवाना हुई।

उधर कंतित के जासूसों ने कंतित में खबर दी और कहा उनकी सेना गंगा पार होकर जा रही है और बारात पहाड़ की राह से रवाना हुई है।

राजा कर्मसिंह ने हुक्म दिया कि इधर गैपुरा का घाट और उधर अमवा खोह पर का रास्ता रोका जाय। तब तक हम अजयगढ़ पहुँच कर शशि को हेरे लेते हैं।

दोनों रास्तों के रोकने को एक जबरदस्त दस्ता लेकर सेनापति कठोरसिंह रवाना हुआ। कठोरसिंह गैपुरा का घाट रोकने को गया और वज्रसिंह अमवा खोह पर पहुँचा।

अमवाखोह के पास बारात पहुँचते ही गोलियों की बाढ़

दगी। कुँअर शमशेर बहादुरसिंह ने अपने सिपाहियों को ललकारा। दोनों ओर से तीर तेगा तलवार बन्दूकों की मार हुई। चार घंटे जमकर लड़ाई हुई। दोनों तरफ के अनेकों योधा खेत रहे। वज्रसिंह मारा गया। उसकी सेना कुछ कट गई कुछ भाग गई। चुनार की भी सेना छीजी।

विजय का नरसिंहा बजाती हुई बारात अजयगढ़ की ओर बढ़ी। और अजयगढ़ से कोस भर इधर ही एक बारी में डेरा डाल दूसरी टुकड़ी की इन्तिजारी करने लगी।

गैपुरा के घाट पर पहुँच कर महाराजा विजय बहादुरसिंह ने देखा कि उस पार एक जबर्दस्त सेना मोर्चा बांधे खड़ी है। फौरन विकरालसिंह को हुक्म दिया कि तोपों का मुख उनकी ओर करके पलीता दो।

हुक्म की देर थी तोपों का मुख उस पार की सेना की ओर कर उनमें पलीता लगाया गया। तोपें दनादन गोले फेंकने लगीं। उधर से भी तोपों का जवाब तोपों से देना शुरू हुआ। दोनों ओर की तोपों की चिग्घाड़ से सिपाहियों के कान के पर्दे फट गए। वे सेनापति की आज्ञा भी सुन नहीं सकते थे।

आठ बजे से दो बजे तक—छ घन्टे—तोपों की मार हुई। दोनों तरफ भारी नुकसान हुआ। यह देख महाराजा विजय बहादुरसिंह ने विकरालसिंह को हुक्म दिया कि यहाँ से कोश दो कोश आगे बढ़कर अपनी टुकड़ी को हाथियों के सहारे गंगा पार उतार कर इनके पीछे से हमला करो। इधर हम इन्हें आगे से तोपों की मार मारते हैं तुम पीठ पर पहुँच कर गोलियों की बौछार से इनके पाँव उखाड़ दो।

विकरालसिंह ने वैसा ही किया—अपनी सेना को वह बेखटक्र उस पार उतार ले गया। इसकी खबर मूर्ख कठोरसिंह को न हुई। दोहरी मार पड़ने पर उसके होश उड़ गए। दो

ओर की दोहरी मार बरदाश्त करना हँसी ठट्ठा नहीं। फिर भी उसने अपनी सेनाको दो भागों में विभाजित कर एक को विकरालसिंह की सेना के मोकाबले में लगाया दूसरी को महाराज विजय बहादुर की ओर खड़ा किया और दो घंटे ऐसी घमासान लड़ाई लड़ी कि चुनार की सेना के छक्के छूट गए।

घमासान लड़ाई करके सेनापति शाबासी तो पजाता है परन्तु विजय नहीं। कारण कि योधाओं का अनुमान से अधिक नाश हो जाने के कारण शक्तिक्षीण हो जाती है जिससे अंत में पराजय ही होती है।

वही हुआ, अदम्य उत्साह से दो घंटे जी तोड़कर लड़ने पर भी कठोरसिंह के पाँव उखड़ गये और वह चौबीस तोप और बहुत सा गोली गोला छोड़कर भाग खड़ा हुआ। विकरालसिंह ने कुछ दूर तक उसका पीछा किया अंत में वह लौट आया। मुर्दों को गंगा प्रवाह कर घायलों को चुनार भेज हाथी, घोड़े, रथ, तोप आदि नावों बेड़ों द्वारा पार उतारे गये। इस प्रकार वह शेष सेना लेकर महाराजा विजय बहादुरसिंह अजयगढ़ की ओर बढ़े।

रास्ते में महाराजा विजय बहादुरसिंह ने कंतित के सेनापति कठोरसिंह की बड़ी तारीफ की और कहा—कि यथा नाम तथा गुण वह कठोर बेशक रण-कठोर है। अपने सेनापति विकरालसिंह की भी तारीफ की ओर कहा कि यदि पीछे से मार न पड़ी होती तो कठोरसिंह हम लोगों को कई दिन तक उस पार ही अटका रखता। विकरालसिंह की चतुरता ही से उसके पैर उखड़ गए।

दिया बलते २ यह सेना कुँअर की सेना में जा मिली। दोनों तरफ के लोग अपनी २ मुसीबत और अपनी २ बहादुरी कहने सुनने लगे। विकरालसिंह की सेना बहुत थक गई थी। अस्तु

उसने कमर खोल कर वहीं पड़ाव डाला। यह देख कुँअर शमशेर बहादुर ने रात उसी पड़ाव पर रहना निश्चय किया।

प्रातःकाल होते ही बारात बड़ी सजधज और बड़ी आन बान के साथ आगे बढ़ी। अजयगढ़ के निकट पहुँचते ही मंत्री मुसाहिबों के साथ राजा महताबसिंह अगवानी लेने आए और बारात को एक विशाल मैदान में एक बड़े दल बादल खीमें में उतारे।

कुँअर शमशेरबहादुरसिंह ने देखा कि कोसों तक राजाओं के खीमें तम्बू डेरे आदि पड़े हैं। रुद्रपुर, विष्णुपुर, कुबेरगढ़, इन्द्रनगर, ब्रह्मपुरी आदि के युवराज सेना सहित पधारे हैं। कुँअर ने ध्यानसिंह से कहा—इन युवराजों के सेना सहित आने का कारण जानना बहुत जरूरी है। क्योंकि यह स्वयंबर तो है नहीं यह तो "ब्राह्मविवाह" है। फिर इसमें सेना सहित निमंत्रित युवराजों के पधारने का क्या कारण है?

कुछ देर बाद ध्यानसिंह लौट कर आए और उन्होंने कुँअर से कहा—ये सब उत्पाती हैं उत्पात करने ही को आए हैं। ये कर्मसिंह के बहकाने से उनकी मदद करने आए हैं। कंतित वाले भी दलबल सहित पधारे हैं। और उनकी मनसा कुछ विघ्न बाधा उपस्थित करने की है। अतः हमें सचेत हो जाना चाहिये। मैं जाता हूँ इसकी सूचना महाराज को भी देता हूँ और चुनार से अभी मदद मँगाता हूँ। राजा महताब सिंह से भी मिलकर कुछ उचित प्रबन्ध कराता हूँ।

कुँअर से यह कह कर वे महाराज विजय बहादुरसिंह के पास गए और उनसे कहा—सरकार! यहाँ मामला टेढ़ा नज़र आ रहा है। राजा कर्मसिंह सेना सहित आए हैं। साथ में अपने इष्ट मित्र युवराजों को भी लाए हैं। वे युवराज भी अकेले नहीं एक बड़ी जबर्दस्त सेना के साथ आए हैं।

और उनका इरादा कुछ छेड़ छाड़ करने का है। यदि हुक्म हो तो सिपाही भेजकर चुनार से कुछ और सेना और सामान मँगा लेवें।

महाराज०—क्या हमारे न्योते हुए राजे अब तक नहीं आए?

ध्यान०—आए हैं, रामपूर, किशननगर, नरहरगढ़ परस-रामपूर आदि के राजे पधारे हैं और वे अपने २ डेरे में हैं।

महाराज०—उनके साथ सेना नहीं है?

ध्यान०—छोटी २ सेनायें सभी के साथ हैं।

महाराज०—तब क्या चिंता है। सब की सम्मिलित सेना मिला कर एक ज़बर्दस्त सेना तैयार कर लेंगे। हाँ फिर भी सामानों की ज़रूरत पड़ेगी। अच्छा, भेजो किसी को वह जाकर धीरजसिंह से कहे कि वह सब सामान और सेना शीघ्र रवाना कर देवें।

कुछ ही देर में महाराज महताबसिंह महाराज विजयबहादुर से भेंट करने आए। दोनों महाराजाओं में कुछ गुप्त परामर्श हुआ। इसके बाद वे बड़े कातर स्वर में बोले। भाई साहेब! बड़े उत्पाती इकट्ठे हुए हैं। इनके जोड़ने वाले हमारे कपूत प्रेम हैं। उन्हीं ने इन सबों को निमंत्रण देकर बुलाया है। भगवान जाने ये क्या उत्पात करेंगे?

महा० विजय०—आप धीरज रक्खें, ये अभी लड़के हैं। नई जवानी है। नया रंग है। नया जोश है। इनकी वाली भी हो जाने दीजिये। इनका भी जोश ठंढ़ा होना जरूरी है। जितेन्द्र की सन्तान हैं कुछ ऐसे वैसे की नहीं। ये सिरजनहार की भी कही मानने वाले नहीं ऐसे कठोर हठी हैं। रास्ते में इन्हें अच्छा सबक़ मिला है फिर भी ये अभी ढीले नहीं पड़े। अब आज पड़ जायँगे। आप अपने महल की चिंता करें इनको

चिंता छोड़ दें। इन्हें मैं दुरुस्त कर दूँगा। आप जाइये अप
काम देखिये।

महाराज महताबसिंह उठकर अपने क़िले में चले गए
महाराज विजयबहादुरसिंह ने विकरालसिंह सेनापति को आ
दी कि एक टुकड़ी सेना लेकर अजयगढ़ के क़िले को घेर लो
चुनार की सेना समाग्री आते ही उसे भी मैं आप की म
को भेजता हूँ।

विकरालसिंह ने अपनी टुकड़ी लेकर क़िले पर घेरा डा
दिया। चुनार की सेना भी आ पहुँची। साथ ही बूढ़ा खुर
भगवानसिंह सेनापति भी पहुँच गया। भगवानसिंह अप
सेना का संगठन कर अपने खीमे में बैठा हुआ हुक्म की इत्ति
जारी करने लगा।

धूर्त मंडली अपनी धूर्तता के फेर में डेरे २ का चक्कर दे
और रत्ती २ समाचार लेती फिरने लगी।

प्रेतनाथ अपना जासूसी दल लिये न जाने कहाँ पड़े है
परन्तु छन २ पर उनके जासूस कुँअर शमशेर बहादुर के पा
आ जा रहे हैं।

आइए पाठक महोदय! तनक राजा कर्मसिंह के खेमे
आइए। देखिये, यहाँ कैसा जमघट है। खासी कचहरी लगी है
अपनी २ डफली अपना २ राग सभी गा बजा रहे हैं।

राजा कर्मसिंह ने कठोरसिह से पूछा—सेनापति! गैपु
के घाट पर बड़ी बुरी हार हुई यह सुन कर मुझे बड़ी ग्ला
हुई है। इस शिकस्त का क्या कारण है ?

कठोरसिंह ने कहा—सरकार! जहाँ तक शक्ति चली व
तक जी जान सब लड़ा कर लड़ा। यहां तक मैं जान हथे
पर लेकर लड़ा कि शत्रु भी मोह उठा और उसने अपने सेन
पति के मोकाबले में मेरी प्रशंसा की। जब मैं दो तरफ से घि

या और मेरे सेनिक भी बहुत मारे गए तो मैं शेष सैनिकों के साथ शत्रु के घेरे से बेदाग़ निकल भागा।

राजा कर्मसिंह ने कहा—मुझे बज्रसिंह का मारा जाना बड़ा खला है। अच्छा, अब आज खूब सोच समझ कर लड़ाई हो जिसमें कल्ह की हार भूल जावे।

कठोरसिंह ने कहा—आज तो सरकार साथ में ही हैं। देखेंगे कि मैं क्या करता हूँ।

राजा कर्म ने मित्रों से कहा—भाई! अपनी सारी शक्ति लगा कर शत्रु को जीतो यही आखिरी मौक़ा है।

शंकर०—उधर भी बड़ी ज़बर्दस्त मोर्चाबन्दी है। क़िले के चारों ओर सेना पड़ी है। एक टुकड़ी अभी चुनार से ताज़ी मँगाई गई है। तब यह उपाय करो कि जैसे ही वर और कन्या मँड़वे में बैठें वैसे ही बाहर की सेना पर हम टूट पड़ें और उसे युद्ध में उलझा रखें। जिसमें वह फिर किसी दूसरे की ओर रुख़ न करने पावे। इसके बाद एक दस्ता सेना के साथ महल में घुस कर शशि को हर लेवें और उसी दस्ते के साथ उसे लेकर कंतित के क़िले में पहुँच जायें। तब तक हम चुनार की सेना को उलझाते हुए गंगा पार खदेड़ देवेंगे।

सीताराम ने कहा—मैंने एक तेज़—साठ कोस एक सांस दौड़ने वाली—सांड़नी तैयार कर रक्खी है उसी सांड़नी पर शशि को बैठा कर आप भाग निकलना। शंकर की युक्ति अच्छी है।

राजा कर्मने कहा—देखो भाई! होशियार! ऐसा न हो कि मुँह की खानी पड़े। और जो कुछ रही सही आबरू है वह भी जाती रहे। लज्जा तुम्हीं लोगों के हाथ है।

मित्रों ने कहा—आप जरा भी चिंता न करें। भगवान ने चाहा तो अब की बार विजय लक्ष्मी आपही के हाथ है।

इसी समय युवराज मंडली भी खीमे में पधारी और
बोली—कहो गार शशि का कैसे बँटवारा होगा ?

राजा कर्म ने कहा—भाई साहेब ! जिसकी लाठी उ
की भैंस !

मित्र युवराज०—इससे तो आपकी यह मनसा मा
होती है कि जो जबर्दस्त हो वह लेवे । तो क्या आप शिर
लेन देन करायेंगे ?

राजाकर्म०—आपस में क्यों लड़ेंगे भाई ! लड़ेंगे विपक्षि
(मुखालिफों) से छीनेंगे उनसे । जो छीनेगा वह लेगा ।

मि० यु०—ऐसा तो नहीं है कि जब हम उनसे छीन
चलेंगे तब आप हमसे छीनने को खड़े होंगे ?

रा० कर्म०—नहीं २ हमारे दल चाहे जो पावे उस
दूसरा छीना झपटी न करे । बल्कि छुड़ाने वालों पर शेष सा
हमला कर उन्हें रोक रखें और पाने वाला उसे लेकर बेद
निकल जाय ।

मि० यु०—समझ में नहीं आया । तनक साफ समझा
कहें । क्योंकि पहिले का निर्णय अच्छा होता है बाद का नि
झगड़ालू है ।

रा० कर्म—मान लो कि उसे मैंने छीना और मेरे पीछे
पक्ष वाले दौड़े । तो आप लोग उन शत्रुओं को अपनी से
द्वारा उलझा कर मेरा पीछा उनसे छुड़ा देंगे और मैं उसे ले
नियत स्थान पर पहुँच जाऊँगा । अब तो समझ में आ गई

मि० यु०—हाँ यह तो समझ में आ गई । अब वह बत
कि उसकी लूट किस स्थान पर कैसे की जायगी ?

कु० कर्म०—जब चुनार वाले उसे लेकर चलने लगें त
उनपर एक साथ टूट पड़ो और लूट लो ।

मि० यु०—वाह साहेब ! विवाही हुई स्त्री को लूट कर क्या करेंगे। न देवाय न पित्राय ? किसी भी काम की नहीं।

कुँ० कर्म०—तब ?

मि० यु०—तब क्या। उसे लूटना ही है तो विवाह क्या सप्तपदी से भी पहिले लूट लेवें।

कुँ० कर्म०—फिर यह तो निर्णय नहीं है कि सप्तपदी से पहिले वह किस स्थान पर होगी और वहाँ उसकी लूट कर सकगे वा नहीं।

मि० यु०—इसका निर्णय कर डालिये। अब न करेंगे तो करेंगे कब ?

कुँ० कर्म०—अच्छा तो मैं इसकी सलाह अपने धूर्तों से करके आप लोगों को खबर देता हूँ। पहिले यह मालूम कर लूँ कि शशि कोई रसम अदा करने महल के बाहर कढ़ेगी या नहीं ?

युवराजों के चले जाने के बाद राजा कर्म ने शंकर, सीताराम आदि को बुलाकर कहा—भाई ! मँड़वे में घुस कर शशि का हरण ठीक न होगा घिर जाने का भय है। कोई दूसरा स्थान नहीं है जहाँ उसका हरण सुगम हो ?

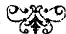
शंकर ने कहा—हाँ इसका उत्तर मैं शीघ्र देता हूँ।

यह कह कर वह चला गया और कुछ देर बाद आकर बोला—जानकी की जबानी यह मालूम हुआ है कि आज शाम को नगर की स्त्रियों के साथ वह ग्रामदेव (डीह) की पूजा करने क़िले से पच्छिम एक फरलांग की दूरी पर जायगी बस वहीं हरण का मौक़ा है। मैं युवराजों को भी सूचित किये आता हूँ तब तक आप अपनी सेना को तैयार करें।

उधर सौदामिनी कुँअर शमशेर बहादुरसिंह के खीमे में पहुँची और उन्हें एकान्त में बुलाकर कहने लगी—कुँअर जी ! बड़ा गोलमाल सुनाई पड़ रहा है बड़े उत्पाती इकट्ठे हुए हैं।

और सुना है कि भारी षड़यन्त्र रच रहे हैं। उनका इरादा जबर्दस्ती हर ले जाने का है और वह इस ताक में बैठे हैं कि जब शशि डीह पूजने क़िले के बाहर निकले तभी उसे हर कर ले भागें। अतएव आप उस समय अपनी सेना को साथ ले वहाँ उपस्थित रहें और देखें कि वास्तव में उन डाँकुओं का यही विचार है जो मैं कह रही हूँ या कुछ और। यदि यही विचार हो तो आप उनके झपटने से पहिले ही शशि को अपनी गर्री घोड़ी पर सवार कराकर पहाड़ी राह से चुनार निकल जावें। और सेना उन उत्पातियों की खबर लेती उस समय तक यहाँ पड़ी रहे जब तक ये तितर बितर न हो जावें। महाराज यहाँ ही हैं वे यहाँ की खबर भली भाँति ले लेंगे। यदि आपको भागते समय बैरियों के पीछा करने का भय हो तो मैं सौ सवार भाले बरदार तैयार रक्खूंगी वे आपके साथ चुनार तक चले जायँगे।

इसके अतिरिक्त आप प्रत्येक नाके पर एक टुकड़ी सेना पहिले से तैयार रखें जिसमें पीछा करने वाले आपके पीछे जा ही न सकें। अजयगढ़ कंतित की सड़क में नहीं इसी पहाड़ी सड़क में दो दो कोश के फासले पर एक २ दस्ता सिपाहियों का भेज दें और उनसे कह दें कि पीछा करने वालों को रोकें। पहिले पहिला दस्ता रोकें उससे वे निकल भागें तो दूसरा उन्हें अटकावे यदि उसके हाथ से भी न रुके तो तीसरा चौथा पाँचवाँ रोकने में समर्थ हों। इस उपाय से आप पीछा करने वालों से कोसों दूर निकल जायँगे फिर वे नीबू नमक चाटते रह जायँगे। जब आप सकुशल चुनार पहुँच जायँगे और ये आए हुए बैरी बादल हवा में उधरा जायंगे तो हम लोग वहाँ आकर विधिवत विवाह करेंगे इस समय यही युक्ति अच्छी है। यहाँ पहिले तो विवाह कृत्य पूरा होते नहीं दीखता यदि



वह हुआ भी तो बड़ी छीछा लेदर होगी। क्योंकि छिछोरों की मंडली है। उन छिछोरों में हमारे कुँ० प्रेम भी शामिल हो गए हैं। अस्तु विवाह कृत्य यहाँ पूर्ण होने में संदेह ही नहीं असम्भव भी मालुम होता है।

कुँ० शम०—शशि का क्या हाल है ?

सौदा०—पूछने योग्य नहीं। जैसे लवा पक्षी बाज़ से भयातुर हो।

कुँ० शम०—क्यों, तुम कुछ उसे ढाँढ़स देती हो ?

सौदा०—ढाँढ़स बाँढ़स काम नहीं देती। यह संकट का समय है इसमें सारा साहस हवा हो जाता है।

कुँ० शम०–किस समय शशि डीह पूजा करने निकलेगी ?

सौदा०—गोधूलि के समय।

कुँअर ने कहा—अच्छा तुम जाओ हम सब इन्तिजाम किये लेते हैं। तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही कार्य होगा।

सौदामिनी को बिदा कर कुँअर शमशेर बहादुर ने तैयारी की; पाँच सौ सवार लेकर वे शाम को डीह पर पहुँचे। ज्योंहीं शशिप्रभा क़िले से निकल कर डीह की ओर चली त्योंही कुँअर अपनी घोड़ी आगे बढ़ाकर शशि को स्त्रियों के झुन्ड में से उठाकर अपने सामने घोड़ी पर बिठा लिये और वहाँ से नौ दो ग्यारह हुए।

"ले गया ले गया, यह गया वह गया, दौड़ो दौड़ो, पकड़ो पकड़ो", करते अपने खीमे से युवराज मंडली अपनी २ सेना लेकर दौड़ी। राजा कर्मसिंह भी अपनी समूची सेना लेकर "धरो पकड़ो" चिल्लाते डीह की ओर भागे।

यह देख महाराजा विजयबहादुरसिंह ने अपनी सेना को हुक्म दिया कि चारो ओर से बैरियों की सेना को घेर कर हमला करो। चुनार की सेना ने राजा कर्म और उनके

मित्रों की सेना को चारो ओर से घेर कर आग बरसाना
आरम्भ किया। तोपों की मार से बैरियों की सेना थर्रा उठी
क्योंकि वे तोपों का जवाब तोपों से देने भी न पाई की पैदल
सेना ने उनपर बंदूकों की झड़ी लगा दी। साथ ही, तीरों की
बौछारों से तीरंदाजों ने उनका शरीर चलनी कर डाला
सिवा भागने के और कोई चारा नज़र न आया। हाथी, घोड़े
रथों, पैदलों की लाशों से धरती पट गई अन्त में दो घंटे
कठिन युद्ध कर कंतित की सेना के पाँव उखड़ गए और वह
भौंरों की भाँति भर्राती हुई जिधर राह पाई उधर ही भाग
निकली। एक भी सेना सैनिक खेत में जीता न रह गया।

इसी समय अजयगढ़ दुर्ग के सेनापति ने अपनी तोपों की
मार से अनेकों को धरती पर सुला दिया। रात के कारण
पीछा करना अच्छा न समझ कर महाराजा विजयबहादुर सिंह
ने अपनी सेना भगेडुओं के पीछे नहीं लगायी।

"जय राजा रामचन्द्र की" कहती हुई चुनारी सेना अपने
खीमें में लौटी। महाराज महताबसिंह से मिल भेंट कर महा
राजा विजय बहादुरसिंह ने चुनार को प्रस्थान किया। अपनी
पैदल सेना लेकर वे उसी राहसे आगे बढ़े। जिस राह से कुँअर
शमशेर बहादुरसिंह का जाना स्थिर हुआ था। शेष हाथी घोड़े
रथ आदि उसी मार्ग से रवाने किए जिस मार्ग से आए थे।

कुँअर शमशेर बहादुरसिंह अपने साथियों और सवारों के
साथ निर्विघ्न चुनार पहुँचे। इनके पीछे ही महाराज विजय
बहादुरसिंह भी पहुँच गए। उस रात चुनार में बड़ा आनन्द
मंगल रहा। घर २ में मंगला चरण का पाठ होने लगा। नगर
में दीपावली मनाई गई। स्त्रियों के ऊँचे स्वर के मंगल गानों से
रात में किसी को नींद न आई।

—:०(०)०:—

तेरहवाँ परिच्छेद।

—:***:—

प्रातःकाल महाराजा विजय बहादुरसिंह ने दरबार किया पंडितों को बुलाकर विवाह का लग्न ठीक किया। चारों ओर न्योता भेजने का हुक्म दिया। एक चीठी महाराज महताबसिंह को लिखकर उन्हें रनिवास सहित चुनार आने का निमंत्रण भेजा। नगर साजा जाने लगा। स्थान स्थान पर तोरण बाँधे गए। कलश धरे गए। मंगल सूचक चिन्ह चौराहों पर बाँधे गए। स्त्रियों का झुण्ड मंगल गान गाने लगीं।

आए हुए राजे महाराजे सेठ साहूकार खीमें में उतारे गए। उनकी दावतें होने लगीं। मंडप साज कर ब्राह्मणों ने मंगल पाठ आरम्भ किया।

विवाह की विशेष धूम धाम विशेष रौनक लिख कर हम अपने पाठकों का समय नष्ट करना नहीं चाहते और न विधि विधान ही लिख कर उन्हें उबाना चाहते हैं। फिर भी एक बात लिख देना उचित समझते हैं कि जितनी तैयारी हो सकती है उतनी तैयारी और जितना खर्च करने की ताकत है उतना खर्च महाराज चुनार ने किया।

यह बात पहिले ही स्थिर कर ली गई कि विवाह कुँअर का ही नहीं उनके मित्रों का भी होना उचित है। अतः ध्यानसिंह के साथ चंचला का, धीरसिंह के साथ सुखमा का. वीरसिंह के साथ रजनी का (१), रणधीरसिंह के साथ कुमोदिनी का (२), पहाड़सिंह के साथ चपला का (३), सुमेरसिंह के साथ कमला का(४) और सौदामिनी के साथ प्रेतनाथका विवाह स्थिर हुआ।

---

(१) (२) (३) (४) ये शशिप्रभा की सहेलियाँ हैं (१) यह बिहार की रहने वाली रजनी है।

ऊपर कहे निश्चय के अनुसार वर कन्या साजे गए प्रेतनाथ अपना विवाह सुनकर अपनी कुँड़ी सोटा उठा वह से खिसने की तैयारी किए। ध्यानसिंह ने उन्हें पकड़ क बैठाया। कुँअर साहेब ने कहा—भागते क्यों हो? सौदामिन तुमसे फिर भी अच्छी है। प्रेत बोले बाबा! अच्छी बुर नहीं आप लोग मजाक कर रहे हैं। विवाह न करूंगा। बड़ हँसी हुई। प्रेतनाथ खूब बनाए गए।

लग्न आते ही इन वरों ने अपना २ मौर बाँधा और ए ही मंडप में सबों का विवाह कृत्य आरम्भ हुआ। सब पहिले कुँअर की तैयारी हुई। कुँअर और शशि की भाँवर अ पूरी नहीं होने पाई थी बाहर बड़ा कोलाहल सुनाई पड़ा क्या है क्या है कौन है कहाँ है कहते सब मंडप से बाहर निक आए देखा तो छपाछप तलवारें चल रही हैं है रुन्ड मुन्ड छ पटाते पड़े हैं !!!

बात क्या हुई सो हमारे पाठक न समझे होंगे। सुनि "विवाह आज होने वाला है" ऐसा किसी दूत से सुनकर रा कर्म ने अपने मित्रों को चुनार भेजा और कहा—भेष बदल क जाओ और जैसे हो वैसे विवाह में बिघ्न उपस्थित कर शं को उड़ा लाओ। धूर्तों को चुनार भेज राजा कर्म सिंह भी ए हजार सवारों के साथ चुपचाप चुनार पहुँचे और नगर से फरलाँग पर एक खड़े पहाड़ के टीले की आड़ में धूर्तों इंतिजारी करते खड़े रहे।

धूर्तों ने अपना भेष याचकों का बना कर जनवासे पहुँचे। दूलह के मंडप में जाते समय ये धूर्त भी मंडप में पहु कर एक तरफ बैठ गए। और अपना अवसर देखही रहे कि ध्यानसिंह की आँखें सीताराम पर पड़ीं उन्होंने विकरा सिंह ने इशारे में कुछ कहा। विकरालसिंह के पहुँचने के पा

ही सीताराम आदि मंडप में से निकलकर दरवाजे पर पहुँचे। इतने ही में विकरालसिंह की ललकार पर छपाछप तलवारें चलने लग गईं। उधर राजा कर्म के सिपाहियों ने भी दरवाजा घेर लिया और वे तलवारों के जोर पर अपने मित्रों को बचाकर निकाल ले गए।

विवाह का लग्न मुहूर्त निकल न जाय इस अभिप्राय से सबलोग शांत किये गये; किसीने उनका पीछा न किया। केवल सेना को महल के द्वार पर तैयार रहने का आदेश देकर सब लोग मंडप का कृत्य पूरा करने लगे।

पारी २ से सबों की भाँवरें पड़ीं। कन्यादान का कृत्यकर सब लोग अपने २ डेरों में पधारे। नेग चार दान दक्षिणा आदि दे लेकर मेहमान बिदा हुए। राजा महताबसिंह भी अपने रनिवास के साथ अजयगढ़ को प्रस्थान किये। वरवधू आनन्द पूर्वक सोहाग भवन में पधारे।

उधर रुद्रपूर वालों का टीका कंतित पहुँचा। राजा कर्मसिंह का विवाह केसनी के साथ हो गया। उधर भी आनन्द की धूम मच गई। दोनों ओर शादियों की धूम देख मैंने भी अपनी लेखनी को विश्राम देना उचित समझा। आशा है कि हमारे प्रिय पाठक भी विश्राम लेना हीं उचित समझेंगे।

॥ इति ॥

नोट—इसके आगे का हाल जानने के लिए तीसरा खण्ड मँगा कर देखिये।

---

२३९ वें पृष्ठ से पुस्तक के अन्त तक—
गंगा प्रसाद खत्री द्वारा वाणिज्य प्रेस, काशी में छपा।

सूचीपत्र ।

शिव-पार्वती नाटक—यह नाटक क्या है—भक्ति रस का भण्डार, आनन्द का ख़ज़ाना, उमंग का समुद्र तथा चित्त की चिन्ताओं के हटाने का अद्भुत साधन है !!! इसके पढ़ने से—आपके रोम २ में भक्ति रस का सञ्चार हो जायगा ! इसके पढ़ने से—आप उमंग तथा उत्साह से उछल पड़ेंगे ! इसके पढ़ने से—आप अपनी बड़ी से बड़ी विपत्ति भूल जायँगे ! हाथ कंगन को आरसी क्या एक प्रति मँगा देखें मूल्य ॥=)

नल-दमयन्ती—सती शिरोमणि दमयन्ती तथा आदर्श चरित्र-वान महाराजा नल का पवित्र चरित्र देखना चाहते हैं, तो इसे देखें। इसमें सती की अद्भुत शक्ति, जुये का भयंकर परिणाम, भाई की नीचता का खाका नाटककार ने ऐसा रंगकर दिखाया है, कि आप देखकर मुग्ध हो जावेंगे। मू० स० का ॥।)

यहूदी की लड़की—यह रोमनों का यहूदियों पर अत्याचार रमणी प्रेम का आदर्श महत्व, स्वर्गीय प्रेम का आदर्श चित्र है ॥)

भक्त-प्रहलाद—भक्त शिरोमणि प्रहलाद की रक्षा भक्तवत्सल भगवान ने किस प्रकार से किया है ? नाटककार ने क्या ही उत्तम गानों, पुरजोश ड्रामों से चित्रित किया है, कि देखते ही तबीयत उछल पड़ती है। इसे अवश्य देखें सचित पुस्तक का मूल्य ॥।)

खूने नाहक—शेक्शपीयर के हेमलेट का प्लाट लेकर इस नाटक की रचना हुई है। मूल्य सचित्र का ।≡)

श्रीमतीमंजरी—यह वह जोरदार ड्रामा है, जिसके प्रत्येक शब्द में एक्यता पुकार, भारत सुधार, आपस के प्रेम व्यवहार

को ध्वनि गूंज रही है, मजरों का पवित्र चरित्र देखने योग्य है। इसके लिये अनुरोध है कि अवश्य देखें। मूल्य ।॥)

भक्त-सूरदास—सूरदास का अनुकरणीय जीवन चरित्र इस नाटक में ऐसी विचित्रता से कंपनियों ने दिखाया है कि इसकी धूम कलकत्ते ही में नहीं वरन् समस्त भारतवर्ष में मची है। सुन्दर २ चित्रों के साथ सजधज कर तैयार है। मूल्य ॥=)

मीराबाई—यह वही जगद्विख्यात भक्त शिरोमणि विदुषी महारानी मीराबाई की जीवनी नाटक रूप में नाटककार ने, अपनी निराली शैली निराली भाषा, आधुनिक भाव के विचित्र रूप से चित्रित किया है कि जिसने संसार का समस्त दुःख सुख भूल, केवल श्रीकृष्णचन्द्र में ही तनमय हो रही थी। मूल्य सचित्र का ॥=)

सती अनुसूया—यह महारानी अनुसूया के पवित्र पातिव्रत तथा अपूर्व सतीत्व बल का एक जीता जागता चित्र, नारी जीवन को सार्थक करने वाला एक हृदय स्पर्शी अभिनय है, अवश्य देखें ॥=)

वीरेन्द्रवीर—सत्य पर मर मिटने वाले वीरेन्द्रसिंह की पवित्र-जीवनी का यह पुरजोश ड्रामा अवश्य देखें। यह ड्रामा परोपकार का चित्र है। मय गाने, ड्रामे और चित्रों के सहित सजधज कर तैयार है। यह प्रति मँगा देखें। मूल्य ॥)

वीर अभिमन्यु—इस नाटक की प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखाना है। सोलह वर्ष के वीर बालक अभिमन्यु का साहस पराक्रम, चक्रव्यूह भेदन, सात महारथियों को इकला होने पर भी विकल करना देख आपका दिल उछल पड़ेगा। सात महारथियों के अन्याय युद्ध से अभिमन्यु का मरण देख आपके नेत्र से अश्रु धारा बह पड़ेगी। मूल्य कई चित्रों के सहित का ॥)

इसमें अत्याचारी का अत्याचार, एक रमणी ने अपने ही भाई पर नीति निष्ठा किस अटल भाव से अदा किया है, वह देखने योग्य है ! पुस्तक ऐतिहासिक सत्य घटना से पूर्ण है। दाम १।)

नल-दमयन्ती–इस उपाख्यान में परम धार्मिक राजा नल और सती शिरोमणि दमयंती की बड़ी हृदयग्राही, पवित्र कथा है। इसे बालक वा पुरुष गण पढ़कर वीर धीर गंभीर और सदाचारी होंगे और स्त्रियाँ पतिव्रता तथा धर्मपरायणा बनेंगी। सुन्दर २ चित्रों से सजधज कर तैयार है। मूल्य ॥।)

सावित्री सत्यवान–यह उपाख्यान प्रत्येक कन्या पाठशालाओं में पाठ्य पुस्तकों के स्थान पर पढ़ाने योग्य लिखी गई है ! विशेष प्रशंसा व्यर्थ है एक प्रति मँगा देखें। मूल्य ॥।

सफेदखून–दुनियाँ का खून किस प्रकार सुफेद हो जाता है, मय गायन और ड्रामे के सहित सचित्र का मूल्य ।≡

अमीरेहिर्स–यह भी बड़ा शिक्षाप्रद नाटक है। पारसी कम्पनियोंका यह प्रसिद्ध खेल,मयगायन और ड्रामेसे पूर्ण तैयारहै ॥)

सत्य हरिश्चन्द्र–इसमें सत्य पर मर मिटने वाले बीर हरिश्चन्द्र का दृश्य अपूर्व रीति से खींचा गया है। विश्वामित्र का क्रोध, मसान का दृश्य पढ़ने लायक है। बम्बई की प्रसिद्ध नाटक कम्पनी "बालीवाले" का यह एक मशहूर खेल है। बड़ी मेहनत और कठिनाइयों से यह लिखा गया है। ४ चित्रों के सहित

पता–बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर,

राजादरवाजा, बनारस सिटी।